❍ Year : 9 ❍ Volume : 36 ❍ April 2025 ❍ ISSN : 2456-0898

GLOBAL THOUGHT

ग्लोबल थॉट

(MULTI DISCIPLINE MULTI LANGUAGE RESEARCH JOURNAL)

(An International Peer Reviewed Refereed Quarterly Research Journal)

Special Note :

Anti National Thoughts are not acceptable.

स्वामी/मुद्रक/प्रकाशक रूपेश कुमार चौहान द्वारा 47, ए-3 ब्लॉक, गली नं. 5, धर्मपुरा एक्सटेंशन, (नजदीक संकट मोचन मंदिर), पी.एस. नजफगढ़, दिल्ली से प्रकाशित एवं डॉल्फिन प्रिंटोग्राफिक्स, 4 ई/7, पाबला बिल्डिंग, झंडेवालान् एक्सटेंशन, नई दिल्ली में मुद्रित।
सम्पादक-रूपेश कुमार चौहान
Ph. 09555222747, 9267944100, 9555666907 • Website : www.gtirj.com

प्रकाशनार्थ सूचना

* **शोध-पत्र हमारी विशेषज्ञ समीक्षा समिति (Peer Reviewed Committee) के द्वारा द्वि-स्तरीय समीक्षित होकर प्रकाशन हेतु स्वीकृत किया जाता है।**
* शोध-पत्र प्राप्त होने के उपरांत शोधार्थी के पास ईमेल / व्हाट्सएप्प या फोन के माध्यम से शोध-पत्र प्राप्ति की सूचना दी जायेगी।
* शोध-पत्र प्राप्त होने के उपरांत सम्पादक-मंडल द्वारा इसे सम्बन्धित विषय के विशेषज्ञ (रीव्यूवर) के पास भेजा जायेगा। जिसका विषय विशेषज्ञ द्वारा विधिवत मूल्यांकन एवं परीक्षण / संशोधन किया जायेगा। तदुपरांत सम्पादक मंडल के पास प्रकाशनार्थ प्रेषित किया जायेगा।
* विषय विशेषज्ञ / सम्पादक मंडल के पास शोध-पत्र के प्रकाशन / संशोधन का पूर्ण अधिकार होगा।
* कोई भी शोध-पत्र सम्पादक मंडल / रीव्यू पैनल द्वारा पूर्णतया मूल्यांकन के उपरांत ही प्रकाशित किया जायेगा।
* पूर्णतया स्वीकृति के उपरांत ही किसी भी शोधार्थी को सम्बन्धित आलेख के प्रकाशन की सूचना दी जायेगी।
* लेखक से अनुरोध है कि शोध-पत्र वॉकमैन चाणक्य 905 या क्रुतिदेव फॉन्ट में वर्ड या पेजमेकर में टाइप (टङ्कण) कराकर शोध-पत्रिका के ई-मेल पर प्रेषित करें।
* शोध-लेख **हिन्दी अथवा संस्कृत भाषा में** न्यूनतम 1500 शब्द एवं अधिकतम 3000 शब्द तक मान्य है तथा इसके साथ लेखक का पद-नाम, कीवर्ड्स, सारांश एवं सभी संदर्भ के साथ स्वयं की फोटो (छवि-चित्र) अत्यन्त अनिवार्य है।
* प्रकाशनार्थ प्राप्त लेख सलाहकार परिषद् एवम् संपादक मण्डल की अनुमति के पश्चात् स्तरीय होने पर ही प्रकाशित होगा।
* शोध-पत्र भेजने के बाद उसे प्रकाशित करने हेतु किसी भी तरह का दबाव स्वीकार्य नहीं होगा। शोध-पत्र में यदि चित्र का प्रयोग हुआ है तो उसे भी अवश्य प्रेषित करें।
* **'वाक् सुधा'** किसी भी तरह के परामर्श का स्वागत करती है, इसलिए अपनी प्रतिक्रिया अवश्य दें।
* यह स्पष्ट किया जाता है कि शोध पत्र में प्रस्तुत तथ्य शोधकर्त्ता के अपने विचार हैं तथा सलाहकार परिषद् एवं सम्पादक मण्डल का इसमें कोई सरोकार नहीं होगा। इसके लिए शोधकर्त्ता स्वयं उत्तरदायी है।
* शोध-पत्रिका की किसी भी सामग्री को प्रकाशक एवं मुद्रक की जानकारी के बिना अन्यत्र प्रकाशन अनुचित होगा।
* प्रत्येक अङ्क पत्रिका की वेबसाइट पर अध्ययन हेतु उपलब्ध रहता है।
* अपेक्षित आर्थिक सहयोग अथवा अंशदान के लिए हम आपके अत्यंत आभारी रहेंगे।
* **कृपया लेख के साथ अपनी पासपोर्ट साइज की फोटो अवश्य भेजें।**
* **पत्रिका का वितरण नि:शुल्क किया जाता है एवं विशेष अनुदान के लिए किसी पर कोई प्रतिबंध नहीं है। प्रकाशन के लिए कोई भी आवश्यक शुल्क नहीं है।**
* **आगामी अङ्क में प्रकाशनार्थ लेख आमंत्रित हैं। यदि आप लेख टाइप करा कर भेजने में असमर्थ हैं तो हस्तलिखित प्रति पत्रिका में दिये गये पत्र-व्यवहार के पते पर भेज दें।**

सलाहकार परिषद् :

- **डॉ. मनमोहन सिंह चौहान**
(कुलपति, पंडित गोविन्द वल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड)
- **प्रो. इन्द्र नारायण सिंह**
(बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)
- **प्रो. गिरीश चन्द्र पंत**
(पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, दिल्ली)
- **प्रो. रामनाथ झा**
(संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन संस्थान, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली)
- **डॉ. राजवीर शर्मा**
(पूर्व प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, आत्माराम सनातन धर्म कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)
- **प्रो. मोहम्मद मंसूर आलम**
(अध्यक्ष, उर्दू विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया)
- **प्रो. रसाल सिंह**
(प्रोफेसर एवं प्राचार्य, रामानुजम् महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)
- **डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर**
(राष्ट्रीय अध्यक्ष, भारतीय दलित साहित्य अकादमी एवं प्रसिद्ध दलित चिंतक)
- **प्रो. सुभाष कुमार सिंह**
(प्रोफेसर एवं प्राचार्य, सत्यवती महाविद्यालय (प्रातः), दिल्ली)
- **प्रो. सत्यदेव पोद्दार**
(इतिहास विभाग, त्रिपुरा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, त्रिपुरा)
- **प्रो. काशीनाथ जेना**
(राजनीति-शास्त्र विभाग, त्रिपुरा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, त्रिपुरा)
- **डॉ. राघवेन्द्र प्रताप सिंह**
(इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश)
- **डॉ. एम. रहमतुल्लाह**
(कंसल्टिंग एडिटर, दूरदर्शन न्यूज, भारत सरकार)
- **प्रो. ब्रजेश कुमार सिंह**
(रसायन शास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)

© सर्वाधिकार सुरक्षित : रूपेश कुमार चौहान

ISSN : 2456-0898

विशेष सूचना : शोध पत्रिका में प्रकाशित लेखों में दिए गये तथ्यों और इनसे सम्बन्धित किसी भी विवाद का पूर्ण दायित्व लेखक का होगा, प्रकाशक, सम्पादक, मुद्रक एवं पत्रिका से सम्बन्धित अन्य किसी भी व्यक्ति का नहीं। प्रेषित स्पष्टीकरण अवश्य प्रकाशित किया जायेगा।

- सभी पद अवैतनिक एवं परिवर्तनीय हैं।
- **'ग्लोबल थॉट'** से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।
- सारे भुगतान मनीआर्डर : चेक/ बैंक ड्राफ्ट **'वाक् सुधा'** के नाम से किए जाएं। कृपया दिल्ली से बाहर के चेक में बैंक कमीशन के 35.00 रुपये अतिरिक्त जोड़ें।

Registered Office : *H.No. 47, A-3 Block, Gali No. 5, Near Sankat Mochan Mandir, Dharampura Extn., Najafgarh, Delhi-110043*
Ph. 09555222747, 9267944100, 9555666907 • Website : www.gtirj.com

Editor
Dr. Rupesh Kumar Chauhan
M.A., M.Phil., Ph.D. (Sanskrit),
M.A. (History)
Assistant Professor
Kirorimal College, University of Delhi
Mob : 9555222747, 9267944100

Executive Editior
Dr. Pramod Kumar Singh
M.A., Ph.D. (Sanskrit), M.A. (Philosophy)
Gold Medalist
Associate Professor,
Department of Sanskrit, Maitreyi College,
University of Delhi
Mob : 9717189242

Sub.- Editor
Dr. Rajesh Kumar
M.A., M.Phil., Ph.D. (Sanskrit)
Assistant Professor
Department of Sanskrit
PGDAV College (Morn.),
University of Delhi, Delhi
Mob. 9555666907, 9891526584

Legal Advisor :
Arun Kumar Shukla
LL.B., LL.M., D.U.
Mob. : 7011474039, 9650088311

Managing Editor
Thakur Prasad Chaubey
Mob. : 9810636082

Office Addresses :
Head Office (Delhi) :
Dharam Pal
309, Usha Kiran Building, Commercial Complex, Azadpur, ***Delhi-****110033*
Mob : 9267944100

Branch Office (International) :
• **Mrs Kirthee Devi Ramjatton**
Impasse Bois Cheri, Bois Cheri Road,
Moka- 80804 Mauritius
Email: kdramjatton@yahoo.com
Contact no.: +230 57882178

• Correspondence Address :
B-11/39, MIG Flats IIIrd Floor,
Near DDA Market,
Sector 18, Rohini, Delhi-110089
Mob : 9555222747

• Correspondence Address :
House No. 417, Ist Floor,
Paradise Apartment, Sector-18,
Rohini, Delhi-110089
Mob. : 9267944100

• Branch Office :
R 7-8, Ward No. 2,
Near Football Ground, Transit Camp,
Rudrapur, Udham Singh Nagar,
Uttrakhand-263153
Mob. : 8433465378

Website : www.vsirj.com

Designer :
Kawal Malik, J.D. Computers
Mob. : 9818455819

सम्पादक मंडल :

- **डॉ. शाहिद तस्लीम**
(असिस्टेंट प्रोफेसर, उज्बेक भाषा विशेषज्ञ, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, दिल्ली)
- **डॉ. शंकर नाथ तिवारी**
(एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, त्रिपुरा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, त्रिपुरा)
- **प्रो. गिरिधर गोपाल शर्मा**
(प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, पीजीडीएवी महाविद्यालय (प्रातः), दिल्ली)
- **प्रो. दिलीप कुमार झा**
(प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, पीजीडीएवी महाविद्यालय (प्रातः), दिल्ली)
- **डॉ. जितेन्द्र कुमार**
(असिस्टेंट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, अनुग्रह नारायण स्मारक महाविद्यालय, मगध विश्वविद्यालय)
- **डॉ. देवेन्द्र नाथ ओझा**
(असिस्टेंट प्रोफेसर, एमिटी इंस्टीट्यूट फॉर संस्कृत स्टडीज, एण्ड रिसर्च, एमिटी विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, नोएडा)
- **डॉ. वी.के. तोमर**
(एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, महाराजा अग्रसेन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)
- **डॉ. चंद्रशेखर पासवान**
(बौद्ध अध्ययन एवं सभ्यता विभाग, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा)
- **डॉ. के.के. झा**
(सीनियर लेक्चरर, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी इंस्टीट्यूट, मोका, मॉरिशस)
- **डॉ. सुधीर कुमार सिंह**
(एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विभाग, दयाल सिंह कॉलेज (प्रातः), दिल्ली)
- **प्रो. चन्द्रशेखर राम**
(प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महाराजा अग्रसेन महाविद्यालय, दिल्ली)
- **डॉ. नन्दिनी सहाय**
(समाज-कार्य विभाग, एमिटी यूनिवर्सिटी, नोएडा)
- **Mrs. Kirthee Devi Ramjatton**
(Senior Lecturer, Department of Sanskrit, School of Indological Studies, Mahatma Gandhi Institute, Moka - 80808 Mauritius)
- **डॉ. कुमारी शुभ्रा**
(प्रख्यात लेखिका एवं साहित्यकार, दिल्ली)
- **डॉ. प्रमोद कुमार द्विवेदी**
(एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, श्यामलाल महाविद्यालय (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)
- **प्रो. प्रद्युम्न कुमार सेठी**
(भौतिक विभाग, किरोड़ीमल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)
- **डॉ. सुनील कुमार सिंह**
(एसोसिएट प्रोफेसर, रसायन शास्त्र विभाग, किरोड़ीमल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)

संरक्षक :

- **प्रो. जगमोहन सिंह राजपूत**
(पद्मश्री सम्मानित एवं पूर्व एन.सी.ई.आर.टी. निदेशक, दिल्ली)
- **प्रो. मदन मोहन अग्रवाल**
(पूर्व अध्यक्ष एवं संकाय अध्यक्ष,
संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली)
- **प्रो. दलवीर सिंह चौहान**
(पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, बिहार)

अनुक्रमणिका

Editorial ---------- **vii**

प्रकाश झा की फिल्मों में यथार्थ 1
डॉ. चित्तरंजन कुमार

Trends of Crimes Against Women in Bihar: An Empirical Analysis ----------8
Dr. Dayanand Kumar

भारतीय साहित्य के संदर्भ में तुलनात्मक साहित्य की अवधरणा 13
Avinish Prakash Singh

Beyond the Farm: Empowering Women Farmers Through Inclusive Schemes -------- 17
Dr. Swati Ranjan Choudhary / Dr. Jyotika Elhance

Indian Banking System: A Comparative Study of PNB and SBI Using the CAMEL Method (2018-2023) ---------- 24
Pramilla / Prof. Renu Tyagi

Alternative Dispute Resolution in Public-Private Partnerships (PPPs): Legal, Institutional, and Policy Challenges in India --- 30
Nitin

The Role of Public Broadcasting in India: Reimagining its Future amid Contemporary Challenges ---------- 34
Kshitiz Dwivedi

समाज और स्त्री अस्मिता का प्रश्न 41
अमन कुमार

जनजातीय साहित्य में पर्यावरण चेतना का दार्शनिक दृष्टिकोण 45
डॉ. प्रमिला / डॉ. सुमित कुमार मीना

Effect of Yoga on Emotional Maturity ------- 51
Richa

लोक साहित्य और समकालीन हिन्दी उपन्यास 56
शशांक कुमार

राजस्थान की लोकनाट्य परंपरा 'ख्याल' 61
अंचल कुमार

सुभद्रा कुमारी चौहान की कहानियां और स्त्री मन 66
लक्ष्मी

भारतीय उपन्यास के जातीय फॉर्म की परिकल्पना (निर्मल वर्मा) 72
डॉ. रंजीत कौर

"The Impact of Digital Transformation on Employee Retention in the Indian Banking Sector: A Systematic Review of Challenges, Trends, and Best Practices" --- 77
Anamika Kumari / Sagar Verma / Ginisha Verma

साकेत की आधुनिकता : एक समकालीन दृष्टिकोण ... 88
डॉ. सज्जन कुमार

Role of Women in Panchayati Raj ---------- 92
Hira Chand Mehta

प्रमुख संस्कृत नाटकों में चित्रित समाज एवं संस्कृति .. 97
डॉ. वन्दना सूरज भान

Dairy Cooperatives : A Confluence of Economic Theory and Rural Transformation ----------103
Prof. (Dr.) Rajeshwar Prasad Shrivastava / Ramesh Kumar

Factors Contributing to Improved Performance in Diverse Workplace Contexts ---------- 110
Mr. Kun Seyha / Dr. Ashish Ranjan

Future of Ayurveda in India ----------121
Dr. C A Kishore / Prof. V. Girish Chandra

रावण का प्रश्न 124
डॉ. रीता नामदेव

Transforming Rural Development: AI's Role in Boosting the Jeevika Program's impact ---128
Dr. Rama Srivastava / Dr. Nandini Sahay

एआई के माध्यम से हिन्दी का विकास : चुनौतियाँ और संभावनाएं 139
प्रीति सागर

The Impact of Artificial Intelligence on Customer Satisfaction in Indian Banks ----143
Dr. Jagveer Singh / Binny Kantiwal

तुलसी कृत श्रीरामचरितमानस और राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना 146
सुमित कुमार सिंह

भारत में क्षेत्रीयता का सवाल और विकास की अवधारणा 149
सुनील कुमार

The Cultural Ties of India and Indonesia, Shared Literatures and the Prospects of Soft Power----------153
Hukam Singh Meena / Gopal Khillo

Political and Socio-Economic Empowerment of Tribal Women Through Women-Centric Policies in Rajasthan ---------- 158
Sunita Meena
Strategies for Professional Development of Teachers for Effective Teaching-Learning Process in view of NEP 2020 ---------- 163
Dr. Neha Gupta / Dr. Raj Lakshmi Raina / Dr. Nameirakpam Rohen Meetei
राष्ट्रियशिक्षानीतौ प्रतिबिम्बितम् औपनिषदिकं शिक्षादर्शनम् 168
डा. कल्पना आर्या
Analysis of Status of Project-based Learning among Middle-School Student's Performance ---------- 173
Dr. Nameirakpam Rohen Meetei / Dr. Vibhakar Kumar Dixit
Buddha Nature (Tathāgatagarbha) in Indian Mahāyāna Buddhism ---------- 181
Nguyen Hoang Khanh
Loving-Kindness Meditation as a Buddhist Approach to Environmental Preservation and Sustainable Development ---------- 188
K Brop
अलंकारों की परम्परा में समासोक्ति अलंकार 199
डॉ. शंकर नाथ तिवारी
प्रागैतिहासिक काल में मानव संस्कृति निर्माता के रूप में : एक अध्ययन 203
डॉ. स्वाती रंजन चौधरी
Eco-Tourism : Principals and Practices- A Case Study of Current Sitation (Some Lession for Jaipur District) ---------- 209
Seema Khadiya
अज्ञेय की कविता में प्रतीक, परंपरा से हटकर 217
डॉ. सुनीता दुरंगल
अंडाल और मीरा का जीवन एवं तुलनात्मक अध्ययन 221
श्रद्धा त्रिपाठी
Confidentiality in Arbitration: Myth or Reality? ---------- 226
Vivek Kumar Sharma (Advocate)
Balancing Judicial Creativity with Constitutional Restraint: A Modern Indian Dilemma ------ 232
Ms. Shivani Dandvate
"Environmental Ethics and Constitutional Morality: Reimagining the Right to Life in the 21st Century" ---------- 238
Mr. Sunil Kumar
China-Pakistan Economic Corridor in Pakistan-Occupied Jammu and Kashmir (POJK) Security Threat for India ---------- 244
Pradeep / Dr. Vivek Kumar Mishra
The Role of organizational culture in driving productivity and engagement during remotework transitions ---------- 252
Priya Singh / Dr. Aakansha Maru
Custodial Violence Against Scheduled Castes : Pattern, Protection and Accountability ----- 259
Himanshi / Dr. Mamta Sharma
The Impact of Bandwagon Cues on Consumer Purchase Intentions in Indian E-Commerce Platform ---------- 269
Priya Rani
भोटिया जनजाति में शैक्षिक गतिशीलता 278
नरेश सिंह ग्वाल/ डॉ. अनीता बिष्ट
Entrepreneurial Ecosystem in the Indian Mutual Fund Industry ---------- 281
Priya Rani / Reena Kumari
Determinants of Green Product Adoption in India: An Integrated Framework of Policy, Accessibility, and Consumer Behaviour ---------- 289
Priya Rani
अनुभवात्मक अधिगम नवाचार आधारित अधिगम .. 298
मीनाक्षी शर्मा / प्रो. रीना जैन
The Evolving Role of Mass Media in Shaping Legal Awareness among Undergraduate Students ---------- 303
Toyaz Kumar Singh
The Dark Side of Globalization: The Rise and Spread of Terrorism ---------- 311
Vivek Singh
Ambedkar's Vision, Intersectionality, and Inclusive Employment: A Framework for Empowering Disabled Women in India ----- 317
Sarita Bhoi

सम्पादकीय

भारत पिछले 77 वर्षों से आतंकवाद का दंश झेल रहा है। 22 अप्रैल 2025 को जम्मू-कश्मीर के प्रसिद्ध पर्यटक स्थल पहलगाम में हुए आतंकी हमले ने पूरे देश को झकझोर कर रख दिया। इस क्रूर, वीभत्स और नृशंस घटना में 26 हिंदुओं को धर्म पूछकर मारा गया। यह हमला न सिर्फ मानवता के विरुद्ध है। बल्कि, यह देश की एकता, सामाजिक समरसता और आंतरिक सुरक्षा के लिए भी एक गंभीर चेतावनी उभरकर सामने आयी है। घटना की भयावहता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि दुर्दांत जेहादियों ने केवल धर्म के नाम पर हिंसा को अंजाम दिया।

पाकिस्तान को 2016 में सर्जिकल स्ट्राइक और 2019 में एयर स्ट्राइक के रूप में भारत ने आतंक के खिलाफ अपनी इच्छा शक्ति और नीतियों को बता दिया था, फिर भी 22 अप्रैल को महिलाओं के सामने उसके पति को बड़ी ही निर्मम तरीके से मारा। इस घटना पर जवाबी कारवाई करते हुए भारतीय सेना ने 6 एवं 7 मई 2025 की रात में ऑपरेशन सिंदूर शुरू किया। ऑपरेशन का नाम 'सिंदूर' इसलिए रखा गया क्योंकि आतंकियों ने पहलगाम हमले में महिलाओं के सिंदूर को उजाड़ दिया था, और इस ऑपरेशन का उद्देश्य उन महिलाओं के सम्मान की रक्षा करना था, जिसमें भारतीय वायुसेना के फाइटर प्लेन ने पाकिस्तान एवं पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के नौ आतंकी ठिकानों पर हमला किया और उसको नेस्तनाबूद कर दिया। जिसमें बहावलपुर में जैश-ए-मोहम्मद और मुरीदके में स्थित लश्कर-ए-तैयबा के मुख्यालय भी शामिल हैं। यह दोनों पाकिस्तान के पंजाब में हैं। पहली बार भारतीय सेना ने पाकिस्तान के पंजाब में हमला किया। भारतीय सेना ने ऑपरेशन सिंदूर को एक सटीक रणनीति के तहत सफल बनाया। इसमें किसी भी पाकिस्तानी सैन्य और नागरिक प्रतिष्ठानों पर हमला नहीं किया। बहावलपुर में जैश-ए-मोहम्मद के सरगना मसूद अजहर के परिवार के 14 सदस्य मारे गए। इसके अलावा दो बेहद खूंखार आतंकवादी भी मारे गए।

ऑपरेशन सिंदूर के बारे में देश दुनिया को विदेश सचिव विक्रम मिसरी, लेफ्टिनेंट कर्नल सोफिया कुरैशी, और विंग कमांडर व्योमिका सिंह ने मीडिया के माध्यम से बताया। लेफ्टिनेंट सोफिया ने कहा पहलगाम आतंकी हमले के पीड़ितों को न्याय दिलाने के लिए ऑपरेशन सिंदूर शुरू किया गया था। नौ आतंकी शिविर को निशाना बनाकर नष्ट कर दिया गया। जो पाकिस्तान और पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में फैले हुए हैं। हमारा पहला लक्ष्य मुजफ्फराबाद में स्थित सवाई नाल कैंप था। यह ऑपरेशन रात के एक बजकर 5 मिनट से लेकर एक बजकर 30 मिनट तक कुल 25 मिनट चला। सोशल मीडिया के आंकड़ों में 100 से अधिक आतंकवादियों के मारे जाने की खबर है। बहरहाल, पाकिस्तान ने 7-8 मई की रात को फिर से दुस्साहस करते हुए कश्मीर के अवंतीपुरा से लेकर गुजरात के कच्छ तक उत्तर पश्चिमी सीमा पर भारतीय सेना के कई महत्वपूर्ण ठिकाने को निशाना बनाते हुए ड्रोन और मिसाइल से हमले करने का प्रयास किया। जम्मू, पठानकोट में भी पाकिस्तान ने नियंत्रण रेखा पर और उसके आसपास बड़े पैमाने पर गोलाबारी की। भारत के एयर डिफेंस सिस्टम ने पाकिस्तान के सभी हमलों को हवा में ही नाकाम कर दिया। भारतीय सेना ने इस दुस्साहस का भी ड्रोन और मिसाइल से जवाबी कार्रवाई करते हुए ऑपरेशन सिंदूर 2.0 चलाया। जिसमें पाकिस्तान के महत्वपूर्ण सैनिक ठिकानों पर हमला किया। भारत के हमले से पाकिस्तानी के छह एयरबेस ध्वस्त हो गए। यहां तक की लाहौर के एक वायु रक्षा प्रणाली भी नष्ट हो गयी। चीन का डिफेंस सिस्टम जिसके भरोसे पाकिस्तान कूद रहा था वह भी भारतीय हमलों को रोकने में नाकामयाब रहा। फिर पाकिस्तान की गुहार पर 10 मई को भारत ने युद्ध विराम की बात मान ली। हालांकि भारत ने इसे युद्ध विराम नहीं गोलीबारी का विराम कहा है। इसका मतलब है कि ऑपरेशन सिंदूर अभी जारी है। ऑपरेशन सिंदूर भारतीय सेना का अनुशासित सैन्य रणनीति है, एक स्पष्ट लक्ष्य और उसकी प्राप्ति। सटीक निर्णायक और आधुनिकता से लड़े गए इस युद्ध से दुनिया भौचक्के में है। जय हिंद, जय हिंद की सेना।

डॉ. राजेश कुमार
उपसम्पादक

डॉ. चित्तरंजन कुमार

प्रकाश झा की फिल्मों में यथार्थ

जो है या जो जगत में घटित हो रहा है उसे यथार्थ कहते हैं। आज हम जिस समाज में जी रहे हैं यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम दुनिया को किस नजरिये से देखते है।

साहित्य की तरह फिल्म भी समाज के हकीकत का बयान करती है। फिल्मों का कथानक समाज में घटनेवाली घटनाओं से प्रेरित होता है। अत: निर्देशक अपने युग से अपने को अलग नहीं रख पाता है। प्रकाश झा को हिंदी सिनेमा के महत्वपूर्ण यथार्थवादी निर्देशकों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उनकी फिल्में हिप्प हिप्प हुर्रे (1984), दामूल (1985), परिणति (1986), मृत्यु दंड (1996), राहुल (2001), गंगाजल (2003), अपहरण (2005), राजनीति (2010) और चक्रव्यूह (2012)। ये सभी फिल्में समाज में घटने वाली घटनाओं और हलचलों को अपने अंदर समाहित करती हैं।

1. फिल्म हिप्प हिप्प हुर्रे - यह फिल्म स्कूलों में खेलों के प्रति उदासीनता अपने की घटना से प्रेरित है। पढ़ाई के साथ ही खेलों को भी स्कूल स्तर से प्रोत्साहन देने की वकालत यह फिल्म करती है। यह फिल्म आकाश वरवलिया अनुसार प्रकाश झा की अब तक की सर्वश्रेष्ठ फिल्म है।[1] इस फिल्म के महत्वपूर्ण पात्र हैं - सतीश आनंद, राम गोपाल बजाज, निखिल भगत, शफी इनामदार, राज किरण और दीप्ति नवल।

संदीप चौधरी अपनी मां के साथ रहता है। वह एक कंप्यूटर इंजीनियर है तथा वह एक अच्छे कंपनी में नौकरी के लिए चयनित हो जाता है, लेकिन उसकी नौकरी दो-तीन महीने के बाद शुरू होने वाली थी। संदीप के चाचा नितिन सेठी ने उसे सलाह दिया कि वह एक खेल शिक्षक के रूप में स्कूल जॉइन कर ले। उसे समय स्कूल में कुछ दिनों के लिए एक खेल शिक्षक की जरूरत थी। संदीप स्कूल जॉइन कर लेता है, लेकिन उसे इस बात का दुख लगा की कोई भी खेल में रुचि नहीं लेता है। संदीप स्कूल को प्रोत्साहित करने का प्रयास करता है तथा स्कूल स्तर पर फुटबॉल टूर्नामेंट आयोजित करवाता है। लेकिन सिर्फ शिक्षक ही नहीं बल्कि, विद्यार्थी भी खेलों में रुचि नहीं दिखाई। इस फिल्म यह दिखाया गया है कि कैसे संधि स्कूल के बच्चों और स्टाफ को प्रोत्साहित करता है और अपनी टीम को जीत दिलाता है। यह एक हौसला आफजाई है करने वाली फिल्म है। जवरीमल्ल पारख के अनुसार समाज में जो कुछ घटना घटित होती है उसे आप किस नजरिया से देखते हैं, यह ज्यादा महत्वपूर्ण है।[2] प्रकाश झा बिहार के निवासी रहे हैं, जहां शुरू से से ही समाज में यह मान्यता रही है कि ''खेलोगे कूदोगे तो होंगे खराब और पढ़ोगे लिखोगे तो बनोगे नवाब।''

2. फिल्म दामूल - इस फिल्म के कहानीकार सहवाल है। यह गया जिले के निवासी की कहानी है। इस फिल्म के प्रमुख कलाकार अन्नू कपूर, सरला मजूमदार, मनोहर सिंह, दीप्ति नवल एवं रंजन कामथ है। यह बंधुआ मजदूरी पर आधारित फिल्म है, जिसमें बंधुआ मजदूर अपने जमींदार मलिक के लिए चोरी करने को बाध्य है और मरते दम तक गुलाम है। इस फिल्म के संदर्भ में पी. शुक्ला कहते हैं कि ''दमन फिल्म में जातिवाद निचली जातियों का विद्रोह के साथ ही बिहार से पंजाब इत्यादि जगह में मजदूरों के पलायन को दिखाया गया है। इस फिल्म को भारतीय सिनेमा में यथार्थवादी एवं कलात्मक के लिए विशेष स्थान प्राप्त है। जवरीमल्ल पारख ने भी भी इस फिल्म को यथार्थवादी फिल्मों में शामिल किया है, जिसमें जन

प्रतिरोध की चेतना दिखाई देती है।[3]

जातिवाद बिहार की सनातन समस्या रही है, खासकर निचली जातियों का शोषण। इन्हीं सब कर्म से मंडल की राजनीति का सबसे अधिक असर बिहार पर दिखाई पड़ा। बिहार के मजदूर देश के कोने-कोने में रोजगार के लिए आवर्जन करते हैं। यह एक क्रूर सत्य है। अपनी कथानक दृश्य योजना संवाद योजना के दृष्टिकोण से दामूल एक यथार्थवादी फिल्म है।

3. फिल्म मृत्युदंड - यह फिल्म समाज और लैंगिक असमानता पर एक कमेंट्री है। बिहार की सामाजिक कुरीतियों पर प्रकाश झा फोकस्ड है। सईद मिर्जा के अनुसार एक खास प्रकार का सिनेमा एक खास मानसिकता या अवस्था के अनुसार अस्तित्व में आती है।[4] इसलिए मृत्युदंड में समाज में हो रहे महिलाओं का शोषण, जातिवाद और अपराध को कथानक का आधार बनाया गया है। बिलासपुर (बिहार) नमक किसी काल्पनिक गांव की कहानी है। फिल्म की कहानी की शुरुआत दो असुरक्षित महिलाओं के कटला से होती है। विनय (अयूब खान) और केतकी (माधुरी दीक्षित) पति पत्नी है। इनकी टकराहट गांव के शक्तिशाली और बुरे लोगों से होती है। उनमें से तिरपत ठेकेदार (मोहन जोशी) जो घर के अंदर अपनी पत्नी पर हिंसा करता है साथ ही शराब खोरी और आत्मकेंद्रिकता उसकी अन्य बुराइयां हैं। वह विनय को मार डालता है। तिरपत सिंह के अत्याचार के खिलाफ बाद में गांव की सभी महिलाएं इकट्ठा हो जाती हैं और अन्याय का खत्म करती हैं। जवरीमल्ल पारख के अनुसार सिनेमा में जन प्रतिरोध को सबसे अधिक अभिव्यक्ति 70 के बाद के दशक में बनी फिल्मों में दिखती है। इस संदर्भ में वे मृत्युदंड को एक उत्कृष्ट फिल्म मानते हैं।[5]

4. फिल्म राहुल - इस फिल्म में पति और पत्नी के बीच खराब होते रिश्तों के बीच पीसते बचपन को दिखाया गया है। या आज के दौर का यथार्थ है। हिंदी के उपन्यास मन्नू भंडारी की 'आपका बंटी' में भी इसे दिखाया गया है। इस फिल्म में प्रकाश झा ने वैवाहिक जीवन के टूटन का बच्चों की मानसिकता पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी समीक्षा की है। राहुल (मास्टर यश पाठक) अपने पिता आकाश (जतीन ग्रेवाल) के साथ रहता है। उसकी मां नेहा उसके पिता को तलाक दे चुकी है। दोनों पहले अच्छे जीवन जी रहे थे, लेकिन नेहा की मां के अनावश्यक हस्तक्षेप के कारण दोनों के संबंधों में खटास पैदा होती है। यह वर्तमान समय के यथार्थ को इंगित करती है।

5. फिल्म गंगाजल - जवरीमल्ल पारख के अनुसार ''फिल्म की कोई भी कथा चाहे वह कितनी भी काल्पनिक क्यों ना हो, उसकी पृष्ठभूमि में एक वास्तविक समाज और मनुष्यों के वास्तविक रिश्ते होते हैं। इस वास्तविक समाज में होने वाली अधिकांश गतिविधियों, मानवीय इच्छाओं और आकांक्षाओं तथा लोगों के बीच निरंतर बनने-बिगड़ने वाले रिश्तों को हम उनसे मत करो के माध्यम से नहीं समझते बल्कि अपने समय और समाज के गतिविधियों से ही देखते हैं और समझते हैं।''[6] प्रकाश झा की गंगाजल फिल्म भी सच्ची घटना और सच्ची परिवेश को सजीव तरीके से व्यक्त करती है।

प्रकाश झा के पास विचारोत्तेजक और सार्थक फिल्म बनाने का रिकॉर्ड रहा है। इसमें एक ईमानदार पुलिस ऑफिसर की कहानी है, जो भ्रष्टाचार एवं अपराधियों से संघर्ष करता है। इससे पूर्व गोविंद निहलानी की फिल्म 'अर्ध सत्य' में भी एक ईमानदार पुलिस की कहानी है। गंगाजल 1979-80 के भागलपुर 'आंखफोड़वा कांड' से भी जुड़ी हुई है जो इस फिल्म को एक डॉक्यूमेंट्री बनती है। अमित कुमार (अजय देवगन) एक आदर्शवादी एसपी है जिसकी पहली पोस्टिंग बिहार के बदनाम जिले तेजपुर में होती है। वहां कानून व्यवस्था नहीं है और उसका शासन साधु यादव (मोहन जोशी) और उसके बेटे सुंदर यादव (यशपाल शर्मा) द्वारा होता है। अमित तंत्र को साफ करने का प्रयास करता है और अपराधियों पर नकेल भी कसने का प्रयास करता है। वह अपने सहायक पुलिस अधिकारियों पर अपना विश्वास भी जमा लेता है लेकिन एक घटना में उसके सहायक पुलिस अधिकारी दो अपराधियों को पुलिस लॉकअप में निर्माण तरीके से अंधा कर तेजाब (गंगाजल) डाल देता है। वैसे तो गंगाजल का प्रयोग शुद्धिकरण के लिए होता है, लेकिन इस फिल्म में समाज से अपराधियों के खात्मे के लिए तेजाब को गंगाजल का नाम दिया गया है। फिल्म आम जनता यह कहती है-''गंगाजल लाओ आज तेजपुर की धरती को अपराधियों से हमें मुक्त करा देना है।''[7]

तरण आदर्श कहते हैं-''प्रकाश झा विषय को अधिकतम यथार्थवादी तरीके से प्रस्तुत करने में सफल होते हैं, इसके लिए वे उपयुक्त माहौल, निर्दय व्यवहार और आक्रामक जीवन शैली पात्रों में भर देते हैं। इस फिल्म में पात्रों के बात करने का ढंग

एवं बोलने का उच्चारण स्थानीय परिस्थितियों को सजीव करता है। यह एक यथार्थवादी फिल्म है।''[8]

6. फिल्म अपहरण – इस फिल्म के शानदार में पी शुक्ला कहते हैं ''प्रकाश झा दिल क्या करें और राहुल जैसी भावनात्मक फिल्मों में सफल नहीं हुए लेकिन गंगाजल के बाद उनका पुनर्जन्म होता है।''[9] अपहरण किसानों के राज्य बिहार में फल-फूल रहे दूध पर आधारित फिल्म है। बिहार के किसके बेटे प्रकाश झा ने इसे अपनी पूरी जिंदगी में देखा। यह गौरतलब है कि बिहार के पश्चिमी चंपारण में यह उद्योग काफी व्यापक था और प्रकाश झा का पुश्तैनी घर इसी जिले से आता है। अपराध के चकाचौंध से मेधावी विद्यार्थी भी नहीं बच पाते हैं। वह भी शक्ति और सत्ता के चकाचौंध में फंस जाते हैं। यह उस भारत की कहानी है जो अपने को नए वैश्विक शक्ति संपन्न देश बनाने का स्वप्न देख रहा है। 'अपहरण' में जिस राज्य को दिखाया गया है उसे देखकर भारतीय चिंतक और नया भारत बनाने वाले इस दर्दनाक सत्य को भी स्वीकार करें। 'अपहरण' आज के युवाओं की कहानी कहता है जिसके पास काफी आकांक्षाएं एवं स्वप्न होती है, लेकिन इस सफलीभुत करने का कोई रास्ता नहीं है। निखत काजमी के अनुसार-'जयप्रकाश आंदोलन युवाओं का आंदोलन था। युवाओं ने आंदोलन से देश को नई दिशा दी थी, लेकिन इसके तीन दशक बीतने के बाद बहुत सारी फिल्में दिशाहीन युवकों पर बनी। इसमें 'युवा' जो कि मणि रत्नम की फिल्म है, वह भी शामिल है। यह फिल्म भी दिशाहीन होते जा रहे युवाओं पर आधारित एक उत्कृष्ट फिल्म है।'[10]

'अपहरण' अपने पूर्वगामी फिल्मों से इस रूप में अलग है, क्योंकि इसने इन्हें कॉपी करने का प्रयास नहीं किया है। कहानी का प्लॉट सामान्य है। एक कर्तव्यवादी एवं निष्ठावान पिता एवं शक्ति प्राप्त करने की लालसा रखने वाले पुत्र के बीच का संघर्ष है। आदर्शवादी पिता रघुवंश शास्त्री (मोहन आगासे) जो साहसी और जागरूक नागरिक है लेकिन कहीं ना कहीं इससे अजय शास्त्री (अजय देवगन) प्रभावित होता है और उसे अपनी नौकरी गंवानी पड़ती है। अजय भी बड़ा आदमी बनना चाहता है, लेकिन बिहार लोक सेवा आयोग में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं अपने पिता के आदर्शवादी व्यक्तित्व के कारण ऐसी परिस्थितियों आती हैं कि वह तबरेज आलम (नाना पाटेकर) से मिल जाता है। तबरेज का चरित्र बिहार के अपराधी से राजनीतिज्ञ बने व्यक्ति शहाबुद्दीन से मिलता जुलता है। तबरेज अपने आप में एक सरकार है। वही स्कूल बनवाता है, अनाथालय बनवाता है। यह लोग ऊपर से उजले नजर आते हैं, लेकिन दिल और कर्मों से काले हैं। ईश्वर के नाम पर वह किसी भी मृत का उचित करार देते हैं, चाहे वह सही हो या जघन्य हो। वह कभी भी किसी खतरनाक खेल खेलने से नहीं डरता है। अजय देवगन का आना इसे सही कार्यात्मक रूप देता है। मेघा (बिपाशा बसु) से वह प्यार करता है लेकिन मेघा की शादी किसी और व्यक्ति से हो जाती है। पी. शुक्ला कहते हैं—यह फिल्म उन निर्देशक को देखना चाहिए जो यथार्थवादी फिल्में बनाते हैं। रामगोपाल वर्मा कितनी यथार्थवादी फिल्में बना चुके हैं, लेकिन वे अपराध की दुनिया पर आधारित है जैसे सत्या और कंपनी इत्यादि। लेकिन प्रकाश झा हमेशा से दिखते आ रहे अपराधियों के राजनीतिज्ञ बनने एवं राजनीतिज्ञयों के अपराधी चरित्र को यथार्थवादी तरीके से दिखाया है। निखत काजमी का कहना है कि 'प्रकाश झा ने बिहार के जंगलों का सजीव चित्रण करने में काफी सफल रहे हैं। अगर यह फिल्म बिहार में उसे समय के चुनाव से पूर्व रिलीज हो गई होती तो लालू राज किया राजकता को बहुत पहले ही पर्दाफाश कर दी होती।'

7. फिल्म राजनीति – यह फिल्म महाभारत महाकाव्य के चरित्रों की झलक देती है खासकर कृष्ण, अर्जुन, भीम, दुर्योधन और कुंती। साथ ही या फिल्म कुछ हद तक कालजई उपन्यास गॉडफादर (मारियो पुजो) से भी कहीं प्रभावी दिखती है।

इस फिल्म की शुरुआत फ्लैशबैक तकनीक से शुरू होती है। भारती (निखिल त्रिखा) जो मुख्यमंत्री रामनाथ राय (दर्शन जरीवाला) की बेटी है और साथ ही वामपंथी विचारधारा से प्रभावित है। वह अपने पिता से विद्रोह कर वामपंथी नेता भास्कर सान्याल (नसीरुद्दीन शाह) से जुड़ती है। भारती का भास्कर सन्याल से अवैध संबंध स्थापित हो जाता है और वह कुंवारी मां बन जाती है। वाइफ बेटे को जन्म देती है जिसे वह और उसके भाई ब्रिज गोपाल (नाना पाटेकर) एक नाव पर रहकर नदी में बहा देते हैं। यह कथानक महाभारत की कुंती की कथा से मिलती जुलती है। भारती की शादी बाद में चंद्र प्रताप (चेतन पंडित) जो की भानु प्रताप (खान जहांगीर खान) का छोटा भाई है, के साथ हो जाती है। भानु प्रताप राष्ट्रवादी पार्टी का नेता है। जब राज्य की सरकार गिर जाती है तब भानु

प्रताप को झटका लगता है और वह लकवा का शिकार हो जाता है। अत: अस्पताल में ही वह अपने पार्टी की कमान अपने छोटे भाई चंद्र प्रताप को दे देता है। चंद्र प्रताप का बड़ा बेटा पृथ्वी (अर्जुन रामपाल) अपने पिता की शक्तियों का फायदा उठाकर पार्टी के ऊपर अपना निर्णय थोपने का प्रयास करता है। इसके कारण वीरेंद्र प्रताप (मनोज बाजपेई) और पृथ्वी के बीच संघर्ष होता है। चंद्र प्रताप भी अपने बेटे पृथ्वी का पक्ष लेना शुरू करता है। जब पृथ्वी स्थानीय नेता सूरज कुमार (अजय देवगन) जिसे स्थानीय लोगों का समर्थन प्राप्त है, की उम्मीदवारी रद्द कर देता है। उसे समय वीरेंद्र उसकी सहायता करता है। यह सूरज भारती का अवैध संतान था जो की प्रताप परिवार के ड्राइवर द्वारा पाला पोसा गया।

जब चंद्र प्रताप और पृथ्वी वीरेंद्र को अपनी पार्टी से बाहर करने का प्रयास करता है उसे समय वह सूरत से मदद मांगता है। सूरज चंद्र प्रताप के कार्य में उसकी हत्या कर देता है, जब वह हवाई अड्डे से अपने छोटे बेटे समर प्रताप (रणबीर कपूर) को छोड़ लौट रहा होता है। एक दूसरे घटनाक्रम में पृथ्वी पुलिस द्वारा पकड़ लिया जाता है और उसे पर अपने पार्टी की एक युवा कार्यकर्ता (श्रुति सेठ) का यौन शोषण करने का आरोप लगता है। समर इसी बीच अपनी नई चाल से वीरेंद्र को भ्रम में डालकर पृथ्वी पर से सभी आरोप हवा देता है। वह पूरे परिवार के साथ अमेरिका चले जाने की बात वीरेंद्र से करता है लेकिन बाद में वह अपने वादे से मुकर जाता है। वह अपने भाई पृथ्वी के साथ पार्टी की रैली करने लगता है। आखिरकार भानु प्रताप औपचारिक रूप से पृथ्वी को पार्टी से निकाल देता है। अब पृथ्वी 'जनशक्ति पार्टी' बनाकर चुनाव लड़ता है। एक नई पार्टी जिनके मार्गदर्शक ब्रिज गोपाल मामा बनते हैं। इस समय समर की अमेरिकी गर्लफ्रेंड सारा (सारा थॉमप्सन) इंडिया आ जाती है। नई पार्टी के लिए ठंड की जरूरत पड़ती है। अत: राजनीतिक अवसरवाद और मूल्य हीनता अपने चरम पर पहुंच जाती है। इस अवसरवादिता की बलि इंदु (कटरीना कैफ) बनती है और उसे समर की जगह पृथ्वी से शादी करना पड़ता है। बृज मामा कहते हैं 'राजनीति में रिश्तों का मतलब सिर्फ मकसद पूरा करना होता है।'[12]

दोनों दल अपनी जीत के लिए हर हथकंडा अपने से नहीं चूकते हैं। समर को पता है कि वीरेंद्र और सूरज ने उसके पिता की हत्या की है, अत: हुआ उनसे बदला लेने की ठान लेता है। फिर एक कर में बम फटने से पृथ्वी और सारा मारे जाते हैं। अपनी गर्लफ्रेंड और भाई की मृत्यु से समर चीत्कार उठता है। अब समर इंदु को पार्टी की कमान संभालने की जिम्मेदारी देता है। बाद में इस बात का खुलासा होता है कि सूरज भारती का बेटा है जिससे अपने छोटे भाई समर से जुड़ने के लिए भारतीय आग्रह करती है (महाभारत की तरह)। लेकिन सूरज इससे इनकार कर देता है। चुनाव में एग्जिट पोल इंदु के जीत की भविष्यवाणी करता है। समर चल चलकर वीरेंद्र को बक्से में गड़बड़ी की बात का कहवा कर पुरानी फैक्ट्री में बुला लेता है। वीरेंद्र को गोली मार दिया जाता है और सूरज उसे अस्पताल पहुंचाने का प्रयास करता है। इसके लिए सूरज नैतिकता की भी बात करता है लेकिन ब्रिज मामा के उकसावे में आकर समर सूरज को गोली मार देता है। बाद में चुनावी नतीजे आ जाते हैं जिसमें हिंदू विजय होती है और मुख्यमंत्री बन जाती है। निखात काजमी ने इस फिल्म के बारे में बताया है, कि दरअसल यह फिल्म दो कालजयी कहानियों –पहला महाभारत और दूसरा गॉडफादर से प्रेरित है। यह फिल्म भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की विसंगतियों एवं मूल्यहीनता को दिखाना चाहती है।

राजनीति का अपराधीकरण और अपराध का राजनीतिकरण भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के लक्षण बन गए हैं। वंशवाद और भ्रष्टाचार ने राजनीतिक दलों की जनता के प्रति आस्थावान न बनाकर अपने प्रति आत्म केंद्रित किया है। सैम्पर्न वायर मैं इस फिल्म को आज के समय का एक महत्वपूर्ण फिल्म की संज्ञा दी है।

8. फिल्म आरक्षण – वर्ष 2008 में दीपक कुमार सैफ अली खान एक अच्छे स्कूल में शिक्षक की नौकरी के लिए साक्षात्कार के लिए जाता है। निचली जाति के होने के कारण उसे नौकरी नहीं मिलती है। दीपक इसे अपने मार्गदर्शक डॉक्टर प्रभाकर (आनंद अमिताभ) बच्चन को बताता है। डॉ. प्रभाकर आनंद एसटीएम कॉलेज जहां के प्रधानाचार्य होते हैं, वह दीपक को अपने यहां नौकरी करने का प्रस्ताव देते हैं। राज्य मंत्री बाबूराम अपने नालायक भतीजे को नौकरी पर रखने के लिए सिफारिश करता है, लेकिन प्रभाकर आनंद इसे खारिज कर देते हैं। मंत्री अपने आदमी मिथिलेश सिंह (मनोज बाजपेई) को वहां रखवाने की ठान लेता है। मिथिलेश सिंह लालची और धूर्त किस्म का इंसान था। वह सिर्फ अपने आप को और अधिक अमीर बनाने की सोचता रहता है। मंत्री का व्यापक

महत्वाकांक्षी योजना एक बड़ी कंपनी बनाना था, जो अलग-अलग क्षेत्रों से संबंधित था। तथा वह भी योजना थी कि मिथिलेश बाहर से इसके लिए कोचिंग व्यवसाय के धंधे को आगे बढ़ाएं।

इसी दौरान सर्वोच्च न्यायालय का बेहद महत्वपूर्ण फैसला आता है जो और पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण देने से संबंधित था। इस फैसले के बाद भारी संख्या में धार एसटीएम कॉलेज के बाहर इकट्ठी हो जाती है और अपनी खुशी का इजहार करने लगती है। इससे दो गुटों में आपस में झड़प हो जाती है। सुशांत (प्रतीक बब्बर) जो ऊँची जाति से संबंधित था दीपक से उलझ जाता है। तभी डॉक्टर प्रभाकर आनंद दोनों को डांट फटकार करते हैं, लेकिन दीपक डॉक्टर प्रभाकर से कुतर्क करने लगता है। पूर्वी (दीपिका पादुकोण) जो प्रभाकर आनंद की पुत्राी है वह वह दीपक को अपने पिता से माफी मांगने को कहती है। लेकिन दीपक माफी मांगने से इनकार कर देता है। इसके बाद दोनों में अलगाव हो जाता है।

पिछड़े वर्ग के लोग आरक्षण की नीति का स्वागत करते थे, क्योंकि इससे उन्हें शिक्षा में ज्यादा अवसर मिलता था। लेकिन ऊंची जाति के लोग आरक्षण का विरोध करते थे, क्योंकि वे समान अवसर की चाह रखते थे। यह बहस सुशांत और दीपक के बीच भी चलता है। कॉलेज प्रशासन भयभीत था कि विद्यालय स्तर पर आरक्षण विद्यार्थियों के बीच मतभेद पैदा कर देगा। एक पत्रकार को दिए गए जवाब में डॉक्टर प्रभाकर आनंद ने जब अपना व्यक्तिगत मत दिया कि 'कुछ हद तक आरक्षण जो राजनीति से प्रेरित ना हो, जरूरी है। अगले दिन अखबारों में खबर आती है कि डॉक्टर प्रभाकर आरक्षण के समर्थक है। एसडीम कॉलेज के बोर्ड नाराज हुए और डॉक्टर प्रभाकर को चेतावनी दी गई फिर बाद में दिया गया और उनकी जगह मिथिलेश सिंह को नया प्रधानाचार्य बना दिया गया। डॉक्टर प्रभाकर ने कॉलेज से इस्तीफा दे दिया और उन्होंने प्रण किया कि उत्तम शिक्षा से ही मिथिलेश सिंह को जवाब देंगे। उन्होंने अपने मित्रा शंभू जो ग्वाला जाति का था उनसे रहने के लिए मदद मांगी और शंभू ने अपना तबला उन्हें दे दिया। वह इसी स्कूल में निचली जाति एवं पिछड़े वर्गों के जरूरतमंद बच्चों को शिक्षा देने लगे। शंभू यादव की बेटी मुनिया बोर्ड परीक्षा में पहले स्थान पर आई इससे मुनिया के प्रधानाचार्य ने अधिक से अधिक लड़कों को तबला स्कूल में भेजने का आश्वासन दिया। बाद में चलकर दीपक और सुशांत दोनों डॉक्टर आनंद के पास वापस लौट आए और तबले स्कूल में पढ़ाने लगे। तबले स्कूल का नाम और इज्जत काफी बढ़ गई। लेकिन मिथिलेश कहां चुप बैठने वाला था। उसने कानूनी कार्रवाई द्वारा तबले स्कूल को गिराने का प्रयास किया। लेकिन स्थिति शकुंतला ताई के आने के बाद शांत हुआ, जिसने एसटीएम संस्था को बनाया था। वह मुख्यमंत्री को बुलाती है जो तबले स्कूल को गिरने से रोकते हैं। मिथिलेश को कॉलेज से हटा दिया गया और डॉक्टर प्रभाकर को एसडीम कॉलेज का मुख्य दृष्टि बना दिया गया।

निखात कजमी के अनुसार यह फिल्म शुरुआत में आरक्षण के मुद्दे पर थी, लेकिन बाद में शिक्षा के व्यवसायीकरण पर टिक गई। इससे फिल्म अपने कथानक से भटक जाती है। लेकिन जहां तक यथार्थ का प्रश्न है तो शिक्षण संस्थानों में आरक्षण और शिक्षा का व्यवसायीकरण आज के अर्थात् को ही व्यंजित करती है। सेंट्रल बोर्ड ऑफ फिल्म सर्टिफिकेशन के अध्यक्ष लीला सैमसन कहती है कि फिल्म की कलात्मक जो भी हो जहां तक यथार्थवाद का प्रश्न है तो फिल्म का कथानक आरक्षण के साथ शिक्षा के व्यवसायीकरण के इर्द गिर्द घूमती नजर आती है। 2008 में सुप्रीम कोर्ट के फैसले से सरकारी संस्थानों में पिछड़े वर्गों को आरक्षण का लाभ मिला। यह एक यथार्थ पर आधारित घटनाक्रम है।

यह भी तत्कालीन भारत का एक सत्य है कि सरकारी स्कूलों की गुणवत्ता कमजोर करने में पूंजीपतियों द्वारा शिक्षा के व्यवसायीकरण के क्षेत्र में पूंजी निवेश करना है। कुमार मंगलम बिड़ला शिक्षा के क्षेत्र में निवेश कर रहे हैं और उनकी अध्यक्षता में शिक्षा में सुधार के लिए एक समिति भी बनी है। बड़ी संख्या में मैनेजमेंट स्कूल और आने तकनीकी विश्वविद्यालय खोले जा रहे हैं। यह समकालीन भारत का सच है।

9. फिल्म चक्रव्यूह - एक ऐसे दौर में जब मनोरंजन एवं रिमेक बनाने के साथ-साथ फिल्म निर्माता की नजर 100 करोड़ से अधिक की कमाई पर होती है, ऐसे दौर में समाज की विसंगतियां एवं और वैसी कहानी जो यथार्थ पर आधारित है, को लेकर फिल्में बनाना वास्तव में एक साहसिक कदम है। दामूल से आरक्षण तक प्रकाश झा अपनी फिल्मों के माध्यम से ज्वलंत मुद्दे उठाते आए हैं। 'चक्रव्यूह' फिल्म नक्सली आंदोलन पर आधारित फिल्म है साथ ही दूसरी तरफ आदिवासियों द्वारा

पुलिस और नेताओं द्वारा शोषित होने के साथ नक्सली बनने एवं एक अत्यंत ज्वलंत मुद्दे प्रगति / विकास बनाम विस्थापन पर भी आधारित है। चक्रव्यूह को नक्सली आंदोलन पर सिर्फ दस्तावेजी फिल्म भी नहीं कर सकते हैं, क्योंकि पूरे देश क्या अधिकांश भागों में पहले इस मुद्दे को नहीं उठाया गया है। प्रकाश झांसी तो जानते हैं कि अपने संदेश को अच्छी तरह से संगठित करके लोकप्रिय सिनेमा के माध्यम से फैलाया जा सकता है। यह तय है कि यह फिल्म नक्सलवाद पर आधारित है लेकिन इसके केंद्र में दो अंतरंग मित्रों के बीच नक्सलवाद के मुद्दे पर जो मतभेद है उसे बखूबी इस फिल्म में दिखाया गया है।

प्रकाश झांकी वाला फिल्मों की तरह चक्रव्यूह भी दशकों में से आम आदमी की सोच को दिखाता है। चक्रव्यूह दो दोस्तों आदिल (अर्जुन रामपाल) जो कि एस पी है और कबीर (अभय देओल) की कहानी है। आदिल नक्सलियों के सफाई के लिए मुहिम छेड़ता है। इसी दौरान कबीर आदिल से आग्रह करता है कि वह उसे नक्सलियों के पास जाने दे ताकि वह वहां के घटनाक्रम की सूचना उसे देता रहे। आदिल कबीर के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार नक्सली नेताओं ओमपुरी, मनोज बाजपेई और अंजलि पाटिल को पकड़वाने के लिए आदिल कबीर को नक्सलियों के यहां भेज देता है। लेकिन जल्द ही समीकरण बदल जाते हैं। जल्द ही इस मुद्दे पर दोनों दोस्तों के बीच लड़ाई ठन जाती है। एक आदिल जो नक्सलियों से लड़ता है और दूसरा कभी जो नक्सलियों के लिए लड़ता है। यथार्थ में ओम पुरी इस फिल्म में कोवाट गांधी के चरित्र को जीते दिखाई देते हैं। इस फिल्म में प्रकाश झा दिखाना चाहते हैं कि चमकते भारत की सतह को खरोचोगे तो भारत का असली चेहरा सामने आ जाएगा। इस सच्चाई को प्रकाश झा ने फिल्म के दूसरे हाफ में आईना दिखाने का प्रयास किया है।

इस फिल्म का एक गाना भी युग संदर्भ एवं व्यवस्था की सच्चाइयों को दिखाने का प्रयास किया है–

''भैया देखी हमने बड़ी तेरी सरदारी रे,
अब तो अपनी बारी है ना।
महंगाई की महामारी ने हमारा भट्ठा बना दिया
चल हटाने गरीबों गरीबों को हटा दिया,
शरबत की तरह देश को गटका है गटागट,
आम आदमी की जब हो गई है सफाचट
बिरला हो या टाटा अंबानी हो या बाटा
सब ने अपने चक्कर में देश को है काटा
अपने ही खून से इनका इंजन चले धकाधक
आम आदमी की जब हो गई है सफाचट।''

उपरोक्त गीत भी वर्तमान समय की परिस्थितियों का बयां करती है। महंगाई भ्रष्टाचार ने आम आदमी का जीना मुश्किल कर दिया है। किस प्रकार सरकार पर कारपोरेट जगत का प्रभाव है इसे भी इस गीत में स्पष्ट किया गया है। आज एक ही देश में दो देश पैदा हो गया है। एक विकसित है जो इंडिया है और एक पिछड़ा जो भारत है और दोनों के बीच की खाई लगातार बढ़ती रही है। नक्सलवाद के पुनरोदय के पीछे असमानता और साधनों का असमान वितरण है। अमीर और अमीर होते जा रहे हैं और गरीब और गरीब। नक्सलवाद देश के 14 राज्यों के 200 से अधिक जिलों में फैल चुकी है खासकर पिछड़ों और आदिवासी बहुत इलाके में सबसे ज्यादा नक्सलवा से प्रभावित है। इस फिल्म के अंत में प्रकाश है या सूचना देते हैं कि देश की कुल संपत्ति का बड़ा हिसार देश के सिर्फ 25 परिवारों के पास है और देश की अधिकांश जनता सिर्फ 70 रु. प्रतिदिन की कमाई पर गुजारा करती है। इस फिल्म के संदर्भ में तृषा गुप्ता कहती है कि–''चक्रव्यूह माओवादी समस्या को हल करने का एक ईमानदार प्रयास है।''

प्रकाश झा इस फिल्म में माओवादियों के अंधेरे और अज्ञात दुनिया में प्रवेश कर माओवादियों द्वारा अपनी जमीन पर इज्जत की लड़ाई दिखाते हैं, तो दूसरी तरफ सरकार की निर्दयी, भ्रष्टाचार, भ्रष्ट नौकरशाह के चित्रों का पर्दाफाश किया है। भारत में सामाजिक आर्थिक असमानताओं के कारण नहीं नक्सलवाद इतनी तेजी से फैला है। समाज को जागृत करने के संदर्भ में या फिल्म शांताराम और बी आर चोपड़ा की फिल्मों की श्रेणी में है।

सहायक प्रोफेसर
दयाल सिंह महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

सन्दर्भ सूची

1. हिप्प हिप्प हुर्रे, आकाश वरवलिया, पी शुक्ला. आई टीवी इंडिया ब्यूरो इंटरनेट वर्जन।
2. जवरीमल्ल पारख : हिंदी सिनेमा का समाजशास्त्र, पृष्ठ

संख्या 95, प्रथम संस्करण 2006, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली।
3. जवरीमल्ल पारख : हिंदी सिनेमा का समाजशास्त्र, पृष्ठ –139, प्रथम संस्करण 2006, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली।
4. सईद मिर्जा – आईडियोलॉजी आफ डी हिंदी फिल्म : ए हिस्टॉरिकल कंस्ट्रक्शन, ऑक्सफोर्ड प्रेस, प्रथम संस्करण 1998, पृष्ठ–1।
5. जवरीमल्ल पारख : हिंदी सिनेमा का समाजशास्त्र, पृष्ठ 146, प्रथम संस्करण 2006, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली।
6. जवरीमल्ल पारख : हिंदी सिनेमा का समाजशास्त्र, पृष्ठ 34, प्रथम संस्करण 2006, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली।
7. मूल फिल्म गंगाजल
8. तरण आदर्श, गंगाजल, बॉलीवुड हंगामा डॉट कॉम।
9. पी शुक्ला : अनदर नेशनल अवार्ड इन वेटिंग फॉर अजय – आईटीवी इंडिया ब्यूरो, इंटरनेट वर्जन
10. पी शुक्ला : अनदर नेशनल अवार्ड इन वेटिंग फॉर अजय, आई टीवी इंडिया ब्यूरो, इंटरनेट वर्जन।
11. मूल संदर्भ फिल्म 'अपहरण'।
12. बृज मामा फिल्म 'राजनीति'।

Research Paper

Dr. Dayanand Kumar

Trends of Crimes Against Women in Bihar: An Empirical Analysis

Abstract

The present study explores the trends of crimes against women in Bihar from 2012 to 2022 using official data obtained from the National Crime Records Bureau (NCRB) and Bihar State Police Reports. The primary objective of this research is to understand the changing trendsof crimes against women, assess the impact of policy changes such as alcohol prohibition, and identify key areas that require policy attention. The study categorizes crimes into five major segments: rape, kidnapping and abduction, dowry deaths, assault on women, and cruelty by husbands or relatives.The study reveals a consistent increase in the total number of crimes against women over the years, with certain categories like kidnapping and cruelty by husbands showing significant upward trends. It is evident from the data that despite the introduction of the alcohol prohibition policy in 2016, domestic violence and family-related crimes did not show a substantial decrease. In fact, some categories such as abduction and cruelty increased notably, indicating a lack of direct impact of the prohibition policy on reducing crimes against women. The overall average annual crime rate per 100,000 population also increased, suggesting persistent challenges in ensuring women's safety in the state.

Keywords: Crime Against Women, Bihar Crime Trends, Domestic Violence, Dowry Deaths, Rape Cases, Kidnapping and Abduction, Cruelty by Husband or Relative, Alcohol Prohibition Policy, Crime Rate Per 100,000 Population, National Crime Records Bureau (NCRB), Policy Interventions, Social and Economic Factors, Gender-Based Violence, Spatial Crime Distribution, Legal Framework, Economic Empowerment of Women, Law Enforcement, Community Sensitization, Crime Reduction Strategies.

Introduction

Violence against women remains one of the most pressing social issues across the globe, and India is no exception. Bihar, a densely populated state in eastern India, has consistently reported high crime rates against women, which has raised deep concerns regarding gender safety and security. Crimes against women include physical violence, sexual harassment, dowry deaths, human trafficking, and various other forms of abuse that significantly undermine the dignity and rights of women. The issue is further aggravated by socio-cultural practices, economic dependency, and lack of effective law enforcement mechanisms, making women more vulnerable to violence.Over the past decade, Bihar has experienced rapid socio-economic transitions, influenced by infrastructural development, political reforms, and policy changes. However, despite these changes, the rate of crimes against women has shown a consistent upward trend. The introduction of the alcohol prohibition policy in 2016 was aimed at reducing domestic violence, assuming that alcohol consumption was one of the primary causes of domestic abuse. However, the expected reduction in crimes did not materialize as

anticipated, indicating the need for a broader approach to address the structural and social factors contributing to violence against women.

The significance of this study lies in its attempt to provide a comprehensive analysis of the trends of crimes against women in Bihar, spanning a ten-year period from 2012 to 2022. By analyzing official data from the National Crime Records Bureau (NCRB) and Bihar State Police reports. This study not only highlights the temporal trends but also identifies the spatial distribution of crime incidences across various districts in Bihar, providing crucial insights for targeted policy-making and crime prevention strategies.The paper is structured into several key sections. The data and methodology section outlines the sources and analytical approach adopted for trend analysis. The results and discussion section interprets the findings from the data, providing insights into crime patterns, key drivers of violence, and the potential influence of policy changes such as alcohol prohibition. Finally, the conclusion and policy recommendations section offer practical suggestions for reducing crimes against women, including improving law enforcement, enhancing women's economic participation, and fostering community-based solutions.

Given the gravity of the situation, understanding the trends and patterns of crimes against women in Bihar is crucial for designing effective and sustainable solutions. This study hopes to contribute to existing literature by offering empirically-backed evidence that can guide policymakers, law enforcement agencies, and social institutions in reducing the prevalence of violence against women in Bihar.

Data and Methodology

Data Source

The data utilized in this study has been extracted from State Crime Records Bureau (SCRB) of Bihar as well as the National Crime Records Bureau (NCRB), Government of India. The study also cross-referenced data from Bihar State Police records to ensure accuracy. Data spans from 2012 to 2022, providing a ten-year period for trend analysis.

Methodology

This study employs a quantitative approach through trend analysis using graphical representations to illustrate crime patterns. The major crime categories analyzed in this study are:Rape, Kidnapping and Abduction, Dowry Deaths, Assault on Women, Cruelty by Husband or Relatives. Data were analyzed using statistical methods such as percentage changes, year-on-year growth, and moving averages to identify persistent crime patterns. Graphical representations were used to provide a clear visual understanding of these trends.

Results and Discussion

Overall Crime Trends

Figure 1 shows the trend of total crimes against women in Bihar alongside the crime rate per 100,000 population from 2012 to 2022. The graph highlights the growing number of cases despite efforts from the state government. The trend shows a significant surge after 2016, which coincides with the introduction of the alcohol prohibition law. However, the expected reduction in domestic violence did not materialize as anticipated.

The total number of crimes against women rose from 11,229 cases in 2012 to over 20,222 cases in 2022 with an average crime 15559. The crime rate, defined as the number of crimes per 100,000 population, however, for the crime rate of crime against women it is calculated by dividing the total number of crimes committed against women by total female population multiplied by 100000. The crime rate against the crime against women also showed a steady increase with minor fluctuations with an average of 31.25. This rising trend indicates the need for strategic interventions by law enforcement and policy-makers.

Figure: 1 Trends of Crime Against Women

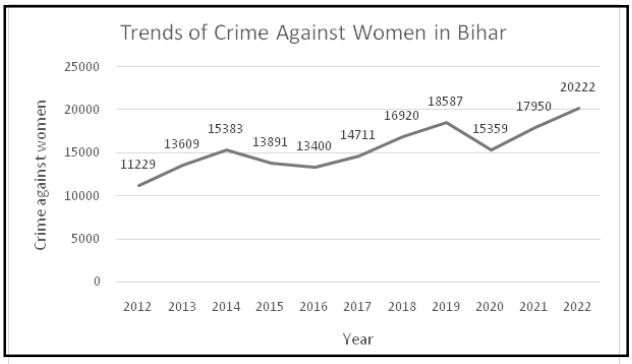

Figure: 2 Trends of Crime Rate of Crime Against Women in Bihar

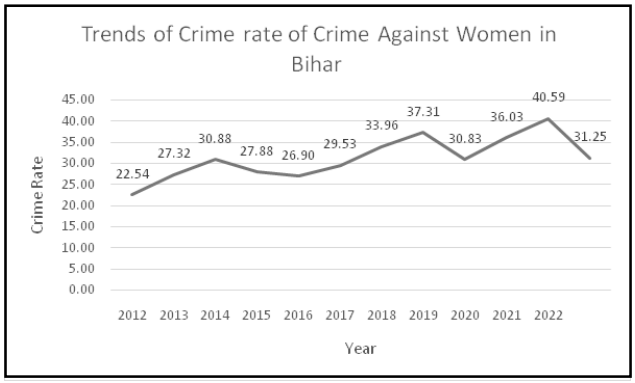

Category-wise Crime Trends

Figure 3 illustrates the trends in various crime categories. A detailed analysis of each category is discussed below:

Figure: 3 Trends of Various Crime Committed Against Women in Bihar

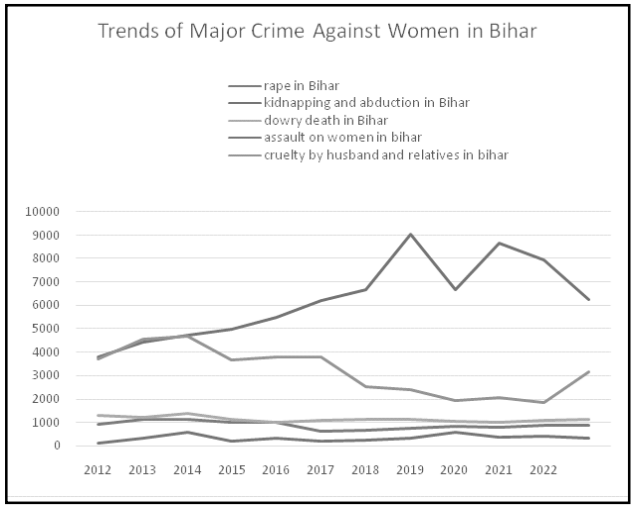

1. Rape Cases: The number of rape cases in Bihar steadily increased from 927 cases in 2012 to over 1008 cases in 2022. Although this increase is relatively moderate compared to other categories, it still highlights persistent challenges in ensuring women's safety. Socio-cultural factors, lack of education, and economic dependence are major contributors to this crime.

2. Kidnapping and Abduction: The category of kidnapping and abduction has shown a significant increase, especially after 2015. From 3789 cases in 2012, the number sharply rose to 5496 cases in 2022. This increase can be attributed to the practice of forced marriage, which remains prevalent in certain rural areas of Bihar.

3. Dowry Deaths: Dowry deaths, one of the most severe forms of violence against women, showed fluctuations but generally maintained a high count. The number of dowry deaths was reported as 1275 in 2012, slightly decreasing to 987 in 2022. While this indicates a slow decline, the persistence of dowry deaths in modern Bihar is still alarming and requires sustained policy interventions.

4. Assault on Women: Cases of physical assault, including molestation and sexual harassment, showed unpredictable trends. The data reveals that assaults peaked in 2014 and then declined before rising again in 2021. Social factors, including rural backwardness, limited police reporting, and fear of social stigma, contribute significantly to the fluctuating trend.

5. Cruelty by Husband and Relatives: Cruelty by husbands or relatives continues to be the most reported crime against women in Bihar. The number of such cases increased from 3686 in 2012 to over 3794 in 2022. This form of violence is often linked to dowry disputes, economic dependence, and limited legal awareness among women.

Alcohol Prohibition and Its Impact

The introduction of the alcohol prohibition policy in 2016 aimed to reduce domestic violence and crime against women. However, the data reveals mixed results. While certain crimes, such as dowry deaths, showed minor reductions, other categories like kidnapping and cruelty by husbands increased. This suggests that mere prohibition without addressing underlying socio-economic issues cannot significantly reduce violence against women.

Spatial Distribution of Crimes

An important dimension in understanding crime trends is the spatial distribution across Bihar. Data reveals that southern districts like Gaya, Aurangabad, and Nawada reported higher incidences of dowry deaths and cruelty by husbands. In contrast, northern districts like Muzaffarpur and Darbhanga reported higher cases of kidnapping and abduction. This spatial variation highlights the need for district-specific policy

interventions.

Policy Implications

Based on the findings of this study, the following policy implications are suggested:

1. Strengthening Law Enforcement: Effective law enforcement and swift judicial processes are crucial to reducing crimes against women.

2. Economic Empowerment of Women: Promoting education and employment opportunities for women can significantly reduce their vulnerability to violence.

3. Community Engagement: Involving local communities and panchayats to address gender-based violence can lead to sustainable changes.

4. Review of Alcohol Prohibition Policy: Given the mixed impact of alcohol prohibition, the policy should be revisited with a focus on addressing root causes of violence.

Conclusion

The analysis of crime trends against women in Bihar from 2012 to 2022 reveals a complex pattern of rising and falling crime categories, which reflect broader socio-economic challenges. On average, the annual total number of crimes against women increased from around 11,229 in 2012 to approximately 20,222 in 2022, highlighting a significant surge of about 80% over a decade. The average crime rate per 100,000 population also increased, demonstrating that despite efforts to reduce violence, women in Bihar continue to face high levels of insecurity.

The most alarming trend was observed in the category of 'cruelty by husband and relatives,' which consistently remained the highest reported crime throughout the decade. Similarly, kidnapping and abduction cases sharply increased after 2016, coinciding with the implementation of the alcohol prohibition policy. This policy, though intended to reduce domestic violence, did not yield the desired outcome and instead witnessed an upward trend in certain categories of crime.

The average number of dowry deaths showed only a marginal decrease, dropping from around 1275 in 2012 to 987 in 2022, still maintaining a concerning level. Additionally, the increase in rape cases and physical assaults underscores the need for robust social and legal interventions. The spatial analysis further highlights that southerndistrict like Gaya, Aurangabad, and Nawada consistently reported higher incidents of dowry deaths and cruelty by husbands, while northern districts reported increased cases of abduction.

Given these findings, it is clear that crime against women in Bihar is influenced by both socio-economic conditions and policy measures. The government must focus on strengthening law enforcement, promoting women's economic independence, and revisiting existing policies to address the root causes of violence. Targeted interventions in high-crime districts, community sensitization programs, and efficient judicial redressal mechanisms are imperative to ensuring long-term safety for women in Bihar.

The data clearly shows that while certain categories of crime have marginally decreased, the overall crime rate against women continues to escalate. Therefore, a multidimensional approach involving policy reform, economic empowerment, and legal strengthening is essential to create a safer environment for women in Bihar.

Dayanandkumar73@gmail.com

References:

1. Adrija Dey and Bev Orton, "Gender and Caste Intersectionality in India: An Analysis of theNirbhaya Case, 16 December 2012," in *Gender and Race Matter: Global Perspectives on Beinga Woman* (Emerald Group Publishing Limited, 2016).
2. Preet Rustagi and N. Krishnaji Chandan Mukherjee, "Crimes against Women in India: Analysisof Official Statistics," *Economic and Political Weekly* 36, no. 43 (2001): 4070–80, https://www.jstor.org/stable/4411293.
3. Dana Schüler, "The Uses and Misuses of the Gender Related Development Index and Gender Empowerment Measure: A Review of the Literature," *Journal of Human Development* 7, no. 2 (2006): 161–81.
4. Jacques Charmes and Saskia Wieringa,

"Measuring Women's Empowerment: An Assessment of the Gender-Related Development Index and the Gender Empowerment Measure," *Journal ofHuman Development* 4, no. 3 (2003): 419–35.
5. Ramachandran Kalaiyarasi, "Violence against Women in India.
6. National Crime Records Bureau (NCRB). (2018). *Crime in India - Statistics on Crimes Against Women*. Ministry of Home Affairs, Government of India. Retrieved from [NCRB Official Website].
7. Kumar, S., & Singh, R. (2018). Analysis of Crime Against Women: A Study Based on NCRB Data. *International Journal of Social Sciences*, 5(2), 112-128.
8. Bihar State Police Records. (2022). *Annual Report on Crime Against Women in Bihar*. Patna: Bihar Police Headquarters.
9. Sharma, R., & Patel, A. (2020). The Role of Alcohol Prohibition in Reducing Domestic Violence: A Case Study of Bihar. *Journal of Policy Analysis*, 12(3), 89-104.
10. United Nations Office on Drugs and Crime (UNODC). (2016). *Global Study on Homicide: Gender-related Killing of Women and Girls*. Vienna: UNODC.
11. Das, A., & Gupta, P. (2019). Socio-Cultural Factors Contributing to Gender-Based Violence in Bihar. *Journal of Social Research*, 14(4), 276-290.
12. Government of Bihar. (2016). *Impact of Alcohol Prohibition on Crime in Bihar*. Department of Home, Government of Bihar.
13. National Family Health Survey (NFHS-5). (2021). *Women's Safety and Crime Incidents in Bihar*. Ministry of Health and Family Welfare, Government of India.
14. Patel, M., & Singh, T. (2018). Evaluating the Impact of Socio-Economic Factors on Violence Against Women: An Empirical Study. *Indian Journal of Sociology*, 11(2), 45-59.
15. National Human Rights Commission (NHRC). (2020). *Annual Report on Women's Rights in India*. New Delhi: NHRC Publications.
16. Gupta, S., & Roy, B. (2021). Crime Trends and Patterns Against Women in India: A Comparative Study of Bihar and Uttar Pradesh. *International Journal of Criminology*, 17(3), 210-225.
17. Centre for Development Studies (CDS). (2019). *Women's Vulnerability to Crime in Bihar: A Research Report*. Patna: CDS Publications.
18. World Health Organization (WHO). (2018). *Addressing Violence Against Women: Key Data and Statistics*. Geneva: WHO.
19. Bureau of Police Research and Development (BPRD). (2022). *Best Practices for Crime Prevention Against Women*. New Delhi: BPRD.
20. Singh, P., & Verma, S. (2022). Analyzing the Role of Alcohol Ban in Controlling Domestic Violence in Bihar: A Mixed-Method Study. *Indian Policy Journal*, 15(1), 34-49.

Avinish Prakash Singh

भारतीय साहित्य के संदर्भ में तुलनात्मक साहित्य की अवधरणा
Bharteey Sahitya ke Sandarbh mein Tulanatmak Sahitya ki Avdharna

"I have been called to discuss a subject to which you have given the English name do comparative literature. Let me call it world literature in Bengali....just as this earth is not sum of patches of land belonging to different people. And to know the earth is sheer rusticity, so literature is not mere total of works composed by different hands..... We must strive to see the work of each another as a whole that whole as a part of man's universal creativity. And that universal spirit in its manifestations through world literature. Now it is time to do so."[1]

उन्नीसवीं शती का मध्य-भाग; यूरोपीय चिंतन-धारा का एक महत्वपूर्ण युग था जब मध्य-पूर्व देशों तथा एशिया—विशेष रूप से—चीन, भारत तथा जापान के असमता युक्त सांस्कृतिक क्षेत्रों और साहित्य से परिचित होने पर यूरोप के मानसिक क्षितिज काफी हद तक विस्तार संभव हो पाया था। भारोपीय परिवार की भाषाओं के आपसी निकट-संबंधों का भी पता लगने पर विद्वानों का एक वर्ग, विश्व साहित्य को एक समूची इकाई मानते हुए उसके अध्ययन में जुड़ना चाह रहा था। जोहान वोल्फगैंग वॉन गोएथे 'विश्व साहित्य' की अवधारणा को फैलाने में जुट गए थे। इधर; भारत में रवीन्द्रनाथ ठाकुर 'विश्व-साहित्य' की बात कहते हुए स्पष्ट कर रहे थे कि यह पृथ्वी विभिन्न टुकड़ों में बँटी हुई होकर लोगों के रहने का अलग-अलग स्थान नहीं है और उनका साहित्य अलग-अलग रचित साहित्य नहीं है। बल्कि वह मानते थे कि, प्रत्येक लेखक के द्वारा रचित साहित्य एक पूर्ण इकाई है तथा वह इकाई—समूचे मानव-समाज की सार्वभौम सृजनात्मकता की परिचायक है। और वस्तुतः, विश्व साहित्य जिसको अँगरेजी में 'Comparative Literature' भी कहा जाता है—इस सार्वभौम सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति है।

तुलनात्मक शब्द Compare का हिंदी समानार्थी है। Comparative की व्याख्या शब्दकोश में इस प्रकार है : ''Compare— To bring together or side by side in order to note points of difference and more especially likeness to nite and eÛpress the resemblance between.''[2] वस्तुतः तुलनात्मक शब्द में 'तुलना' करने की प्रकिया जुड़ी हुई है और तुलना में वस्तुओं को कुछ इस प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है जिसमें उनमें साम्य-वैषम्य का पता लग सके। इस नाते 'तुलना' शब्द को हमें व्यापक स्तर लेने की जरूरत है। सीमित अर्थों में—तुलना सिर्फ 'नुक़्तचीं' से अधिक नहीं, परन्तु अपने विस्तृत अर्थ में तुलना सिर्फ नुक़्तचीं न होकर साम्य-वैषम्य की पहचान और उसका उभार है।

इसी तरह 'तुलनात्मक साहित्य' सिर्फ किसी एक रचनाकार की शिल्पगत त्रुटियों और संवेदनागत सीमितता को उजागर कर, किसी दूसरे रचनाकार को स्थापित-विस्थापित करने का माध्यम नहीं है—जैसा कि हिंदी की 'देव बड़े कि बिहारी' जैसी तुलनात्मक आलोचनाओं में किया गया है। तुलनात्मक साहित्यिक अध्ययन वस्तुतः किन्हीं दो या दो से अधिक भाषा, क्षेत्र, संस्कृति, संवेदना वाले साहित्य में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की तलाश है; और उस तलाश में अन्ततः — मानवहित की भावना अन्तर्निहित है।

तुलनात्मक साहित्य (Comparative literature) एक स्वतंत्र विद्या शाखा के रूप में भारत तथा विदेश के विभिन्न

विश्वविद्यालयों में इसके अध्ययन-अध्यापन कार्य को विशेष महत्व दिया जाता रहा है। विदेश में इसे 'सांस्कृतिक अध्ययन' (cultural studies) के नाम से भी जाना जाता है। अँगरेजी के कवि मैथ्यू ऑर्नल्ड ने सन् 1848 में अपने एक पत्र में सबसे पहले comparative literature पद का प्रयोग किया था। परंतु प्रारंभ में ही इसके शाब्दिक अर्थ को लेकर विवाद रहा क्योंकि साहित्य— कहानीकार, कवि आदि की सृजनशील कलात्मक अभिव्यक्ति है तो वह किसी भी तरह तुलनात्मक नहीं हो सकता। इन्द्रनाथ चौधुरी का मानना है कि 'ऐसा कोई कवि नहीं जो तुलनात्मक कविता, कहानी या उपन्यास लिखता हो।'[3] साहित्य की प्रत्येक कृति अपने आप में पूर्ण होती है। और, साहित्य-सृष्टि में कहीं दूसरे साहित्य के साथ तुलना की जरूरत नहीं होती। वस्तुत: रेन वेलेक ने इस मुद्दे को उठाकर 'ऐतिहासिक अंर्थविज्ञान' की सहायता से इसका उत्तर देने का प्रयास किया है।

रेन वेलेक ने माना कि ''तुलनात्मक साहित्य' साहित्य के समग्र रूप का अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में अध्यापन करता है; जिसके मूल में यह भावना निहित रहती है कि साहित्यिक सृजन और आस्वादकता की चेतना—जातीय, राजनैतिक एवं भौगोलिक सीमाओं से मुक्त एकरस और अंखड होती है।'[4] वहीं, हेनरी एच. एच. रेमाक की अवधारणा है कि :'तुलनात्मक साहित्य एक राष्ट्र के साहित्य की परिधि के परे दूसरे राष्ट्रों के साहित्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन है। यह अध्ययन कला, इतिहास, समाज, विज्ञान, धर्मशास्त्र आदि ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के आपसी संबंध का भी अध्ययन है।'[5] वस्तुत: साहित्यिक विकास के सामान्य सिद्धांतों का अध्ययन निश्चय ही तुलनात्मक साहित्य का महत्वपूर्ण अंग है।

हिंदी हलक़े के विद्वानों ने भी इस अवधारणागत समस्या पर अपनी राय जाहिर की है। डॉ. नगेन्द्र इसकी प्रकृति की ओर इशारा करके हुए कहते हैं कि, 'तुलनात्मक साहित्य एक प्रकार का अंत: साहित्यिक (inter literarical) अध्ययन है जो अनेक भाषाओं को आधार मानकर चलता है। जिसका उद्देश्य होता है—अनेकता में एकता का संधान।'[6] यहीं, इन्द्रनाथ चौधुरी सूत्रवत तरीके से बताते हैं कि 'तुलनात्मक साहित्य दरअस्ल विभिन्न साहित्यों का तुलनात्मक अध्ययन है तथा साहित्य के साथ ज्ञान के दूसरे क्षेत्रों का भी तुलनात्मक अध्ययन है।'[7] उपरोक्त विद्वानों द्वारा प्रदत्त विचारों के आलोक में हम कह सकने में समर्थ होते हैं कि 'तुलनात्मक साहित्य' या 'तुलनात्मक साहित्यक अध्ययन' वस्तुत: एक प्रकार का अंतर-साहित्यक (inter literarical) अध्ययन है जो अनेक भाषाओं, संस्कृतियों, संवेदनाओं को आधार मानकर चलता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर की विश्व साहित्य विषयक अवधारणा के अनुसारय विश्व साहित्य (world literature), सार्वभौम दृष्टिकोण (universal ideology) और तुलनात्मक साहित्य (comparative literature) का लक्ष्य गोया 'एक' ही है।

तुलनात्मक साहित्य के विकासक्रम में हम पश्चिम के योगदान पर बात करें तो इसको मोटे तौर पर तीन क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है :

1. अमरीकी स्कूल
2. पेरिस-जर्मन स्कूल
3. रूसी स्कूल

अमरीकी स्कूल के विद्वान तुलनात्मक साहित्य के अंतर्गत ज्ञान के विविध क्षेत्रों बीच साहित्य के संबंधों को स्वीकार करने के साथ-साथ साहित्यालोचन को भी तुलनात्मक अध्ययन का महत्वपूर्ण अंग स्वीकार करते हैं। सन् 1886 में एच. एम. पासनेट ने अपने 'कम्पेरटिव लिट्रेचर' ग्रंथ में यह प्रकट किया कि तुलना करना मनीषी और समीक्षक का परंपरागत कार्य रहा है। 1990 में प्रख्यात अमरीकी तुलनाशास्त्री एफ. डब्ल्यू. चौडलर ने सिनसिनाट विश्वविद्यालय में तुलनात्मक साहित्य के प्रोफेसर नियुक्त हो जाने के बाद अपने पहले ही भाषण में साहित्य का पूर्ववृत्त प्रस्तुत किया। अमरीकी तुलनावाद का स्वरूप-निर्धारण रेन वेलेक, हैरी लेविन और डेविड मेलोन जैसे विद्वानों द्वारा किया गया है इसलिए वह समानताओं, मूल अभिप्रायों, शालीनता तत्त्वों, काव्य विधाओं, आंदोलनों और परंपराओं के तुलनात्मक अन्वेषण को प्रोत्साहन देता हुआ इस प्रकिया में साहित्यिक रचना के कलात्मक वैशिष्टय का उद्घाटन करता है।

पेरिस-जर्मन स्कूल के अंतर्गत फ्रांसीसी विद्वान तथ्यात्मक संपर्कों और दस्तावेजों के विश्लेषण पर ज़्यादा बल देते हैं। इस विचार का सूत्रपात गोइथे ने जर्मनी में उन्नीसवीं शती के दौरान प्रथम चरण में किया था। इसकी पहली पत्रिका 'रिव्यू द लित्रेत्यूर कंपरी' फ्रांसीसी भाषा में पेरिस विश्वविद्यालय की और से प्रकाशित हुई। कारे ने तुलनात्मक साहित्य को साहित्येतिहास कहा था। आधुनिक आलोचक पीशवाज ने

तुलनात्मक साहित्य के क्षेत्र में साम्य या वैषम्यमूलक तुलना तथा प्रभाव के सूत्रों के अध्ययन का प्रसार करते हुए संश्लेषणात्मक दृष्टि को स्वीकार किया।

तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में रूसी स्कूल का भी महत्व कम नहीं हैं इसलिए रूसी तुलनात्मक साहित्य का एक स्वतंत्र स्कूल ही बन गया। इस स्कूल के विद्वानों के लिए यह एक सार्वधिक साहित्यिक संवृत्ति (phenomena) का सार-संग्रह है जो विभिन्न देशों के जनसमूहों के सामाजिक जीवन के ऐतिहासिकत विकास पर निर्भर है। विद्वान झुरमनस्की के अनुसार; 'समाज' मनुष्यता का आवश्यक अद्य: स्तर है, तो 'साहित्य' संयोग से उसकी 'अधिसंरचना' है।

प्राचीन यूनान के योगदान की चर्चा करें तो— यूनान के प्राय: सभी विद्वान आलोचक अरस्तू, लौंजाइनस, दिमेत्रियाद आदि आरंभ से ही— कवियों, नाटककारों का तुलनात्मक अध्ययन करते रहे हैं। लैटिन भाषा के होरेस ने अपने ग्रंथ 'आर्स पोइतिका' में यूनानी व लैटिन भाषाओं का तुलनात्मक साहित्य का जो विचार-विमर्श किया वो अधिक लोकप्रिय न हो सका जबकि अध्ययन उन्नीसवीं सदी से ही प्रारंभ हो गया था।

भारतीय दृष्टिकोण से देखने पर ज्ञात होता है कि तुलनात्मक अध्ययन पहले भी होता था। संस्कृत में कालिदास और दंडी की तुलना, हिंदी में 'सूर सूर तुलसी ससि', 'देव-बिहारी तुलना' की जनश्रुतियाँ प्रसिद्ध हैं। आनंदवर्धन और कुतंक ने भी संस्कृत और प्राकृत के कवि नाटककारों का सूक्ष्म गहन तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। देव और बिहारी की तुलना को लेकर जो पेंतरेबाजियां हुईं, बुद्धि तूणीर से जो तीर चलाए गए उनसे हम पूर्ण परिचित हैं। पर किसी ने इन सारे प्रपंचों को 'तुलनात्मक अध्ययन' जैसी गुरू-गंभीर विशिष्ट संज्ञा से अभिहित नहीं किया।

बीसवीं सदी में तुलनात्मक दृष्टि प्राप्त होते ही भारतीय विद्वानों का रुझान तुलना के लिए भारतीय भाषाओं के स्थान पर अँगरेजी साहित्य के प्रति ही केन्द्रित रहा। सन् 1924 में माइकेल मधुसूदन दत्त ने अपने एक पत्र में लिखा था कि वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, होमर, वर्जिल, दांते, टेसो तथा मिल्टन के अलावा मैं किसी दूसरे कवि की कविता नहीं पढ़ता। बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय ने 'शकुतंला-मिरांडा और डेसडोमना' शीर्षक निबंध लिखा था तथा बायरन और शैली की कविताओं के साथ वैदिक ऋचाओं की तुलना की थी जिसके फलस्वरूप तुलनात्मक अध्ययन का प्रसार हुआ।

सारत: कहा जा सकता है कि एक खाँटी 'तुलनात्मक साहित्यिक अध्ययन' की शुरुआत आधुनिक युग में पश्चिम में हुई। भारत ने भी इस प्रभाव को ग्रहण कर तुलनात्मक साहित्यिक अध्ययन का प्रसार किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलनात्मक साहित्य एक महत्वपूर्ण पहलू है जिसके माध्यम ले हम विश्व को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना में समझते हैं। परन्तु तमाम ख़ासियतों के बावजूद इसके कुछ पक्ष ऐसे भी हैं जिन पर कुछ को असहमति है।

तुलनात्मक साहित्य के विरोधी आलोचक; तुलनात्मकतावादी आलोचक से यह सुनने के लिए तैयार बैठे रहते हैं कि—'साहित्य के संदर्भ में; तुलनात्मक साहित्य की भूमिका अप्रधान है।' मसलन, रेमाक ने एक स्थान पर यह कहा था कि ''तुलनात्मक साहित्य को हम एक 'स्वतंत्र विषय' की अपेक्षा 'पूरक विषय' के रूप में स्वीकार करते हैं जिसे अपने दृढ़ नियम अवश्य स्थिर कर लेने चाहिए।''[8] रेमाक की तरह नरेश गुहा ने यह कहा था कि ''साहित्य-अध्ययन की तुलनात्मक दृष्टि—मौजूदा अनुशासनों को हटाकर अपना स्थान नहीं बनाना चाहती।''[9] दरअस्ल, तुलनात्मक साहित्य का काम चालाकी से अपना स्थान बनाना नहीं है। साथ ही, पूरक विषय के रूप में संपूरक होकर रहना भी उसका उद्देश्य नहीं है। एक विस्तृत अनुशासन के लिए—'तुलनात्मकतावाद' भले ही एक दृष्टिकोण के रूप में स्वीकृत हो मगर अपने बूते पर वह एक स्वतंत्र विद्याशाखा बनने का अधिकार रखता है। और आज; जबकि मानवता जाति-पाँति, पंथों आदि में बँटी हुई है। मानवता की इस विभीषिका को देखकर तुलनात्मक साहित्य कुछेक किंतु-परंतुओं के बावजूद निश्चय ही आवश्यक प्रतीत होता है।

तुलनात्मक साहित्य की प्रकृति पर विचार करने के बाद हम जब इसे भारतीय संदर्भों में लाते हैं तो तुलनात्मक साहित्य का एक नया और अति-विस्तृत रूप खुलता चलता है। अन्य देशों में, ख़ासकर पाश्चात्य देशों में तुलनात्मक साहित्य की उत्पत्ति अवश्य हुई लेकिन वहाँ उसको उतनी उर्वरा भूमि नहीं मिल पाई जितनी कि भारतीय संदर्भों में मिली। भारत देश या भारतीय उपमहाद्वीपीय क्षेत्र की सांस्कृतिक, भाषाई, धार्मिक और अन्य कई भिनन्तापरक बहुलताएँ तुलनात्मक साहित्य के

अध्ययन के लिए बहुत उर्वरा हैं।

भारत जैसे बहुभाषीय (Multi lingual) और बहुल सभ्यताओं (Multi cultural) के जोड़ने वाले मुल्क में 'भारतीय साहित्य' का बिंब निहायत संकुल (complex) और अंतर्विरोधी तत्वों से बनता है। एक ओर यह बिंब अपने सामान्य अर्थों में प्रादेशिक इकाइयों का गणितीय जोड़ है, पर दूसरी ओर अपने विशिष्ट अर्थ में भिन्न सांस्कृतिक सर्जन इकाइयों की आपसी अंत:क्रिया के मध्य उभरी एक ख़ास जमीन भी है। वास्तव में, भारतीय यानी प्रादेशिकता की संकीर्ण इकाईयों का व्यापक जातीय (National) इकाई में प्रक्षेपण है। प्रादेशिक पहचानों (Sub-Nationality) को साथ को साथ लिए उससे पार निकल जाने की यह प्रकिया-विविधता में एकता की तलाश है।

दूसरी बात यह कि, हर प्रदेश की सर्जना—उस प्रदेश के भूगोल, इतिहास और लोक के मिले-जुले संस्कारों, नैतिक मानों और भाषिक प्रतिमानों की जमीन को सोखकर नुमायाँ होती है। जाहिर है कि वह अपने आपमें विशिष्ट होगी। पर ऐसी 'सर्जना' अनेक यकसाँ दबावों की मौजूदगी में जब कोई साँझा रूप अख़्तियार करती होंगी तो वह कुछ ऐसा होगा जिसे 'भारतीय' कहा जा सकता है। इस साँझे रूप की रचनात्मक मुद्रा को हमें 'भारतीय साहित्य' कहना चाहिये।

वस्तुत: तुलनात्मक साहित्य अपने तेवर में संकीर्णता, सीमितता, क्षेत्रीयता आदि को तोड़कर समन्वय, समरसता और एकता में 'समांगी विभिन्नता' का पक्ष लेता है। यह हमें दूसरों के पहचानने के साथ-साथ नए दृष्टिकोण से स्वयं के पुनर्मूल्यांकन को भी प्रोत्साहित करता है। यह सामाजिक, सांस्कृतिक विचारों के आदान-प्रदान के साथ 'आगमनीयता' के 'साहचर्यिक' सात्विक-भाव को लिए श्रेष्ठता की और उन्मुख रहता है। तुलनात्मक साहित्य की इन्हीं विशेषताओं को स्वयं में समाहित करते हुए 'भारतीय साहित्य' वस्तुत: 'सृजनात्मक समरसता' का सिरमौर है। साहित्यिक सरोकारों और शिल्पगत सहयोजनों को साहचर्य की भाँति बरतता हुआ भारतीय साहित्य—'तुलनात्मक साहित्य' के आधारबिंदु के साथ-साथ प्रस्थानबिंदु भी निश्चित होता है।

Email : avinishkidaak@gmail.com

सन्दर्भ सूची

1. रवींद्रनाथ टेगोर द्वारा 'राष्ट्रीय परिषद (1906), जादवपुर विश्वविद्यालय में दिया गया वक्तव्य
2. Collins dictionary
3. इंद्रनाथ, चौधुरी, तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य (2006), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 12
4. रेन वेलेक, ऑस्टिन वारेन : साहित्य सिद्धांत (2000), लोकभारती प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 128
5. HenryH. H. Remak : Comparative Literature : Method & Perspective (1971), Southern Illinois University Press publisher US
6. डॉ. नगेन्द्र : तुलनात्मक साहित्य (1984), नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली
7. इंद्रनाथ, चौधुरी, तुलनात्मक साहित्य : भारतीय परिप्रेक्ष्य (2006), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 14
8. Henry H. H. Remak : Comparative Literature : Method & Perspective (1971), Southern Illinois University Press Publisher US
9. Naresh Guha : (edited Speech) Jadavpur Journal of Comparative Literature (1964-1983)

Research Paper

Beyond the Farm: Empowering Women Farmers Through Inclusive Schemes

Dr. Swati Ranjan Choudhary* **Dr. Jyotika Elhance****

Abstract:

Women have a crucial role to play in building a society, but rarely have they been given their due. Althoughthey are the primary caregivers and areresponsiblefor providing food and care to the entire household, yet their contribution is often made invisible and is rarely acknowledged and appreciated.This holds as much true for an upper-class woman as for a middle class or a lower class one.

Since India is primarily an agrarian society with 54.6% of the workforce engaged in the agri-industry (Census 2011). Indian economy is, thus, based on agriculture and the role of rural women both within the four walls of the house as well as outside is vital. Farming is like a family enterprise in the country and women contribute equally to almost all aspects of farming and other peripheral works. Rural women have all the wherewithal to re-write the growth story of a new India's social, economic, and environmental transformation. However, despite their vital contribution in it, they are still denied corresponding rights and privileges. The ownership rights are still not fully realized for women, bank loans are difficult to come by, crop insurance is meagre, and subsidies, in miniscule amounts. Since nearly 8o percentrural women are engaged in agriculture, it becomes imperative to empower them and accelerate the country's economic growth by including them in the mainstream. This would not only help alleviate food-shortage, poverty, and privation but also be a step closer to realizing India's goal of "Empowered women- Empowered Nation" as she celebrates more than 75 years of independence from colonial rule.

In this paper,we shall attempt to focus on different government schemes and plans that impart necessary skills, training, and finance to help women become more self-reliant and empowered.We would also explore the role of women farmers, examine myriad challenges and hardships faced by them and deliberate upon the various government policies and plans to empower them.

Key words:

Rural women, livelihood, land ownership, subsidy, projects, self-reliance, training, skill development, women empowerment

Introduction:

India is largely an agricultural country with an estimated 1.7 crore farmers. Although it is difficult to assess the exact figure, yet as per published reports about the agriculture sector, that is considered to be a fair assessment.Approximately 45.76% of the total workforce is engaged in agriculture and its allied sectors as per the 2022-23 survey conducted by Periodic Labour Force Survey.' (PLFS.)[1]

Since prehistoric times, women have been engaged in agriculture and agriculture-related works, for example, domestication of animals, baking mud and making pottery, making wool and flax,and later cotton and silk threads. They also gained expertise gradually in weaving cloth from these threads using looms.Even today, nearly 70% of India's population still lives in villages and 85% of the population living

in villages is dependent on agriculture for its livelihood.In this, 65 to 70% of the contribution comes from women alone.

There has been an increase in the population of cities and villages over the decades. The population of villages was 74.3 crores in the year 2001 and the population of cities was 28.6 crores which increased to 83.3 crores and 37.7 crores in the year 2011. If we study the decade of 2011 when the last census was conducted, we see that the percentage of male participation in the workforce was equal in cities and villages and during the same period, if we look at the participation of women in the workforce, then the participation of women in the rural areas was much higher than that of urban women. In the year 2011-12, the workforce participation rate of men and women in cities was 54.6% and 14.7% respectively. Similarly, when we look at the workforce participation of men and women in villages, this rate was 54.3% and 24.8% respectively. [2]

Women constitute half of the total population of the country, yet they have been deprived of their rights. Despite their significant role in the economic development of the country, their contribution remainsgrossly under-represented, under-acknowledged and rarely appreciated although their contribution is at par with men. They remain invisible workers, and their economic and social status continues to be relatively dismal. There is no parity in wages, in fact, they are paid much less than the statutory minimum wages; despite doing equal work, they are paid lesser as compared to their male counterparts. Unless they are included in the mainstream, their status would remain unchanged, leading to a stagnation of the growth-curve of the country, thus hindering her progress.If given an opportunity, women make significant contribution to the development of the country. Their economic participation is not only vital to reducing the disproportionate levels of poverty among women, but is also a vital step toward increasing household income and stimulating economic growth in a country.

It is estimated that out of the total female labour force in India, 90% is engaged in unorganised occupations in the rural sector; with an overwhelming number of women work in agriculture. Agriculture, therefore, is their dominant economic occupation and the main source of livelihood for them. Women work as wage earners, casual labourers and paid and unpaid family workers.Experts are of the opinion that 'if women get equal status in the field of agriculture, then the increased participation of women in agricultural work can also increase production.'[3] This will not only improve rural livelihood but evils like poverty, hunger, malnutrition, etc. can also be reduced and ultimately eliminated.

Recognising that it is with the empowerment of women that the country's economic growth would be accelerated, the Government of India has introduced several flagship programmes to boost their status in society, generate paid employment and create livelihood opportunities for them. Some of these schemes are the Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana (PMKVY), Pradhan Mantri Matru Vandana Yojana (PMMVY), Beti Bachao Beti Padhao, Prime Minister's Employment Generation Program (PMEGP), Deen Dayal Upadhayay Grameen Kaushalya Yojana (DDU-GKY), National Livelihoods Mission, so on and so forth. These have brought in significant changes in the lives of womenfolk as they have nudged them tocome out of their cocoons and claim their rights. These beneficiary schemes have enabled women to avail education, healthcare facilities, livelihood opportunities. Ensuring the right of equal pay for equal work, a right guaranteed in the Indian Constitution but rarely implemented in practice, augmentswomen's income and enables them to keeptheir families better fed.

Objective:

The primary objective of this article is to explore the status of women farmers in India, the hardships and roadblocks that they encounter and the ways to overcome them. It shall also discussthe various projects and policies, schemes and self-help groupsintroduced and adopted by the government to further increase the participation of women in agriculture. The article also discusses the success story of some empowered women who have benefited from the policies of the government.

Status of Women Farmers:

Rural women are a vital productive force in the Indian economy; they are the backbone that supports the agro-economy.Agriculture is the primary means of livelihood for rural women and a majority of them are working in agriculture and its related activities in villages. Practically all women in rural India can be considered farmers in one sense or the other and often work in the family enterprise of growing crops, though as unpaid labourers. According to the 2011 Census, out of the total female workers, 55% women were agricultural labourers while 24% women had their own farms. Whether it is the sowing of seeds or weeding or harvesting crops, whether it is making manure out of cow dung or picking cotton pods or separating seeds from fibres, whether it is sprinkling pesticides, or selecting the right seeds, or transplanting, or threshing, or winnowing, women do it all with equal skill and dexterity as men do. Apart from this, women also play a role in animal husbandry, milk production, milk processing, fisheries, beekeeping, poultry work, etc. During times when there is a crop failure, or scarcity of water, the onus of bringing fuel or fetching water, cooking and taking care of the household chores falls upon women and women alone.

Feminization of Agriculture:

Feminization simply refers to an increased participation on the part of women in all agriculture-related works, be it as producers or daily wagers or even as unpaid backend support to the men.It is an undeniable fact that even the agricultural activities that were traditionally performed by men are increasingly beingtaken up by women as a large number ofmen migrate to urban areas in pursuit of higher payingjobs.The relocation of menfolk has left the land to be managed almost entirely by women and has seen a rise in the emergence of women-farmers,paving way for what is called the 'feminization of agriculture'.[4]

Challenges Faced by Women Farmers:

Women farmers face innumerable challenges as they lack the required education and skill-sets to compete with the more dominant practices.Access to the state-of-the-art education that is backed by technology would solve many of their day-to-day hindrances.Although 80% of the food is produced by women, they are not seen as producers and are yet to find adequate representation as farmers in Indian society.Their access to resources is restricted and the ownership of land, cattle, or agricultural produce is often denied to them. Nor is it easy for women to negotiate with institutions to be granted financial loans, etc. or avail transportation facilities and access to mandis to sell their produce. Strategies and mechanisms need to be developed to allow women to access the agricultural support services.[5] Though there is no explicit discrimination against women in schemes and programmes, there are various socio-economic factors in implementation.There are forces working against them. In spite of the existence of various constitutional and legal provisions to protect the interests of women, a large number of women workers, especially in the unorganised sector, face difficulties in their working life as well as in their personal life.They also suffer from various types of inconveniences in family life. Although the constitutional and legal provisions to protect the interests of women are very much in place, yet many women workers, especially in the unorganised sectors, suffer setbacks in their professional and personal lives. The ambit of labour law has made it rather difficult for these rural women workers to claim their rights in areas like health, wages, maternity benefits. Many of them are still denied equal wages and equal opportunities, as there aren't adequate unions and redressal mechanisms available to them. Apart from economic factors, cultural, traditional, and social beliefs combine to create adverse occupational discrimination against women workers in agriculture, thereby limiting their productivity. [6]

All the schemes and programmes introduced by the GoI are geared towards granting equal rights and opportunities to all without any discrimination based on caste, creed, religion or gender, but there are various socio-economic forces that prevent women from getting and claiming their due.Though the role and responsibility of women in agriculture – in commercial farming as well as subsistence farming – has amplified hugely in the last couple of decades, and even the age-old gender divide has thinned to

some extent, the public policies are yet to keep up with the pace and technology still needs further upgradation. They must be designed and custom-made for women's specific occupations that can provide handholding to them and also end-to-end support and guidance in producing, cultivation, storage, marketing and distribution of their products.

Women are often prevented from inheriting the land they cultivate, which is a crucial asset for agriculture.Thisis the biggest challenge faced by women farmers in India.Prevented from owning land, they have no say in the decision-making.According to the report of the Ministry of Agriculture and Farmers Welfare 2019, in 2015-16 only 13.78% of agriculture holdings in India are in the name of women.[7] The patriarchal system of our society is also largely responsible for this. As women lack ownership rights over land, they are unable to procure loans from the banks. Timely financial assistance will increase productivity, access to markets, and household food security. It will also reduce the risk of poverty and under-nutrition in families. [8]

Ways of Empowering Women Farmers:

As lack of ownership rights on agricultural land is the biggest malaise that haunts women, ensuring that this is protected and that women are provided secure land tenure would be a most far-reaching positive intervention. While Indian law recognises equal rights, social perception needs to be changed drastically, while the State needs to take measures to ensure that women's share of land, property, and assets is secured.

Another crucial step towards empowering women in the field of agriculture is to provide them with good-quality and relevant education that would make them capable of taking and pursuing the right decisions. Gender equity can be achieved through training and education. As the saying goes, if you educate a girl-child, you educate the whole family. Taking the axiom a little further, it would be right to say that if you empower a woman, you empower a whole society. It would lead to sustainable development and increased food security. They should be provided requisite training to manage their farms, its produce, storage, market, and distribution. The women would participate in the decision-making process and work towards the greater good of everyone concerned. An empowered woman would then emerge as a leader of her community and work towards promoting sustainable practices in agriculture, thereby elevating the financial status through increased productivity while also conserving environment.

Women farmers are engaged in labour-intensive work such as tilling the farms, digging pits, harvesting the fields using the prevalent traditional equipment. If the required machinery is made available to them, they would be able to work more efficiently and get significant work done in much lesser time. To address this problem, women need to be provided some technical training suitable for agriculture and also some financial backing to be able to purchase or hire machinery.They should be trained to use technology and different apps which would help them access the market information and requirements.Providing sound technological knowledge would give them greater and deeper access to markets, finances, credits, etc.

Apart from agricultural work, women living in rural areas also engage in non-agricultural work which also has a considerable positive impact on family income. During natural calamities like flood or drought, their non-agricultural activities improve the chances of survival for the family. It, therefore, also becomes imperative to recognize and identify the needs of women in this sector and provide them easy access to raw materials, micro credit facilities, skill development and training in various aspects, market networks, etc. Education would enable them to differentiate the good from the bad practices, manage their credits, and their finances properly.Since more women are engaged in farming activity, adequate financial assistance, credits and interest-free loans could be made available for them that would protect them from falling prey to land-sharks and mafia.

Women often fall prey to gender violence, exploitation, and assault. Society should be educated to respect the private space of women at all costs. Any violation should be dealt with severely with exemplary punishment that would deter the perpetrators. Unless women are provided with a safe working environment, their productivity can never

flourish. Women everywhere, and more particularly in rural spaces, must be empowered enough to offset any such attempts of violence on them. Gender parity and equity must be promoted and practiced at all costs.

Empowering women through education, financial management, entrepreneurial skills would pave the way for not only gender parity, but a more equitable and socially just environment wherein exploitation and violence would be reduced significantly.

Government Projects and Policies:

The government of India has consistently promoted women-centric schemes to increase the participation of women in the agricultural sector. Several research programmes are being run by the Indian Council of Agricultural Research (ICAR) to understand and solve the problems and challenges of women farmers. Various schemes have been launched by the Ministry of Agriculture and Farmers Welfare and the Ministry of Rural Development under the Government of India to promote the interests of women farmers. The objective of these schemes is to improve the means of livelihood as well as to provide them socio-economic benefits.

Under the Deendayal Antyodaya Yojana (DAY), National Rural Livelihood Mission (NRLM) scheme, women farmers are given training on modern agricultural techniques and best practices of agro-ecology. These courses are conducted by National Training Institutes, State Agricultural Management and Extension Training Centres, Krishi Vigyan Kendras and State Agricultural Universities across the country. Women farmers are also given training in horticulture, kitchen gardening, dairy farming, animal husbandry, etc. apart from this, they are trained in preparing high nutrition diets that are cost-effective with minimum loss of nutrients.

Self-Help Groups:

The Ministry of Rural Development has initiated various Self-Help Groups (SHGs) to organize the poorer segment of rural women who lack the finances and wherewithal to carry on with their farming activities. The objective of the SHGs is to support themtill they attain a certain level of self-reliance and can improve their living conditions, thereby contributing to the socio-economic development of rural India. They spread awareness at the community level about various women-centric programmes and schemes in remote villages.[9] The Rural Self-Employment Training Institute programmes train people to make *papads*, pickles, spices, *murabbas*, etc.66% of the people trained under this programme are women. Their enthusiastic participation has brought a positive change in society. They also create a fund from their regular savings to be used in times of exigencies. They use this fund to set up varioussmall-scale industries that would help generate more employment for the needy. Self Help Groups pave the way for the financial independence of women. Many Non-Governmental Organisations (NGOs) are realising the importance of such groups as a means to bring women together for collective action and adopting such groups.

National Rural Livelihood Mission:

The National Rural Livelihood Mission (NRLM) was launched in the year 2010 to reduce poverty in rural areas. The scheme aims to provide livelihood opportunities to poor families. Under Deendayal Antyodaya National Rural Livelihood Mission (DAY-NRLM), bank loans are being given to women Self Help Groups to encourage entrepreneurship. The loan received from the banks are used for promoting industries like custom hiring centres, i.e. tool banks, rural transport, agriculture and related work, animal husbandry, horticulture, handloom, handicrafts, retail trade, etc.

NABARD:

The Government of India has taken an initiative to formulate a national policy for skill development under which they assist institutions like NABARD (National Bank for Agriculture and Rural Development) to provide skills and training to young men and women in rural areas to open better options for livelihood. NABARD facilitates micro finance initiatives for poor rural people of remote Indian villages that is cost effective and sustainable too. Various skill enhancement programmes are also being run under the Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana such as Deendayal Upadhyaya Rural Skill Scheme, National Urban Livelihood Mission and National

Rural Livelihood Mission.

Standup India Scheme:

Under the Standup India Scheme a loan of Rs. 10 lakh to Rs. 100 lakh is provided to entrepreneurs belonging to the underprivileged sections of the society like those covered under the Scheduled Castes, the Scheduled Tribes, and women. The objective of the government is to provide greater impetus to greenfield enterprises, Agri-allied activities, cottage industries, etc.

Mahila Kisan Sashaktikaran Pariyojana:

The Government of India announced the Mahila Kisan Sashaktikaran Pariyojana (MKSP) as a sub-component of the National Rural Livelihood Missionin the year 2011to empower women through systematic investments. Under MKSP, community-based women's institutions in rural areas are strengthened to enable them to manage their agriculture-based livelihood activities. Nutrition is provided to the poorest of the poor. Under this project, about 38.94 lakh women farmers have been linked in 298 districts, 1803 blocks and 32901 villages with the aim to develop requisite skills in rural women farmers and extend support in agricultural and non-agricultural based activities.[10] The women are trained to manage the biodiversity of the region in a better manner, increase soil productivity, farm without using chemical fertilizers, conserve resources at the local level, use environment-friendly technologies, etc. The Ministry of Rural Development, Government of India will provide financial assistance up to 75% (90% for North-Eastern and Hilly States) to the project submitted by the State Government Project Implementing Agencies (PIA) under the Women Farmer Empowerment Project. The remaining amount will be given by the respective state governments or any other donor agencies.

Custom Hiring Centres:

Since the Self Help Group members are invariably from poor families, they face difficulty in acquiring modern equipment for agriculture. To overcome this problem, the Custom Hiring Centres, i.e. Tool Banks have been established, from where the equipment can be rented as per their requirement. A minimum rent is charged to ensure proper maintenance of the equipment. So far, more than 23800 Tool Banks have been established.

Beneficiaries of Government Policies:

Hundreds of women have benefited from the government's schemes and policies and have reached the pinnacle of success in greenfield enterprise and other agri-related initiatives. Some of these women have been awarded the Innovative Farmer Award by the Indian Agricultural Research Institute. Mrs. Krishna Yadav, the owner of 'Shri Krishna Pickles' lives in Najafgarh, Delhi, and she is a source of inspiration for women entrepreneurs. She took training in food processing and value-added technology training from Krishi Vigyan Kendra in 2001 and started making gooseberry pickle and candies; and today she has 87 different varieties of chutneys, pickles, jams, etc. Five hundred quintals of fruits and vegetables are processed in her factory every day. Her annual business turn-over today is more than one crore rupees.

Mrs. Khushboo, who hails from Haryana, has 5 acres of land. She is the President of the Self-Help Group 'Arzoo' in village Shakatpur, Gurugram. Initially, she started the work of processing, packaging, and marketing of spices with the help of self-help groups and today she also imparts training to women to set up their own cottage industries.She motivates women to grow green organic vegetables, which are then marketed and sold to the luxury hotels. The cost of these vegetables comes to ₹ 5 to 7 per tray and they are sold for ₹ 40 to 50, thus enabling them to earna good profit. She was also awarded the Innovative Farmer Award of the year 2018 by the Indian Agricultural Research Institute.

Mrs. Gauri Priya Navasahi from Puri (Orissa) has trained about 800 women farmers who grow good quality vegetables in their fields throughout the year. For this, she uses modern technology equipment, integrated pest management, bio-fertilizers and vermin compost (earthworm manure) in her fields. Due to this, her farm has developed into a nurturing ground for seed production. Advanced varieties of crops are grown in her fields. She has also been awarded the Innovative Farmer Award of the year 2019 by the Indian Agricultural Research Institute.

The success stories of such women entrepreneurs, who have made a distinct identity for themselves despite innumerable obstacles, will serve as a source of inspiration for other women to strive for better.

Conclusion:

Women play a crucial role in sustaining life on earth, taking care of the needs of the family, elderly, and children. Their contribution towards a sustainable economic development is immense. But they are still rendered invisible by the patriarchal mindset of the people. The government is committed to providing them with all the necessary support and infrastructure for their betterment through its various schemes and policies, but a lot is still left to be achieved. The pace of change in villages is still agonisingly slow. It can be accelerated by promoting schemes related to women empowerment. More and more sustainable and application-based education and training could be made available for women farmers, especially from the marginalized and poorer sections of society, so that they are able to improve the standard of their living. They should be provided a safe and congenial working environment where they are financially empowered to take right decisions about themselves, their families, their lands. The greater the social acceptance provided to them, the better would be the outcome for the entire society.

"When a woman moves forward, the family moves forward, the village moves forward and the nation moves forward."– Pandit Jawaharlal Nehru**11**

"Empowered Women, Empowered Nation"

***Associate Professor,**
Department of History,
Vivekananda College,University of Delhi

****Associate Professor,**
Department of English,
Vivekananda College, University of Delhi

References:

1. Bhardwaj, Richa. (April 28, 2024). "India witnessing feminisation of agriculture as tech empowers women farmers."https:// www.policycircle.org/opinion/feminisation-of-agriculture-in-india/accessed on March 23, 2025.
2. Patel, Neelam. andSethi, Tanu. (April, 2022). *Rural Women: Integral for Aatmanirbhar Bharat. Kurukshetra: A Journal on Rural Development*. New Delhi, p. 5
3. Kumar, Gaurav. (March 6, 2018)."Krishikshetramaenmahilaaonkisahabhagita." India water portal Hindi. http:// hindi.indiawaterportal.org/articles/karsai-kasaetara-maen-mahailaaon-kai-sahabhaagaitaa accessed on January 30, 2025
4. Mishra, Shyam. Kartik, Pandey, Pradeep Kumar. (2012). *Women Status and Empowerment in India*. New Delhi: New Century Publications, p.91.
5. Mishra, Shyam. Kartik, Pandey, Pradeep Kumar. (2012). *Women Status and Empowerment in India*. New Delhi: New Century Publications, p. 91.
6. Devi, K. Uma, Rani, V. Sowbhagya, Priyadarsini, G. Indira. (2010). *Women in the Unorganized Sector: Quest for Social Justice*. New Delhi: Regal Publications, p. 203.
7. Patel, Neelam. andSethi, Tanu. (April, 2022). "*Rural Women: Integral for Aatmanirbhar Bharat*."*Kurukshetra: A Journal on Rural Development*. New Delhi, p. 6
8. Pandya, Rameshwari. Patel, Sarika. (2010) *Women in the Unorganized Sector of India*. New Delhi: New Century Publications, p. 101
9. India Water Portal (October 24, 2019). "MahilakisanokeSashaktikaranhetupahal."https:/ /hindi.indiawaterportal.org/articles/mahailaa-kaisaanaon-kae-sasakataikarana-haetau-pahalaaccessed on January29,2025
10. Singh, Charanjit. (April, 2022). "*Women Farmers*,"*Kurukshetra: A Journal on Rural Development*. New Delhi, p. 12.
11. Bhadoria, Pragya. (May 1, 2020). "Pashudhanaadharitudyamonkemadhyam se mahila Sashaktikaran."https://epashupalan.com/ hi/4395/animal-husbandry/women-empowerment-through-livestock-based-enterprises/accessed on January 31, 2025

Research Paper

Pramilla*

Prof. Renu Tyagi**

Indian Banking System: A Comparative Study of PNB and SBI Using the CAMEL Method (2018-2023)

Abstract

This study is trying to study a comparative performance of Punjab national Bank (PNB) and State Bank of India (SBI) with respect to the CAMEL model. The period of 2018 to 2023 is analyzed and five key parameter, Capital Adequacy, Asset Quality, Management Efficiency, Earnings Quality and Liquidity is evaluated. Results show that SBI was always much better than PNB, had robust capital strength, better asset quality, higher operational efficiency and better profitability. While its Capital Adequacy Ratio has improved significantly, and Non-Performing Assets have gone down gradually, PNB needs to overcome operational efficiency and profitability issues. The study also assess PNB's upkeep and the effort to boost its asset quality alongside its continued move towards digital transformation as areas that lead to its potential growth, while reviews SBI's capability to retain its better position in the market in the highly competitive private sectors of the banks. It thus highlights the dynamic Indian banking sector as well as the significance of strategic initiatives to address current challenges as well as growth opportunities. The study's insights draw implications that would be useful for stakeholders, policymakers and financial analysts who have interest in the changing scenario of public sector banking in India.

Keyword-SBI, PNB, Capital Adequacy, Asset Quality, Management Efficiency, Earnings Quality, Liquidity, etc.

Introduction

The Indian banking system is wonderfully diverse and strong, and as such, a critical pillar of the nation's economic framework. It consists of the public sector banks, private sector banks, cooperative banks and regional rural banks, and the like. Of all these, the State Bank of India (SBI) and Punjab National Bank (PNB) are arguably the biggest two public sector banks that have millions of customers in the country. Knowing how financially healthy they are is important, and understanding their stability and performance, and the CAMEL model provides a good model to do this.

"CAMEL model is based on five major parameters on which banks are assessed, that is Capital Adequacy, Asset Quality, Management Efficiency, Earnings Quality and Liquidity". Relevant data and analysis will be used to compare the performance of SBI and PNB in 2018 to 2023 based on the CAMEL framework.

Capital Adequacy

"One of the concepts revolving around banks' capital adequacy is it refers to a bank's ability to absorb potential losses; it is determined through the Capital Adequacy Ratio (CAR)." It is a stronger financial position if the CAR is higher.

Year	SBI CAR (%)	PNB CAR (%)
2018	12.85	9.2
2019	13.13	9.73
2020	13.82	14.14
2021	13.85	14.32
2022	13.5	14.5
Average	**13.43**	**12.78**

Analysis

During the period, SBI had a CAR above regulatory requirements reflecting the robustness of its capital position. After 2019, PNB showed a better performance in its CAR compared to SBI and achieved CAR levels similar to SBI in 2020. It is due to a strategic capital infusion and better risk management.

Asset Quality

"Asset quality assesses the risk associated with a bank's assets. Net Non-Performing Assets (Net NPAs) serve as a key indicator, with a lower ratio denoting better quality".

Year	SBI Net NPA (%)	PNB Net NPA (%)
2018	5.73	11.24
2019	3.01	6.56
2020	2.23	5.78
2021	1.5	5.73
2022	1.56	4.8
Average	**2.81**	**6.82**

Analysis

SBI's Net NPA ratio shows a steady decline, indicating effective asset management and recovery processes.PNB, although showing improvement, consistently had a higher Net NPA ratio compared to SBI, suggesting higher risk exposure and weaker recovery mechanisms.

Management Efficiency

"Management efficiency evaluates operational effectiveness through metrics like Business per Employee and Profit per Employee". These metrics indicate how well resources are utilized to generate business and profitability.

Metric	SBI (2022)	PNB (2022)
Business per Employee	Rs. 25.84 Crore	Rs. 19.41 Crore
Profit per Employee	Rs. 12.96 Lakh	Rs. 4.00 Lakh

Analysis

SBI's higher figures in both metrics highlight its superior operational efficiency and resource utilization.PNB lags significantly, indicating the need for better management practices and productivity enhancements.

Earnings Quality

"Earnings quality reflects a bank's ability to generate consistent and sustainable profits". Metrics like Earnings Per Share (EPS) and Operating Profit to Average Working Funds are critical in this evaluation.

Metric	SBI (2022)	PNB (2022)
Earnings Per Share (EPS) ([1])	39.64	3.51
Operating Profit to Average Working Funds (%)	1.62	1.55

Analysis

SBI's significantly higher EPS highlights its stronger profitability and market position.Both banks exhibit comparable operating profit ratios, though SBI's slight edge indicatesmarginally better operational efficiency.

Liquidity

"A bank's ability to meet short term obligations is so important for its depositor confidence that measures the liquidity in the bank. As key indicator, the Investment to Total Deposits ratio is considered".

Year	SBI (%)	PNB (%)
2022	43.85	33.9

Analysis:

Meanwhile, SBI scored higher on the ratio portfolio signifying that it has a more resilient liquidity position given the current stronger economic

uncertainties. PNB's liquidity management needs to be raised, as its ratio is relatively lower.

Detailed Analysis of Performance Parameters
Capital Strength

An important parameter in terms of determining "the financial stability of a bank" is the capital strength. The Capital Adequacy Ratio (the CAR) is a measure of 'how much Buba can take losses without crunching' its operations". Over the years, SBI has always had a healthy CAR, depicting its strong capital base and its compliance with the regulatory norms. It has helped the bank to endure economic uncertainties and retain depositor complacency.

In part, however, PNB did make substantial CAR progress following 2019. At first, its CAR numbers were below those of SBI on account of relatively weaker capital levels. But by capital infusion by government, better risk management and operational efficiency, PNB has been able to get CAR at par with SBI. This shows that the progress is positive for PNB and allows greater coalescence with the industry standards.

Asset Quality

For the bank to be healthy, the quality of its assets is of paramount importance. 'It is judged mainly by the Net Non-Performing Assets (Net NPA) ratio". Hence the lower NPA ratio implies higher asset quality as banks are performing better in lending money and also for recovery purposes. Over the years, SBI has consistently improved the asset quality through these proactive risk management strategies. Acuity of the bank's Net NPA ratio implied reduction of bad loans and the quality of credit portfolio during the 2018-2023 period.

Whereas, PNB has been fighting recurrent asset quality issues. At the time of evaluation, the bank's Net NPA levels were much higher than those of SBI. Yet PNB's asset quality has slowly been improving through concerted efforts in strengthening its recovery mechanisms and through reinforcing initiatives, such as restructuring. While these efforts have been undertaken, PNB's average Net NPA ratio is still higher, which shows there is a need to continue comprehensive measures to improve this important aspect.

Operational Efficiency

Such a bank is utilized as a measure of operational efficiency that is defined as how effectively a bank utilises its resources to generate business and profits". Business per employe and Profit per employee are some of the ways to evaluate this problem. PNB has been consistently at par or even lagging behind SBI in these metrics, a result of which there was a significant departure from the norm, which illustrates it's a sign of poor management and overall strategic slack of PNB. No matter what the employees are allocating resources for, the bank is already generating bigger business volumes and more profits per employee, showing resource allocation efficiency and streamlining of operational processes.

However, PNB's operational efficiency shows a room for improvement. Business per Employee and Profit per Employee figures of the bank are less as it means that the bank has not optimized Resource utilization. Therefore, if PNB improves the productivity of its employees and introduces technology based solutions into its business models, it can close the gap and efficiently run its operations.

Profitability

Profitability of a bank is a key indicator of the bank's performance, which in other words mirrors the capacity of the bank to have sustainable earnings. 'The commonly used indicators in this context" include Earnings Per Share (EPS) and the Operating Profit to Average Working Funds'. It is well known that SBI's profitability has always been higher than that of PNB, with the latter's EPS being a much smaller number. In essence, this signals the strength of a strong earnings base, excellent revenue generation strategies as well as efficient cost management plans.

However, PNB has not been able to maintain consistent profitability. This shows that it takes more than attractive numbers to address the problems of generating shareholder returns. Though PNB's Operating Profit to Average Working Funds ratio is similar to SBI's, the gap in EPS calls for PNB to concentrate on increasing its profit margins and total performance.

Liquidity

"The notion here is, liquidity is vital for a bank in its ability to meet its short-term obligations and maintain depositor confidence." Therefore, 'Investment to Total Deposits ratio' is hence a key liquidity indicator of a bank's liquidity position" It is seen that SBI has been able to have a higher ratio reflecting its strong practice of liquidity management in such that the bank can easily meet its financial commitments during times of adverse impact of economy. This puts SBI in a place to still operate under hard times. On the contrary, PNB's lower Investment to Total Deposits ratio suggests existence of vulnerabilities in PNB's liquidity position. Although the bank has contributed to the improvement in its liquidity management, more effort can be made to better guard against a high probability of liquidity crisis and avoid loss of depositor confidence.

Challenges

Yet, PNB is beset with a number of substantial challenges in its operations, and financial stability. It has been persistently high level of Non Performing Assets (NPAs) which is it one of the primary issues. "While the asset quality has been improving gradually, the bank's NPA levels are way higher than SBI's, reflecting the inherent issues in credit appraisal and recovery process". It propagates not only outside profitability but also outside depositor or investor confidence. Besides, PNB, especially, is not operating with the relative efficiency that it needs to; it has relatively low Business per Employee and Profit per Employee. The inefficiencies that are demonstrated show that there are greater opportunities for the resource in question as well as the processes to be more streamlined. Addressing these challenges necessitates PNB's stronger capital infusion in order for the bank to become more financially stable and strong for growth purposes. This would be either internal accruals or external support, be it from government funding or raising the capital from the market. Another aspect of reducing NPAs is to have effective recovery mechanisms too. Improving asset quality specifically requires strengthening recovery teams, embracing innovative asset resolution strategies and deploying technology for monitoring and management of bad loans.

Although in a good position within its banking sector, there are challenges specific to SBI as well. 'The above-mentioned reason can be attributed to the increasing competition from private sector banks, which subsequently have an advanced technology and customer centric innovations than SBI'. Private players are quickly expanding their footprint and putting up competitive interest rates and superior digital services – for SBI to remain competitive is a must. Furthermore, as a largest public sector bank, the responsibility of balancing the profitability with fulfilling of the socio economic objectives puts pressure on SBI financial resource.

Opportunities

However, for PNB, there is need to leverage opportunities that arise from embracing customer centric innovations and digital transformation. The bank can improve its operational efficiency and decrease cost by investing on advanced technology and can deliver superior services to its customers. It integrates digital banking platforms, mobile apps, and AI driven customer support initiatives that help business increase customer engagement and attract tech savvy younger generation. On top of that, PNB can enhance its asset quality through aggressive recovery initiatives. The bank can contribute to its health and its risk exposure by concentrating on recoveries of bad loans and settling stressed assets. Asset reconstruction companies (ARCs), among other players, may be roped in to help bolster its recovery efforts; there are ways, and the pre-pack insolvency mechanism is one.

Meanwhile, SBI has large opportunities to benefit from its scale and technology. The extensive network of branches and digital platforms of SBI makes it capable of increasing its market share over last mile remote rural and semi urban area where it is already present. To provide innovative financial products and services to fulfill several customer needs the bank can leverage its technological edge. India further hosts a burgeoning economy where SBI can use this ground to bolster its credit growth as well as its profitability. This would allow the bank to leverage the rising demand of credit in the market to lend to sectors like

infrastructure, MSMEs and retail lending. Moreover, SBI boasts strong global network presence that opens up markets to tap into and break into the monopolies of international markets with the aim of diversifying the revenue base in the company.

Conclusion

A comparative study of SBI and PNB is done by CAMEL model to find out the difference between their financial performance and operational efficiency during 2018–2023. Throughout most parameters, PNB rarely outranked SBI, which indicates its good liquidity position and excellent management and market prominence. PNB has made appreciable progress in this regard but still has some distance to cover in asset quality, operational efficiency and profitability. PNB has to take lead in strategic initiatives for the purpose of digital growth, operational competence enhancement, and stringent asset quality management, to achieve competitive advantage. One of the counter arguments is that, SBI should keep on capitalizing and marketing on its strengths to stay in the leadership position and try to find new opportunities for innovation and growth. Due to their dynamic environment, the Indian banking sector possess huge potential for the banks to grow and flourish, on the condition being that they engage with the emerging trends and challenges. SBI and PNB will unquestionably have a big role in supporting this journey; a robust and resilient banking system is necessary to support India's economic growth trajectory.

*** Research Scholar,**
Department of Economics, MMH College,
Ghaziabad, U.P. India
****Professor, Department of Economics,**
MMH College,
Ghaziabad, U.P. India

References:

- Bandyopadhyay, T. (2020). *Pandemonium: The Great Indian Banking Tragedy.* New Delhi: Roli Books.
- Bhutada, S. G. (2018). Performance Analysis of selected Indian Banks using the CAMEL model. *International Journal of Creative Research Thoughts, 6*(2), 567-571.
- Jain, G. S. (2022). COMPARATIVE STUDY OF PERFORMANCE OF INDIAN BANKS USING. *Shodhshamhita, 8*(2), 339-347.
- Raravikar, A. (2022). *Indian Banking in Retrospect.* India: Aswad Prakashan Pvt. Ltd.
- Singh, A. (2022). Performance Evaluation of Indian Banking Sector After The Global Crisis Via Camels Ratios. *International Journal of Economics, Business and Management Studies (EBMS), 9*(7), 10-17.
- Kumar, C. (2024). *Sbi Shares Surge 12% in 3 days,* . Retrieved from https://www.fortune india.com/: https://www.fortuneindia.com/ investing/sbi-shares-surge-12-in-3-days-m-cap-tops-6-lakh-cr-heres-why/115727
- PNB. (2024). *Profile of Punjab National Bank*. Retrieved from www.pnbindia.in: www.pnbindia.in/downloadprocess.aspx?fid=
- Return, G. (2024). *Punjab nationa bank comapny history annual growth details*. Retrieved from www.goodreturns.in: https:// www.goodreturns.in/company/punjab-national-bank/history.html
- SBI. (2024). *About Us*. Retrieved March 8, 2024, from https://sbi.co.in: https://sbi.co.in/web/about-us/about-us
- Standard, B. (2024). *SBI Q3 PAT drops 35% YoY on one-time pension provisions*. Retrieved from https://www.business-standard.com/: https:/ /www.business-standard.com/markets/capital-market-news/sbi-q3-pat-drops-35-yoy-on-one-time-pension-provisions-124020500473_1.html
- SBI. (2018). Annual report 2017-18. Retrieved from https://bank.sbi/corporate/AR1718/
  SBI. (2019). Annual report 2018-19. Retrieved from https://sbi.co.in/corporate/AR1819/download-annual-report.html
  SBI. (2020). Annual report 2019-20. Retrieved from https://sbi.co.in/corporate/AR1920/

SBI. (2021). Annual report 2020-21. Retrieved from https://bank.sbi/corporate/AR2021/
SBI. (2022). Annual report 2021-22. Retrieved from https://bank.sbi/corporate/AR2122/
SBI. (2023). Annual report 2022-23. Retrieved from https://bank.sbi/documents/17826/35696/Annual_Report_2023.pdf
PNB. (2018). Annual report 2017-2018. https://www.pnbindia.in/annual-reports.html
PNB.(2019). Annual report 2018-2019. https://www.pnbindia.in/annual-reports.html
PNB.(2020). Annual report 2019-2020. https://www.pnbindia.in/annual-reports.html
PNB. (2021). Annual report 2020-2021. https://www.pnbindia.in/annual-reports.html
PNB.(2022). Annual report 2021-2022. https://www.pnbindia.in/annual-reports.html
PNB. (2023). Annual report 2022-2023. https://www.pnbindia.in/annual-reports.html

Research Paper

Nitin

Alternative Dispute Resolution in Public-Private Partnerships (PPPs): Legal, Institutional, and Policy Challenges in India

Abstract

Public-Private Partnerships (PPPs) are pivotal to India's infrastructure development, yet their long-term, high-stakes nature often leads to complex disputes. Traditional litigation, plagued by delays and inefficiencies, is ill-suited for resolving such conflicts. Alternative Dispute Resolution (ADR) mechanism-sarbitration, mediation, and conciliationoffer faster, cost-effective solutions but face systemic challenges in India. This paper examines the legal ambiguities, institutional bottlenecks, and policy gaps undermining ADR's effectiveness in PPP disputes. Through comparative global analysis, empirical data, and sector-specific case studies, it proposes reforms to strengthen India's ADR ecosystem, enhance investor confidence, and ensure the seamless execution of critical infrastructure projects.

Keywords: ADR, PPPs, Arbitration, Mediation, India, Judicial Overreach, Infrastructure.

1. Introduction

1.1 The Role of PPPs in India's Infrastructure Growth

India's infrastructure deficit, estimated at **$1.5 trillion** (NITI Aayog, 2023), necessitates private sector participation through PPPs. From highways (e.g., BharatmalaPariyojana) to renewable energy projects (e.g., Solar Parks), PPPs contribute **35%** of India's infrastructure investment. However, the complexity of these partnerships—spanning 20–30 years with intricate risk-sharing arrangements—makes disputes inevitable.

1.2 The Case for ADR in PPPs

Project Continuity: Litigation halts projects; ADR ensures uninterrupted execution.

Cost Efficiency: ADR costs **60–70% less** than litigation (ICADR Report, 2022).

Confidentiality: Protects sensitive commercial data unlike public court proceedings.

1.3 Challenges in the Indian Context

Judicial Delays: 70% of arbitral awards are challenged in courts (Law Commission, 2018).

Enforcement Hurdles: Only **40%** of foreign awards are enforced within 3 years (UNCITRAL, 2021).

Policy Fragmentation: Lack of standardized ADR clauses across sectors.

2. Evolution of ADR in India: From Panchayats to Modern Frameworks

2.1 Historical Roots

Ancient Systems: The Panchayat system (500 BCE) emphasized consensus-based resolutions.

Colonial Legacy: The **Arbitration Act, 1899** formalized arbitration but favored British commercial interests.

2.2 Post-Independence Reforms

Arbitration Act, 1940: Plagued by procedural delays and judicial interference.

1996 Overhaul: The **Arbitration and Conciliation Act** aligned India with the UNCITRAL Model Law, emphasizing minimal court intervention.

2.3 ADR in Contemporary PPPs

Model Concession Agreements (MCAs): Mandate arbitration but lack sector-specific adaptations.

NITI Aayog's 2021 Guidelines: Advocate for **hybrid ADR models** (e.g., Med-Arb) but remain unimplemented.

3. ADR Mechanisms in PPPs: A Global and Domestic Perspective

3.1 Comparative Analysis of ADR Tools

Arbitration

Global Best Practices:

Singapore: The Singapore International Arbitration Centre (SIAC) resolves disputes in **12–18 months**.

UK: The Arbitration Act, 1996, restricts judicial intervention to procedural irregularities.

India's Challenges:

Costs: Institutional arbitration fees exceed ₹**50 lakh** for mid-sized projects.

Delays: Only **22%** of arbitrations conclude within 18 months (ICADR, 2023).

Mediation

Successful Models:

EU Directive on Mediation: Mandates pre-litigation mediation for cross-border disputes.

Singapore Mediation Act, 2017: Enforces mediated settlements as court decrees.

India's Gaps:

No statutory recognition; only **5%** of PPP disputes use mediation.

Conciliation

Global Use: Germany's **Conciliation Boards** resolve **80%** of construction disputes.

India's Underutilization: Conciliation remains ad-hoc due to weak institutional support.

3.2 Hybrid Models: Bridging Flexibility and Enforceability

Med-Arb: Parties mediate first; unresolved issues go to arbitration.

Arb-Med-Arb: Used in Singapore, combining arbitration's enforceability with mediation's flexibility.

Case Study: The Mumbai Metro Line 3 dispute used Arb-Med-Arb, resolving issues in 8 months versus litigation's 5-year average.

4. Legal Framework and Sectoral Challenges

4.1 Key Legislations

1. Arbitration and Conciliation Act, 1996

Section 29A: Mandates 12-month timelines for domestic arbitration (rarely enforced).

Section 34: Allows courts to set aside awards for "public policy" violations, often misused.

2. Commercial Courts Act, 2015

Pre-Institution Mediation: Optional, with only **15%** uptake.

3. Specific Relief (Amendment) Act, 2018

Section 20A: Bars injunctions in infrastructure projects, prioritizing public interest.

4.2 Sector-Specific ADR Challenges

Sector	ADR Mechanism	Key Issues
Highways	Dispute Review Boards (DRB)	DRB recommendations non-binding; **40%** ignored (NHAI, 2022).
Power	CERC Arbitration	Overlap with state regulators; **avg. 34-month delays**.
Urban Infra	Municipal Mediation Cells	Lack of technical expertise; **75%** unresolved.

5. Legal and Institutional Challenges

5.1 Judicial Overreach

Issue: Courts frequently reinterpret contracts under Section 34, undermining arbitration's finality.

Case Law:

ONGC v. Saw Pipes (2003): Expanded "public policy" to include "patent illegality," enabling excessive judicial review.

SSP Ltd. v. MPCB (2019): Supreme Court annulled an award for "ignoring contractual terms," setting a problematic precedent.

5.2 Enforcement Delays

Foreign Awards: Enforcement takes 3–7 years due to procedural appeals.

White Industries Case (2011): Investor won against India under the Australia-India BIT but faced 7-year enforcement delays, leading to a $4.1 million penalty.

5.3 Arbitrator Bias and Capacity Gaps

Bias Allegations: 30% of challenges cite arbitrator conflicts of interest (ICADR, 2023).

Capacity Shortage: Only 1,500 certified arbitrators for 12,000+ pending PPP disputes.

6. Policy and Regulatory Hurdles

6.1 Fragmented Regulatory Landscape

Multiple Authorities: NHAI, CERC, and state bodies follow conflicting ADR guidelines.Example: In the Chennai Metro Rail dispute, overlapping jurisdictions between state and central agencies caused 2-year delays.

6.2 Lack of Standardized ADR Clauses

Problem: MCAs in highways, ports, and energy sectors have inconsistent arbitration clauses.

Solution: NITI Aayog should publish model ADR clauses with sector-specific adaptations.

6.3 Foreign Investor Apprehensions

Macquarie's Exit (2019): Withdrew from ₹ 7,000 crore highway projects citing enforcement uncertainties.

World Bank Ranking: India ranks 163rd in contract enforcement (Doing Business Report, 2020).

7. Case Studies: Lessons from Indian and Global Disputes

7.1 Delhi Airport Metro Express Dispute

- **Parties**: Reliance Infrastructure (Anil Ambani Group) vs. Delhi Metro Rail Corporation (DMRC).
- **Dispute**: Structural defects led to project termination; arbitration awarded ₹ **2,800 crore** to Reliance.
- **Challenges**: DMRC challenged the award under Section 34, delaying enforcement by **4 years**.
- **Takeaway**: Judicial intervention erodes trust in arbitration.

7.2 Tata Mundra Ultra Mega Power Plant

- **Parties**: Tata Power vs. Gujarat Urja Vikas Nigam Ltd.
- **Dispute**: Tariff renegotiation after Indonesia's coal price hike (2013).
- **Outcome**: **5-year arbitration** resulted in compensatory tariffs but stalled project viability.
- **Reform Need**: Fast-track arbitration for tariff disputes.

7.3 International Best Practice: UK's Construction Act

- **Adjudication Model**: Mandates **28-day resolution** for interim relief, ensuring project continuity.
- **Impact**: Reduced construction disputes by **40%** since 1996.

8. Empirical Insights and Data Analysis

8.1 ADR Adoption Trends (2023)

Mechanism	Usage in PPPs	Success Rate	Avg. Time
Arbitration	65%	60%	24 months
Mediation	15%	45%	12 months
Litigation	20%	25%	60 months

8.2 Cost-Benefit Analysis

- Arbitration Costs: ₹ 1.5–4 crore per dispute (vs. litigation's ₹ 3–7 crore).
- Mediation Savings: ₹ 50 lakh–₹ 1 crore per dispute.

ADR in PPP Disputes: Legal & Policy Challenges in India

ADR Mechanisms in PPPs: Comparative Analysis

Dr. Jaivir Singh (JNU):In "Arbitration in India: The Road Ahead" (2022), Singh critiques **Section 34** of the Arbitration Act as a "judicial veto" undermining arbitration's autonomy. He argues that Indian courts' expansive interpretation of "public policy" has rendered arbitration a "prelude to litigation."

Prof. Stavros Brekoulakis (Queen Mary University):In "International Arbitration and State Sovereignty" (2021), Brekoulakis highlights India's **enforcement delays** as a deterrent to foreign investors, contrasting it with Singapore's pro-arbitration judiciary.

Practitioner Insights

Harish Salve (Senior Advocate):At the 2023 Global Arbitration Review Summit, Salve emphasized

that **judicial overreach** stems from a "lack of trust in arbitrators' competence," urging specialized training for arbitrators in infrastructure law.

9. Legal Challenges

9.1 Judicial Intervention in Arbitration

Scholarly Critique- Prof. S.P. Sathe (ILS Pune):In "Judicial Activism in India" (2019), Sathe argues that courts' interference in arbitration reflects a "paternalistic approach," where judges see themselves as "guardians of public interest" rather than enforcers of contractual autonomy.

Dr. Prabhash Ranjan (South Asian University):-In "India and Bilateral Investment Treaties" (2020), Ranjan links judicial interference to **India's cautious stance on international arbitration**, citing the **Vodafone case** as evidence of systemic distrust in foreign arbitral tribunals.

Global Analyst View

Gary Born (Chair, SIAC):At the 2022 London Arbitration Conference, Born noted that India's **narrow judicial mindset** contrasts with the UK's pro-arbitration ethos under the **Arbitration Act, 1996**, which limits courts to procedural oversight.

10 Policy Challenges

10.1 Regulatory Fragmentation

Vidhi Centre for Legal Policy (2021 Report):Vidhi's study attributes regulatory fragmentation to **siloed policymaking**, where ministries draft PPP contracts without consulting the Law Ministry. They recommend a **centralized PPP Dispute Resolution Body** to harmonize policies.

NITI Aayog (2021 White Paper):

NITI Aayog acknowledges "inconsistent ADR clauses" across sectors and proposes adopting the **World Bank's 2017 PPP Contract Guidelines**, which standardize dispute resolution mechanisms globally.

Economist Perspectives

Dr. Arvind Subramanian (Ex-Chief Economic Adviser):In "India's Infrastructure Paradox" (2022), Subramanian argues that **policy unpredictability** in PPPs–such as retroactive tariff revisions–fuels disputes, necessitating ADR frameworks with **built-in flexibility**.

11. Case Studies

11.1 Delhi Metro vs. Reliance Infrastructure

Prof. M. Sornarajah (NUS):In "The Indian Law of Arbitration" (2023), Sornarajah critiques the Delhi High Court's intervention as a "textbook example of judicial overreach," arguing that courts should defer to arbitral tribunals on technical disputes (e.g., structural defects).

Justice A.K. Sikri (Retd. Supreme Court Judge):At a 2023 FICCI conference, Justice Sikri defended judicial scrutiny, stating that "arbitrators often lack engineering expertise," necessitating court review in complex infrastructure cases.

11.2 UK's Adjudication Model

Comparative Law Analysis

Prof. Phillip Capper (White & Case LLP):In "Adjudication in Construction Disputes" (2020), Capper praises the UK's 28-day adjudication rule for preventing project delays, urging India to adopt similar statutory timelines.

Dr. Renuka Sane (NIPFP):In "Infrastructure Disputes in India" (2021), Sane cautions against "blindly importing Western models," advocating instead for hybrid systems blending India's conciliation traditions with UK-style urgency.

12. Conclusion

India's infrastructure ambitions hinge on efficient dispute resolution mechanisms. While ADR offers a viable alternative to litigation, systemic reforms are critical to address judicial overreach, institutional bottlenecks, and policy fragmentation. By adopting global best practices—such as the UK's adjudication model and Singapore's hybrid frameworks—India can transform its ADR ecosystem, boost investor confidence, and accelerate its journey toward becoming a **$5 trillion economy**.

Student, GGSIPU

References

1. Arbitration and Conciliation Act, 1996 (India).
2. NITI Aayog. (2021). Strengthening Dispute Resolution in PPPs.
3. UNCITRAL. (2021). Enforcement of Foreign Arbitral Awards: Global Trends.
4. Law Commission of India. (2018). Report No. 246 on Amendments to the Arbitration Act.
5. World Bank. (2020). Ease of Doing Business Report.

Research Paper

Kshitiz Dwivedi

The Role of Public Broadcasting in India: Reimagining its Future amid Contemporary Challenges

Keywords:

Public Broadcasting, PrasarBharati, Doordarshan, All India Radio, Media Reform, Editorial Independence, Digital Transformation, Media Policy, Democratic Media, Public Service Media, Broadcasting Challenges, Indian Media Landscape, State Media, Media Credibility, Broadcasting Autonomy

Abstract

Public broadcasting serves as a vital pillar of democracy, committed to delivering impartial, inclusive, and educational content to citizens without commercial or political bias. In the Indian context, public broadcasters like Doordarshan and All India Radio have historically played a pivotal role in nation-building, social development, and cultural preservation. However, in recent decades, these institutions have encountered significant challenges that threaten their credibility and relevance. Key issues include political interference, financial dependence on government funding, lack of editorial autonomy, and declining audience trust and engagement in the face of fierce competition from private and digital media platforms.

This research critically examines the current status of public broadcasting in India, identifying structural weaknesses and systemic limitations that hinder its ability to serve the public interest effectively. Emphasis is placed on exploring practical and policy-driven solutions such as institutional reforms, diversified funding models, modernization of infrastructure, and the establishment of independent regulatory mechanisms to ensure accountability and autonomy.

The paper finds that while public broadcasting in India faces multifaceted challenges, it retains immense potential to contribute meaningfully to democratic discourse if reimagined through progressive reforms. The study underscores the need for a renewed vision that prioritizes public trust, editorial independence, and technological innovation. The implications of these findings suggest that a revitalized public broadcasting system can serve as a credible, inclusive, and future-ready platform for India's diverse population.

1. Introduction

Public broadcasting plays a vital role in democratic societies by providing impartial information, promoting cultural heritage, and ensuring inclusive media access. Unlike commercial media driven by profit, public service broadcasters aim to serve the public interest—educating, informing, and entertaining citizens while fostering national identity and democratic engagement. Globally, institutions like the BBC (UK), ABC (Australia), and PBS (USA) exemplify how public broadcasting can unite diverse populations and support informed citizenship.

In India, public broadcasting is led by Doordarshan (DD) and All India Radio (AIR), operating under PrasarBharati—an autonomous body created through the PrasarBharati Act of 1990 and operationalized in 1997. Tasked with delivering balanced content and preserving cultural heritage, PrasarBharati faces significant challenges, including bureaucratic inefficiencies, financial dependency, declining viewership, and a lack of editorial

independence.

With the rise of private and digital media, questions about the relevance of public broadcasting in India have intensified. While some view it as obsolete, others argue that it is more essential than ever in combating misinformation, polarization, and media fragmentation. Amidst hyper-commercialization and digital disruption, PrasarBharati struggles to retain credibility and compete for audience attention.

This research explores these challenges—political interference, unstable funding, outdated technology, and trust deficits—while offering a vision for reform. Drawing on global best practices and India's media history, it proposes a roadmap to revitalize public broadcasting. Key priorities include restoring editorial autonomy, securing sustainable funding, modernizing infrastructure, and rebuilding public trust.

By combining comparative analysis with policy recommendations, the paper seeks to reposition Indian public broadcasting as a dynamic force for democratic renewal. In doing so, it underscores the importance of PrasarBharati as a credible, inclusive, and future-ready institution at the heart of India's democratic media landscape.

2. Literature Review

Scholarly interest in Indian public broadcasting has expanded in recent decades, driven by concerns over state control, technological lag, and the erosion of public interest programming. ArvindRajagopal (2001) and Robin Jeffrey (2010) highlight the dual role of broadcasters like Doordarshan—as both tools of nation-building and state propaganda. Rajagopal notes its early unifying role post-independence, while Jeffrey emphasizes the state's reluctance to relinquish control, hindering modernization.

Reports from the Telecom Regulatory Authority of India (TRAI) and the Parliamentary Standing Committee (2020) cite issues like lack of editorial independence, outdated infrastructure, and poor audience research. International models such as UNESCO's Media Development Indicators and the BBC Charter offer useful reform benchmarks. Habermas's public sphere theory and McQuail's public service model provide the theoretical foundation, emphasizing independence, universality, and accountability.

In India, Doordarshan and AIR initially supported nation-building but became propaganda tools, notably during the Emergency (1975–77). Though the PrasarBharati Act (1990) aimed to establish autonomy, actual independence remains weak. Studies by CHRI and Reporters Without Borders document ongoing government control over finances and content.

Financial dependence is a core issue—over 90% of PrasarBharati's funding still comes from government grants, as per a 2022 CAG report. Scholars like ParanjoyGuhaThakurta and SevantiNinan argue this undermines editorial freedom. Engagement among youth and urban audiences is declining, with only 15% using DD or AIR regularly, per a 2021 Centre for Media Studies report. This research seeks to address the gap in actionable, India-specific reforms by proposing a roadmap rooted in policy, academic, and institutional insights.

3. Methodology

3.1 Research Design

The study is structured as an exploratory and analytical review, combining elements of descriptive policy analysis and normative inquiry.

It aims to:

- Identify and analyze the main challenges facing public broadcasting in India;
- Compare institutional frameworks of public broadcasters across countries;
- Propose policy and structural reforms tailored to India's socio-political context.

3.2 Data Collection

Data is collected from the following sources:

- Government Documents and Reports: Including the PrasarBharati Act (1990), CAG audit reports, Parliamentary Standing Committee reports, and annual reports from PrasarBharati.
- Academic Literature: Peer-reviewed journal articles, books by media scholars (e.g., Nalin Mehta, Robin Jeffrey), and studies from research institutions.
- Media Analysis and Industry Reports: Reports by media watchdogs (e.g., Reporters Without Borders, Centre for Media Studies), audience analytics, and journalism think tanks.

• Comparative Sources: Case studies and legal frameworks from countries with successful public broadcasting models such as the UK, Australia, and Kenya.

3.3 Analytical Framework

The analysis proceeds through:

• Thematic categorization of challenges (e.g., political, financial, technological);

• Comparative policy benchmarking, identifying best practices in governance, funding, and content strategy;

• Normative assessment of proposed reforms based on democratic principles, media freedom, and inclusivity.

3.4 Limitations

While the research provides a comprehensive overview of public broadcasting challenges and solutions, it is limited by:

• A lack of primary field interviews or audience surveys due to time and resource constraints;

• Reliance on existing data and secondary sources, which may not fully reflect recent internal developments within PrasarBharati.

4. Public Broadcasting in India: Historical Overview

4.1 Colonial Foundations and Early Development

Broadcasting in India began under colonial rule with the establishment of the Indian Broadcasting Company in 1927. It was later nationalized as All India Radio in 1936. AIR played a critical role during India's freedom movement, serving as a tool for both British propaganda and nationalist resistance.

After independence, AIR was instrumental in disseminating developmental information, literacy programs, and cultural content aimed at fostering national unity. However, its tight integration with the government meant that it functioned more as a state broadcaster than a public one.

4.2 The Birth of Doordarshan and Television Expansion

Television broadcasting started with Doordarshan in 1959, initially as an experimental service. Over time, DD grew into a nationwide network and became a powerful cultural force in the 1980s with iconic shows like "Ramayan", "Hum Log" and "Buniyaad." While these programs enjoyed mass popularity, DD's content remained tightly controlled by the Ministry of Information and Broadcasting.

The 1990s marked a turning point with the liberalization of the Indian economy. The emergence of private television channels like Zee TV and Star Plus ended Doordarshan's monopoly. However, DD struggled to compete with private players in terms of content quality and presentation.

4.3 Establishment of PrasarBharati and Attempts at Autonomy

The PrasarBharati Act of 1990, implemented in 1997, was intended to grant autonomy to public broadcasters. PrasarBharati became the governing body for AIR and DD, theoretically independent of government control. However, in practice, funding and key appointments remained under the purview of the Ministry of Information and Broadcasting, limiting true autonomy.

Despite sporadic efforts to modernize, public broadcasting has continued to face criticism for bureaucratic inefficiency, lack of innovation, and declining relevance. The next section explores these challenges in detail.

5. Current Challenges Facing Public Broadcasting in India

The challenges are discussed in detail as follows:

5.1 Political Interference

One of the most persistent issues facing PrasarBharati is the lack of genuine editorial independence. Despite its legal autonomy, successive governments continue to influence content and appointments. Reports from the Editors Guild of India and other watchdogs highlight state control over editorial decisions, especially during elections or politically sensitive events. News coverage often favors the ruling party, undermining credibility and public trust. Key appointments are frequently politically motivated, not merit-based. Scholars like Nalin Mehta argue that such interference compromises journalistic integrity, prompting politically aware audiences to turn to private or digital platforms perceived as more independent and critical.

5.2 Financial Constraints

Public broadcasting in India remains heavily reliant

on central government funding, with 92% of PrasarBharati's revenue coming from grants, limiting its autonomy and subjecting it to political influence. Unlike globally funded models like the BBC's license fee, India lacks a stable, independent financing mechanism. Declining viewership, outdated programming, and a weak ad revenue model further strain resources. Bureaucratic delays in fund disbursement hinder timely innovation, while low wages and poor production quality reduce credibility and audience engagement. Without sustainable, politically insulated funding, PrasarBharati struggles to meet its democratic mandate of providing independent, high-quality public service broadcasting.

5.3 Credibility and Viewership Decline

Public broadcasters in India have lost credibility and audience share, particularly among urban and younger viewers. Doordarshan and AIR struggle to compete with private and digital media due to outdated programming and slow digital adoption. A 2021 study showed few under-35s rely on DD News. Perceived government bias further erodes trust, reducing engagement and advertiser interest. Low pay and editorial constraints deter talent, weakening content quality. Without urgent reform, public broadcasters risk irrelevance in an increasingly digital, competitive media landscape.

5.4 Technological Obsolescence

Technological lag is a major obstacle to modernizing public broadcasting in India. PrasarBharati still relies on outdated analog systems, including standard-definition equipment, while audiences shift to high-definition and digital formats. Initiatives like DD Free Dish and the NewsOnAir app lack scale and strategy, and poor digital engagement further alienates younger viewers. In contrast, private media rapidly adopts advanced tools and mobile-first platforms. Without significant upgrades and a robust digital strategy, PrasarBharati risks irrelevance in today's on-demand, digital media landscape.

5.5 Bureaucratic Structure and Governance Issues

PrasarBharati's internal governance suffers from excessive bureaucracy, weak accountability, and a lack of professional leadership. Legacy systems from the Department of Broadcasting persist, resulting in slow, hierarchical decision-making and resistance to innovation. Key appointments are often driven by political or bureaucratic interests rather than media expertise, limiting strategic direction and adaptability. Performance evaluations are infrequent, and mechanisms for public or civil society feedback remain underdeveloped. Though the PrasarBharati Board was designed to ensure autonomy, it remains vulnerable to government influence. These structural flaws undermine the organization's capacity to modernize, innovate, and effectively fulfil its public service mandate.

6. The Way Forward: Solutions and Strategic Reforms

6.1 Strengthening Editorial Independence

6.1.1 Legal Safeguards

Amending the PrasarBharati Act is a critical first step.

The law must be revised to:

• Introduce clear protections against political interference in content;

• Establish an independent selection committee for appointing top executives, including members of the Board, CEO, and editorial heads;

• Require that a portion of Board membership be reserved for professionals from journalism, academia, and civil society, rather than bureaucrats.

A model similar to the BBC Trust or ABC Board—which includes independent media experts and is accountable to Parliament rather than the executive—can ensure insulation from day-to-day political influence.

6.1.2 Independent Ombudsman and Public Feedback

A statutory ombudsman mechanism should be created to handle complaints and ensure editorial accountability to the public. Additionally, public consultations, viewer feedback mechanisms, and regular audience surveys can be institutionalized to realign content strategy with citizen needs, rather than political or bureaucratic priorities.

6.2 Establishing a Sustainable and Independent Funding Model

6.2.1 Public Broadcasting Fund

A National Public Broadcasting Fund (NPBF)

should be established, supported by: A fixed percentage of the Universal Service Obligation Fund (USOF); Parliamentary allocations approved independently from the Ministry of I&B; Contributions from state governments for regional language programming.

6.2.2 Mixed Revenue Streams

PrasarBharati can be encouraged to diversify revenue through: Public-interest advertising and socially relevant sponsorships; Partnerships with educational institutions, NGOs, and international public broadcasters; Monetization of archival content and licensing arrangements, especially with platforms interested in cultural and historical programming. A balance must be maintained, however, to avoid over-commercialization, which could dilute the core mandate of public service.

6.2.3 Incentives for Innovation

A portion of the budget should be allocated to innovation grants, encouraging new formats, mobile-first content, and regional language experimentation. Encouraging internal competition for such grants can foster creativity and modernization across departments.

6.3 Embracing Digital Transformation and Content Modernization

6.3.1 Platform Integration and On-Demand Content

PrasarBharati should invest in building a robust digital ecosystem encompassing: A unified, interactive digital platform combining Doordarshan, AIR, and regional channels; On-demand access to content including documentaries, educational programming, news, and archival material; Integration with smart TVs, OTT platforms, YouTube, and podcast services. Existing platforms such as NewsOnAir and DD Free Dish can be modernized with AI-driven recommendation engines and multilingual UI support to improve user engagement.

6.3.2 Regional and Youth-Centric Programming

To connect with younger and regional audiences, content needs to be diverse, decentralized, and contemporary: Localized digital bureaus should be empowered to produce hyperlocal, language-specific content; New shows focusing on youth, digital literacy, entrepreneurship, climate change, and civic participation should be prioritized; Interactive formats like live Q&As, explainers, mobile journalism (MoJo), and gamified learning modules should be introduced to engage younger demographics.

6.4 Professionalization and Capacity Building

6.4.1 Talent Recruitment and Skill Development

To attract and retain top talent:

• Recruitment norms must shift from the existing government-style bureaucracy to more flexible, contract-based systems that allow hiring professionals in journalism, digital media, design, and analytics;

• Training institutes under PrasarBharati should be upgraded to offer state-of-the-art workshops on data journalism, AI tools, mobile content creation, fact-checking, etc.;

• Collaborations with journalism schools, design colleges, and tech companies can provide continuous upskilling opportunities for current staff.

6.4.2 Organizational Culture and Performance Metrics

Introducing performance-based appraisals, innovation targets, and internal competitions can build a culture of excellence. PrasarBharati should foster an environment that encourages experimentation without fear of bureaucratic retribution or editorial censorship. The adoption of independent editorial charters at the unit level, along with regular audits of content diversity and quality, can help ensure both accountability and dynamism

6.5 Public Engagement and Outreach

6.5.1 Participatory Content and Feedback Loops

Public broadcasting should not be a one-way communication channel. Mechanisms for participatory content creation can include:

• Open calls for documentaries, stories, and public interest ideas, especially from rural, tribal, and underrepresented communities;

• Citizens' editorial boards or "Public Panels" to offer feedback on programming and suggest areas of improvement;

• Interactive shows that encourage live audience participation, user-generated questions, and community storytelling.

6.5.2 Strategic Partnerships

PrasarBharati must position itself as a hub for public knowledge and democratic discourse. This can be achieved by partnering with:

• Civil society organizations to co-produce content on governance, health, and social justice;

• Universities and think tanks for educational programming;

• International public broadcasters for co-productions, training, and content sharing.

Such partnerships can enrich content, improve global visibility, and foster a stronger ecosystem of public-interest media.

6.6 Institutional Reforms and Governance Overhaul

6.6.1 Redefining the Role of the PrasarBharati Board

The composition and functioning of the PrasarBharati Board must be restructured to enhance its independence and expertise. Reforms should include:

• A broad-based appointment mechanism involving Parliament, the judiciary, civil society, and media professionals;

• Fixed tenures and clearly defined roles to insulate members from undue political or bureaucratic influence;

• Mandatory representation from journalists, educators, technologists, and regional language media experts.

Transparency in Board proceedings, such as publicly available minutes and annual performance reports should be mandatory to ensure public scrutiny.

6.6.2 Decentralized Editorial Units

PrasarBharati should move towards a federal model of broadcasting, where regional stations enjoy greater editorial freedom and budgetary autonomy. This allows content to be more reflective of local cultures, languages, and concerns, reducing the over-centralization that currently hampers diversity. Regional units can function with editorial charters, community advisory panels, and performance-linked funding to ensure both accountability and creativity.

6.7 A Reform Roadmap: Phased and Accountable Change

The transformation of India's public broadcasting system must be pursued through a phased and measurable reform plan.

Suggested steps include:

• Phase I (Short-Term, 1–2 years)

* Amend the PrasarBharati Act to grant greater autonomy and define editorial independence;

* Establish an Independent Funding Commission and Public Broadcasting Fund;

* Launch a nationwide audience research initiative to guide content strategy.

• Phase II (Medium-Term, 2–5 years)

* Digitize all PrasarBharati archives and launch a unified digital platform;

* Revamp HR policies to enable modern hiring and incentivize talent retention;

* Decentralize regional units and introduce participatory programming models.

• Phase III (Long-Term, 5–10 years)

* Transition PrasarBharati to a public trust model, overseen by a parliamentary standing committee rather than a line ministry;

* Foster a self-sustaining, hybrid revenue model with public grants, ethical advertising, and content licensing;

* Position India's public broadcaster as a regional leader in South Asian media cooperation, producing multilingual and cross-border programming.

Each phase should be accompanied by a Public Monitoring Dashboard—a digital tool to track reform progress, funding allocations, audience metrics, and stakeholder feedback in real time. Publicly accessible progress tracking would ensure transparency and boost public involvement.

7. Conclusion

Public broadcasting in India, with its wide reach and historical significance, faces an existential crisis in today's dynamic media landscape. Institutions like Doordarshan and All India Radio, once central to informing and uniting the nation, are now struggling with political interference, financial dependency, outdated technology, and declining credibility. Despite

these challenges, the role of public broadcasting remains vital to India's democratic fabric. Reforms focused on editorial independence, sustainable funding, technological modernization, and professional governance are essential. Crucially, public broadcasting must be reimagined as a public good—independent of government control and reflective of India's diverse voices. A revitalized PrasarBharati should engage communities, uphold journalistic integrity, and embrace digital innovation. With political will, civil society participation, and public investment, India can transform its public broadcasters into credible, inclusive, and future-ready institutions—setting a global benchmark for democratic media in the 21st century.

Research Scholar,
Dr RML Avadh University,
Ayodhya

References:

1. Rajagopal, A. (2001). Politics after Television: Religious Nationalism and the Reshaping of the Indian Public. Cambridge University Press. (Rajagopal, 2001)
2. Jeffrey, R. (2010). India's Newspaper Revolution: Capitalism, Politics and the Indian-Language Press. Oxford University Press. (Jeffrey, 2010)
3. TRAI (Telecom Regulatory Authority of India). (2018). Recommendations on Issues Related to Broadcasting. https://trai.gov.in (TRAI, 2018)
4. UNESCO. (2008). Media Development Indicators: A Framework for Assessing Media Development. UNESCO. (UNESCO, 2008)
5. BBC. (2023). BBC Charter and Agreement. https://www.bbc.com/aboutthebbc/governance/charter (BBC, 2023)
6. Editors Guild of India. (2020). Statement on Press Freedom and Public Broadcasting. https://editorsguild.in (Editors Guild of India, 2020)
7. Standing Committee on Information Technology. (2020). Report on PrasarBharati and its Performance. LokSabha Secretariat. (Standing Committee on IT, 2020)
8. Public Media Alliance. (2021). Funding and Independence in Public Broadcasting: Global Trends.

समाज और स्त्री अस्मिता का प्रश्न

अमन कुमार

भूमिका :

समाज में कई अलग-अलग वर्ग हैं जिसमें स्त्री एक ऐसा संवर्ग है जिसे आधी आबादी की संज्ञा दी जाती है। लेकिन, क्या इस संवर्ग के अधिकार भी समान हैं? समाज और स्त्री अस्मिता के दृष्टिकोण से यह सवाल उत्तर- आधुनिकता के दौर में भी बरकरार है। भारतीय संदर्भ में स्त्री का जो इतिहास रहा वह किसी से छिपा नहीं है। बीती कई सदियों से स्त्री-अस्मिता पर गहराते रहे संकट बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में तत्कालीन समाज का एक अभिन्न संघर्ष (स्त्री-विमर्श) बनकर उभरे हैं। सामाजिक संदर्भ में स्त्री अस्मिता का प्रश्न-पितृसत्ता, परिवार, विवाह-संस्था और यौन-शुचिता कढ़ियों में ही देखा जा सकता है। स्त्री-मुक्ति, उसके अधिकार एवं अस्मिता से लेकर उसकी इच्छाएँ- आकांक्षाएँ से जुड़े प्रश्नों के प्रस्तुत शोध आलेख में सामने लाने का प्रयास किया गया है। साथ ही, वह कौन से पहलु हैं जो 'स्त्री अस्मिता' को नेपथ्य में ढकेलते रहते हैं। उक्त तमाम पहलुओं को समझने के बाद स्त्री-अस्मिता से जुड़े सारे प्रश्नों को काफी हद तक सुलझाया जा सकता है।

बीज शब्द :

स्त्री-अस्मिता, स्त्री-मुक्ति, पितृसत्ता, परिवार, विवाह, यौन-शुचिता।

व्याख्या :

मानव अस्तित्व को मुख्यत: तीन युगों में देखा गया है, जिसमें जंगल युग, बर्बर युग और सभ्यता का युग शामिल है। इसका बात का पता फ्रेडरिक एंगेल्स की पुस्तक 'परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति में भी चलता है। ऐतिहासिक मान्यता बताती है कि प्रारंभ में मातृसत्ता थी जो आगे चलकर धीरे-धीरे पितृसत्ता में परिवर्तित हो गई, लेकिन इस धारणा के पक्ष में कोई प्रमाण नहीं मिला है। जब सत्ता माताओं के हाथों में थी तब यौन-संबंधों पर कोई नियत्रंण नहीं था और प्रत्येक स्त्री का प्रत्येक पुरुष के साथ संबंध हो सकता था, लेकिन पितृसत्ता आते ही यह स्वरूप भी बदला चला गया। उन्होंने स्त्री यौनिकता पर नियत्रंण करना आरंभ कर दिया और स्त्री की स्वतंत्रता पर अब धीरे-धीरे उस पर बंधन लगने शुरू हो गए थे, जिसने उनकी स्थिति को समाज में पुरुषों के मुकाबले निम्न कर दिया।

स्त्री-मुक्ति आखिर क्या है? इसके उत्तर में मात्र यही कहा जा सकता है कि यह सवाल उस आधी आबादी की अस्मिता का है जिस पर पुरुषवादी सोच हमेशा ही प्रश्नचिह्न लगाती आई है। अर्थात् ''सीधे-सरल शब्दों में स्त्री-प्रश्न को परिभाषित करना हो तो कहा जा सकता है कि परिवार, मातृत्व और शिशु पालन सहित समस्त सामाजिक गतिविधियों एवं संस्थाओं में स्त्रियों की भूमिका, अन्य सामाजिक, आर्थिक शोषण उत्पीड़न के साथ ही यौन-उत्पीड़न की विशिष्टता और स्त्री-मुक्ति से जुड़ी सभी समस्याओं का जटिल समुच्चय है- स्त्री-मुक्ति।''[1]

मध्ययुग में धीरे-धीरे उत्पादन के विकास के साथ-साथ नई आर्थिक व्यवस्थाओं का उद्‌भव हुआ और समाज में स्त्री की भूमिका निम्न से निम्नतर होती चली गई। यह युग कृषि के आरंभ और पनपने का युग था, जिसमें समाज में सामंती व्यवस्था का बोलबाला था। इस युग में स्त्री की भूमिका 'भोग्या' से अधिक कुछ नहीं रह गई थी। इस काल में स्त्री परिवार के संरक्षण में रहती थी या तो मठों में धर्म के संरक्षण में। यह वह समय था जब पितृसत्ता पूर्ण रूप से स्थापित हो चुकी थी। इस काल में भारत में राष्ट्र की अवधारणा नहीं थी,

क्योंकि भारत विभिन्न राज्यों का समूह था। इन राज्यों के बीच टकराहट ने सार्वभौम भारत का ढाँचा कभी विकसित होने नहीं दिया। मुसलमानों के भारत आगमन के साथ भारतीय राजनीति में एक बड़ा परिवर्तन आया और वे सत्ता के केंद्र में आ गए। धीरे-धीरे हिंदू और मुस्लिम संस्कृति घुल-मिल गई, जिसका परिणाम यह हुआ कि हिंदू स्त्रियों के साथ-साथ मुस्लिम स्त्रियों का संकट भी मध्ययुगीन चेतना का प्रतिबिंबित करता है।

समाज और पवित्रता के नाम पर स्त्रियों को अपने अधिकार में रखने के लिए उनके दमन और शोषण के लिए कुरीतियों का बोलबाला बढ़ता गया। समाज में पर्दा पड़ा रहे इसके लिए स्त्रियों को पर्दे में रखा गया, समाज पवित्र रहे इसके लिए सतीत्व की प्रथा चली। देखा जाए तो स्त्रियों की इस दीन दशा के प्रमाण उस आर्थिक विकास के अंतर्गत हैं जहाँ राज्य की उत्पत्ति के लिए स्त्री और संपत्ति के संरक्षण पर बल दिया जाता है।

आधुनिक युग में अंग्रेजों के भारत आने पर भारतीय सामाजिक संरचना में अनेक परिवर्तन हुए। जेम्स मिल समाज की उन्नति और उसके सभ्य होने को लेकर कहते हैं कि कोई समाज कितना सभ्य है इसका पता उस समाज में स्त्रियों की दशा देखकर चलता है। इसी बात को यदि आधार रूप में देखा जाए तो इस युग में समाज-सुधारकों के लिए स्त्रियों की मुक्ति राष्ट्रीय पुनर्सृजन की पूर्व शर्त ही नहीं बल्कि स्वयं को सभ्य समाज के रूप में प्रस्तुत करने की थी। इस तरह स्त्री के अधिकारों की लड़ाई स्वतंत्रता आंदोलन के साथ जुड़ गई और राजनीतिक क्षेत्र में स्त्रियों ने एक दमदार भूमिका निभाई। राधा कुमार लिखते हैं, ''नारी शक्ति की अवधारणा के अनुसार राष्ट्रमाता के रूप में, रक्षा करने वाली उग्र रूपधारिणी महाकाली के रूप में तथा गाँधीवादी विचारधारा के अनुसार स्त्री को कष्ट सहने वाली सहनशील माँ के रूप में देखा गया।''[2] अंतत: भारत को आजादी मिली, जिसके उपरांत भारतीय संविधान में स्त्रियों को समान नागरिक अधिकार मिल गए।

भारतीय समाज में स्त्री की जो उत्पीड़न की स्थिति है वहीं बाहरी परिवेश में यही समाज पूंजीवाद का मुखौटा पहनकर उसे निकृष्टतम गुलामी में बदल देता है। अर्थात् ''पितृसत्ता केवल वैचारिक, मानसिक या सांस्कृतिक स्तर की अथवा सुपर स्ट्रक्चर की चीज नहीं बल्कि समाज के आधार से संबंधित चीज है, जिसका उत्पादन के साधनों, उत्पादन के संबंधों और उत्पादन के तरीकों से बड़ा भौतिक संबंध है।''[3]

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 द्वारा, 'राज्य द्वारा धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म-स्थान के आधार पर कोई भेदभाव करने की मनाही है।' किन्तु स्त्री-अस्मिता का प्रश्न ज्यों का त्यों बना रहा। इससे स्त्रियों का मोहभंग हुआ। उन्होंने पाया कि देश की मुक्ति के बाद स्त्री-मुक्ति का प्रश्न उपेक्षित होने लगा। तब नारी आंदोलनों ने स्त्री-जागृति के लिए विविध क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका निभाई। इस प्रकार शोषण और दमन के एक लंबे इतिहास के बाद समकालीन युग में स्त्री ने समाज में अपनी एक जगह अवश्य बनाई है किन्तु उसकी ये छवि कितनी वास्तविक है और कितनी भ्रामक इसका निर्णय कर पाना अभी भी अवलंबित है, क्योंकि आज जहाँ हम पाते हैं कि स्त्रियाँ स्वतंत्र हुई हैं वहीं बाजारवादी शक्तियों ने उन्हें घर से बाहर निकालकर एक वस्तु रूप में परिणत कर दिया है।

पारिवारिक संबंधों को देखें तो विवाह व्यवस्था में स्त्री की हीनतर दशा की द्योतक है जहाँ वह किसी की संपत्ति के रूप में ही वैध है और उससे बाहर हर संबंध अवैध है। विवाह के द्वारा स्त्री को एक गुलाम के रूप में परिणत किया जाता है जो जीवनभर पति की सेवा करती है। अर्थात् ''व्यवहारिक सच्चाई यह है कि पत्नी अभी भी अपने पति की बंधुआ-सेविका ही है और उसमें तथा किसी गुलाम में कोई बुनियादी अंतर नहीं है।''[4]

आज भी जब हम सामाजिक संदर्भों में हम जब स्त्री को देखते हैं तो हमारे सामने कुछ सवाल दौड़ जाते हैं- पितृसत्ता, परिवार, विवाह-संस्था और यौन-शुचिता। सिमोन द बाउर कहती हैं कि 'स्त्री पैदा नहीं होती, स्त्री बना दी जाती है।' देखा जाए तो ''प्रकृति ने केवल नर और मादा बनाए हैं। इसके आगे नारीत्व और पौरुष के नाम से स्त्री और पुरुष स्वभावों की रचना इतिहास के दौरान संस्कृति और समाज ने की है। लिंग (सेक्स) प्राकृतिक हैं, लैंगिकता (जेंडर) ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक।''[5] समाज में स्त्री के इस दोयम दर्जे के निर्धारण में जिसने सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है वह है पितृसत्ता। हिंदी लेखिका प्रभा खेतान भी स्त्री की अधीनता का मूल कारण इसी पितृसत्तात्मक व्यवस्था को मानती हैं। पितृसत्ता एक ऐसी व्यवस्था है जो पुरुष को स्त्री से श्रेष्ठ सिद्ध कर उसे पुरुष के अधीन रहने के लिए विवश करती है। इसके पीछे पुरुष वर्चस्ववादी सोच काम करती है।

भारतीय समाज में स्त्री किसी भी जाति से हो उसकी अस्मिता और मुक्ति का सवाल बना ही रहता है। आदिवासी समाज में भी यह देखने को मिलता है तथा इसकी पृष्ठभूमि औपनिवेशिक शासन से जुड़ी है जहाँ अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति को अपना आधार बनाया। अंग्रेजों ने आदिवासियों को अपने शोषण का शिकार बनाया तथा इसके कई कारण थे-''आदिवासी इलाके वन और खनिज संपदा की खान थे। इन संपदाओं का दोहन साम्राज्यवादी व्यवस्था के लिए आवश्यक था। दूसरा, आदिवासी क्षेत्रों में जनसंख्या का घनत्व कम था। यहाँ पर बाहरी लोगों को बसाकर कृषि को परती जमीन में प्रोत्साहन देकर मनमाना लगान वसूल किया जा सकता था। तीसरा, इन क्षेत्रों में व्यावसायिक फसलें उगाई जा सकती थीं। चौथा, वन तथा खनिज संपदा के दोहन के मंतव्य से। पर इस सबका सबसे ज्यादा असर भी स्त्री पर ही पड़ा।''[6]

भारतीय संस्कृति में पितृसत्तात्मक विचारों का वर्चस्व है जिसके कारण घर, परिवार, समाज, राजनीति, कार्य-क्षेत्र सभी स्थानों पर स्त्री 'अन्या' की भूमिका निभाती है और पुरुष 'कर्ता' की। इसलिए पितृसत्तात्मक व्यवस्था को रचने वाला धर्म, दर्शन व इतिहास भी पुरुष द्वारा रचित है इसी वजह है वह जानबूझकर स्त्रियों को अपदस्थ करता है।

परिवार में स्त्री के रिश्ते को- माँ, बहन, बेटी और पत्नी के रूप में व्याख्यायित किया जाता है। स्त्री के लिए पारिवारिक संबंधों का यह जाल उसकी पहचान, उसकी अस्मिता से विलग कर उसे संबंध के रूप में परिभाषित करता है। इसलिए स्त्री का वास्तविक संघर्ष परिवार के विरुद्ध है क्योंकि स्त्री-पुरुष का संबंध सर्वप्रथम परिवार के स्तर पर ही निर्मित होता है। परिवार से समाज की रचना होती है और समाज से राज्य की। सामंती दौर से जिस प्रकार दास-प्रथा का बोलबाला था, उन्हीं सामंती अवशेषों को आज हम परिवार में घटित होते हुए स्त्री के दासत्व के रूप में पाते हैं। आज उत्तर-आधुनिक समाज में परिवार के भीतर 'वाइफ स्वॉपिंग' के नाम पर जो व्यभिचार चल रहा है उससे परिवार में स्त्रियों की स्थिति का अंदाजा लगाना कोई मुश्किल काम नहीं है। इस स्थिति में स्त्री को परिवार के आदर्श और नैतिक नियमों में जकड़ना उसे रूढ़ियों में बाँधने का एक पुनर्प्रयास ही कहा जाएगा।

वास्तविकता यह है कि परिवार न ही स्त्री-पुरुष के जैविक संबंधों के आधार पर बनी संस्था है और न ही वह कोई ऐसी संस्था है जो प्राकृतिक, शाश्वत और कभी न बदलने वाली संरचना है। वह तो उस समाज की या कहें उस पितृसत्तात्मक समाज की संरचना है जो स्त्री को अपने अधीन रखना चाहता है।

विवाह जो स्त्री और पुरुष को एक संबंध में बाँधने का कार्य करती है अगर इस संस्था की पड़ताल की जाए तो विवाह एक ऐसी संस्था है जिसकी स्थापना संपत्ति और उत्पादन तथा पुनरुत्पादन पर पुरुषों का कब्जा जमाने और बनाए रखने के लिए की गई है। क्योंकि स्त्री की जैविक संरचना उसे 'मातृत्व' का गौरव प्रदान करती है किन्तु विवाह द्वारा स्त्री की कोख को सीमित किया जाता है। इस रूप में उसकी कोख जो उत्पादन या पुनरुत्पादन में सहायक है उसे उत्तराधिकार के कानून द्वारा पुरुषों की संपत्ति घोषित कर दिया जाता है। इस संदर्भ में एंगेल्स लिखते हैं, ''इतिहास में पहला वर्ग-विरोध एक विवाह प्रथा के अंतर्गत पुरुष और स्त्री के विरोध के साथ-साथ और इतिहास का पहला वर्ग-उत्पीड़न पुरुष द्वारा स्त्री के उत्पीड़न के साथ-साथ प्रकट होता है।''[7] अर्थात् विवाह द्वारा स्त्री को एक गुलाम के रूप में परिणत किया जाता है जो जीवनभर पति की सेवा करती है। आज इन सबके बरक्स एक और सच्चाई उभरकर सामने आ रही है। वर्तमान समय इस तरह उपभोक्तावादी और कामुक समाज बन रहा है उसने विवाह की इस एकनिष्ठ (मोनोगेमी) परंपरा का खंडन किया है। साथ ही, सूचना-प्रौद्योगिकी के विकास और मीडिया के प्रसार ने विवाहेत्तर संबंधों और विवाह-पूर्व संबंधों में इजाफा किया है। आज जिस धारा 377 को भारत में मान्यता दी गई है उसने समलैंगिक संबंधों को वैध बनाकर विवाह-संस्था पर गहरा प्रहार किया है।

स्त्रियों के संदर्भ में एक और बात यह सामने आती है कि विवाह-संस्था का एक अन्य आयाम यह भी है कि जहाँ वैध रूप से स्त्रियों को बेचा जाता है और साथ ही दहेज के रूप में वर-पक्ष को धन भी दिया जाता है। वास्तव में देखा जाए तो विवाह भी एक व्यापार है। एक माल हमने खरीदा, इसमें मुनाफा नहीं हुआ, चलो इसे खत्म करो, दूसरा माल लाओ, उसमें मुनाफा कमाएँगे। यह व्यापारी जो उद्योगपति नहीं है, जो अनुत्पादक पूँजीपति है, यह बिल्कुल सामंती ढंग से बल्कि और भी बर्बर ढंग से ऐसा व्यवहार करता है। इसी को विवाह-व्यापार कहा जा सकता है कि व्यापार में पूँजी लगाने के लिए वह दहेज माँगता है और उसके लिए सबसे प्रचलित

मुहावरा यह है कि 'हमारी कोई माँग नहीं है आप जो भी अपनी बेटी को दें वो दे सकते हैं। यहाँ अप्रत्यक्ष माँग काम कर रही है। इस रूप में देखा जाए तो विवाह एक व्यापार है जिसमें स्त्री संपत्ति अर्जित करने का एक साधन भर है और स्त्रियों की इस खरीद-फरोख्त ने निश्चित तौर पर स्त्री की स्थिति को कमजोर किया है।

पितृसत्तावादी समाज ने जिस वस्तु को सबसे अधिक नियंत्रित किया है वह है 'स्त्री की प्रजनन क्षमता' और इस प्रकार स्त्री की यौन-शुचिता को महत्त्वपूर्ण माना गया। सत्ता और यौनिकता के इस संबंध को हिंदी लेखिका प्रभा खेतान 'पितृसत्तात्मक कन्स्ट्रक्ट' कहती है। वह स्त्री सत्ता और यौनिकता का यह संबंध महज पितृसत्तात्मक कन्स्ट्रक्ट नहीं है न ही सांस्कृतिक घटना के रूप में देखने मात्र से इसका इतिहास स्पष्ट हो जाता है वरन् इसका मूल आधार वे आर्थिक-सामाजिक कारण को मानती है। उनका मानना है कि स्त्री को निजी पुरुषों की निजी संपत्ति के रूप में परिवर्तित कर दिया है। स्त्री में प्रजनन क्षमता है इसलिए वह भी उत्पादन में अपना सहयोग प्रदान करती है जिससे पुरुष समाज उसकी यौनिकता पर नियंत्रण करना जरूरी समझता है। देखा जाए तो यही कारण है कि उत्तर-आधुनिकता के दौर में नारीवादी-चिंतकों का एक बड़ा हिस्सा यौन-क्रांति को स्वर दे रहा है। इस यौन क्रांति ने समाज के जिन दो बड़े स्तंभों को हिलाया है, वे हैं-धर्म और विवाह। आज विवाह से पूर्व और विवाह के बावजूद विवाहेत्तर यौन-संबंधों, स्वश्वपिंग, समूह-सेक्स, मौखिक रति-क्रीड़ा, समलैंगिक संबंधों आदि को नैतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक रूप से स्वस्थ घोषित किया जा रहा है। यह इस बात का प्रमाण है कि आज यौन-स्वतंत्रता अपने चरम पर है। कैमिली पेगलिया अपनी पुस्तक सेक्सुअल परोसना (1990) में कला-इतिहास तथा साहित्य का क्लासिकी काल से उन्नीसवीं सदी तक का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकालती हैं कि स्त्री की सबसे बड़ी शक्ति उसकी यौन-क्षमता है। इस प्रकार वह स्त्री के 'दमित' होने को एक प्रकार से अस्वीकार करती हैं। वास्तव में पुरुष अशक्त सेक्स है। यौन-संबंधों में स्त्री की निष्क्रियता कोई जैविक तथ्य नहीं वरन् समाज द्वारा आरोपित है जहाँ उससे यौन-शुचिता की माँग की जाती है।

निष्कर्ष : कहा जा सकता है कि स्त्री की सामाजिक निर्मिति में उसके प्राकृतिक रूप का किस प्रकार से समाजीकरण किया जाता है और समाजीकरण की इस प्रक्रिया में पितृसत्ता, परिवार और घविवाह-संस्था ने जो भूमिका निभाई है उसका सिलसिलेवार ब्यौरा यहाँ प्रस्तुत किया गया है किन्तु इसके साथ ही यह कहना भी आवश्यक जान पड़ता है कि स्त्री की यह सामाजिक छवि कोई सार्वमौलिक या अपरिवर्तनीय परिघटना नहीं है बल्कि समाज द्वारा प्रदत्त इस रूढ़ छवि को उसके सामाजिक और आर्थिक रूप में समझकर ही इससे मुक्ति पाने की दिशा में कारगर कदम उठाया जा सकता है।

पीएच-डी (हिंदी), हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
ईमेल : 23aman11@gmail.com

सन्दर्भ सूची

1. उन्नीसवीं शताब्दी में स्त्री-प्रश्न और जॉन स्टुअर्ट मिल, स्त्रियों की पराधीनता : संपादकीय प्रस्तावना, पृ. 10
2. स्त्री-संघर्ष का इतिहास (1800-1900) : राधा कुमार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2005, पृ.-13
3. आज का स्त्री आंदोलन : रमेश उपाध्याय और संज्ञा उपाध्याय, शब्द प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2004, पृ. 19
4. स्त्रियों की पराधीनता : जॉन स्टुअर्ट मिल (अनुवाद-युगांकधीर), संवाद प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2008, पृ. 41
5. अस्मिता-विमर्श का स्त्री-स्वर : अर्चना वर्मा, मेधा बुक्स, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण-2008, पृ. 49
6. भारत में स्त्री असमानता : एक विमर्श गोपा जोशी, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, संस्करण-2015, 139
7. परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति : फ्रेडरिक एंगेल्स, राहुल फाउंडेशन, लखनऊ, संस्करण-1999, पृ-29
8. उपनिवेश में स्त्री : प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण-2004, पृ. 55

जनजातीय साहित्य में पर्यावरण चेतना का दार्शनिक दृष्टिकोण

डॉ. प्रमिला★ डॉ. सुमित कुमार मीना★★

भूमिका

भारतीय जनजातीय साहित्य, आदिवासी समाजों की सांस्कृतिक, धार्मिक तथा पारंपरिक जीवन-शैली का सशक्त प्रतिबिंब है। यह साहित्य न केवल उनके जीवन के विविध आयामों को उद्घाटित करता है, अपितु प्रकृति के प्रति उनके गहन भावात्मक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक जुड़ाव को भी स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है। आदिवासी समुदायों के साहित्य में प्रकृति का चित्रण मात्र एक पर्यावरणीय संदर्भ में सीमित नहीं होता, बल्कि वह उनके अस्तित्व का अभिन्न अंग बनकर प्रकट होता है।

प्रकृति उनके लिए पूज्य, संरक्षिता तथा सहचर के रूप में विद्यमान रहती है, जिसे वे जीवन का आधार ही नहीं, अपितु आत्मिक ऊर्जा का स्रोत मानते हैं। उनकी कथा, गीत, गाथा, मिथक एवं लोक परंपराएँ पर्यावरण के साथ सह-अस्तित्व की भावना का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य जनजातीय साहित्य में विद्यमान पर्यावरण चेतना के दार्शनिक पक्षों का विश्लेषण करना है। यह अध्ययन आदिवासी दृष्टिकोण में प्रकृति के प्रति आस्था, संरक्षण की अवधारणाओं तथा उनके जीवन-दर्शन में निहित पर्यावरणीय मूल्यों को केंद्र में रखकर किया गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार आदिवासी साहित्य पर्यावरणीय संतुलन तथा जैविक विविधता के संरक्षण हेतु एक वैकल्पिक एवं सशक्त विचार-दृष्टि प्रस्तुत करता है।

1. जनजातीय साहित्य में पर्यावरण चेतना : एक परिचय

भारतीय जनजातीय समाजों में भाषाई तथा सांस्कृतिक विविधताओं के बावजूद प्रकृति के प्रति गहन आस्था, सम्मान एवं सह-अस्तित्व की भावना सर्वत्र समान रूप से विद्यमान है। जनजातीय साहित्य—चाहे वह गद्य हो अथवा पद्य, लोकगीत हो या मिथकीय आख्यान—सभी में पर्यावरणीय चेतना और प्राकृतिक संरक्षण की स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। यह साहित्य केवल कलात्मक या सांस्कृतिक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि प्रकृति के साथ आत्मीय संबंधों का दार्शनिक दस्तावेज भी है।

जनजातीय जीवन-दृष्टि में प्रकृति को देवतुल्य स्थान प्राप्त है। उनके साहित्य में नदियाँ, पर्वत, वन, पशु-पक्षी और अन्य प्राकृतिक तत्व केवल भौतिक उपादान नहीं, बल्कि जीवंत, चेतन और पूज्य सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। आदिवासी साहित्य इस भावबोध को निरंतर रेखांकित करता है कि प्रकृति में प्रत्येक घटक—चाहे वह जल हो, वृक्ष हो या जीव का अपना एक विशिष्ट स्थान और उद्देश्य है, और इनके विघटन से संपूर्ण पर्यावरणीय संतुलन प्रभावित होता है।

जनजातीय साहित्य की एक विशेषता यह भी है कि इसमें प्रकृति का चित्रण केवल बाह्य जगत के रूप में नहीं होता, बल्कि वह आध्यात्मिक एवं धार्मिक चेतना से समन्वित होकर प्रस्तुत होती है। लोककथाओं, गीतों और अनुष्ठानों में वृक्षों की पूजा, नदियों की आराधना, पर्वतों के प्रति श्रद्धा तथा पशु-पक्षियों के साथ सह-अस्तित्व की भावना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। उदाहरणतः संताल, गोंड, भील, मिजो, नागा आदि जनजातियों की परंपराओं में प्रकृति के प्रति यह भाव विशेष रूप से उभरकर सामने आता है।

इस साहित्य में प्रकृति को एक जीवंत, सजीव एवं संवेदनशील सत्ता के रूप में देखा गया है, जहाँ समस्त जीव-जंतु एवं वनस्पतियाँ मानव के सहयात्री हैं। आदिवासी दर्शन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि जब तक मनुष्य प्रकृति के साथ सामंजस्य और संवेदनशीलता के साथ जीवन व्यतीत

करता है, तब तक उसका अस्तित्व सुरक्षित है। जनजातीय साहित्य में प्रकृति के प्रति कृतज्ञता, समर्पण और संरक्षण का भाव न केवल नैतिक कर्तव्य के रूप में, बल्कि आध्यात्मिक अनिवार्यता के रूप में भी प्रस्तुत होता है।

इस प्रकार, जनजातीय साहित्य में पर्यावरण चेतना का परिचय एक ऐसी जीवन-दृष्टि प्रस्तुत करता है, जिसमें प्रकृति मात्र संसाधन न होकर संरक्षक, सहचर और आध्यात्मिक पथप्रदर्शक के रूप में प्रतिष्ठित होती है। यह साहित्य आधुनिक पर्यावरणीय विमर्श को पारंपरिक आदिवासी जीवन-मूल्यों से जोड़ता है तथा मानवता को एक संतुलित, टिकाऊ और पर्यावरण-सम्मत जीवन पद्धति अपनाने की प्रेरणा देता है।

2. प्रकृति और आदिवासी दृष्टिकोण का दार्शनिक आधार

आदिवासी समाजों का दृष्टिकोण प्रकृति को एक जीवंत, चेतनाशक्ति के रूप में मान्यता देने पर आधारित है। वे इसे न केवल एक भौतिक तत्व के रूप में, बल्कि एक आध्यात्मिक, धार्मिक और दार्शनिक सत्ता के रूप में भी मानते हैं। आदिवासी समाज का यह विशिष्ट दृष्टिकोण 'आनिमिजम' (Animism) पर आधारित है, जिसमें यह विश्वास किया जाता है कि प्रकृति के प्रत्येक घटक—पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, जल, वायु, पर्वत, आदि में एक आत्मा या जीवन शक्ति निवास करती है। आदिवासी जनजातियाँ इस आत्मीयता को महसूस करती हैं, और इसी कारण से उनका प्रकृति के साथ संबंध अत्यधिक गहरा और श्रद्धापूर्वक होता है।

इस दृष्टिकोण का दार्शनिक आधार आदिवासी समाजों के मौलिक जीवन-मूल्यों में निहित है। उनके अनुसार, प्रकृति का प्रत्येक भाग एक जीवित सत्ता है, जो न केवल मनुष्यों के लिए आवश्यक संसाधन प्रदान करता है, बल्कि जीवन के अस्तित्व के लिए अपरिहार्य भी है। इस विश्वास के कारण, आदिवासी समाजों में प्रकृति के संरक्षण को केवल एक नैतिक कर्तव्य नहीं, बल्कि जीवन का एक अभिन्न हिस्सा माना जाता है। प्रकृति के प्रति उनका दृष्टिकोण धार्मिकता, आध्यात्मिकता और जीवन के अनिवार्य अंग के रूप में देखा जाता है।

इस संदर्भ में आदिवासी समाजों के धार्मिक विश्वासों की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। उदाहरण स्वरूप, कई जनजातियाँ वृक्षों की पूजा करती हैं, जल स्रोतों को पवित्र मानती हैं और पर्वतों को देवताओं का निवास स्थल मानकर उनकी आराधना करती हैं। आदिवासी साहित्य और परंपराओं में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि नदियाँ केवल जल का स्रोत नहीं हैं, बल्कि जीवनदायिनी और पवित्र मानी जाती हैं। इसी प्रकार, पेड़ न केवल आक्सीजन देने वाले होते हैं, बल्कि उन्हें देवताओं के रूप में पूजा जाता है, जो जीवन के प्रवाह और संतुलन के प्रतीक होते हैं।

आदिवासी समाजों का यह दृष्टिकोण यह भी दर्शाता है कि प्रकृति के प्रत्येक घटक के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंध बनाना ही जीवन की सच्ची सार्थकता है। उनके अनुसार, प्रकृति में प्रत्येक तत्व का उद्देश्य है, और उसका कोई भी अतिशय या अनुचित दोहन संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र को संकट में डाल सकता है। इस दार्शनिक दृष्टिकोण में यह विश्वास भी निहित है कि प्रकृति के संसाधनों का उपयोग आवश्यकता और पुनः पूर्ति योग्य मात्राओं में किया जाना चाहिए, न कि उनके असीमित शोषण के रूप में।

इस प्रकार, आदिवासी समाजों का यह दृष्टिकोण हमारे लिए एक महत्वपूर्ण शिक्षा प्रदान करता है कि मानव का अस्तित्व प्रकृति के संतुलन और संरक्षण में निहित है। उनका यह विचार कि प्रकृति और मानव एक-दूसरे के पूरक हैं, यह दर्शाता है कि यदि एक का विनाश होता है, तो दूसरे का अस्तित्व भी संकट में पड़ जाता है। यह दार्शनिकता हमें यह समझाती है कि प्रकृति और मानव का संबंध पारस्परिक है और इसका उल्लंघन सम्पूर्ण जीवन के लिए हानिकारक हो सकता है।

इस दृष्टिकोण का महत्व आज के समाज में और भी अधिक बढ़ जाता है, जहाँ भौतिकवादी और उपभोक्तावादी संस्कृति ने प्रकृति के संसाधनों के असीमित शोषण की ओर अग्रसर किया है। आदिवासी दृष्टिकोण पर्यावरण संरक्षण, सह-अस्तित्व और सामंजस्यपूर्ण विकास की अवधारणा को प्रोत्साहित करता है, जो न केवल पारिस्थितिकी तंत्र की सुरक्षा करता है, बल्कि मानवता को एक सशक्त और आत्मनिर्भर जीवन जीने की दिशा में प्रेरित करता है।

3. जनजातीय साहित्य में प्रकृति के संरक्षण का संदेश

जनजातीय साहित्य में प्रकृति के संरक्षण का संदेश गहरी संवेदनशीलता और श्रद्धा के साथ प्रकट होता है। आदिवासी लोकगीत, मिथक, कथाएँ और काव्य-रचनाएँ प्राकृतिक तत्वों के साथ उनके आत्मीय संबंधों को स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं। उदाहरण स्वरूप, भील जनजाति की कथाओं में वृक्षों की पूजा की प्रथा का वर्णन मिलता है, जबकि संताल समुदाय में नदियों और पर्वतों की आराधना का गहरा धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व है। इन साहित्यिक रूपों में हर प्राकृतिक तत्व—चाहे वह जल, वायु, वनस्पति या जीव-जंतु हो के संरक्षण का महत्व और उनके प्रति कर्तव्यबोध की भावना निरंतर निहित है।

जनजातीय साहित्य में प्रकृति संरक्षण का यह संदेश केवल एक नैतिक कर्तव्य के रूप में प्रस्तुत नहीं होता, बल्कि यह आदिवासी समाजों की सांस्कृतिक पहचान और जीवनशैली का अभिन्न हिस्सा है। आदिवासी समुदाय प्रकृति के साथ अपने संबंधों को न केवल अस्तित्व से जोड़ते हैं, बल्कि इसे अपनी आध्यात्मिकता और दैनिक जीवन के अंग के रूप में भी स्वीकार करते हैं। इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति के प्रति सम्मान और संरक्षण के विचार जनजातीय साहित्य में जीवन और समाज के नैतिक मूल्यों का हिस्सा रहे हैं।

आधुनिक समाज में जनजातीय साहित्य से यह महत्वपूर्ण शिक्षा मिलती है कि प्रकृति का संरक्षण न केवल मानवता की नैतिक जिम्मेदारी है, बल्कि यह हमारी अस्तित्वगत आवश्यकता भी है। आदिवासी साहित्य हमें यह संदेश देता है कि यदि हम प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण और संतुलित संबंध बनाए रखें, तो प्रकृति भी हमें अपनी समृद्धि, सुरक्षा और संतुलन प्रदान करेगी। उनके साहित्य में यह विश्वास प्रकट होता है कि प्रकृति को अपना सहचर मानते हुए उसे संरक्षित करना ही मानवता का सर्वोत्तम कार्य है, जिससे भविष्य में संतुलित और टिकाऊ जीवन सुनिश्चित किया जा सकता है।

इस प्रकार, जनजातीय साहित्य में प्रकृति के संरक्षण का संदेश न केवल पर्यावरणीय दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करता है, बल्कि यह मानवता को एक स्थिर, आत्मनिर्भर और संतुलित जीवन जीने की प्रेरणा भी देता है। आज के भौतिकवादी और उपभोक्तावादी समाज के संदर्भ में यह संदेश और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है, जहाँ हम प्रकृति के संसाधनों के सीमित उपयोग और संरक्षण की आवश्यकता को समझने में विफल हो रहे हैं।

4. पर्यावरण संरक्षण की सांस्कृतिक परंपराएँ

जनजातीय समाजों में प्रकृति संरक्षण की सांस्कृतिक परंपराएँ सदियों पुरानी हैं, जो प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व और संतुलन बनाए रखने की गहरी इच्छा का प्रतीक हैं। इन परंपराओं में न केवल पर्यावरण के संरक्षण के उपाय समाहित हैं, बल्कि यह समाजों के धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण को भी प्रकट करती हैं। उदाहरण स्वरूप, गोंड जनजाति में वृक्षों को देवता के रूप में पूजा जाता है, और वृक्षारोपण को एक पवित्र कर्तव्य के रूप में माना जाता है। इसी तरह, नागा जनजाति में जल स्रोतों की रक्षा के लिए पानी के देवता की पूजा की जाती है। यह परंपराएँ जनजातीय समाजों की प्रकृति के प्रति गहरी आस्था और उसका संरक्षण करने की प्रतिबद्धता का जीवंत प्रमाण हैं।

आदिवासी समाजों की ये परंपराएँ केवल धार्मिक या सांस्कृतिक क्रियाएँ नहीं, बल्कि पर्यावरणीय चेतना और प्राकृतिक संतुलन की आवश्यकता की गहरी समझ को दर्शाती हैं। इन परंपराओं के माध्यम से जनजातीय समाज यह सिखाते हैं कि प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंध बनाए रखना न केवल हमारे अस्तित्व के लिए आवश्यक है, बल्कि यह समाज के समग्र कल्याण और टिकाऊ भविष्य के लिए भी अनिवार्य है। उनके द्वारा अपनाई गई विधियाँ और आदतें, जैसे वृक्षारोपण, जल संरक्षण, और प्राकृतिक संसाधनों का सीमित और विवेकपूर्ण उपयोग, पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने के साथ-साथ पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण में सहायक होती हैं।

यह पारंपरिक ज्ञान और व्यवहार आधुनिक समाज के लिए एक मूल्यवान मार्गदर्शक हो सकता है, जहाँ आजकल तेजी से बढ़ती शहरीकरण और उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक शोषण हो रहा है। जनजातीय समाजों की पर्यावरण संरक्षण की परंपराएँ हमें यह शिक्षा देती हैं कि हमें प्रकृति से केवल लाभ नहीं लेना चाहिए, बल्कि उसका संरक्षण भी हमारी जिम्मेदारी है।

इन परंपराओं को संरक्षित रखना न केवल जनजातीय समाजों के सांस्कृतिक धरोहर का हिस्सा है, बल्कि यह मानवता के लिए एक अमूल्य धरोहर भी है। जब हम इन परंपराओं का सम्मान और पालन करते हैं, तो हम न केवल अपनी संस्कृति को संरक्षित करते हैं, बल्कि भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक स्वस्थ और संतुलित पर्यावरण भी सुनिश्चित करते हैं। इस प्रकार, जनजातीय समाजों की पर्यावरण संरक्षण की परंपराएँ न केवल उनके जीवन का अनिवार्य हिस्सा हैं, बल्कि एक व्यापक वैश्विक संदर्भ में भी यह हमें प्रकृति के प्रति जागरूक और जिम्मेदार दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देती हैं।

5. आधुनिकता और पर्यावरण संकट

वर्तमान समय में, आधुनिकता और औद्योगिकीकरण के प्रभावों ने जनजातीय समाजों की पर्यावरणीय परंपराओं को गंभीर संकट में डाल दिया है। औद्योगिकीकरण के परिणामस्वरूप जंगलों की अन्धाधुंध कटाई, जल स्रोतों का अत्यधिक दोहन और खनिज संसाधनों का अनियंत्रित उपयोग, न केवल पर्यावरणीय संतुलन को प्रभावित कर रहे हैं, बल्कि जनजातीय समाजों के जीवन और उनके पारंपरिक अस्तित्व को भी खतरे में डाल रहे हैं। इन प्रभावों पर जनजातीय साहित्य में गहरी चिंता व्यक्त की गई है, जो प्रकृति और पर्यावरण के संरक्षण के प्रति उनके समर्पण और चेतना को दर्शाता है।

आधुनिकता और पर्यावरण संकट के बीच का संबंध यह स्पष्ट करता है कि जब तक हम तकनीकी विकास और आर्थिक प्रगति के नाम पर प्रकृति के संसाधनों का अनियंत्रित दोहन करते रहेंगे, तब तक इसका परिणाम विनाशकारी होगा। प्रकृति और पर्यावरण के प्रति यह अज्ञानता और संवेदनहीनता न केवल पारिस्थितिकी तंत्र को नष्ट करती है, बल्कि यह मानव समाज के अस्तित्व के लिए भी खतरे का कारण बन सकती है। इस संदर्भ में, यह महत्वपूर्ण है कि हम आधुनिकता और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन बनाए रखें।

इसके लिए, हमें न केवल उच्च तकनीकी उपायों को अपनाना चाहिए, बल्कि पारंपरिक ज्ञान, विशेष रूप से आदिवासी समाजों की पर्यावरणीय परंपराओं से भी प्रेरणा लेनी चाहिए। जनजातीय समाजों के पास ऐसे पारंपरिक तरीके और अनुभव हैं, जो पर्यावरण के साथ सामंजस्यपूर्ण और संतुलित जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। इस दृष्टिकोण से, यह समझा जा सकता है कि आधुनिकता का लाभ तभी है जब वह पर्यावरणीय नुकसान को न्यूनतम करते हुए संतुलित और सतत विकास को बढ़ावा दे।

इस प्रकार, हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आधुनिकता का विकास केवल आर्थिक प्रगति तक सीमित न रहे, बल्कि यह पर्यावरण संरक्षण और पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा के लिए समर्पित हो। आधुनिकता को पारंपरिक ज्ञान और दृष्टिकोणों के साथ जोड़कर हम एक संतुलित और टिकाऊ भविष्य की दिशा में कदम बढ़ा सकते हैं।

6. जनजातीय साहित्य में पर्यावरण चेतना का दार्शनिक मूल्य

जनजातीय साहित्य में पर्यावरण चेतना को केवल संरक्षण का विचार न मानकर जीवन के समग्र दर्शन का अभिन्न अंग माना गया है। आदिवासी समाजों की दार्शनिक सोच में प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। यह दृष्टिकोण न केवल भौतिक जीवन के लिए, अपितु आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी प्रकृति के संरक्षण को आवश्यक मानता है। जनजातीय साहित्य इसी विचारधारा का दर्पण है, जो पर्यावरण के साथ मानव के गहरे संबंध को दर्शाता है।

6.1 आनिमिजम (सजीववाद) और प्रकृति की आत्मीयता

जनजातीय समाजों में 'आनिमिजम' की अवधारणा प्रमुखता से विद्यमान है, जिसमें यह विश्वास किया जाता है कि प्रत्येक प्राकृतिक तत्व चाहे वह वृक्ष हो, नदी हो, पर्वत हो या पशु-पक्षी अपने में एक चेतन सत्ता को समाहित किए हुए है। जनजातीय साहित्य में यह विचार उभरकर सामने आता है कि प्रकृति का प्रत्येक घटक जीवित है, और उसका सम्मान करना न केवल नैतिक दायित्व है, बल्कि सह-अस्तित्व की आधारशिला भी है। यह दार्शनिक मूल्य पर्यावरण चेतना को गहराई प्रदान करता है।

6.2 पारिस्थितिकीय संतुलन का आदर्श

जनजातीय साहित्य में पारिस्थितिकीय संतुलन को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है। आदिवासी समाज यह मानता है कि प्रकृति का प्रत्येक घटक अन्य घटकों के साथ पारस्परिक संबंध में संतुलन बनाए रखता है। यदि इस संतुलन को भंग किया जाए, तो सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र पर संकट उत्पन्न हो सकता है। जनजातीय कथाओं, गीतों और मिथकों में जल, वायु, मृदा आदि के संरक्षण की अनिवार्यता इस संतुलन की अवधारणा को पुष्ट करती है।

6.3 सह-अस्तित्व और सह-अनुभूति का संदेश

जनजातीय दृष्टिकोण में सह-अस्तित्व और सह-अनुभूति का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह विश्वास किया जाता है कि समस्त जीव-जगत एक साझे जीवन की रचना करता है, जहाँ एक के अस्तित्व का सम्मान दूसरे के अस्तित्व की पुष्टि है। जनजातीय साहित्य यह सिखाता है कि प्रकृति के किसी भी घटक को क्षति पहुँचाना आत्म-विनाश के बराबर है। यह सोच पर्यावरण के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार की प्रेरणा देती है।

6.4 भविष्य की पीढ़ियों के प्रति उत्तरदायित्व

जनजातीय साहित्य में यह दार्शनिक विचार निहित है कि प्रकृति केवल वर्तमान पीढ़ी की संपत्ति नहीं, बल्कि भविष्य की पीढ़ियों की धरोहर भी है। अत: इसका संरक्षण एक अंतरपीढ़ीय उत्तरदायित्व है। जनजातीय कथाओं में यह चेतावनी दी जाती है कि यदि मनुष्य प्राकृतिक संसाधनों का असीमित दोहन करता है, तो भावी पीढ़ियों को इसका दुष्परिणाम भुगतना पड़ेगा।

6.5 प्राकृतिक संसाधनों का सीमित और संयमित उपयोग

जनजातीय समाजों का साहित्य संसाधनों के संयमित उपयोग की शिक्षा देता है। आदिवासी जीवनदर्शन यह मानता है कि आवश्यकता से अधिक प्रकृति से लेना उसका शोषण है, और यह शोषण अंतत: जीवन की स्थिरता को प्रभावित करता है। उनके गीतों, लोककथाओं और आख्यानों में बार-बार इस बात पर बल दिया गया है कि संसाधनों का उपयोग विवेकपूर्ण और आवश्यकता-आधारित होना चाहिए।

6.6 धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण

प्रकृति को धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से देखने की परंपरा जनजातीय साहित्य की एक विशिष्ट विशेषता है। वृक्ष,

नदियाँ, पर्वत आदि को देवतुल्य मानकर उनकी पूजा की जाती है। इस धार्मिक विश्वास से प्रकृति के प्रति गहन श्रद्धा और सम्मान का भाव उत्पन्न होता है, जो पर्यावरण संरक्षण को एक आध्यात्मिक अनुष्ठान का स्वरूप देता है।

6.7 मूल्य-आधारित जीवनशैली और आत्मनिर्भरता

जनजातीय साहित्य एक ऐसी जीवनशैली का चित्रण करता है जो सादगी, आत्मनिर्भरता और प्रकृति के साथ संतुलन पर आधारित है। यह दृष्टिकोण आधुनिक उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध एक वैकल्पिक जीवनदर्शन प्रस्तुत करता है, जिसमें संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, आवश्यकताओं की सीमितता, और प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व भाव निहित हैं।

जनजातीय साहित्य में पर्यावरण चेतना के दार्शनिक मूल्य एक समग्र जीवनदृष्टि को अभिव्यक्त करते हैं, जो न केवल मानव और प्रकृति के बीच संतुलन को स्थापित करने की दिशा में मार्गदर्शक हैं, बल्कि वर्तमान पर्यावरणीय संकट के समाधान हेतु एक वैकल्पिक और सशक्त विचारधारा भी प्रस्तुत करते हैं। यह साहित्य न केवल प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता विकसित करता है, बल्कि भविष्य के लिए एक सतत, संतुलित और पर्यावरण-अनुकूल जीवन की प्रेरणा देता है।

7. जनजातीय साहित्य के पर्यावरणीय दृष्टिकोण का समकालीन महत्व

वर्तमान समय में विश्व भर में व्याप्त जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता में ह्रास, पारिस्थितिक असंतुलन और प्राकृतिक संसाधनों की तीव्र होती कमी जैसी चुनौतियाँ गंभीर रूप से मानव सभ्यता के भविष्य को प्रभावित कर रही हैं। ऐसे संकटपूर्ण समय में जनजातीय साहित्य में निहित पर्यावरणीय दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक और उपयोगी सिद्ध होता है।

जनजातीय समाजों का प्रकृति के प्रति संबंध केवल आर्थिक या भौतिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक स्तर पर स्थापित है। उनका साहित्य इस गहरे जुड़ाव को प्रतिबिंबित करता है और यह सिखाता है कि प्रकृति को केवल एक संसाधन नहीं, बल्कि एक सजीव इकाई के रूप में देखा जाना चाहिए। उनके लोकगीत, मिथक, और कहानियाँ प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण, सीमित उपयोग और संतुलन की आवश्यकता पर बल देती हैं।

आज जब आधुनिकता के प्रभाव में प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन हो रहा है, जनजातीय साहित्य हमें पुनः यह स्मरण कराता है कि संवेदनशीलता, सह-अस्तित्व और पारिस्थितिक संतुलन जैसे मूल्य न केवल पारंपरिक ज्ञान के अंग हैं, बल्कि सतत् विकास के लिए अनिवार्य भी हैं। जनजातीय दृष्टिकोण इस विचार को पुष्ट करता है कि विकास तभी सार्थक है जब वह पर्यावरणीय न्याय और पारिस्थितिक स्थायित्व के साथ जुड़ा हो। अतः जनजातीय साहित्य में निहित पर्यावरणीय चेतना आज की वैश्विक पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान के लिए न केवल एक प्रेरणा है, बल्कि एक वैकल्पिक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करती है, जो वर्तमान नीति-निर्माण और शैक्षणिक विमर्श में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

जनजातीय साहित्य में निहित पर्यावरण चेतना का दार्शनिक दृष्टिकोण समकालीन मानवता को प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की दिशा में पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित करता है। यह दृष्टिकोण केवल पर्यावरण संरक्षण की एक नैतिक अपील नहीं है, बल्कि एक समग्र जीवन-दर्शन है, जो मानव और प्रकृति के बीच संतुलित, सहानुभूतिपूर्ण और टिकाऊ संबंध की स्थापना पर बल देता है।

इस शोध आलेख के माध्यम से यह स्पष्ट हुआ है कि जनजातीय समाजों का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण, जिसमें हर प्राकृतिक तत्व को सजीव और पूज्य माना गया है, आधुनिक पर्यावरणीय संकटों के लिए एक सशक्त वैकल्पिक विचारधारा प्रदान करता है। जनजातीय साहित्य में व्यक्त यह चेतना पर्यावरण संरक्षण को एक सांस्कृतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक उत्तरदायित्व के रूप में प्रस्तुत करती है, जो महज संसाधनों की रक्षा नहीं, बल्कि समूचे जीवन की रक्षा का संदेश देती है।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जनजातीय साहित्य न केवल प्रकृति के प्रति सम्मान और उत्तरदायित्व का बोध कराता है, बल्कि वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए एक टिकाऊ, सजीव और सह-अस्तित्वपूर्ण जीवन दृष्टिकोण का मार्ग भी प्रशस्त करता है। यह साहित्य आज की भौतिकवादी, उपभोक्तावादी और प्रकृति से पृथक होती संस्कृति के लिए एक चेतावनी भी है और एक समाधान भी।

★सह आचार्य, हिंदी विभाग
लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
अशोक विहार, दिल्ली
Email- pramila.lbc@gmail.com
★★सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
अशोक विहार, दिल्ली
Email- sumitmeena1990@gmail.com

सन्दर्भ सूची

1. सिंह, राजेश कुमार. भारतीय जनजातीय साहित्य में पर्यावरण संरक्षण के प्रतीक, संस्कृति अध्ययन (2017).
2. चौधरी, एम. आदिवासी समाज और उनकी धार्मिक धारणा, ट्राइबल लाइफ एंड कल्चर (2020).
3. पटनायक, एन. आर., एवं बैनर्जी, आर. भारतीय आदिवासी साहित्य का अध्ययन, ट्राइबल लिटरेचर पब्लिकेशन (2019).
4. मोहन, अशोक. भारतीय जनजातीय परंपराएँ और पर्यावरणीय चेतना, हेरिटेज रिव्यू (2021).
5. दास, एस. आधुनिकता और आदिवासी समाज पर पर्यावरणीय संकट, ट्राइबल स्टडीज जर्नल (2018).
6. शर्मा, पी. के. भारतीय जनजातीय समाज का दार्शनिक दृष्टिकोण, इंडिया एंथ्रोपोलॉजिकल जर्नल (2016).
7. रॉय, दीपक. जलवायु संकट और जनजातीय विचारधारा, ग्रीन प्लैनेट पब्लिकेशन (2022).

Research Paper

Richa

Effect of Yoga on Emotional Maturity

Abstract: This study explores the emotional maturity levels among individuals who practice yoga and those who do not. Emotional maturity plays a vital role in mental well-being and interpersonal relationships. The sample consisted of 100 participants, equally divided into two groups: 50 yoga practitioners and 50 non-practitioners. Emotional maturity was assessed using the Emotional Maturity Scale developed by Dr. Yashvir Singh and Dr. Mahesh Bhargava, based on a 5-point Likert scale. An independent samples t-test was conducted to determine if there was a significant difference between the two groups. The results indicated no statistically significant difference ($p = 0.703$) in emotional maturity scores. This suggests that yoga practice alone may not have a substantial effect on emotional maturity. However, it opens avenues for further research involving more diverse samples and additional psychological variables.

Keywords: Yoga, Emotional Maturity, Mindfulness, Self-regulation,Stress Reduction, Emotional Intelligence.

Introduction: In today's increasingly competitive and material-driven society, individuals are constantly striving for greater wealth and success. This relentless pursuit often leads to heightened stress, impacting not just physical and mental health but also emotional well-being. The imbalance created by these pressures affects the emotional aspects of a person's life, leading to emotional instability and stress. In such a scenario, yoga stands out as an effective practice to restore harmony, offering not only physical benefits but also promoting mental and emotional balance. Yoga serves as a pathway to inner peace, providing guidance on how to achieve balance and stability at the physical, mental, and emotional levels. Through various techniques such as meditation, breath control, and mindful movement, yoga helps individuals manage their emotions, fostering emotional maturity.

Emotional maturity refers to the ability to manage and understand one's emotions, respond constructively to challenges, and maintain healthy interpersonal relationships. It involves the capacity to remain calm and composed under stress, make thoughtful decisions, and express emotions in a balanced manner. Emotional maturity does not mean the absence of negative emotions, but rather the ability to recognize and regulate these emotions appropriately. An emotionally mature individual demonstrates self-awareness, empathy, and responsibility for their actions, which are crucial qualities for personal growth and resilience.

Yoga, with its ancient wisdom and holistic approach, plays a significant role in nurturing emotional maturity. The practice of yoga encourages individuals to become more self-aware, helping them to recognize their emotional triggers and gain better control over their responses. According to the teachings of great yogis like Maharishi Patanjali, yoga is not only about physical postures but also about cultivating mental concentration and emotional regulation.

The term 'yoga' is derived from the Sanskrit roots 'yujiryoge' (to unite) and 'yujsamadhau' (to concentrate), emphasizing the union of the mind, body, and spirit and the attainment of mental stillness and clarity. Maharishi Patanjali defines yoga as the cessation of the fluctuations of the mind, creating a calm and focused mental state, which is essential for emotional maturity. When the mind becomes still, free from distractions and emotional disturbances, a person can respond to life's challenges with equanimity and balance.

In the Bhagavad Gita, Lord Krishna highlights the importance of maintaining a state of equanimity, where one remains stable in the face of dualities such as joy and sorrow, success and failure. This state of emotional balance, or samatva, is at the core of emotional maturity, and yoga offers a practical approach to achieving it. Through consistent practice, yoga helps individuals cultivate a deeper understanding of themselves, regulate their emotions, and respond to life's challenges with resilience and wisdom.

Thus, the integration of yoga into daily life not only enhances physical health but also supports the development of emotional maturity, fostering a balanced and peaceful approach to both internal and external challenges.

Literature Review-

1- Muchhal and Kumar (2015) explore the effect of yoga on emotional maturity in B.Ed. students. They highlight the increasing psychological stress among youth and the importance of emotional maturity for personal and professional development. The study shows that yogic practices like Shatkriyas, Pranayamas, and meditation improve emotional well-being by promoting emotional regulation and self-acceptance. The findings reveal that students practicing yoga for 30 days showed greater emotional stability and less immaturity compared to a control group. The authors suggest that integrating yoga into students' routines can enhance emotional stability and support academic and personal growth.

2- Rathod and Vishwakarma (2022) study the impact of yoga on mental health and personality, comparing practitioners to non-practitioners. They find no significant differences in mental health or personality traits between the two groups. The authors attribute this to the spiritual environment of the study. They conclude that while yoga has benefits, its influence on mental health and personality may not always be statistically significant and suggest further research with longer interventions and larger samples.

3- Berwal and Gahlawat (2013) examine the impact of yoga on self-concept and emotional maturity in visually impaired students. They argue that yoga, as a holistic practice, can help individuals with disabilities overcome anxiety, emotional instability, and poor mental health.The study, involving 15 students who participated in a four-week yoga program, found significant improvements in self-concept and emotional maturity. The results showed enhanced self-perception, emotional stability, and social adaptability. The authors conclude that yoga can effectively support the psychological development of visually impaired students, improving emotional resilience and self-image.

4- Ganpat, Dash, and Ramarao (2014) investigate the effect of yoga therapy on emotional sensitivity (ES) among university students. They emphasize the importance of emotional intelligence (EI) in academic success, focusing on emotional sensitivity, maturity, and competency. The study involved 184 students who completed 21 days of yoga training, including pranayama, asanas, meditation, and kriyas. The results showed a significant 3.63% increase in emotional sensitivity after the intervention, indicating that yoga improves self-awareness, empathy, and emotional regulation. The authors conclude that yoga enhances emotional intelligence, supporting students' stress management and interpersonal skills. They suggest incorporating yoga into university curricula to improve students' emotional development and mental well-being.

5- Deorari, Agarwal, and Shukla (2012) examine the effects of Surya Namaskar on emotional

maturity and psychological well-being among college students. The study involved 30 female students who practiced Surya Namaskar daily for 60 days. Results showed significant improvements in emotional maturity and psychological well-being, with decreased emotional immaturity and increased psychological stability ($p < 0.01$).

The authors highlight that Surya Namaskar helps regulate emotions, reduce stress, and improve overall well-being by balancing the nervous system and promoting mental clarity. They conclude that Surya Namaskar can enhance emotional maturity and resilience, recommending its integration into educational settings to support students' mental health.

Hypothesis-

Null Hypothesis (H•):

There is **no significant difference** in emotional maturity between individuals who practice yoga and those who do not.

Alternative Hypothesis (H•):

There is a **significant difference** in emotional maturity between individuals who practice yoga and those who do not.

Methodology-

Research Design

This study follows a comparative research design to analyse the effect of yoga on emotional maturity among yoga practitioners and non-yoga practitioners. The research aims to determine whether individuals who practice yoga regularly exhibit higher levels of emotional maturity compared to those who do not engage in yoga.

Research Approach

- The study employs a quantitative research methodology to collect and analyse numerical data related to emotional maturity.
- A cross-sectional survey design is used to assess emotional maturity at a single point in time among both groups.
- A comparative analysis is conducted between 50 yoga practitioners and 50 non-yoga practitioners to identify significant differences in emotional maturity levels.

Variables

- Independent Variable: Yoga practice (Yoga practitioners vs. Non-yoga practitioners).
- Dependent Variable: Emotional maturity scores (measured using a standardized Emotional Maturity Scale).

Sampling Method

- The study uses a purposive sampling technique to select participants based on specific inclusion criteria.
- Participants include working professionals and students aged 18 to 40 years.

Data Collection Method

- A standardized Emotional Maturity Scale questionnaire (such as Singh & Bhargava's EMS or a similar validated scale) is used to assess emotional maturity.
- The questionnaire is administered through online surveys and in-person data collection.
- Responses are collected on a 5-point Likert scale, where participants self-report their emotional responses.

Data Analysis

- Data is analysed using descriptive statistics (mean, standard deviation) to summarize emotional maturity scores.
- Inferential statistics (t-tests or ANOVA) are used to compare the emotional maturity levels between yoga practitioners and non-yoga practitioners.

- Statistical significance is determined at $p < 0.05$ to establish meaningful differences between the two groups.

This research design ensures a structured and scientific approach to measuring the impact of yoga on emotional maturity.

=ØÊÜ Emotional Maturity – Group Comparison Table

Emotional Maturity	Group	No. of Participants	Mean Score	Standard Deviation	t-value	p-value
Total Score	Yoga Practitioners	50	**123.22**	**12.07**		
	Non-Yoga Practitioners	50	**124.76**	**14.32**	**-0.383**	**0.703**

Discussion: The present study aimed to compare emotional maturity between individuals who practice yoga and those who do not. Using an independent samples t-test, results showed that the difference between the two groups was **not statistically significant** ($p = 0.703$). The mean emotional maturity scores of both groups were similar, indicating that yoga practice did not have a measurable impact in this sample.

Based on these findings, the **null hypothesis (H•)**—which states that there is no significant difference in emotional maturity between yoga and non-yoga practitioners—**is accepted**. The **alternative hypothesis (H•)**, which suggests a significant difference, is rejected.

Although yoga is often associated with better emotional regulation and self-awareness, this study did not find a strong link between yoga practice and higher emotional maturity. Factors such as the frequency, type, or duration of yoga practice, as well as personal or environmental influences, may have contributed to the lack of difference observed.

Conclusion: This study concludes that **yoga practice does not significantly affect emotional maturity** among participants in the current sample. While yoga may offer psychological benefits, emotional maturity appears to depend on a combination of other factors beyond yoga alone.Thus, the **null hypothesis is supported**. For better understanding, **future research should be conducted on a larger and more diverse sample**, considering factors like duration and intensity of yoga practice, personality traits, and environmental influences.

Research Scholar,
Amity Institute for Sanskrit
Studies and Research,
Amity University, Uttar Pradesh, Noida

References:

- Gahlawat, Savita. Effect of Yoga on Emotional Stability and Mental Health of Hearing Challenged Adolescents. International Journal of Advances in Social Sciences and Humanities, vol. 2, no. 7, July 2014.
- Mukherjee, Debjani. Enhancing Positive Mental Health among Adolescents: Role of Yoga. 2019.
- Sharma, Divya, and B. R. Sharma. The Impact of Yoga and Meditation on Mental and Physical Well-being. Journal of Ayurveda and Integrated Medical Sciences, vol. 9, no. 5, 2024, pp. 144–153. https://doi.org/10.21760/jaims.9.5.23
- Pandey, Aarsh Ojas Parasar, and Simran Dalal. Effects of Nadi-Shodhan Pranayama and Yoga-Nidra on Emotional Maturity and Mental Health of Young Adults. International Journal of Indian Psychology, vol. 8, no. 4, 2020, pp. 1–10. https://doi.org/10.25215/0804.180
- Reddy, Medini Jagan, and Narender Kumar. The Effect of Yoga on Emotional Maturity: A Comparative Study between Yoga and Non-Yoga Practitioners. International Journal of Futuristic Innovation in Arts,

Humanities and Management, vol. 2, no. 2, 2023, pp. 109–117.
- Gahlawat, Savita. Yoga and Its Effect on Emotional and Mental Wellbeing among Adolescents with Disabilities. 2018.
- Kokinakis, Leah Hope. Yoga and Mindfulness Interventions for Adolescents: Benefits for Emotional Regulation and Mental Health. ProQuest Dissertations, 2020.
- Herms, Jessica. Benefits that Flow: The Effect of Yoga on Self-Esteem of the Developing Adolescent. ProQuest Dissertations Publishing, 2020.
- Machhal, Rekha, and Kumar. Effect of Yoga Practices on the Mental Health of College Students. 2015.
- Ganpat, Tikhe S. Effect of Yoga on Emotional Intelligence and Academic Stress among Management Students. 2020.
- Sharma, Neha. Yoga Therapy and Its Effect on Psychological Well-being of College Youth. 2018.
- Singh, Nidhi. Yoga Intervention on Emotional Adjustment among Female Adolescents. 2019.
- Cyril, A. V., and M. A. Raj. Construction of Emotional Maturity Scale of High School Teachers. ERIC, 2017. https://files.eric.ed.gov/fulltext/EJ1269412.pdf
- Swamy, I. C., and S. A. Jose. Emotional Maturity Among Adolescents. 2022. https://www.researchgate.net/publication/361661697
- Sabeena, P. S., and K. N. Rathi. Emotional Maturity and Leadership Style of Teachers. 2015. https://www.academia.edu/43853838
- Myint, Myint Mar. The Study of Emotional Maturity and Academic Achievement. Journal of Myanmar Academy of Arts and Science, vol. 18, no. 9, 2020.
- SinghYashvir and Mahesh Bhargava. Emotional Maturity Scale Manual. Agra: National Psychological Corporation, 1988.
- ResearchGate. The Effect of Relationship Status on Emotional Maturity and Stress. 2020. https://www.academia.edu/64147664
- Jaya, K. The Impact of Yoga Practice on Emotional Regulation in College Students. 2021.
- Raj, J. P. Yoga as a Catalyst for Enhancing Emotional Maturity in Urban Youth. 2020.
- Patel, Kalpana. Effect of Yoga on Emotional Intelligence in Adolescents. 2016.
- Yadav, Sheetal. Influence of Yogic Practices on Mental Hygiene and Adjustment among Students. 2022.
- Singh, S. N., and Rai, Dr. Samvat. Altruism Scale Manual. 1998.
- Sinha, D. Comprehensive Anxiety Test. National Psychological Corporation.
- Sharma, L., and Sharma, A. Impact of Yoga on Mental and Emotional Health of Women Teachers. 2022.
- Dangi, Manju. Yoga and Emotional Development among School Children. 2021.
- Raj, J. P. Yoga as a Catalyst for Enhancing Emotional Maturity in Urban Youth. 2020.
- Yogsutra by Maharshi Patanjali.
- Shrimadbhagvadgeeta.
- Yogsar Sangrah.

शशांक कुमार

लोक साहित्य और समकालीन हिन्दी उपन्यास

शोध सारांश

लोक-साहित्य हिन्दी साहित्य की वह धरोहर है, जो जनमानस की भावनाओं, परम्पराओं और सांस्कृतिक मूल्यों को सहजता से व्यक्त करता है। यह शोध लेख लोक-साहित्य की प्रकृति, विशेषताओं, प्रकारों और महत्व की पड़ताल करता है, साथ ही इसके आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रभाव का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह दर्शाता है कि लोक-भाषा, गीत, कहावतें, विश्वास और सामुदायिक जीवन जैसे तत्व काशीनाथ सिंह, मैत्रेयी पुष्पा, संजीव, गीतश्रीऔर पंकज सुबीर जैसे उपन्यासकारों की रचनाओं में परम्परा और आधुनिकता को जोड़ते हैं। लेख में डिजिटल युग में लोक-साहित्य की प्रासंगिकता और इसके सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव को भी रेखांकित किया गया है।

यह शोध लेख लोक-साहित्य की प्रकृति, विशेषताओं, प्रकारों और महत्व को समझने के साथ-साथ इसके समकालीन हिन्दी उपन्यासों में प्रभाव का विश्लेषण करने का प्रयास करता है। इसका उद्देश्य यह प्रदर्शित करना है कि लोक-साहित्य न केवल सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षक है, बल्कि आधुनिक साहित्य में भी एक जीवंत शक्ति के रूप में उपस्थित है, जो परम्परा और आधुनिकता के बीच सेतु बनाता है। विशेष रूप से, यह देखना है कि हिन्दी उपन्यास किस प्रकार लोक-भाषा, परम्पराओं, गीतों, विश्वासों और जीवन की सहजता को आत्मसात करते हैं, और यह प्रक्रिया साहित्यिक और सामाजिक स्तर पर क्या प्रभाव डालती है।

बीज शब्द : लोक, लोक जीवन, लोक साहित्य, हिन्दी उपन्यास, भूमंडलीकरण, बाजारीकरण

लोक-साहित्य हिन्दी साहित्य का वह अमूल्य हिस्सा है, जो जनसामान्य के जीवन, उनकी भावनाओं, परम्पराओं और सांस्कृतिक मूल्यों को सहजता के साथ अभिव्यक्त करता है। यह साहित्य मौखिक परम्परा से उत्पन्न हुआ और पीढ़ियों तक हस्तांतरित होता रहा। यह किसी एक लेखक की व्यक्तिगत रचना नहीं, बल्कि समाज की सामूहिक चेतना और रचनात्मकता का प्रतीक है। यह न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि समाज की सांस्कृतिक पहचान, ऐतिहासिक स्मृति और नैतिक शिक्षा का आधार भी है। हजारी प्रसाद द्विवेदी लोक साहित्य को इस प्रकार से परिभाषित करते हैं, ''लोक-साहित्य वह है, जो लोक के हृदय से उभरता और लोक के बीच ही जीवित रहता है। यह परिष्कृत नहीं, किन्तु इसमें जीवन की सत्यता और सहजता समाहित होती है।''[1] द्विवेदी जी का यह कथन लोक-साहित्य की आत्मा को प्रकट करता है। यह जनता की भावनाओं को इस तरह प्रस्तुत करता है कि विद्वान इसे विचारणीय और साधारण जन इसे प्रिय पाते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इसे ''जनता का साहित्य'' के रूप में परिभाषित करते हैं, और इसे परम्पराओं व संस्कृति का प्राथमिक स्रोत मानते हैं। उनके अनुसार, ''यह केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं, बल्कि समाज के इतिहास और जीवन-दर्शन को संरक्षित करता है, साथ ही तत्कालीन सामाजिक संरचना, आर्थिक स्थिति और सांस्कृतिक मान्यताओं का दस्तावेज भी है।''[2] लोक-साहित्य वह कला है, जो जनमानस की गहराइयों से निकलकर समाज के हर वर्ग को एक सूत्र में बाँधती है। यह सामाजिक एकता को बढ़ाता है और विभिन्न समुदायों के बीच सांस्कृतिक संवाद को प्रोत्साहित करता है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपनी जड़ों से जुड़ा रहता है और सामूहिक पहचान को समझ पाता है।

लोक-साहित्य की विशेषताएँ इसे अन्य साहित्यिक रूपों से विशिष्ट बनाती हैं। यह मौखिक परम्परा से जुड़ा है, जो इसे

लिखित साहित्य की तरह स्थिर न बनाकर समय और स्थान के साथ परिवर्तनशील और विकासशील बनाता है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लोक साहित्य को इस तरह से परिभाषित करते हैं, ''लोक-साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसकी मौखिकता है, जो इसे जीवंत और लचीला बनाती है।''[3] यह मौखिकता इसे गतिशीलता प्रदान करती है, जिससे यह पीढ़ियों तक जीवित रहता और विभिन्न क्षेत्रों में विविध रूप धारण करता है। उदाहरण के लिए, एक ही लोककथा, जैसे 'पंचतंत्र' की कहानियाँ, अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न शैली, पात्र और अंत के साथ सुनाई जाती हैं। यह किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं, बल्कि समुदाय की संयुक्त रचनात्मकता का परिणाम है। श्याम परमार इसे इस प्रकार से व्यक्त करते हैं, ''लोक-साहित्य सामूहिक कला है, जो लोक के सहयोग से समृद्ध होती है।''[4] यह सामूहिकता इसे लोकतांत्रिक स्वरूप देती है, जहाँ हर व्यक्ति अपनी भावनाएँ और अनुभव जोड़ सकता है। इसमें रचनाकार अनाम रहता है और रचना समय के साथ लोक के योगदान से समृद्ध होती है। स्थानीय प्रभाव भी गहरा होता है, जिसमें क्षेत्रीय बोली, संस्कृति और पर्यावरण की छाप स्पष्ट है। रामस्वरूप चतुर्वेदी, ''लोक-साहित्य में स्थानीयता को ही उसकी आत्मा मानते हैं।''[5] उदाहरण के तौर पर, उत्तर प्रदेश की ''बिरहा'' में अवधी बोली और ग्रामीण जीवन की झलक मिलती है, जबकि राजस्थान की ''मांड'' में रेगिस्तानी संस्कृति और राजपूती गौरव की छाप दिखती है। इसकी भाषा सरल और सहज होती है, जो इसे जनसामान्य के लिए सुलभ बनाती है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार, ''हजारी प्रसाद द्विवेदी सरलता को लोक-साहित्य का शक्ति मानते हैं।''[6] यह सरलता इसे विद्वानों और साधारण जन दोनों के लिए आकर्षक बनाती है। यह जीवन से गहराई से जुड़ा है और प्रेम, दुख, साहस, उत्सव जैसे भावों को व्यक्त करता है। इस प्रकार से कहा जा सकता है कि लोक-साहित्य जीवन का दर्पण है, जो मानव भावनाओं को सहजता से प्रस्तुत करता है। यह समाज के हर पहलू को समेटकर एक जीवंत चित्र प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त, लोक-साहित्य में प्रतीकात्मकता और नैतिकता का समावेश इसे गहन और विचारोत्तेजक बनाता है। यह समाज की गतिशीलता को दर्शाता है और बदलते समय के साथ स्वयं को ढालने में सक्षम है।

लोक-साहित्य विभिन्न रूपों में विद्यमान है, जो इसे समृद्ध और बहुआयामी बनाते हैं। लोकगीत इसका सबसे जीवंत रूप हैं, जो जन्म, विवाह, त्योहार और श्रम से जुड़े हैं। ये गीत भावनाओं को व्यक्त करने के साथ-साथ सामाजिक एकता को बढ़ाते हैं। उदाहरण के लिए, बिहार का ''सोहर'' जन्म के अवसर पर माँ और नवजात के प्रति प्रेम को व्यक्त करता है, ''कजरी'' वर्षा ऋतु की सुंदरता और प्रेम को दर्शाता है, और ''फाग'' होली के उत्सव में रंग और उल्लास को समेटता है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह के अनुसार, ''लोकगीत लोक-साहित्य का सबसे जीवंत रूप हैं, जो भावनाओं को संगीत से जोड़ते हैं।''[7] लोककथाएँ भी इसका महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। ये मौखिक रूप में पीढ़ियों तक चली आ रही हैं और इनमें नैतिकता, मनोरंजन और कभी-कभी ऐतिहासिक तत्व शामिल हैं। पंचतंत्र, राजा-रानी और भूत-प्रेत की कथाएँ इसके उदाहरण हैं। लोककथाएँ लोकमानस की कल्पना और नैतिक चेतना का आधार हैं। लोक गाथाएँ वीरता, प्रेम या संघर्ष की लंबी कथाएँ हैं, जैसे ''अल्हा-ऊदल'' जो बुंदेलखंड की वीरता को चित्रित करती है, और ''ढोला-मारू'' जो राजस्थानी प्रेम और बलिदान को व्यक्त करती है। लोक गाथाएँ इतिहास और कल्पना का अनोखा मिश्रण हैं। लोकनाट्य, जैसे रामलीला, नौटंकी और रासलीला, सामुदायिक भागीदारी को बढ़ाते हैं और धार्मिक-सांस्कृतिक मूल्यों को जीवंत करते हैं। लोक विश्वास और अंधविश्वास भी इसका हिस्सा हैं, जो समाज की आस्थाओं और भय को दर्शाते हैं। उदाहरण के लिए, ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित विश्वास कि ''नजर लगने'' से बचने के लिए काला टीका लगाया जाता है, लोक-साहित्य का हिस्सा है। ये सभी रूप मिलकर लोक-साहित्य को एक समग्र और जीवंत परम्परा बनाते हैं, जो समाज के हर आयाम को छूती है।

लोक-साहित्य का महत्व इसके सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक प्रभावों में निहित है। यह प्राचीन परम्पराओं और मूल्यों को संरक्षित करता है, जो लिखित इतिहास में अक्सर उपेक्षित रहते यह ऐतिहासिक दस्तावेज भी है, जो समाज की अनकही कहानियों को सहेजता है। लोक-साहित्य में इतिहास की अनकही बातें छिपी हैं। भाषा के विकास में भी इसकी भूमिका है, क्योंकि यह क्षेत्रीय बोलियों को जीवित रखता है और साहित्यिक भाषा को समृद्ध करता है। लोक-साहित्य भाषा की जड़ों को मजबूत करता है। इसके अतिरिक्त, लोक-साहित्य सामाजिक परिवर्तन को प्रेरित करता है, क्योंकि यह समाज की कमियों और आकांक्षाओं को उजागर करता है।

लोक-साहित्य का समकालीन हिन्दी उपन्यासों में प्रभाव

लोक-साहित्य का प्रभाव आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में गहराई से देखा जा सकता है, विशेष रूप से 1990 से 2020 के बीच की रचनाओं में। इस अवधि के उपन्यासकारों ने

लोक-साहित्य की भाषा, परम्पराओं, गीतों, विश्वासों और जीवन की सहजता को अपनी रचनाओं में आत्मसात किया। काशीनाथ सिंह (काशी का अस्सी), मैत्रेयी पुष्पा (चाक), संजीव (फाँस), गीताश्री (हसीनाबाद), और पंकज सुबीर (अकाल में उत्सव) जैसे लेखकों ने अपने उपन्यासों में क्षेत्रीय बोलियाँ (जैसे बनारसी, बुंदेली, भोजपुरी, मैथिली), लोक गीत, कहावतें, उत्सव और सामुदायिक जीवन को शामिल किया। ये रचनाएँ ग्रामीण और शहरी जीवन, सामाजिक बदलाव, पर्यावरण और पहचान जैसे विषयों को लोक-साहित्य की सहजता और प्रतीकात्मकता के साथ प्रस्तुत करती हैं। उदाहरण के लिए, बनारस की सांस्कृतिक परम्पराएँ, बुंदेलखंड की ग्रामीण स्त्रियों का संघर्ष, मिथिला की लोक कथाएँ, आदि इन उपन्यासों में जीवंत हो उठते हैं। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार, ''लोक-साहित्य आधुनिक साहित्य की जड़ें हैं, जो उसे पोषण और गहराई प्रदान करती हैं।''[8] ये तत्व एक सेतु की तरह कार्य करते हैं, जो परम्परा और आधुनिकता को जोड़ता है।

काशीनाथ सिंह के उपन्यास काशी का अस्सी में बनारस की लोक संस्कृति का जीवंत चित्रण है, जो बनारसी बोली, गंगा के घाटों, शिव भक्ति, और सामुदायिक जीवन को सहजता से प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास बनारस को एक सांस्कृतिक केंद्र के रूप में स्थापित करता है, जहाँ लोक जीवन की हर धड़कन गलियों, पंडों, और चाय की दुकानों में सुनाई देती है। बनारसी बोली इसकी आत्मा है, जो पात्रों के संवादों में हास्य, व्यंग्य, और जीवन की गहराई लाती है। उदाहरण के लिए, एक पात्र कहता है : ''बनारस में हर गली में शिव का डमरू बजता है, भइया, इहाँ हर आदमी भोला है।''[9] यह उद्धरण बनारस की धार्मिक आस्था और लोक-विश्वास को दर्शाता है, जहाँ शिव हर जगह उपस्थित हैं। गंगा के घाटों का वर्णन सामुदायिकता को रेखांकित करता है : ''गंगा के किनारे ठंडी साँझ में भजन-कीर्तन की गूँज हर मन को हर लेती है।''[10] यहाँ भजन और कीर्तन आध्यात्मिकता और सामाजिक बंधन का प्रतीक हैं। बनारसी मस्ती और ठेठ हास्य लोकगीतों की तरह सहज है : ''इहाँ हर बात में ठठरी और ठसक है।''[11] यह बनारसी कहावतों और जीवनशैली की जीवंतता को व्यक्त करता है। काशी का अस्सी शहरीकरण और आधुनिकता के बीच बनारस की परम्पराओं को संरक्षित करता है, जहाँ बाजारवाद के बावजूद लोक जीवन की गूँज बरकरार है। यह उपन्यास दर्शाता है कि लोक जीवन शहरी संदर्भों में भी उतना ही प्रासंगिक है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'चाक' में बुंदेलखंड की ग्रामीण स्त्रियों के जीवन, उनकी संघर्षशीलता, और सांस्कृतिक परम्पराओं को चित्रण हुआ है। यह उपन्यास बुंदेली बोली, लोकगीत, और सामुदायिक जीवन को केंद्र में रखता है, जो ग्रामीण भारत की आत्मा को उजागर करता है। नायिका चंपा और अन्य स्त्रियाँ अपनी मेहनत और हिम्मत से समाज की रूढ़ियों को चुनौती देती हैं, और उनकी भाषा में लोकगीतों की सहजता झलकती है। उदाहरण के लिए, एक दृश्य में गाँव की स्त्रियाँ गाती हैं : ''हमार गाँव में कजरी के गीत बिना बरखा के सूना लागे।''[12] यह उद्धरण वर्षा ऋतु के लोकगीतों और ग्रामीण जीवन की प्रकृति-निरपेक्षता को दर्शाता है। बुंदेलखंड की परम्पराएँ, जैसे कुएँ पर पानी भरते समय गाए जाने वाले गीत, सामुदायिकता को रेखांकित करती हैं : ''कुआँ पर गीत गावें, तो मन का बोझ हल्का होवे।''[13] यहाँ लोकगीत श्रम और सामाजिक बंधन का साधन हैं। लोक-विश्वास भी प्रमुख हैं : ''भूत-प्रेत से बचने को नीम की डाल ड्योढ़ी पर टाँगो।''[14] यह ग्रामीण भारत की आस्थाओं को दर्शाता है। चाक सामाजिक असमानता और स्त्री-संघर्ष के समकालीन मुद्दों को लोक जीवन के सहज कैनवास पर प्रस्तुत करता है, जो परम्परा और परिवर्तन के बीच संतुलन बनाता है। विश्वनाथ त्रिपाठी इसे ''परम्परा और परिवर्तन का संगम'' कहते हैं। यह उपन्यास ग्रामीण स्त्रियों की आवाज को सशक्त करता है और लोक जीवन की जीवंतता को समकालीन साहित्य में स्थापित करता है।

संजीव का उपन्यास फाँस ग्रामीण भारत, विशेष रूप से महाराष्ट्र प्रदेश के किसान जीवन की त्रासदी को चित्रित करता है, जिसमें लोक-भाषा, परम्पराएँ, और सामुदायिक जीवन के तत्व गहराई से समाहित हैं। यह उपन्यास किसानों की आर्थिक और सामाजिक चुनौतियों, विशेष रूप से कर्ज और आत्महत्या के मुद्दों को उजागर करता है, और मराठी बोली इसके संवादों में जीवंतता लाती है। उदाहरण के लिए, एक पात्र कहता है : ''जमीन तो बाप-दादा की निशानी है, पर कर्ज का फाँस गले में कसता जा रहा है। खेती छोड़ने के निर्णय पर छोटी बेटी कहती है, एक विद्वान ने कहा है कि शेती कोई धंधा नहीं, बल्कि एक लाइफ स्टाइल है- जीने का तरीका, जिसे किसान अन्य किसी भी धंधे के चलते नहीं छोड़ सकता। सो तुम बाबा...तुम लाख कहो कि तुम शेती छोड़ दोगे, नहीं छोड़ सकते। किसानी तुम्हारे खून में है।''[15] यह उद्धरण लोक-विश्वास को दर्शाता है, जहाँ जमीन केवल संपत्ति नहीं, बल्कि पारिवारिक सम्मान और परम्परा का प्रतीक है। गाँव के मेले और उत्सव सामुदायिकता को रेखांकित करते हैं : ''चौपाल

पर भजन गावें, तो सारा गाँव एक हो जाय।''[16] यहाँ भजन सामाजिक एकता और आध्यात्मिकता का साधन हैं। लोककथाएँ भी उपन्यास में नैतिकता और इतिहास को संरक्षित करती हैं : ''बुजुर्ग कहते थे, मेहनत का फल मीठा होता है, पर अब तो मेहनत भी कर्ज में डूब गयी।''[17] यह लोक कहावत आधुनिकता के दबाव में ग्रामीण जीवन की विडंबना को व्यक्त करती है। फाँस उपन्यास किसानों की दुर्दशा को लोक जीवन के तत्वों के माध्यम से प्रस्तुत करता है, जो परम्परा को आधुनिक संकटों से जोड़ता है। यह उपन्यास सामाजिक जागरूकता को बढ़ाता है और लोक जीवन की सहजता को समकालीन साहित्य में एक शक्तिशाली उपकरण बनाता है।

गीताश्री का उपन्यास हसीनाबाद उत्तर भारत के गाँव के जीवन को चित्रित करता है, जिसमें लोक-भाषा, परम्पराएँ, और सामुदायिक जीवन के तत्व सामाजिक बदलाव और संघर्ष के साथ जुड़े हैं। यह उपन्यास ग्रामीण भारत की सांस्कृतिक समृद्धि और उसकी चुनौतियों को क्षेत्रीय बोलियों के मिश्रण के साथ प्रस्तुत करता है। उदाहरण के लिए, एक दृश्य में गाँव की स्त्रियाँ गाती हैं : ''सावन में कजरी गावें, तो मन का दुख भूल जाय।''[18] यह उद्धरण लोकगीतों की शक्ति को दर्शाता है, जो कठिन परिस्थितियों में भी मनोरंजन और राहत प्रदान करते हैं। गाँव की चौपाल पर होने वाली चर्चाएँ सामुदायिकता को रेखांकित करती हैं : ''चौपाल पर सब आपस में बात करें, तो गाँव की एकता बनी रहति है।''[19] यहाँ सामुदायिक जीवन लोक जीवन का अभिन्न हिस्सा है। लोक-विश्वास भी उपन्यास में मौजूद हैं : ''नजर से बचाये को बच्चा के माथे पर काला टीका लगायो।''[20] यह ग्रामीण आस्थाओं और उनकी सामाजिक प्रासंगिकता को दर्शाता है। हसीनाबाद ग्रामीण भारत में सामाजिक और आर्थिक बदलाव को लोक जीवन के तत्वों के माध्यम से चित्रित करता है, जो परम्परा और आधुनिकता के बीच संवाद को रेखांकित करता है। यह उपन्यास ग्रामीण जीवन की सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करता है और समकालीन साहित्य में उसकी प्रासंगिकता को स्थापित करता है।

पंकज सुबीर का उपन्यास 'अकाल' में उत्सव ग्रामीण भारत, विशेष रूप से मध्य भारत के किसान जीवन की त्रासदी और विडंबना को चित्रित करता है। यह उपन्यास सूखे, कर्ज, और सरकारी नीतियों के दबाव में किसानों की दुर्दशा को प्रस्तुत करता है, जिसमें लोक-भाषा, कहावतें, और सामुदायिक जीवन के तत्व गहराई से समाहित हैं। उपन्यास में मालवी बोली संवादों में जीवंतता लाती है। उदाहरण के लिए, एक पात्र कहता है : ''खेत में फसल नहीं, पर गाँव में उत्सव की बात होय है।''[21] यह उद्धरण सरकारी नीतियों और ग्रामीण वास्तविकता के बीच विडंबना को दर्शाता है, जहाँ लोक उत्सव भी त्रासदी का हिस्सा बन जाते हैं। गाँव के सामुदायिक जीवन को चौपाल के दृश्यों में देखा जा सकता है : ''चौपाल पर सब इकट्ठा होय, तो मन का बोझ हल्का होय।''[22] यह सामुदायिकता की शक्ति को रेखांकित करता है। यह आधुनिक आर्थिक संकटों में ग्रामीण परम्पराओं की असहायता को दर्शाता है। अकाल में उत्सव किसानों की त्रासदी को लोक जीवन के सहज तत्वों के माध्यम से प्रस्तुत करता है, जो सामाजिक जागरूकता को बढ़ाता है। यह उपन्यास परम्परा और समकालीन संकटों के बीच एक गहरा संवाद स्थापित करता है।

इन उपन्यासों में लोक-साहित्य का समावेश न केवल सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करता है, बल्कि आधुनिक समाज की जटिलताओं जैसे- शहरीकरण, सामाजिक असमानता, पर्यावरण संकट और पहचान के प्रश्नों को भी उजागर करता है। यह दर्शाता है कि लोक-साहित्य आधुनिक संदर्भों में भी प्रासंगिक है और साहित्य को मानवीय संवेदनाओं से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह समावेश साहित्य को अधिक समावेशी बनाता है, क्योंकि यह विभिन्न क्षेत्रों और समुदायों की आवाज को प्रतिनिधित्व देता है।

समकालीन संदर्भ में लोक-साहित्य

लोक-साहित्य का प्रभाव आज के दौर में विभिन्न माध्यमों में स्पष्ट है। फिल्मों में लोकगीतों का प्रयोग, जैसे ''कजरी'' या ''फाग'' का रीमिक्स, और टीवी धारावाहिकों में लोककथाओं का चित्रण इसकी जीवंतता को दर्शाता है। रामलीला और नौटंकी जैसे लोकनाट्य आज भी ग्रामीण और शहरी मंचों पर लोकप्रिय हैं। डिजिटल युग में यूट्यूब और सोशल मीडिया के माध्यम से लोकगीत और गाथाएँ नई पीढ़ी तक पहुँच रही हैं। उदाहरण के लिए, भोजपुरी और राजस्थानी लोकगीतों के आधुनिक संस्करण डिजिटल मंचों पर लाखों दर्शकों को आकर्षित करते हैं। इस त्राह से यह कहा जा सकता है कि लोक-साहित्य वह धारा है, जो कभी सूखती नहीं, बल्कि नए रूपों में प्रवाहित होती रहती है। यह बदलाव दर्शाता है कि लोक-साहित्य समय के साथ ढलने में सक्षम है और अपनी मूल भावना को बनाए रखता है। डिजिटल युग में लोक-साहित्य का पुनर्जनन इसकी शाश्वत शक्ति का प्रमाण है। इसके अतिरिक्त, लोक-साहित्य वैश्वीकरण के दौर में सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह नई पीढ़ी को अपनी जड़ों से

जोड़ता है और उन्हें सांस्कृतिक गौरव का बोध कराता है।

लोक-साहित्य का प्रभाव शिक्षा और सामाजिक जागरूकता में भी देखा जा सकता है। स्कूलों और विश्वविद्यालयों में लोक-साहित्य को पाठ्यक्रम में शामिल किया जा रहा है, ताकि विद्यार्थी अपनी सांस्कृतिक विरासत को समझ सकें। सामाजिक आंदोलनों में भी लोकगीत और कथाएँ प्रेरणा का स्रोत बनते हैं। उदाहरण के लिए, पर्यावरण संरक्षण के लिए चलाए गए अभियानों में आदिवासी लोक गीतों का उपयोग लोगों को प्रेरित करने के लिए किया जाता है। यह दर्शाता है कि लोक-साहित्य केवल साहित्यिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज के हर पहलू को प्रभावित करता है।

निष्कर्ष

लोक-साहित्य हिन्दी साहित्य की आत्मा है, जो जनमानस की भावनाओं, परम्पराओं और सांस्कृतिक मूल्यों को संरक्षित करता है। यह न केवल ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दस्तावेज है, बल्कि आधुनिक साहित्य में भी एक जीवंत शक्ति के रूप में उपस्थित है। 1990 से 2020 के बीच के हिन्दी उपन्यास इसकी प्रासंगिकता को दर्शाते हैं, क्योंकि वे लोक-भाषा, गीत, परम्पराएँ और विश्वासों को आत्मसात करते हैं। ये उपन्यास परम्परा और आधुनिकता के बीच संनाद को रेखांकित करते हैं, जो सामाजिक और सांस्कृतिक बदलावों के बीच लोक-साहित्य की शक्ति को उजागर करता है। डिजिटल युग में लोक-साहित्य का पुनर्जनन इसकी लचीलापन और शाश्वतता का प्रमाण है। यह नई पीढ़ी को अपनी जड़ों से जोड़ता है और साहित्य को समृद्ध करता है। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि लोक-साहित्य न केवल साहित्यिक धरोहर है, बल्कि एक जीवंत परम्परा है, जो समाज के हर कोने में गूँजती है। भविष्य में, लोक-साहित्य का अध्ययन और संरक्षण सांस्कृतिक विविधता को बनाए रखने और सामाजिक एकता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
असम विश्वविद्यालय, दिफू परिसर,
दिफू कार्बी आंगलोंग, असम-782462
ईमेल : kumarshashank2050@gmail.com

सन्दर्भ सूची

1. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, हिन्दी साहित्य की भूमिका, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2017, पृ. 55.
2. शुक्ल, रामचंद्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी: नागरी प्रचारिणी सभा, 1929, पृ. 30.
3. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव, लोक-साहित्य की भूमिका, लोकभारती प्रकाशन, 2019, पृ. 52.
4. परमार, श्याम, भारतीय लोक साहित्य, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ. 28.
5. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, दिल्ली, लोकभारती प्रकाशन, 2018, पृ. 71.
6. नगेन्द्र, डॉ. हिन्दी साहित्य का इतिहास, दिल्ली, मयूर पेपरबैक्स, 2017, पृ. 56.
7. सिंह, शिवप्रसाद, हिन्दी लोकगीत, लखनऊ, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, 1970, पृ. 10.
8. सिंह, नामवर, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, किताब महल प्रकाशन, 1953, पृ. 47.
9. सिंह, काशीनाथ, काशी का अस्सी, राजकमल प्रकाशन, 2004, पृ. 32
10. सिंह, काशीनाथ, काशी का अस्सी, राजकमल प्रकाशन, 2004, पृ. 56
11. वही, पृ. 89
12. पुष्पा, मैत्रेयी, चाक, राजकमल प्रकाशन, 1999, पृ. 45
13. वही, पृ. 72
14. वही, पृ. 108
15. संजीव, फाँस, वाणी प्रकाशन, 2015, पृ. 17
16. वही, पृ. 80
17. वही, पृ. 190
18. गीताश्री, हसीनाबाद, वाणी प्रकाशन, 2017, पृ. 42
19. वही, पृ. 76
20. वही, पृ. 112
21. सुबीर, पंकज, अकाल में उत्सव, शिवना प्रकाशन, 2016, पृ. 42
22. वही, पृ. 98

अंचल कुमार

राजस्थान की लोकनाट्य परंपरा 'ख्याल'

भारत में '**लोक**' शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से होता रहा है। यह शब्द संस्कृत के '**लोकदर्शने**' धातु में '**घञ्**' **प्रत्यय** जोड़ने से निर्मित हुआ। इस शब्द का अर्थ है - **देखना**। इसलिए 'लोक' शब्द का अभिप्राय उस सम्पूर्ण जनसमुदाय से है जो कि देश विशेष में निवास करता है।

'लोक' का चिरकालीन अर्थ समस्त जनसमुदाय और जनजीवन सहित समस्त समाज है। लोक का शाब्दिक अर्थ जन समुदाय से है जिसमें धर्म, संस्कृति के संस्कार विद्वान होते हैं।

'**लोकनाट्य**' वह पारंपरिक रंगमंचीय कला है, जो किसी क्षेत्र विशेष की संस्कृति, समाज और परंपराओं को अभिव्यक्त करती है। यह मूल रूप से जनसाधारण के मनोरंजन का माध्यम होता है, जिसमें गायन, नृत्य, अभिनय और संवाद का संयोग होता है। भारत में लोकनाट्य की उत्पत्ति वैदिक काल से मानी जाती है, जहाँ नाट्यशास्त्र में रंगमंच और अभिनय की परंपरा का वर्णन मिलता है। राजस्थान में लोकनाट्य की उत्पत्ति भक्ति आंदोलन के दौरान हुई, जब भजन, कीर्तन और लोकगाथाओं के माध्यम से धर्म और संस्कृति का प्रचार किया जाने लगा। राजस्थान की लोकनाट्य परंपरा का मूल प्राचीन धार्मिक अनुष्ठानों, लोकगाथाओं और महाकाव्यों से जुड़ा है।

नाट्य शास्त्र में नाटक की उत्पत्ति '**नट**' **धातु** से मानी गई हैं। जहां पात्र अपने स्वभाव या स्वरूप को त्याग कर प्रभाव ग्रहण करें तो यह नाट्य या रूप हो जाता है। नाटक रूपक का एक महत्वपूर्ण प्रकार है। भारतीय लोक साहित्यकारों ने लोकनाट्य के मूल शब्द 'लोक' को पारंपरिक अर्थ के रूप में ग्रहण किया। 'नाटक' संस्कृत में पुरुष वाचन शब्द है जो **नट, नर्तने धातु के** '**ष्यम्**' **प्रत्यय** लगने पर बनता है जिसका अर्थ है-**नर्तने, अभिनय कला, स्वांग तथा अनुकरणात्मक अभिनय।**

लोकनाट्य से पूर्व लोक शब्द का अर्थ जानना आवश्यक था क्योंकि लोकनाट्य- '**लोक**' तथा '**नाट्य**' इन दो शब्दों के मेल से मिलकर बना है, लोक वांग्मय की समस्त विधाओं में लोक नाटकों का अति-महत्वपूर्ण स्थान है। लोकनाट्य सामाजिक प्रतिभा की उपज होता है, भारतीय लोकनाट्य के लिए किसी ने कोई शास्त्र नहीं रचा है। लोकनाट्य सदैव क्षेत्रीय भाषाओं में ही लिखे जाते हैं। जिन लोकनाट्य में क्षेत्रीय रंग ना हो वे लोकनाट्य का स्थान प्राप्त नहीं करते। लोकनाट्य के संबंध में डॉक्टर श्याम परमार लिखते हैं-''**लोकनाट्य से तात्पर्य नाटक के उस रूप से है जिसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्वसाधारण के जीवन से हो और जो परंपरा से अपने-अपने क्षेत्र के जन समुदाय के मनोरंजन का साधन रहा है।**''

लोकजीवन के संस्कार ही लोकनायक के स्रोत होते हैं। धार्मिक अनुष्ठान, मेले, त्यौहार आदि लोकानुरंजन ऐसे मूल बिंदु हैं जिनमें लोकनाट्य का उद्भव होता है। लोकनाट्यों का यह स्रोत सामूहिक जीवन से बनता है। संपूर्ण भारत के अंतर्गत लोकनाट्य के विभिन्न रूप देखे जा सकते हैं। प्रत्येक प्रदेश के अपने लोकनाट्य होते हैं जिनके अंतर्गत उस देश की संस्कृति को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है, संपूर्ण राजस्थान लोकनाट्य बहु-रूपी और बहुरंगी है। अरावली के पर्वतीय क्षेत्रों में भीलों, मीणों, बनजारों, सहरियों तथा गरासियों की रंगमयी संस्कृति की झलक देखने को मिलती है। इसका प्राकृतिक परिवेश तथा देवी-देवताओं में आस्था जीवन नृत्यों, नाट्यों तथा रंगीन परिधान में डूबी संस्कृति का कारण है।

राजस्थान में विभिन्न प्रकार की लोकनाट्य परंपराएँ

प्रचलित हैं, जिनमें प्रमुख हैं-

1. ख्याल
2. रासलीला
3. झम्मा
4. गवरी
5. तमाशा
6. भगत
7. माच
8. नौटंकी

'ख्याल' राजस्थान की अद्वितीय लोकनाट्य परंपरा :-

'ख्याल' राजस्थान के लोकनाट्य की एक विशिष्ट शैली है, जिसमें गीत, संवाद और अभिनय का समृद्ध समावेश होता है। यह मुख्यत: वीर रस और श्रृंगार रस पर आधारित होती है, जिसमें पौराणिक और ऐतिहासिक कथाओं का मंचन किया जाता है। ख्याल की लोकनाट्य शैली पारंपरिक नाटकों से भिन्न है, क्योंकि इसमें मंच, वस्त्राभूषण और सजावट की औपचारिकता कम होती है। इस शैली को खानाबदोश कलाकारों, ग्रामीण भाटों और कथावाचकों ने विकसित किया, जिनका उद्देश्य अपने प्रदर्शनों के माध्यम से लोक समुदाय का ध्यान आकर्षित करना था।

ख्याल की उत्पत्ति का श्रेय 17वीं-18वीं शताब्दी में जयपुर, टोंक, भीलवाड़ा और शेखावाटी के लोक कलाकारों को दिया जा सकता है। इसे विकसित करने में **घाघर कवि, ईसरदास,** और **सूर्यमल्ल मिश्रण** जैसे प्रमुख लोककवियों का योगदान महत्वपूर्ण था। जयपुर के उदय नट बिहारीलाल और टोंक के रामनाथ ख्यालिया जैसे कलाकारों ने इस कला के प्रचार-प्रसार में विशेष भूमिका निभाई। इन सभी लोकनाट्यों का स्वरूप भले ही अलग-अलग हो, लेकिन इनका मुख्य उद्देश्य मनोरंजन, सामाजिक संदेश और धार्मिक आस्था को जन-जन तक पहुँचाना होता है। ख्याल की गणना मंचीय नाटकों में की जाती है। ख्याल को **खेल, तमाशा** आदि नाम से जाना जाता है।

'ख्याल' लोकनाट्य परंपरा में वीरता, प्रेम, भक्ति और सामाजिक विषयों पर आधारित कथाओं का मंचन किया जाता है। प्रत्येक कथा किसी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक, पौराणिक, लोकगाथा या सामाजिक संदेश से संबंधित होती।

1. ऐतिहासिक कथाएँ (वीरता और स्वाभिमान पर आधारित कथाएँ):-

राजस्थान की भूमि हमेशा से वीरता और बलिदान की प्रतीक रही है। यहां के ऐतिहासिक नायकों की गाथाएँ नाटकीय तरीके से प्रस्तुत की जाती हैं ताकि समाज अपने गौरवशाली अतीत को याद कर सके और उससे प्रेरणा प्राप्त कर सके।

पृथ्वीराज चौहान :-

पृथ्वीराज चौहान और मोहम्मद गोरी के बीच हुए संघर्ष की कहानी, जिसमें पृथ्वीराज ने अद्वितीय वीरता दिखाई, परंतु अंतत: वह पकड़े गए। गोरी द्वारा उनकी आँखें फोड़ने के पश्चात, उनके मित्र चंदबरदाई ने एक योजनाबद्ध उपाय निकाला, जिससे पृथ्वीराज ने शब्दभेदी बाण से गोरी का अंत कर दिया।

पंक्ति:-

''पृथ्वीराज बलवान बड़ा,
दिल्ली री धरती रो शेर ।
सेंध लगाई मोहम्मद ने,
मिट गयो दिल्ली को ढेर।''

महाराणा प्रताप :-

हल्दीघाटी के युद्ध की महाकविता में महाराणा प्रताप की संघर्षशील गाथा और उनके प्रिय घोड़े चेतक के बलिदान का वर्णन किया जाता है।

पंक्ति :-

''हल्दी घाटी रण में,
प्रताप खड़ग संभाले।
अकबर री सेना डोली,
कुंभलगढ़ के थारे भाले।''

अमरसिंह राठौड़ :-

अमरसिंह राठौ की गाथा उनके अद्‌भुत साहस और अपने राजा की रक्षा के लिए उनकी अनन्य निस्वार्थता को व्यक्त करती है। वह अपने कीर्ति और बलिदान के लिए सदैव याद किए जाते हैं।

पंक्ति :-

''दिल्ली री सभा में,
अमरसिंह राठौड़।
खड़ग उठायो हाथ में,
मुगल री काटी जकड़।''

2. पौराणिक कथाएँ (धार्मिक और नैतिक शिक्षा पर आधारित कथाएँ):-

महाभारत:- अभिमन्यु वध

कौरवों ने अभिमन्यु को चक्रव्यूह में फँसा कर उसकी

हत्या की। यह कथा नायकत्व, संघर्ष और बलिदान के अद्‌भुत उदाहरण को प्रस्तुत करती है।

पंक्ति–

''रण में घुस्यो वीर अभिमन्यु,
सातों ओर जाल बिछायो।
कर्म और भाग्य री लड़ाई में,
वीर पुत्र बलिदान दे आयो।''

रामायण :– सीता हरण

रावण ने सीता का अपहरण कर लिया है, और श्रीराम उन्हें पुनः प्राप्त करने के लिए अपने प्रयास करते हैं।

पंक्ति–

''लक्ष्मण रेखा पार कर बैठी,
माया में फँसी जानकी।
राम के बिन जग सूना लागे।
रावण करे मनमानी।''

श्रीकृष्ण लीला :– गोवर्धन पर्वत उठाना

जब इंद्रदेव ने गोकुल पर प्रचंड बारिश की, तब श्रीकृष्ण ने अपनी छोटी अंगुली पर गोवर्धन पर्वत उठाकर गाँववासियों की रक्षा की।

पंक्ति–

''श्याम उठायो गिरधारी,
सात दिन तक थाम रह्यो।
बृज के बालक–बालिका,
गोवर्धन छाँव में रह्यो।''

3. लोकगाथाएँ (राजस्थान की लोकप्रिय प्रेम और वीरता की कथाएँ):–

ढोला–मारूः–

ढोला और मारू की यह प्रेमगाथा है, जिसमें ढोला तो दूसरी शादी कर लेता है, लेकिन अंततः अपने सच्चे प्रेम मारू को फिर से अपनाता है।

पंक्तिः–

''ढोला–मारू री प्रेम कहानी,
सदियों तक अमर रहे।
रेगिस्तान में ऊँट की सवारी,
प्रेम री साखा बहे।''

पन्नाधायः–

पन्नाधाय ने अपने बेटे का बलिदान देकर राणा उदय सिंह की जान बचाई और राजपूतों के गौरव को सुरक्षित रखा।

पंक्ति–

''पन्ना ने बलि दे दी,
मातृभूमि के नाम।
राजपूत कुल की लाज रखी,
कर दी दुनिया चकित तमाम।''

4. सामाजिक कथाएँ (समाज सुधार और समसामयिक मुद्दों पर आधारित कथाएँ):–

स्त्री शिक्षाः–

एक छोटे से गाँव में एक लड़की है जो शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखती है, लेकिन समाज की रूढ़िवादिता उसे रोकने का प्रयास करती है। हालाँकि, जब वह अपने ज्ञान के बल पर गाँव की दशा सुधारती है, तब लोग शिक्षा के महत्व को समझने लगते हैं।

पंक्ति–

''लड़की पढ़सी,
गाँव उजास होसी।
ज्ञान रो दीप जलसी,
घर–घर प्रकाश होसी।''

दहेज प्रथा :–

पंक्ति–

''दहेज री आग में,
कितने कुल जळ्या।
एक दिन ए समाज जागसी,
दहेज री रीत बदलया।''

जातिवाद और सामाजिक समानताः–

जातिवाद की कुरीतियों को उजागर करते हुए एक विचार प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें यह कहा जाता है कि सभी मनुष्य समान हैं। जाति–व्यवस्था से ऊपर उठकर समाज को एकजुट होकर सोचने की आवश्यकता है।

पंक्ति–

''कर्म ही जात,
परिश्रम ही धरम।
मानवता के पथ पर चलसी,
सफल होसी हर जनम।''

राजस्थान की ख्याल लोकनाट्य परंपरा में इन सभी कथाओं का मंचन किया जाता है। वीरता, प्रेम, भक्ति और समाज सुधार के संदेश देने वाली इन कथाओं का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि लोकजागरण और सांस्कृतिक धरोहर को जीवित

रखना भी है। आधुनिक समय में ख्याल की यह परंपरा धीरे-धीरे लुप्त हो रही हैं।

मंच प्रदान ख्यालों को '**माच के ख्याल**' कहते हैं। इन खेलों के मंच अपनी कलात्मक आकर्षण सजा विशेष मंचीय बनावट तथा अट्टालीनुमा झरोखों के लिए प्रसिद्ध है। राजस्थान में माच के ख्यालों मैं 'तुर्रा कलंगी' के ख्याल ही अधिक प्रचलित रहे हैं। जैसलमेर तथा बीकानेर की ओर **ख्यालों को रमत, रम्मत अथवा रामत** कहते हैं। मेवाड़ की और ख्यालों को रामधारी भी कहते हैं। ख्यालों का एक नाम 'टप्पा' भी पढ़ने में मिलता है। साथ ही स्थान विशेष के आधार पर भी ख्यालों के नामकरण रखे गए हैं। जैसे किशनगढ़ के किशनगढ़ी रंगत के ख्याल, नागौर के नागोरी पट्टी के ख्याल। क्षेत्र विशेष के आधार पर भी ख्यालों के अलग-अलग नाम प्रचलित है। **शेखावाटी प्रदेश में शेखावाटी ख्याल, मारवाड़ में मारवाड़ी अलीबक्षी ख्याल,** अलवर की ओर विशेष रूप से प्रचलित रहे हैं। अलीबक्षी के नाम पर तो ख्यालों की एक रंगती चल पड़ी जो अलीबक्षी रंगत के नाम से लोकप्रिय है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो इन खयालों का विषय लोक जीवन के ऐतिहासिक धरातल पर पूर्णतया कसा हुआ होता है। लोक गाथाओं में वर्णित नायक ऐसे ख्यालों के सर्वाधिक प्रिय विषय बन जाते हैं। इनमें राजा विक्रमादित्य, अमर सिंह राठौड़, गोगाजी चौहान, देवनारायण जी, तेजाजी, रामदेव जी आदि ख्याल विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

इन ख्यालों का मूल उद्देश्य है समझ में व्याप्त बुराइयों एवं कुप्रथाओ तथा उससे उत्पन्न दुष्परिणामों का खुला चिट्ठा वर्णित रहता है। अनमेल विवाह, नाजायज रिश्ते-नाते, नशाखोरी, जादू-टोना आदि इन ख्यालों के मुख्य विषय है। साथ ही धार्मिक ख्याल भी खेले जाते हैं जिनमें रुक्मणी मंगल, भक्त पूरणमल, राजा हरिश्चंद्र, सती नल दमयंती, भक्त सुदामा, द्रोपती स्वयंवर आदि।

राजस्थान के भौगोलिक अंतर के कारण प्रत्येक अलग-अलग क्षेत्र में खेली जाने वाली ख्यालों की अपने-अपने रूप एवं विशेषताएं हैं। साथ ही अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्र में खेले जाने वाले ख्यालों का अपना अलग-अलग महत्व है, और यह भी कई प्रकार के होते हैं। जैसे-कुचामनी ख्याल, शेखावाटी ख्याल, जयपुरी ख्याल, खेल ख्याल, कन्हैया ख्याल, तुरा कलगी ख्याल आदि ।

कुचामनी ख्याल के प्रवर्तक प्रसिद्ध नाटककार लच्छीरामजी ने किया। ख्याल परंपरा में उन्होंने अपनी शैली का समावेश किया। लच्छीराम द्वारा रचित ख्यालों में से चांद, नीलगिरी, राव रिडमल, तथा मीरा मंगल प्रमुख है। साथी उगमराज जी का भी कुचामनी ख्याल में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कुचामन का रूप ओपेरा के जैसा होता है। इसके लोकगीतों की प्रधानता रहती है। इसका प्रदर्शन मुक्त काशी होता है साथ ही इसमें स्त्रियों के सभी चित्रों का अभिनय पुरुष पात्रों के द्वारा ही किया जाता है इस ख्याल के मंचन के लिए ढोल वादक, शहनाई वादक, ढोलक व सारंगी वादक मुख्य सहयोगी होते हैं। साथ ही इन खयालों की भाषा सरल होती है तथा सामाजिक व्यंग्य पर समाज में फैले कुरीतियों जैसे विषय चुने जाते हैं।

शेखावाटी ख्याल के प्रवर्तक चिड़ावा निवासी नानूराम को माना जाता है। इनके स्वरचित ख्यालों में हरी रौझा, हरीचंद्र, भर्तृहरि, जयदेव कलाली को प्रमुख प्रसिद्धि मिली है साथ ही ढोला मार्च और आल्हादेव इनके लोकनाट्य शैली की मुख्य विशेषता रही है। पद संचलन भी प्रभावी रूप में हुआ है पुणे राम उनकी भाषा शैली संप्रेषण रहीं हैं और गीत गायन भी। शेखावाटी ख्याल के मंचन के लिए प्रमुख वाद्य यंत्रों में हारमोनियम, सारंगी, बांसुरी, नकारा तथा ढोलक का उपयोग होता है। शेखावाटी इलाके में नानूराम के शिष्य ढूलिया राणा के ख्याल बहुत अधिक लोकप्रिय रहे हैं गीतमय संवाद उनके ख्यालों को साहित्य तथा लोकमंचन के अनुकूल बनाते हैं। धूलिया राणा के परिवार के सदस्य ही इन खयालों में होने वाले व्यंग्य का वहन करते हैं।

जयपुरी ख्याल जिसमें गुणिजन खान के कलाकार इन जयपुर के ख्यालों में भाग लेते हैं। इन खयालों की कुछ अपनी निजी विशेषताएं होती थी जो कि इनको अन्य ख्यालों से भिन्न बनातीं हैं। इस ख्याल में स्त्री पात्रों की भूमिका का निर्वहन स्त्रियां भी करती हैं। एक तरफ कुचामनी ख्याल आदि ग्रामीण अंचल में खेले जाते जहां स्त्री के हक की बात भी पुरुष पात्र करता हैं। मंची प्रस्तुति से वही जयपुरी ख्याल जो कि शहरी परिवेश में होने के कारण बाकी जगह के ख्यालों से भिन्न है जहां स्त्री पात्रों का अभिनय स्वयं स्त्रियों के द्वारा किया जाता है साथ ही इन ख्यालों में नए-नए प्रयोग की अत्यधिक संभावना होती हैं। इनमें समाचार, पत्रों, कविता, संगीत, नृत्य, गायन, अभिनय का सुंदर सभा में देखने को मिलता हैं।

इस शैली के कुछ लोकप्रिय ख्याल जीजी जोगन, कान

गुजरी, मियां-बीवी, पठान, रसीली, तंबोलन आदि है। हेला-ख्याल दोसा लालसोट व सवाई माधोपुर क्षेत्र का प्रसिद्ध लोकनाट्य है। इस ख्याल के प्रमुख प्रेरक शेयर हेला थे। बम बड़ा नगाड़ा के प्रयोग के साथ इस ख्याल का प्रारंभ होता है। साथ में 9:00 बजे जाता है इस ख्याल की प्रमुख विशेषता दिला देना लंबी टायर में आवाज देना है। हेला ख्याल के बाद आता है-कन्हैया ख्याल। जो की करौली, सवाई माधोपुर, धौलपुर, भरतपुर व दोसा क्षेत्र का प्रसिद्ध लोकनाट्य है। इस ख्याल में कहीं जाने वाली मुख्य कथा को श्कहनश तथा मुख्य पात्र को 'मेडिया' कहते हैं।

तुरा कलंगी ख्याल जो की मेवाड़ के शाह अली और दक्कन गिर नमक संत पीरों ने 400 वर्ष पूर्व तुरा कलंगी की रचना की। तुराको शिव और कलंगी को पार्वती का प्रतीक माना जाता है। सुख नगरी तुरा के तथा चली कलंगी के पक्षकार थे। इनके शिव शक्ति संबंधी विचारों को लोगों तक पहुंचाने का मुख्य माध्यम कायम किया जिन्हें दंगल के नाम से जानते हैं। उनके संवादों को 'बोल' कहते हैं और यह काव्यात्मक होते हैं। तुर्रा कलंगी के सर्वप्रथम खेले गए ख्याल का नाम तुर्रा कलंगी का ख्याल था इसकी प्रकृति गैर व्यावसायिक है। 20 फीट ऊंचा रंग-मंच बनाकर उसकी राजस्थानी शैली में भरपूर सजावट की जाती है। इसमें चंग बजाया जाता है। इस ख्याल के मुख्य केंद्र घोसुंडा, चित्तौड़, निम्बोंहेडा तथा नीवमच (मध्य-प्रदेश) है। इन स्थानों पर इस ख्याल के सर्वश्रेष्ठ कलाकार सोनी जयदयाल चेतराम, हामिद बाग ताराचंद, तथा ठाकुर ओंकार सिंह आदि है। क्या हिंदू मुस्लिम एकता का प्रतीक है।

निष्कर्ष ख्याल :-

राजस्थान लोकनाट्य का एक प्रकार 'ख्याल' नाम से जाना जाता है। इसकी गणना मंचीय नाटकों में की जाती है। ख्याल, खेल, तमाशा आदि ख्यालों के नाम है। सर्वप्रथम कल्पना और विचारों से उत्पन्न कविता रचने का ही दूसरा नाम था परंतु जब से वह रंगमंच पर खेल तमाशा का रूप धारण करने लगा यह **'खेल या ख्याल'** कहलाया।

भारतीय नाट्य परंपरा में लोकनाट्य के विविध रूप विकसित होते रहे हैं। यह लोकनाट्य जीवंत है। भारत में नाटक की एक प्राचीन परंपरा है। लोकनाट्य के दो रूप प्रचलित रहे हैं - एक लौकिक तथा दूसरा धार्मिक, लोकनाट्य प्राय तथा गायन से शुरू होता है। लोकनाट्य का मूल स्रोत लोकजीवन है। लोकनाट्य प्रचारित लोक गाथाओं पर आधारित होते हैं राजस्थानी ख्यालों की भाषा मुख्य राजस्थानी ही रही है।

संक्षेप में राजस्थान की ख्याल संपदा बड़ी समृद्ध और स्वस्थ रहें ख्यालों की यह परंपरा इसी प्रकार रह पाएगी... यह कहना जरा कठिन लग रहा है।

शोधार्थी
एम.फिल (हिंदी विभाग)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
ईमेल-anchal.jsrsolutions@gmail.com

सन्दर्भ ग्रंथ

1. डॉ. विक्रम सिंह भाटी, 'राजस्थान लोकनाट्य ख्याल' संपादक संस्करण, 2022
2. बेदी, डॉ. सुषम 'हिंदी नाटक प्रयोग के संदर्भ में', प्रकाशन-पराग दिल्ली
3. भनावत, डॉ. महेंद्र 'लोकनाट्य परंपरा और प्रवृत्तियां' प्रकाशक बाफना प्रकाशन, जयपुर संस्करण 1972
4. मलिक, डॉ. शांति 'भारतीय भाषाओं का नाट्य साहित्य' प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस संस्करण 2010
5. डॉ. दया कृष्ण 'राजस्थानी काव्य में श्रृंगार भावना' प्रकाशक-जगदीश प्रकाशन अजमेर संस्करण 1971

लक्ष्मी

सुभद्रा कुमारी चौहान की कहानियां और स्त्री मन

शोध-सार : सुभद्रा जी की कहानियाँ समाज के रीति-रिवाजों और परंपराओं से ग्रस्त स्त्रियों की भिन्न-भिन्न मनोदशाओं को व्यक्त करने के साथ-साथ उनके संघर्ष और विद्रोह को अभिव्यक्ति देकर समाज की इन परंपराओं और रीति-रिवाजों पर प्रश्न चिन्ह खड़े करती हैं। वे कभी माँ, पत्नी या प्रेमिका के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह भी करती हैं तो कभी अपने अस्तित्व एवं स्वाभिमान के लिए परिवार से लेकर समाज के हर उस संस्था से टकराती है जो उसकी स्वाधीनता के आगे आता है। यही कारण है कि स्त्री और देश की स्वाधीनता उनकी कहानियों का केन्द्रीय विषय रहा है।

बीज-शब्द : स्वाधीनता, स्त्री, रूढ़ि, विद्रोह, स्वाभिमान, पीड़ा, परिवार, गुलामी, मर्यादा, मृत्यु।

मूल-लेख : ''इंसान- इंसान के बीच समानता और सम्मान की दृष्टि ने उन्हें न केवल एक महान रचनाकार बनाया, बल्कि उनके व्यक्तित्व को उदात्त बनाया और वह अपने समय में राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम के साथ-साथ मानव मुक्ति की प्रवक्ता के रूप में प्रस्तुत हुई। अल्पसंख्यक समुदाय हो, दलित समाज हो या रूढ़िबद्ध चारदीवारी में बंद स्त्री मुक्ति का सवाल हो, ये अपने व्यवहार और लेखनी के जरिए सबके साथ खड़ी दिखाई दी।"[1]

नमिता सिंह द्वारा लिखित ये पंक्तियां सुभद्रा कुमारी चौहान के लेखन के उद्देश्य को स्पष्ट करती हैं। सुभद्रा जी बचपन से ही विद्रोही स्वभाव की रहीं। उनका यह विद्रोही रूप हमें उनकी कहानियों में बहुत ही सहजता से दिखाई पड़ता है। जितनी आत्मीयता और वीरता से वे अपना काव्य संसार रचती हैं उसी प्रकार उनका गद्य साहित्य भी बहुत सहज और सीधे हृदय की गहराइयों में उतरने वाला है। उनकी कहानियों के विषय में सुधा चौहान ने सत्य ही लिखा है। जब वे लिखती हैं-''उनकी कहानियों में दो ही स्वर प्रमुख रूप से आए हैं, एक तो देश की पराधीनता से मुक्त करने वाले युद्ध का स्वर और दूसरा अपने स्वत्व की रक्षा के लिए संघर्षरत नारी का स्वर।''[2]

यह सच ही है कि उनकी कहानी कहीं से भी गढ़ी हुई नहीं लगती। सुभद्रा जी जीवन के यथार्थ धरातल से विभिन्न घटनाओं को एकत्रित करके उसे कहानियों के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। तभी तो उनकी कहानियां पाठकों को स्वयं से जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं। पाठक स्वयं उनकी कहानियों का हिस्सा महसूस करने लगते हैं, विशेष कर स्त्रियों के जीवन पर आधारित कहानियों के संदर्भ में।

जिस दौर में सुभद्रा कुमारी जी लिख रही थीं उस समय देश पराधीनता के खिलाफ और मुक्ति के लिए कई तरह के आंदोलनों को एक साथ लेकर चल रहा था। स्वाधीनता आंदोलन के केंद्र में राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न होने के साथ-साथ देश में जाति, वर्ग, धर्म और स्त्री आदि की समानता को लेकर भी विरोध के स्वर तेजी से आगे बढ़ रहे थे। तभी तो चाहे स्वाधीनता आंदोलन में महिलाओं का योगदान हो या स्वयं अपने अधिकारों के प्रति सचेत होकर अपने हक के लिए उठाए जाने वाले स्वर हों, सभी में स्त्रियों की भूमिका अविस्मरणीय रही। सदियों से परंपरा और रीति-रिवाजों के बंधनों को तोड़कर स्वयं को समाज में स्थापित करके अपने लिए सोचने और निर्णय लेने का साहस जुटाती रहीं।

स्त्री मन के इन्हीं विभिन्न रूपों को सुभद्रा जी अपनी कहानियों में अलग-अलग नामों से प्रस्तुत करती हैं। जिसमें कभी वह करुणामयी मां के मन को प्रस्तुत करती हैं तो कभी समाज की बनाई रूढ़ियों को तोड़कर अपने प्रेम को स्वीकार

करती हुई पत्नी। जब बात देश के प्रति सर्वस्व न्योछावर करने की हो तो भी इनकी नायिका निर्णय लेने में तनिक भी देर नहीं करती। नारी के मन की ऐसी विभिन्न छटायें हमें अन्यत्र कम ही देखने को मिलती हैं।

जिस समय पूरा देश स्वाधीनता आंदोलन के संघर्ष में किसी न किसी रूप में अपनी भागीदारी निभा रहा था, ऐसे में देश की आधी आबादी के बीच भी मुक्ति के स्वर तेज होते दिखाई पड़ रहे थे। वे भी देश की आजादी की लड़ाई में अपनी सहभागिता निभाने से पीछे नहीं थी, जिसके लिए चाहे उसे समाज और परिवार के विरुद्ध ही क्यों न जाना पड़े। सुभद्रा जी की 'गौरी' कहानी ऐसी ही कहानी है जिसमें गौरी के पिता अपनी विवाह योग्य पुत्री के लिए योग्यवर की तलाश में है। परंतु धन के अभाव के कारण उनके पास दो बच्चों के पिता सीताराम जी का रिश्ता आता है जो कांग्रेस दफ्तर में सेक्रेटरी का काम करते हैं और तीस रुपये महीना कमाते हैं। कांग्रेसी कार्यकर्ता होने के कारण वे कभी भी जेल जा सकते हैं। उनके विषय में राधा कृष्ण अपनी पत्नी से कहते हैं- ''उन्हें बुला तो आया हूं। अगले इतवार को आवेंगे, जिससे तुम भी देख लो। आने के लिए भी तो वे बड़ी मुश्किल से तैयार हुए। कहने लगे, नहीं साहब! मैं लड़की देखने ना आऊंगा। इस तरह लड़की देखकर मुझसे किसी लड़की का अपमान नहीं किया जाता।''[3] अनजान व्यक्ति के ऐसे विचार जानकर गौरी का हृदय उनके प्रति श्रद्धा से झुक गया। यदि धन का अभाव न होता तो राधाकृष्ण ही क्या दुनिया का कोई भी पिता अपनी बेटी का विवाह ऐसे व्यक्ति से नहीं करना चाहेगा जो पहले से ही दो-दो बच्चों का पिता हो। परंतु विवशता मनुष्य के अंदर उचित-अनुचित का भेद समाप्त कर देती है। इसी स्थिति के चलते राधाकृष्ण जी भी गौरी का विवाह करने के लिए विवश दिखाई पड़ते हैं। साथ ही साथ वे लगातार दूसरे विकल्प खोजने में भी लगे रहते हैं। इसी बीच उन्हें एक अन्य रिश्ता मिलता है जिसे पाकर गौरी के माता-पिता अधिक संतुष्ट और प्रसन्न नजर आते हैं। लड़का 24-25 साल का बी.ए. पास और नायाब तहसीलदार के पद पर नियुक्त है। परंतु गौरी उन सामान्य लड़कियों में से न थी जो केवल जीवन की भोग विलासिता को ही अपना लक्ष्य मानती है। उसका मन अभी भी सीताराम जी की ओर ही आकृष्ट था। उसके मन की व्यथा को सुभद्राजी व्यक्त करते हुए लिखती हैं-''रह रहकर उसे उन बच्चों का भोला-भाला मुंह और मीठी मीठी बातें याद आ जातीं। साथ ही याद आ जाते विनिमयी, नम्र और सादगी की प्रतिमा सीताराम जी। उनकी याद आते ही श्रद्धा से गौरी का माथा अपने आप ही झुक जाता। देशभक्त त्यागी वीरों के लिए उसके हृदय में बड़ा सम्मान था। सीताराम जी ने भी तो देश के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया है, नहीं तो बी.ए. पास करने के बाद क्या प्रयत्न करने पर उन्हें नायब तहसीलदार की नौकरी न मिल जाती? मिलती क्यों नहीं? पर सीताराम जी सरकार की गुलामी पसंद करते तब न?''[4]

गौरी के लिए पद और पैसा ही सब कुछ नहीं है। उससे भी बड़ा है उसका आत्म-स्वाभिमान, उसकी स्वतंत्रता। ये विचार गौरी के ही नहीं हैं बल्कि स्वयं लेखिका भी इन्हीं सिद्धांतों को मानते हुए अपने जीवन पथ पर आगे बढ़ रही थी। गौरी के विवाह से कुछ समय पूर्व ही उसके होने वाले ससुर की मृत्यु हो जाने के कारण साल भर के लिए विवाह टल जाता है और इसी बीच गौरी को एक दिन अखबार से पता चलता है कि राजद्रोह के आरोप में सीताराम जी को गिरफ्तार कर लिया गया है और उन्हें एक साल की सजा दी गई है। इस खबर को पढ़कर गौरी परेशान हो जाती है। परंतु कुछ ही क्षण में वह अपने कर्तव्य को बड़ी दृढ़ता से निश्चित करके अपनी मां को अपना फैसला सुनाते हुए कहती है-''मां मैं कानपुर जाऊंगी।''[5] और संकल्प पर कायम रहते हुए वह आगे कहती है-''नहीं मां मैं पागल नहीं हूं। बच्चों को तुम भी जानती हो। उनके पिता को राजद्रोह के मामले में साल भर की सजा हो गई। बच्चे छोटे हैं। मैं जाऊंगी माँ। मुझे जाना ही पड़ेगा।''[6]

'मुझे जाना ही पड़ेगा' वाक्य गौरी के दृढ़ निश्चय को दर्शाता है। साथ ही यह भी दर्शाता है कि भारतीय स्त्री अपने माता-पिता की इज्जत और सम्मान के लिए सदा अपने मस्तक को झुका कर उनके निर्णय का आदर करती है। परंतु जब बात देश की आती है तो वह अपना सर्वस्व बलिदान करने से भी पीछे नहीं हटती, बिना इस बात की परवाह किए कि समाज क्या कहेगा। क्योंकि यह उसका आत्मनिर्णय है।

शुरू से ही स्त्री और धरती को समान रूप से व्याख्यायित किया जाता रहा है। दोनों ही बिना किसी विरोध के जितना सहन कर सकती हैं उतना वे सहन करती हैं। एक मां के रूप में तो स्त्री की सहनशीलता की गहराई को मापना जैसे असंभव ही है। इतिहास हमेशा साक्षी रहा है कि स्त्रियां स्वयं अनगिनत कठिनाइयों को झेल कर भी अपनी संतान को सुरक्षित रखने का प्रयास करती रही हैं। सुभद्रा जी ने व्यक्तिगत जीवन के

साथ-साथ समाज में घटित अनेक घटनाओं को कहानी के रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी चाहे 'मंगला' कहानी की माँ हो, जो अपनी पुत्री के विवाह और विदाई के उपरांत अपनी पुत्री की सारी यादों को एक-एक कर जीना चाहती है। वह मां अपनी तुलना उस चिड़िया से करती है जिसके बच्चों ने उड़ना सीख लिया है और वे स्वच्छंद आसमान में बिना माँ के सहारे उड़ गए हैं। यह पीड़ा उस लेखिका की भी है जिसने अपने पति के जेल में रहते हुए उनकी अनुपस्थिति में बेटी के विवाह की सारी जिम्मेदारियों का निर्वाह किया और अकेले ही बेटी को विदा किया। अपनी इसी व्यथा को वे कहानी की मां के द्वारा व्यक्त करते हुए लिखती हैं-''पर बेटी को विदा करके माँ क्या करे? वह तो बेटी के साथ ससुराल नहीं जा सकती और ना ही घर ही छोड़ सकती है। जिस घर की एक-एक चीज में मंगला की याद समायी है, एक-एक फूल पत्ती में वह दिखती है, उसी घर में आज मंगला नहीं और मैं हूं।''[7] बेटी को जन्म से लेकर युवावस्था तक पाल-पोसकर उसको विवाह के उपरांत किसी और को सौंपना दुनिया का सबसे पीड़ादायी क्षण होता है। माँ का हृदय जितना कोमल होता है उतना ही समय आने पर वह कठोर भी होना जानती है। बेटी के बेहतर भविष्य की कल्पना करके माँ स्वयं को कठोर भी बनाती है।

मां का ऐसा ही कठोर रूप हमें इनकी एक अन्य कहानी 'रूपा' में दिखलाई पड़ता है। इसमें एक 24-25 साल की युवती रूपा पर अपनी ही 6 साल की बेटी की हत्या का आरोप है। कहानी की कथावाचक, जो एक राज बंदिनी है, रूपा को देखकर इस सत्य को स्वीकार ही नहीं कर पाती। उसे लगता है कि एक मां कभी भी अपनी संतान की हत्यारिन नहीं हो सकती, वह स्वयं अपने प्राण दे देगी परंतु अपने संतान को हर कष्ट से बचाएगी। इसलिए वह सोचती भी है-''पर मुझे उसका रोना, उसकी विषाद भरी आंखें, उसका चेहरा भूलता न था। मन कहता था कि वह हत्यारिन नहीं है, पर मेरी आंखों के सामने वह फांसी वार्ड में गई, हत्या के जुर्म में पकड़कर आई, फिर अविश्वास के लिए कहां जगह थी?''[8] परंतु जरूरी नहीं होता कि जो दिखाई देता है हमेशा वह सत्य ही हो। कई बार व्यक्ति अपनी विवशताओं और जीवन की कठिनाइयों से हताश होकर अमानवीय कदम उठाने को विवश हो जाता है।

जो स्त्री दूसरों के बच्चे पर स्नेह रखती है वह स्वयं अपनी संतान को कैसे मार सकती है, यह सवाल सहज ही मन को परेशान करने लगता है। इसलिए कहानी की कथावचिका रूपा पर जोर डालकर सच जानने का प्रयास करती है। रूपा बताती है कि उसकी बेटी साफ नहीं बोल पाती थी, जिसके चलते बाकी बच्चे और बड़े उसकी बेटी को बहुत परेशान किया करते थे। बेटी की इस बीमारी का इलाज करवाने में भी काफी रुपयों की आवश्यकता थी। इसलिए रूपा का पति कमाने के लिए शहर चला गया परंतु उसकी भी कोई खबर नहीं मिली। रूपा अकेले ही मेहनत मजदूरी करके अपना और बेटी का भरण पोषण करने लगी। एक दिन जब उसने देखा कि बच्चे और बड़े मिलकर उसकी बेटी को साफ ना बोलने के कारण चिढ़ा रहे हैं तो ऐसी स्थिति में वह परेशान हो गई और सोचने लगी कि यदि मैं मर गई तो मेरी इस बेटी का क्या हाल होगा। लोग उसे ऐसे ही परेशान करके उसका जीना दूभर कर देंगे। बस यही सोचकर उसने अपनी और अपनी बेटी की जीवन लीला को कुएं में कूद कर समाप्त करने की कोशिश की। परंतु व्यक्ति जो सोचता है वही हो ऐसा जरूरी नहीं होता। रूपा ने भी अपनी और अपनी बेटी की मृत्यु की इच्छा की ताकि वह अपनी बेटी को भविष्य में आने वाले संकटों और परेशानियों से बचा सके तथा स्वयं भी उसके दुखों को देखने के लिए जीवित न रहे। लेकिन रूपा बच गई और समाज में अपनी ही बेटी की हत्यारिन बन गई। परंतु किसी ने भी उसकी विवशता और पीड़ा की कल्पना नहीं की। समाज सिर्फ परिणाम देखा है उसके पीछे की परिस्थितियों नहीं। यदि विपरीत स्थिति ना होती तो रूपा ही क्या कोई भी मां अपनी संतान का अहित करना तो दूर उसकी कल्पना तक नहीं कर सकती। जब माँ को अपने बच्चों का भविष्य असुरक्षित लगता हो तो वह क्रूर से क्रूर फैसला करने से भी पीछे नहीं हटती। अपनी इसी पीड़ा और भय को व्यक्त करते हुए रूपा कहती है- ''सोचा अभी छोटी है, समझती कम है, जब बड़ी होगी तब गोपा को कितना बुरा लगेगा, मेरी गोपा दुखी हो जाया करेगी और कहीं मैं मर गई तो... फिर बहन जी! मेरे मरने के बाद गोपा की जो दुर्दशा होगी उसे सोचकर मैं पागल हो गई और उस दुर्दशा तक गोपा न पहुंच सके, इसलिए...।''[9]

अपने बच्चों के भविष्य में होने वाली दुर्दशा की आशंका ने उसके ममता से भरे हृदय को ऐसा फैसला लेने के लिए विवश किया। ऐसी विवशता रूपा की ही नहीं बल्कि उन तमाम माता की होती होगी जिनकी संतान शारीरिक या मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं होती। उन्हें पता होता है कि यह समाज ऐसे बच्चों के लिए कभी भी सहयोगी नहीं होता और ऐसे बच्चे

हमेशा ही शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न का शिकार होते हैं, विशेष कर अगर वह लड़की है तो इसकी संभावनाएं और अधिक बढ़ जाती हैं। इसलिए रूपा जानती है कि जिस समाज में वह रह रही है वहां सामान्य लड़कियों को ही इज्जत के साथ जीने का अधिकार नहीं है तो उसकी हकला कर बोलने वाली बेटी का भविष्य में क्या हश्र होगा।

जिस प्रकार सुभद्रा जी ने एक मां के हृदय को या समय आने पर स्वतंत्र निर्णय लेने वाली युवती को दर्शाया है उसी प्रकार वे अपनी कहानियों से यह भी स्थापित करती हैं कि स्त्री उस पौधे के समान है जिसे भरपूर हवा, धूप और रोशनी की आवश्यकता होती है और यदि उसे यह सब ना मिले तो वह मुरझा जाता है। ठीक उसी प्रकार स्त्रियों को भी समाज में सम्मान और स्वाभिमान के साथ जीने एवं निर्णय लेने का अधिकार हो। वह पुरुष की दासी मात्र बनने की बजाय उसकी सहभागिनी बनकर जीए। उसे भी समाज में वही स्थान प्राप्त हो जो एक पुरुष को होता है। सदियों से स्त्रियों पर कभी रीति-रिवाज के नाम पर तो कभी परंपरा और कर्तव्य के नाम पर अंकुश लगाए जाते रहे हैं। वह अभी तक एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में अपने अस्तित्व को तलाशने में संघर्षरत है, जहां वह अपने रिश्तों को स्वयं गढ़ना चाहती है बिना किसी दबाव के। सुभद्रा जी की कई कहानियों की नायिकाएं कभी अपने आप से लड़ती हैं तो कभी परिवार और समाज से टकराती हुई दिखाई पड़ती है।

'उन्मादिनी' कहानी की नायिका को विवाह करके एक ऐसे व्यक्ति के साथ जाना पड़ता है जिसे वह बिल्कुल नहीं जानती और जिसे जानती है जिसके साथ हमेशा अपना सारा जीवन जीना चाहती है उस कुंदन को ना चाहते हुए भी छोड़कर जाना पड़ रहा है। जब कोई हमारे हृदय की गहराइयों में बसा हो तो उसे भूल पाना असंभव हो जाता है। ऐसी ही स्थिति कहानी की नायिका की है। वह अपने सुख सुविधाओं से सम्पन्न ससुराल में अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वाह पूरी निष्ठा के साथ करती है लेकिन उसके अंदर उमंग और उत्साह जैसे समाप्त हो गया हो। वह केवल काठ की एक कठपुतली के समान अपना समय व्यतीत कर रही होती है। जैसे ही वह अचानक कुंदन को अपने घर में देखती है, उसका मन चाहता है कि वह दौड़कर उसके पास पहुंच जाए। परंतु वह ऐसा नहीं कर सकती क्योंकि उसके पैर में मर्यादा की बेड़ियाँ पड़ी थी। कहानी की नायिका हीना के प्रति प्रेम ने ही कुंदन को हीना के घर में माली का काम करने को विवश किया ताकि वह कम से कम हीना के सामने तो रहे। माली का काम करते हुए कुंदन वहां बीमार पड़ गया। उसकी इस अवस्था के लिए हीना स्वयं को ही जिम्मेदार ठहराती है और स्वयं भी बीमार होने लगती है। शरीर से ज्यादा वह मन से पीड़ित है अपनी इसी पीड़ा को नायिका इस प्रकार प्रस्तुत करती है- ''किंतु वह क्या जानते थे कि भुवाली से भी अधिक स्वास्थ्य लाभ मैं कुंदन के समीप, केवल उसके सहवास से कर सकती हूं। मेरी दवा तो कुंदन है। भुवाली और शिमला मुझे वह स्वास्थ्य नहीं प्रदान कर सकते, जो मुझे कुंदन से केवल स्वतंत्रता पूर्वक मिलने जुलने से मिल सकता है। मैं उससे केवल स्वतंत्रता से बातचीत करना और मिलना जुलना चाहती थी और यह मेरे पतिदेव को स्वीकार न था।''[10]

अपने बाल सखा के साथ केवल स्वतंत्र रूप से मिलने जुलने और बात करने की इच्छा ही उसे सवालों के कटघरे में खड़ा कर देती है, क्योंकि अब वह किसी अन्य पुरुष की पत्नी है। लेकिन समाज यह भूल जाता है कि किसी भी रिश्ते से पहले वह एक मनुष्य भी है और उसकी भी कुछ इच्छाएं हो सकती हैं। जब किसी व्यक्ति की इच्छाओं पर अंकुश लगाने का प्रयास किया जाता है तो वह परंपरा और मर्यादा की बेड़ियों को तोड़कर विद्रोह कर उठता है। हीना ने भी जब कुंदन को बीमार हालत में घर से बाहर जाते हुए देखा तो वह भी अपने आप को उसके पीछे जाने से रोक ना पाई और अपनी इसी व्यथा को हीना इस प्रकार से व्यक्त करती है-''कदाचित जीवन की अंतिम सांसें गिन रहा था। उस समय ना तो कुल की मान-प्रतिष्ठा का ध्यान रहा, ना किसी के भय का और ना यही ध्यान रहा कि इतनी रात को लोग मुझे बाहर देखकर क्या कहेंगे।''[11]

ऐसी परंपरा और मर्यादा किस काम की जो व्यक्ति को अपने प्रिय जनों से दूर कर दे। भारतीय स्त्रियां इस पीड़ा को सदियों से सहती चली आ रही है। विवाह के पश्चात जैसे उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है, उसकी पहचान अलग हो जाती है। इसी शर्त के साथ उसके नए रिश्तों की शुरुआत होती है कि वह पुराने रिश्तों का त्याग कर देगी जिसको उसे समय-समय पर विभिन्न प्रकार की परीक्षा देकर सिद्ध करना पड़ता है।

मानव जीवन का अस्तित्व तभी तक संभव है जब तक वह प्रकृति को संजोए हुए हैं। प्रकृति के बिना व्यक्ति की कल्पना करना असंभव है। सदियों से मनुष्य प्रकृति की गोद में

विचरता हुआ आगे बढ़ा है और इतना आगे बढ़ा कि उसने समाज को दो भागों में बांट दिया–एक ग्रामीण समाज और दूसरा शहरी समाज। ग्रामीण समाज आज भी प्रकृति के नजदीक रहकर स्वच्छंद और सादा जीवन व्यतीत कर रहा है, वहीं दूसरी ओर शहरी जीवन में मनुष्य ने अनेक प्रकार के भौतिक संसाधनों को जुटाकर स्वयं को श्रेष्ठ घोषित कर दिया। ग्रामीण लोग उनकी नजरों में गंवारों की श्रेणी में रहे और ग्रामीणों की दृष्टि में शहरी जीवन वैभव और विलासिता का प्रतीक बन गया। शहर से संबंध होना उनके लिए सौभाग्य की बात होती। परंतु जब भी उन्होंने शहरी जीवन को जिया उसकी घुटन और जकड़न का सत्य उनके सामने आ गया। जहां व्यक्ति बिना अपने स्वार्थ के किसी से कोई संबंध नहीं रखता, पर्दे के नाम पर जहां स्त्रियों को घर की चार–दीवारी में कैद रखा जाता है। ऐसे ही शहरी जीवन पर सवाल उठाती उनकी कहानी है 'ग्रामीणा', जिसमें उन्होंने शहरी और ग्रामीण जीवन को प्रस्तुत किया है।

कहानी की नायिका सोना है जिसका विवाह शहर के एक संपन्न परिवार में कर दिया जाता है परंतु वह अपने आप को उस परिवेश में एक कैदी के समान महसूस करती है। घर में सभी भौतिक सुख सुविधा होने के बावजूद भी उसका मन बाहर की खुली हवा को महसूस करना चाहता है परंतु उसके पति और सास को यहां तक की पड़ोस वालों को भी उसका घर की चार–दीवारी से बाहर कदम रखना पसंद नहीं आता। उन सभी का मानना है कि भले घर की बहू–बेटियां घर के बाहर नहीं निकलती और जो स्त्रियां ऐसा करती हैं उनका चरित्र अच्छा नहीं होता। इन सभी तानों और सवालों के बीच वह अपने गांव के जीवन को याद करती है–''किस प्रकार जाड़े के दिनों में अलाव के पास जाने कितनी रात तक बूढ़े, जवान, युवतियां और बच्चे सब एक साथ बैठकर आग तापते हुए, पहेलियां बुझाते और किस्से कहानियाँ कहा करते थे। किसी के साथ किसी प्रकार का बंधन न था। नदी पर गांव भर की बहू–बेटियां कैसे स्नान करने को जाती थीं और सब एक साथ गाती हुई लौटती थीं। कितना सुखमय जीवन था वह।''[12]

ऐसे मुक्त और स्वच्छंद वातावरण में पली–बढ़ी सोना का मन भी बहुत कोमल और साफ है। इसलिए तो वह सभी से अपनेपन के साथ हंसी मजाक करती है या बिना किसी स्वार्थ के दूसरों की मदद करने को तत्पर रहती है। परंतु उसके स्वच्छंद व्यवहार के कारण घर–परिवार और शहरी समाज उसके चरित्र पर सवाल उठाने लगते हैं। जिसका जवाब उस भोली–भाली सोना को अपने प्राण त्याग कर देना पड़ता है। अपने पति को मृत्यु से पूर्व लिखे पत्र में वह अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए लिखती है–''मुझे ऐसा लगता है कि या तो यह दुनिया मेरे लायक नहीं है या मैं ही इस दुनिया के योग्य नहीं हूं।''[13]

एक ही देश में दो अलग–अलग समाज और उसकी अलग–अलग मान्यताएं। क्या वास्तव में स्त्रियों को घर की चार–दीवारी में कैद करने से, उस पर कुल–मर्यादा और परंपरा के नाम पर अंकुश लगाकर उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को नष्ट करने मात्र से ही हम सभ्य शहरी नागरिक कहलाने के हकदार होंगे या उससे बेहतर तो वह ग्रामीण जीवन है जहां व्यक्ति अपने आप को स्वतंत्र महसूस करता है, जहां का जीवन दिखावटी मूल्य पर टिका ना होकर सहज और जीवंतता से भरा हुआ है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सुभद्रा कुमारी जी की कहानी अपने युग के स्त्रियों का दस्तावेज है। वे अपनी कहानियों में कोई मुलम्मा नहीं चढ़ाती बल्कि समाज में और अपने आसपास उन्हें जो कुछ भी दिखाई पड़ता है उसे वे अपनी रचनाओं में उतार देती हैं। तभी तो उनकी कहानी केवल कहानी न होकर जीवन को बयां करती हैं। लेखिका ने स्वयं भी जिस जीवन को जिया और अनुभव किया वह इतना विशाल और सारगर्भित था कि उस समय उनके जैसा अन्यत्र मिलना कठिन है। उन्होंने केवल साहित्य साधना ही नहीं की बल्कि वे एक सच्ची स्वाधीनता सेनानी भी रही, साथ ही साथ सामाजिक बदलावों और गैर बराबरी के खिलाफ चल रहे आंदोलन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सदियों से शोषित और पीड़ित स्त्री की पीड़ा को भी उन्होंने स्वर प्रदान किया। उन्होंने कभी भी कथनी और करनी में फर्क नहीं किया। वे जो सोचती थी, लिखती थी उसे अपने व्यक्तिगत जीवन में भी लागू करती थी। उन्होंने परिवार और बच्चों की परवाह किए बिना राज बंदनी का जीवन जीना स्वीकार किया। एक मां के रूप में अकेले ही न केवल बेटी का विवाह किया वरुण विवाह में कन्यादान जैसी स्त्री विरोधी परंपरा का विरोध करके आने वाली पीढ़ी के समक्ष आदर्श प्रस्तुत किया।

स्त्रियों के मन के अनेकों प्रश्नों को उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से व्यक्त किया। वे मानती थी कि किसी भी प्रकार का बंधन बंधन ही होता है जो उन्हें बांधने का काम करता है तभी तो वह चाहे गोरी हो, हीना हो रूपा हो या सोना, सभी अपनी परिस्थितियों से विद्रोह करती दिखलाई पड़ती है। सुभद्रा जी के विषय में उनकी प्रिय सखी महादेवी वर्मा जी ने जो लिखा है

वह बिल्कुल सटीक जान पड़ता है। वे लिखती है–''अजगर की कुंडली के समान, स्त्री के व्यक्तित्व को कसकर चूर कर देने वाले अनेक सामाजिक बंधनों को तोड़ फेंकने में उनका जो प्रयास लगा होगा, उसका मूल्यांकन आज संभव नहीं है।''[14]

महादेवी वर्मा जी का यह कथन सुभद्रा कुमारी चौहान के साहित्य की उपयोगिता को दर्ज करता है। हम यह भी कह सकते हैं कि जब तक समाज में किसी भी प्रकार की गैरबराबरी बनी रहेगी तब तक उनका साहित्य इन रीति–रिवाज, परंपराओं, मान्यताओं, शोषण और अत्याचार पर लगातार प्रहार करता रहेगा और सभी को ऊर्जा प्रदान करेगा।

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी–विभाग,
माता सुंदरी महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
laxmimansi2@gmail.com

सन्दर्भ सूची

1. वर्तमान साहित्य, अक्टूबर–2005, संपादकीय–नमिता सिंह, पृष्ठ संख्या– 7
2. सुभद्रा कुमारी चौहान– सुधा चौहान, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण–1982, पुनर्मुद्रण–2012, पृष्ठ संख्या–34
3. सुभद्रा कुमारी चौहान की चुनिंदा कहानियाँ, संपादक–रूपा गुप्ता, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2010, पृष्ठ संख्या–21
4. वही, पृष्ठ संख्या–25
5. वही, पृष्ठ संख्या–26
6. वही, पृष्ठ संख्या–26
7. वही, पृष्ठ संख्या–226
8. वही, पृष्ठ संख्या–111
9. वही, पृष्ठ संख्या–113
10. वही, पृष्ठ संख्या–72
11. वही, पृष्ठ संख्या–75
12. वही, पृष्ठ संख्या–64
13. वही, पृष्ठ संख्या–66
14. महादेवी प्रतिनिधि गद्य–रचनाएं, संकलन सम्पादन–डॉ. रामजी पाण्डेय, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, प्रथम संस्करण–1983, पृष्ठ संख्या–314

भारतीय उपन्यास के जातीय फॉर्म की परिकल्पना (निर्मल वर्मा)

डॉ. रंजीत कौर

आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में उपन्यासकर और कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित निर्मल वर्मा का आलोचनात्मक लेखन एक साहित्यिक और संस्कृति-चिन्तक की चिंतन प्रक्रिया का ही प्रकाशित रूप है। उनका चिंतन उनके अनुभवों से प्रेरित है। नंदकिशोर आचार्य के शब्दों में, ''रचनाकारों का निबंध लेखन अधिकांशत: हाशिये का होता है लेकिन हिन्दी में अज्ञेय और निर्मल वर्मा जैसे लेखकों का चिंतन उनके रचना लोक के बीच में रहता है ताकि वे अपने तर्क और अपनी अनुभूति को एक दूसरे के आलोक में जांच सकें।''[1] साहित्य से जुड़े सृजन, संप्रेषण और प्रासंगिकता जैसे विषयों पर पुनर्विचार करने के साथ-साथ निर्मल वर्मा ने आधुनिक साहित्य की कथात्मक विधाओं के रूप-विधान का आलोचनात्मक विश्लेषण करते हुए पुनर्विचार की इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाया है. एक ओर निर्मल नई कहानी की आधुनिक व्याख्या 'टोटल टेरर' के 'अंधेरे से घिरी चीख' के रूप में करते हैं तो दूसरी ओर भारतीय उपन्यास की विधा पर विचार करते हुए उसकी मौलिक परिकल्पना प्रस्तुत करते हैं। उपन्यास भी एक कथात्मक विधा है, इसलिए निर्मल वर्मा उन आलोचकों से अपनी असहमति प्रकट करते हैं जो उपन्यास विधा को विदेशी मान कर भारतीय उपन्यास का उद्धार पुरानी आख्यायिका, लोक कथाओं और किस्सों की शैली को पुनर्जीवित करने में देखते हैं। पुरानी कथा शैलियों में पात्र सार्वभौमिक होते थे और कहानी की नियति के साथ बंधे हुए थे। किंतु उपन्यास में व्यक्ति पात्र अपनी इच्छाओं और संकल्पों से किसी न किसी रूप में घटना चक्र में अपना हस्तक्षेप करना चाहते हैं क्योंकि निर्मल वर्मा के अनुसार, ''उपन्यास शुद्ध रूप से सेक्युलर विधा है जिसमें से समस्त देवी-देवताओं, प्रकृति के अलौकिक चमत्कारों और नियति की भविष्यवाणियों को बहिष्कृत कर दिया गया है, वहां सब कुछ व्यक्ति के स्वायत्त, स्वेच्छाचारी निर्णयों पर निर्भर है इसलिए सब कुछ आकस्मिक और सांयोगिक है।''[2] व्यक्ति की इस अंतरात्मा को, उसके होने (being) को ही केंद्र बिंदु बनाने के कारण उपन्यास अन्य कथात्मक विधाओं से भिन्न और विशिष्ट है।

उपन्यास यूरोपीय साहित्य से आयातित विधा है। निर्मल वर्मा उपन्यास के स्वरूप और उसकी प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए भारतीय उपन्यासकारों द्वारा इस विधा को ग्रहण करने की पृष्ठभूमि की परीक्षा करते हैं। उनकी दृष्टि में भारतीय लेखक प्राय: अपने लेखन की विधा के बारे में बहुत कम सोचते हैं और विधाओं के परीक्षण को वे कलाकार का रचनात्मक कर्म न मानकर व्यावसायिक आलोचना का कर्म मानते। निर्मल की सबसे बड़ी चिंता यह है कि जिस विधा (उपन्यास) को भारतीय कथाकार सामाजिक यथार्थ के विश्लेषण का सबसे सशक्त औजार मानते हैं उस औजार की क्षमता का परीक्षण करने की कभी जरूरत नहीं समझी गई।[3] यह कहकर निर्मल वास्तव में उन सभी आलोचनाओं का एक स्पष्ट और तीखा जवाब देते हैं जो किसी रचना को उसके रूप के अंतर्गत ही व्याख्यायित विश्लेषित करने वाले लेखकों को रूपवादी या कलावादी कहकर उन्हें खारिज कर देती हैं। उक्त वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है कि निर्मल वर्मा के लिए हर कलारूप समाज की आलोचना का, उसके परीक्षण का एक औजार है। रूप की व्याख्या करते हुए निर्मल की दृष्टि अत्यंत व्यापक है, वे रूप को सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में रखकर देखते हैं और इस प्रकार

समय और संस्कृति को रूप में समाहित कर लेते हैं, ''निर्मल वर्मा के उपन्यासों का फार्म स्मृति में से अपना रूपाकार ग्रहण करता है–उस स्मृति में से जो किसी कालक्रम से बंधी नहीं है बल्कि जिसमे सभी चीजों का क्रमहीन सहवर्तित्त्व है। सब कुछ को एक साथ देखना या अज्ञेय के शब्दों में 'क्रमहीन सहवर्तित्त्व' क्या काल को दिक् में बदल देना नहीं है जिसमें हम उसके क्रम से मुक्त होकर सब कुछ का एक साथ अहसास कर सकते हैं.''[4] अपने कथात्मक साहित्य में निर्मल 'स्मृति' को सबसे महत्वपूर्ण मानते हैं, ''इसलिए महत्त्वपूर्ण मेरे लिए अनुभव नहीं, स्मृति का वह झरोखा है जिसमें से गुजर कर वे कहानियां बनते हैं''[5] दरअसल यह 'स्मृति का झरोखा' और 'रूप में संस्कृति और समय को समेटकर देखने की दृष्टि' ही मुख्यत: वे कारण हैं जो निर्मल वर्मा को उपन्यास के जातीय स्वरूप की खोज पर विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं।

यथार्थ चित्रण की दृष्टि से उपन्यास सबसे सशक्त कथात्मक विधा है और इस रूप में उपन्यास गतिशील इतिहास के समय को अपने में समेटता है। निर्मल के अनुसार कला इतिहास से नहीं वरन 'अतीतकालीन मिथक संपन्न स्मृतियों' से प्रेरणा प्राप्त करती है। निर्मल आधुनिक औद्योगिक सभ्यता में मनुष्य की सर्जनात्मक चेतना पर छाते जा रहे विचारधारा और इतिहास के संकट पर चिंता प्रकट करते हैं। उनका मानना है कि केवल कला ही इस संकट के विरुद्ध चुनौती प्रस्तुत करती है। निर्मल वर्मा क्योंकि इतिहास के विरोध में मिथक संपन्न स्मृतियों की प्रतिष्ठा करते हैं इसलिए उन्हें उपन्यास में समाहित यथार्थ और समय के विस्तार से खतरा महसूस होता है। ''खतरा उन्हें उपन्यास से है जो साहित्य में यथार्थवाद की विजय का केतन है। वे इस बात को लेकर चिंतित हैं कि भारत के पश्चिम से भिन्न होने पर भी प्रेमचंद जैसे उपन्यासकार ने अपने उपन्यासों को पश्चिमी उपन्यासों के सांचे में ढाला था।''[6] प्रेमचंद के यथार्थवादी उपन्यासों के प्रति निर्मल अपनी असंतुष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। उपन्यास के जातीय स्वरूप की खोज पर विचार करते हुए इसीलिए निर्मल को यह बात क्षुब्ध करती है कि ''भारतीय उपन्यासकारों ने प्रेमचंद तक ने इस सवाल तक को नही पहचाना और वे पश्चिमी उपन्यास के रूढ़ ढांचे का इस्तेमाल करते रहे, बिना यह महसूस किये कि पश्चिम की 'स्मृति' भारतीय समाज की 'स्मृति' से बिलकुल अलग है और इसलिए पश्चिमी ढांचा भारतीय स्मृति का वहन करते हुए चरमरा जायेगा।''[7] प्रेमचंद ने पश्चिम की एक ऐसी बनी बनाई विधा को मात्र सुविधा के लोभ में अपना लिया जो एक भिन्न सांस्कृतिक अनुभव क्षेत्र में पनपी थी. निर्मल के अनुसार यह कुछ ऐसा ही था कि हम एक ऐसे बने बनाए मकान में रहने लगें जो दूसरों ने अपनी जरूरतों और संस्कारों के अनुसार बनाया था। ''प्रेमचंद से लेकर अधुनातन उपन्यासकार ने कभी उपन्यास की विधा पर शंका प्रकट नहीं की, अपने अनुभव के सन्दर्भ में उसका 'पुनर्परीक्षण' तो दूर की बात थी।''[8]

निर्मल वर्मा की मान्यता के अनुसार यूरोपीय उपन्यास विधा का जन्म ही बुर्जुआ संस्कृति में आविर्भूत व्यक्ति की विशिष्ट अवधारणा से जुड़ा था। बुर्जुआ संस्कृति में मनुष्य 'व्यक्ति' के रूप में सिकुड़ गया था और समाज भीड़ के रूप में विस्तार पाता जा रहा था। उपन्यास ने पहली बार ऐसे व्यक्ति की गवाही लेने का प्रयास किया जो अपने अस्तित्व और उसकी संभावनाओं का साक्षी स्वयं ही था। इस व्यक्ति की चेतना आत्मनिर्भर, तीव्र रूप से सजग और स्वायत्त थी तथा इसी में उसकी यातना, द्वंद्व, आत्ममंथन शामिल थे। यही व्यक्तिकेंद्रित और सेक्युलर अनुभव यूरोप का सांस्कृतिक अनुभव था जिसमें यूरोपीय उपन्यास का ढांचा निर्मित हुआ था। भारतीय अनुभव इसके विपरीत अखंड और समग्र सांस्कृतिक अनुभव है जो व्यक्ति केंद्रित नहीं है। निर्मल के अनुसार यूरोपीय उपन्यास का सांस्कृतिक अनुभव यदि "इकाइयों की दुनिया'' है तो भारतीय उपन्यास में ''संबंधों की दुनिया'' उद्घाटित हुई है जहां ''मनुष्य सृष्टि के केंद्र में नहीं है, सर्वोपरि नहीं है, सब चीजों का मापदंड नहीं है, वह सिर्फ संबंधित है और अपने संबंध में स्वायत्त इकाई नहीं है।''[9]

किंतु निर्मल वर्मा को आश्चर्य होता है कि भारतीय लेखकों ने कथात्मक गद्य के लिए 'भिन्न सांस्कृतिक अनुभव' में पनपी उपन्यास जैसी विधा को चुना और सबसे बड़ी त्रासदी तो यह थी कि इस साहित्यिक विधा को बिना किसी परीक्षण के ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया – उसके विधान को तोड़कर अपनी धारा को खोजने की कोशिश, अपने 'जातीय फॉर्म' के अन्वेषण की कोशिश नहीं की गई। उपन्यास के लिए अपने जातीय फॉर्म की खोज का प्रश्न वस्तुत: समूचे सांस्कृतिक अनुभव के विश्लेषण से सम्बद्ध है। पश्चिम का सांस्कृतिक अनुभव इतिहास, विज्ञान, आईडियोलॉजी, औद्योगिक सभ्यता और बुर्जुआ संस्कृति में आविर्भूत व्यक्ति की स्वायत्तता से निर्मित हुआ है जबकि भारत का सांस्कृतिक अनुभव एक ऐसी समग्र और अखंड धारा है ''जिसमें हमारे संस्कार, स्मृतियां,

समय, जीवन और मृत्यु का बोध शामिल है''[10] निर्मल का कहना है कि यदि इन सब बिंदुओं पर भारतीय दृष्टि यूरोपीय दृष्टि से अलग होगी, समय के प्रति उसका बोध ऐतिहासिक समय से भिन्न होगा, व्यक्ति के प्रति उसका दृष्टिकोण आत्म सजग और स्वायत्त व्यक्ति की परिकल्पना से भिन्न होगा - तभी भारतीय उपन्यास अपने विशिष्ट जातीय फॉर्म को प्राप्त कर सकेगा। इस जातीय फॉर्म को प्राप्त करने के लिए भारतीय उपन्यास को यूरोपीय उपन्यास के ढांचे को किन स्तरों पर तोड़ना होगा - इसका भी निर्मल वर्मा ने विश्लेषण किया है। यूरोपीय उपन्यास ऐतिहासिक समय के भीतर बहता है - पात्रों के चरित्र विकास और परिवर्तन, उनकी नियति का उद्घाटन- सब कुछ घटनाओं के घात प्रतिघात द्वारा ऐतिहासिक समय में ही उद्घाटित होता है। कहने का अभिप्राय है यूरोपीय उपन्यास की समूची संरचना ऐतिहासिक समय के भीतर ही निर्मित होती है। इसलिए निर्मल वर्मा भारतीय उपन्यास के जातीय फॉर्म के निर्माण के लिए सर्वप्रथम उसे ऐतिहासिक समय से अलग करने का विचार प्रस्तुत करते हैं। निर्मल उपन्यास के जिस जातीय फॉर्म की परिकल्पना करते हैं उसका समय ऐतिहासिक समय नहीं, स्मृति का शाश्वत समय है। भारतीय उपन्यासकार के लिए निर्मल वर्मा यह चुनौती प्रस्तुत करते हैं कि उसे स्मृति के इस शाश्वत समय के अंतर्गत ''मनुष्य और मनुष्य के बीच संबंधों के अदृश्य, संश्लिष्ट, परंपरा और स्मृति में उलझे असंख्य सूत्रों को टटोलना होगा जो पश्चिम के बुर्जुआ, द्वंद्वात्मक, ऐतिहासिक संबंधों से बहुत अलग है।''[11]

निर्मल के अनुसार हिंदी उपन्यास साहित्य में सर्वप्रथम 'रेणु' ने ही इस सर्जनात्मक चुनौती को स्वीकार किया था, रेणु ने ही सर्वप्रथम उपन्यास के नैरेटिव और यथार्थवादी ढांचे को तोड़कर उसे प्रेमचंद की उपन्यास परंपरा से अलग किया और इस प्रकार उन्होंने भारतीय उपन्यास की जातीय संभावनाओं की तलाश की थी- ''मैला आंचल और परती परिकथा महज उत्कृष्ट आंचलिक उपन्यास नहीं है, वे भारतीय साहित्य के पहले उपन्यास हैं जिन्होंने... भारतीय उपन्यास को एक नई दिशा दिखाई थी, जो यथार्थवादी उपन्यास के ढांचे से बिल्कुल भिन्न थी। उन्होंने उपन्यास की नैरेटिव कथ्यात्मक परंपरा को तोड़ा था।''[12] रेणु के उपन्यासों में ऐतिहासिक समय में बंधी हुई घटनाएं नहीं हैं और न ही पात्रों का चरित्र विकास और उनकी नियति का उद्घाटन घटनाओं के घात-प्रतिघात द्वारा होता है बल्कि यहां तो आंचलिक परिवेश और उसमें सांस लेती हुई जिंदगियों की आत्मिक लय ही उपन्यास को रूप और फश्वर्म देती है. यही निर्मल की दृष्टि में भारतीय उपन्यास का 'जातीय फॉर्म' है जो हमारे जातीय स्मृतियों और संस्कारों के अनुकूल है और जिसे प्रेमचंद तथा प्रेमचंद्र परंपरा के उपन्यासकार निर्मित नहीं कर पाए थे. रेणु और प्रेमचंद के उपन्यासों में भिन्नता को निर्मल इस रूप में रेखांकित करते हैं, ''रेणु के उपन्यासों की ग्राम्य भूमि वही है जो प्रेमचंद की थी किन्तु उनके किसान, जमींदार, ग्रामवासी, सामान्य जन साधारण एक नितांत भिन्न अनुभव परिवेश में जीते जागते प्राणी जान पड़ते हैं... यह वह भारत है जिसमें स्वतंत्रता संग्राम के सांस्कृतिक मूल्य, समाजवादी आदर्श और बदलती हुई ग्राम्य व्यवस्था से उपजी मानसिक उथल-पुथल एक ऐसे मानचित्र पर संघर्षरत दिखाई देते हैं जो संक्रान्तिकाल का भारत है। जिस परती को रेणु ने अपनी परिकथा के लिए चुना था वह अपनी अनुभव सम्पदा में सबसे अधिक उर्वर थी क्योंकि अब तक किसी कथाकार ने अपनी कलम से उसे नहीं खोदा था।''[13]

साहित्यिक विधा और जातीय फॉर्म के अंतर्विरोध के कारण ही हिंदी उपन्यास के मूल्यांकन की कोई सर्वमान्य कसौटी निर्धारित नहीं की जा सकी है। यूरोप के यथार्थवादी ढांचे को अपनाने के कारण प्राय उपन्यासों का मूल्यांकन 'वह जिंदगी के कितने पास है', 'घटनाएं कितनी विश्वसनीय है', या 'उसके पात्र कितने यथार्थपूर्ण है'- इन आधारों पर किया जाता रहा है किंतु निर्मल वर्मा की धारणा है कि ''उपन्यास की अर्थवत्ता यथार्थ में नहीं, उसे समेटने की प्रक्रिया, उसके संघटन की अंदरूनी चालक शक्ति में निहित है''[14] किंतु यह अंदरूनी चालक शक्ति क्या है, इस प्रश्न का निर्मल वर्मा ने कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है।

वास्तव में किसी भी रचना की विशिष्टता कथ्य को 'समेटने की प्रक्रिया' में ही निहित होती है और इसी आधार पर हम एक ही लेखक के दो भिन्न उपन्यासों में भेद कर सकते हैं। 'गोदान' और 'रंगभूमि' दोनों ही यथार्थवादी उपन्यासों के अंतर्गत आते हैं किंतु दोनों में ही यथार्थ को समेटने की प्रक्रिया भिन्न है, इसलिए जब प्रेमचंद के उपन्यासों का मूल्यांकन किया जाता है तब केवल यह नहीं देखा जाता कि वह जिंदगी के कितने पास हैं, उपन्यास के पात्र कितने यथार्थपूर्ण हैं, बल्कि यह भी देखा जाता है कि वे 'जिंदगी के यथार्थ' को 'उपन्यास का यथार्थ' बनाने में कहां तक सफल रहे हैं? अथवा यथार्थ को समेटने की प्रक्रिया में वे कहां तक सफल रहे है। विचारणीय यह है

कि यथार्थ तो अखबारी रिपोर्ट में भी सिमटता है, साहित्यिक रिपोर्ताज में भी और उपन्यास में भी - फिर किस आधार पर हम उपन्यास के यथार्थ को रिपोर्ट के यथार्थ से भिन्न करते हैं? वास्तव में यह वही 'समेटने की कलात्मक प्रक्रिया' ही है जिसमें उपन्यास की शक्ति निहित होती है। और यथार्थ में भी केवल भौतिक-सामाजिक यथार्थ ही नहीं आता मानव जीवन का यथार्थ, उसका परिवेश, उसकी भावनाएं, अनुभूतियां, मानसिक उद्वेलन, अंतर्द्वंद्व, पीड़ा, कुंठा आदि- यह सब यथार्थ ही है। जब मनुष्य का अंतर-बाह्य, स्थूल-सूक्ष्म, भौतिक-मानसिक - हर प्रकार का यथार्थ अनुभव और जीवन उपन्यास में अभिव्यक्ति पाता है तो भला उपन्यास को यथार्थवादी ढांचे से भिन्न कैसे किया जा सकता है? रेणु ने यदि यथार्थवादी उपन्यास के ढांचे को तोड़ा था तो इसका यह अभिप्राय नहीं है कि उन्होंने भौतिक और सामाजिक यथार्थ का भी निषेध किया था। 'मैला आँचल' हो या 'परती परिकथा', पूर्णिया हो या परानपुर, -ग्रामीण अंचल को नायकत्त्व प्रदान करके रेणु भारतीय देहातों की जातियों, टोलियों में बंटे सामाजिक संगठनों, रूढ़ियों, परम्पराओं, लोक गीतों, लोक कथाओं के प्रभावों से निर्मित अंचल की संस्कृति का चित्र प्रस्तुत करते हुए मुख्यत: समसामयिक ग्रामीण जीवन का ही चित्र प्रस्तुत करते हैं। 'परती परिकथा' को पढ़ते हुए हमारे समक्ष परानपुर का सम्पूर्ण भौगोलिक, सांस्कृतिक और मानवीय दृश्य प्रस्तुत हो जाता है। अपने जातीय संस्कारों से प्रेरित आंचलिक उपन्यासों में रेणु अंचल की सभी समस्याओं और स्थितियों के केंद्र में अंचल की 'जमीन' को ही रखते हैं। गाँव देहात में जमींदारी व्यवस्था के उन्मूलन के बाद भी भूमिहीनों की समस्याएं समाप्त नहीं हुई हैं। गाँव और जमीन की समस्याओं को उनके समग्र ग्रामीण जीवन की सांस्कृतिक झलक के साथ उकेरना यथार्थ चित्रण ही है। सच तो यह है कि उपन्यास को यथार्थ से अलग किया ही नहीं जा सकता। यह अवश्य है कि उसे सूक्ष्म, परोक्ष और व्यंजित बनाया जा सकता है जो उपन्यासकार की कलात्मक दक्षता पर निर्भर करता है। इसी संदर्भ में 'गोदान' के विभिन्न विद्वान आलोचकों द्वारा उसे एक उत्कृष्ट उपन्यास मानने के पश्चात लेकिन, किंतु जैसे शब्दों के माध्यम से जो असंतुष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त की हैं, उसका कारण निर्मल वर्मा गोदान की यथार्थवादी उपन्यास संरचना के केंद्र में विद्यमान मानते है। उपन्यास की एक बनी बनाई विधा को अपनाने के लोभ में ही प्रेमचंद गोदान के पात्रों के संस्कारों और उनके जातीय अनुभवों के अनुरूप किसी जातीय फार्म के अन्वेषण की चुनौती का सामना नहीं कर पाए हैं ''निर्मल वर्मा को शिकायत है कि प्रेमचंद ने होरी के सामाजिक आर्थिक संघर्ष को प्रमुखता देकर उस पर यथार्थवादी उपन्यास की संरचना आरोपित कर दी जबकि उन्हें ऐसी विधा का अन्वेषण करना चाहिए था जो उसकी नियति और मर्यादा उसकी हताशा और नैतिकता के अनुकूल अपना निजी कलात्मक स्पेस निर्धारित कर सकती है।''[15]

उल्लेखनीय है कि जब प्रेमचंद का उद्देश्य ही भारत की सामंती और महाजनी व्यवस्था में किसानों पर होने वाले अमानुषिक अत्याचारों तथा आर्थिक शोषण की करुण कथा कहना था तो फिर भला वे उपन्यास के यथार्थवादी ढांचे को क्यों तोड़ते? जहां तक गोदान की आलोचना का प्रश्न है तो कुछ आलोचकों ने यदि असंतुष्ट प्रतिक्रिया की है तो अधिकांश विद्वानों ने प्रेमचंद की यथार्थ चित्रण की कलात्मक दक्षता की प्रशंसा करते हुए गोदान को भारतीय कृषक जीवन के महाकाव्य का गौरव दिया है। हिंदी उपन्यास साहित्य में प्रेमचंद ही ऐसे प्रथम उपन्यासकार हैं जिन्होंने अपने समय के भारतीय जीवन की धड़कन को, उसके जातीय संस्कारों में निहित परतंत्रता भाव, अंधविश्वासों, रूढ़ धार्मिकता, मानसिक पिछड़ेपन, आर्थिक शोषण आदि को मानवीय संदर्भ में अपने उपन्यासों में समेटने का प्रयास किया है, जो अविस्मरणीय है। निर्मल वर्मा भी अपने उपन्यासों में इस जातीय फार्म को किसी रूप में प्रतिष्ठित नहीं कर पाए हैं। आधुनिक हिंदी उपन्यास के समीक्षकों को लगता है कि उनके प्रथम उपन्यास 'वे दिन' में ''उपन्यास के परंपरागत चौखटे और ढांचे को तोड़ने का प्रयत्न किया गया है''[16] और अस्तित्व बोध की समस्या को आधुनिक धरातल पर उद्घाटित किया गया है। निर्मल के उपन्यासों में प्राय: महायुद्धोत्तरकालीन पीढ़ी की घुटन, अकेलापन, संबंधों की अर्थहीनता, अनास्था, कुंठा आदि के समावेश से जो संत्रस्त संवेदना का रूप उभरता है, वह युद्धोत्तरकालीन यूरोपीय जीवन की भयानक विसंगति और अस्तित्ववादी व्यर्थताबोध तथा मृत्यबोध को उभारता है निर्मल के उपन्यासों में चित्रित संवेदना पर आलोचकों ने सवाल उठाये हैं और भारतीय संदर्भ में मानव नियति और उसके जातीय संस्कारों के लिए उसकी सार्थकता पर प्रश्नचिन्ह लगाये है। ''अनास्था, कुंठा, घुटन एवं तनाव को ही निर्मल वर्मा ने अंतिम सत्य मान लिया है.... प्रत्येक मानव संबंध निर्मल वर्मा के लिए खोखला और जर्जर हो चुका है। समझ में नहीं आता कि दुनिया में अगर सब कुछ निर्मल वर्मा

के लिए जड़ हो चुका है, फिर दुनिया चल कैसे रही है।''[17] रेणु के उपन्यासों में उन्होंने जातीय फार्म की संभावनाओं के प्रारंभिक रूप को लक्षित किया था किन्तु उनके अपने उपन्यासों में वह सम्भावना कहीं विकसित/परिष्कृत होती हुई नजर नहीं आती। जातीय फार्म के निर्माण की जो सर्जनात्मक चुनौती वे भारतीय उपन्यासकारों के लिए प्रस्तुत करते हैं उसे वे स्वयं भी स्वीकार नहीं कर पाए हैं। उनका कहना है कि भारतीय उपन्यासकार को पश्चिम की उपन्यास विधा के प्रति सजग और तर्कशील होना होगा तथा अपने संस्कारों और जातीय अनुभवों के अनुरूप उसमें परिवर्तन करके जातीय फार्म का सृजन करना होगा किंतु उनके उपन्यासों में जो अनुभव और संस्कार अभिव्यक्त हुए हैं, वे हमारे जातीय संस्कारों के, हमारी ''मिथक संपन्न अंधेरी स्मृतियों'' के अनुकूल नहीं है- ऐसे अनुभव और संस्कारों को समेटने वाले उपन्यास नए फॉर्म का निर्माण तो कर सकते हैं किंतु 'जातीय फॉर्म' का अन्वेषण नहीं कर सकते। यह वस्तुत: निर्मल वर्मा के आलोचनात्मक चिंतन और सृजनात्मक चेतना के बीच विद्यमान सबसे तीखा अंतर्विरोध है कि वह सृजनात्मक साहित्य से संबंधित सैद्धांतिक प्रश्नों और चिंताओं को नई आलोचनात्मक दृष्टि से चुनौतीपूर्ण ढंग से उठाते हैं किंतु व्यावहारिक धरातल पर अपने सृजनात्मक लेखन में उस चुनौती को स्वीकार करने अथवा उन प्रश्नों का उत्तर देने का साहस नहीं दिखा पाते। यही कारण है कि उनकी भारतीय उपन्यास के जातीय फार्म की परिकल्पना कोई सार्थक चुनौती नहीं बन पाई है।

एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, लक्ष्मीबाई महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सन्दर्भ सूची

1. नन्द किशोर आचार्य, अंतर्यात्रा : निर्मल वर्मा, भूमिका, पृष्ठ 27
2. निर्मल वर्मा, ढलान से उतरते हुए, पृष्ठ 22
3. ''हम भारतीय लेखक उस विधा के बारे में बहुत कम सोचते हैं, जिसे स्वयं अपने सृजन के लिए चुनते हैं। हमारे लिए विधा महज माध्यम है, लक्ष्य कुछ और है; साहित्य, समाज, दर्शन। इसलिए साहित्यिक साहित्य की रचना करते हैं,...उसकी नैतिकता इस बात में निहित होती है कि उसका अपनी विधा, अपनी भाषा के प्रति क्या रुख है। दो शब्दों में कहें कि 'जिस चीज' को हम समाज की आलोचना का औजार मानते हैं, खुद उस औजार का परीक्षण जरूरी नही समझते।'' निर्मल वर्मा, शब्द और स्मृति, पृष्ठ, 46
4. नंदकिशोर आचार्य, अंतर्यात्रा : निर्मल वर्मा, भूमिका, पृष्ठ 26
5. निर्मल वर्मा, शब्द और स्मृति, पृष्ठ 16
6. संपादक- नामवर सिंह, आलोचना अंक 62-63, जुलाई दिसंबर 82, पृष्ठ 25
7. सं. नंदकिशोर आचार्य, अंतर्यात्रा : निर्मल वर्मा, भूमिका पृष्ठ 11-12
8. शब्द और स्मृति, पृष्ठ 56
9. निर्मल वर्मा, ढलान से उतारते हुए, पृष्ठ 26
10. निर्मल वर्मा, शब्द और स्मृति, पृष्ठ 58
11. शब्द और स्मृति, पृष्ठ 59-60
12. निर्मल वर्मा, कला का जोखिम, पृष्ठ 69
13. संपादक नन्दकिशोर आचार्य, अंतर्यात्रा : निर्मल वर्मा, पृष्ठ 494
14. निर्मल वर्मा, शब्द और स्मृति, पृष्ठ 57
15. संपादक नामवर सिंह, आलोचना, अंक 62-63, पृष्ठ 25
16. नरेंद्र मोहन, आधुनिक हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ 222
17. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिंदी उपन्यास उपलब्धियां, पृष्ठ 137

Research Paper

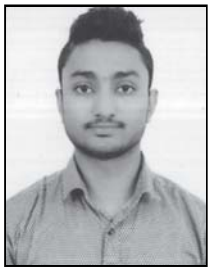

Anamika Kumari* **Sagar Verma**** **Ginisha Verma*****

"The Impact of Digital Transformation on Employee Retention in the Indian Banking Sector: A Systematic Review of Challenges, Trends, and Best Practices"

Abstract

Purpose: This systematic review examines the influence of digital transformation on Indian banking employee retention. Since the sector is seeing huge technological changes with AI, blockchain, and data analytics, retaining quality employees has become a noteworthy challenge. The research will seek to find important issues, trends, and best practices required to manage employee retention in this changing environment.

Methodology: The review examines current literature on digital transformation and workforce management in banking systematically. It investigates the impact of work conditions, career prospects, work-life balance, and leadership practices on employee retention. The review also evaluates the impact of strategic human resource management (HRM), corporate social responsibility, and sustainable workplaces on building long-term workforce stability.

Findings: The research identifies that digital transformation will be successful only if it can include strategies like digital literacy, constant up skilling, transparent leadership, and innovative organizational culture. Successful workforce management strategies play a vital role in preventing the turnover of employees as well as creating engagement and satisfaction.

Conclusion: The study offers strategic recommendations for banking institutions on balancing digital transformation with successful employee retention. By placing emphasis on a sustainable and supportive work culture, organizations can increase job satisfaction, decrease turnover, and propel long-term growth in the digital age.

Keywords: Digital Innovation, Technological Advancement, Workforce Retention, Talent Preservation, Organizational Digitalization

1. INTRODUCTION

The Indian banking industry's digital revolution is a multi-faceted revolution, altering not only business processes and customer interaction but also affecting employee retention to a considerable extent. The implementation of the latest digital technologies such as artificial intelligence, blockchain, and data analytics has produced a new model of banking. But this rapid technological change is seriously threatening, particularly in terms of retaining technical staff thatis capable of operating these new technologies (Singh & Gupta, 2021).

Employee retention stands vital for banks because retention affects both business stability and satisfied customers and preserves vital organizational information. Employee retention problems grow heavier in digital transformation because organizations require workers who both possess technological expertise for modern roles and show flexibility when facing perpetual changes (Kumar & Mishra, 2022). The evolving nature of digital technologies transforms occupational roles and makes a job obsolete which

generates employee insecurity through uncertainty (Patil & Suresh, 2019).

The literature demonstrates that talent retention depends heavily on excellent digital transformation strategies which implement digital literacy initiatives along with upskilling programs. Digital training initiatives implemented by banks led to contented employees who stayed with the organization according to Mehta and Kaur (2020). Digital change requires skilled leadership to lead it through its transformational phase. Leadership approaches that maintain high transparency combined with participation and interactive communication tend to reduce employee turnover when organizations experience digital transformations (Jain &Dhar, 2021).

The successful digital transformation requires both cultural transformation and business processes modernization. Banks which actively encourage digital innovation succeed in keeping their valuable workforce. The transformation needs technological innovations and the redefinition of certain core values and operating practices which aid digital workplace development (Agarwal & Bharadwaj, 2020).

The vital transformation of human resource practices adopts the demands stemming from digital developments. Talent management systems using analytical methods help organizations understand employee needs better to create targeted and effective retention strategies (Narang & Pahwa, 2020).

The resolution of digital exhaustion together with change avoidance and automation-driven job elimination needs to be handled along with other matters. Staff retention throughout the digital revolution depends on clear explanations about translation processes alongside career growth prospects and job security commitments (Roy & Lal, 2021).

An analysis of digital transformation in Indian banking functions as the main focus of this systematic review to assess its impact on workforce maintenance. The review investigates primary issues and examines present dynamics affecting retention strategies in addition to effective methods which simultaneously combat staff turnover and enhance staff engagement and satisfaction levels. Analyzing these elements enables banking institutions to obtain strategic knowledge that harmonizes digital transformation processes with workforce management protocols.

2. Review Structure and Methodology

A systematic extraction method was used to thoroughly assess academic works related to "The Impact of Digital Transformation on Employee Retention in the Indian Banking Sector." This desk research collected and studied various studies sourced from scholarly literature within a designated time frame to establish transparent data analysis based on keyword criteria. A series of parameters were predefined before starting detailed analysis which included data sources examination along with time boundaries and search keywords and the guidelines for including and excluding information and the specific data points for evaluation.

A. PRISMA

PRISMA (Preferred Reporting Items for Systematic Reviews and Meta-Analyses) was born from the development of the QUOROM (Quality of Reporting of Meta-Analyses) statement, created in 1999 to enhance reporting quality and clarity of systematic reviews and meta-analyses. PRISMA was launched as a standard form in 2009 to refine existing reporting criteria and was since revised in 2020 for greater usability among different fields of research. The main aim of PRISMA is to have a standardized framework for performing systematic reviews through achieving transparency, rigour, and reproducibility in literature examination and analysis. It assists in helping researchers minimize bias, ensuring accurate reporting, and increasing reliability of conclusions formulated from systematic reviews. Using PRISMA protocols, research is able to methodically identify, screen, and choose appropriate literature, thereby selecting only high-quality and relevant research to be incorporated in the end analysis.

B. Study source and Extraction

A systematic literature review evaluated scientific studies which appeared during the 2014 to 2024 timeframe. The reviewed studies exclusively originated from the SCOPUS database containing peer-reviewed journal papers and conference papers and research articles. Researchers chose this specific timeframe to study the high point of digital

transformation projects in Indian banking institutions. Forty-two different scholarly works were found and included for thorough examination during the specified time period.

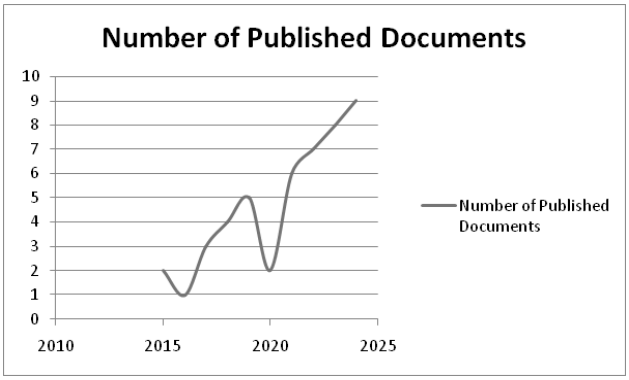

Figure 1: No. of Documents

The number of published documents shows an overall upward pattern while experiencing occasional fluctuations through time according to the displayed graph. The number of published literature during the period from 2013 to 2016 stayed at a low level because of minimal research interest. The number of published research focused on resilience surged from 2016 to 2019 until reaching its peak approximately at five documents annually. The number of published documents declined shortly in 2019 yet attained its greatest level of nine documents in 2025. The rising pattern demonstrates broadening academic attention together with more research products and potentially improved resources and technical advancements.

Table 1:No. of Documents

Year	Documents
2024	9
2023	7
2022	6
2021	6
2020	2
2019	5
2018	4
2017	3
2016	1
2015	2

The dataset showcases the trend in the number of published documents from 2015 to 2024. In the years 2015 and 2016 very few research documents were published amounting to one or two documents. The number of published research documents rose progressively from 2017 to 2019 to claim its highest point at five documents. Research activity slowed down in 2020 after two documents were published possibly because of external disruptions which lasted only that year. The number of published documents shows a clear upward trajectory starting in 2021 where six publications turned into seven in 2023 before reaching the maximum of nine publications in 2024. The field exhibits continuous growth during recent years suggesting both researchers are getting more involved and research teams are expanding or that research-related infrastructure is improving.

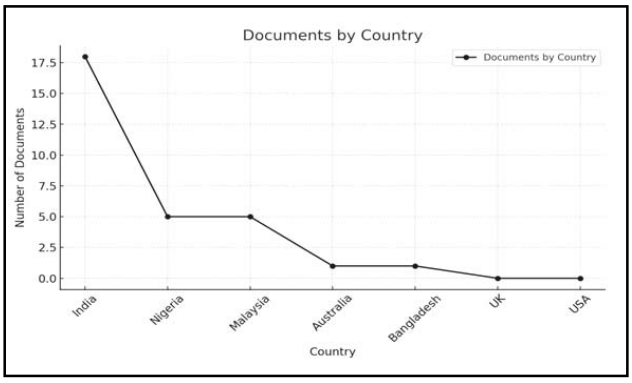

Figure 2: Documents by Country

Research contributions between countries show notable differences according to the document distribution displayed in the visualization. The research field in this area receives strong attention from Indian authorities because they produce the most scholarly documents which come to eighteen. The research documents between Nigeria and Malaysia total five while they demonstrate a moderate ACCESS level. The research activity of Australia and Bangladesh remains sparse because each country produced only one document yet the UK along with USA did not participate at all. The consolidated research activity indicates that scholarly communities focus their work on particular geographic regions potentially because of match between local concerns and academic interests as well as resource availability. The irregular research pattern between countries demonstrates how

countries dedicate different levels of study into this research field.

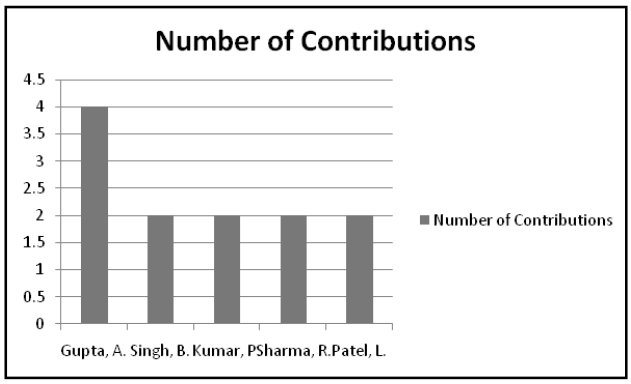

Figure 3: Documents by Author

The bar graph depicts research participation levels between authors by showing the quantity of their individual publications. The research participation of Gupta A. stands out the most because he has published four studies about electromagnetic fields in clinical medicine. Each of the authors Singh B., Kumar P. and Sharma R. and Patel L. published two articles which demonstrates their balanced role in research activities. The distribution pattern indicates joint work between researchers or equivalent academic or professional involvement between authors. Gupta A.'s increased number of contributions to research may stem from his superior expertise coupled with available research facilities and his leading investigative role in the study.

This structured review methodology, anchored by the systematic extraction of data, ensures a rigorous and comprehensive analysis of the impacts of digital transformation on employee retention within the Indian banking sector. The approach facilitates a clear understanding of current trends and best practices, setting the stage for future research and practical applications in this dynamic field.

C. Selection and Evaluation

A defined set of evaluation criteria helped assess the retrieved papers to reveal the main factors influencing employee retention in India's banks under digital transformation for sustainable growth. The systematic literature review method included precise criteria that narrowed down relevant literature selection. Academic peer-reviewed literature written in English served as the selection criteria because it offers reliable research that receives thorough evaluation before publication. The exclusion procedure eliminated any research pieces which lacked alignment with specified keywords that defined the study field to keep the analysis focused on vital contribution.

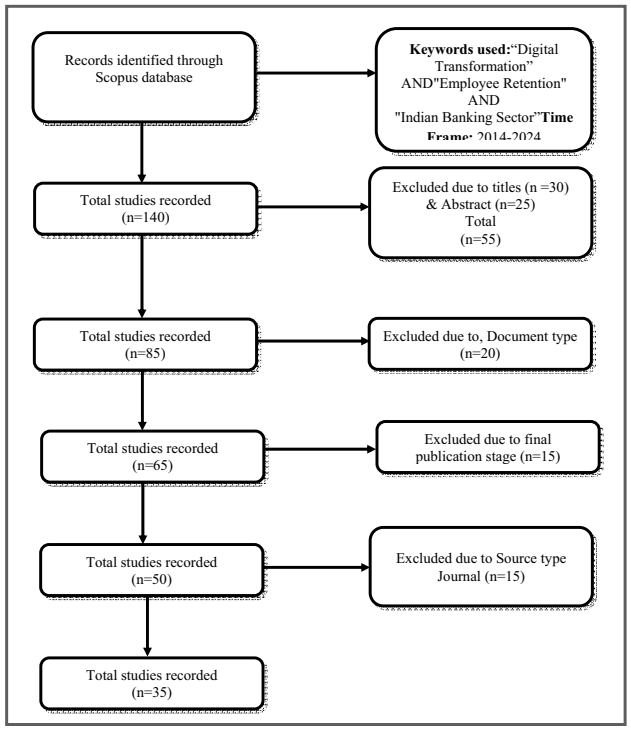

Figure 4: PRISMA model
Source: Self-prepared by author

The PRISMA flow diagram presents the systematic selection process for included studies in the review entitled "The Impact of Digital Transformation on Employee Retention in the Indian Banking Sector: A Systematic Review of Challenges, Trends, and Best Practices." The specified keywords were searched in the Scopus database within the 2014–2024 period to identify 140 records. At title (30) and abstract (25) screening, 55 studies were excluded, bringing the number down to 85 studies. Additional refining caused 20 studies to be excluded for inappropriately typed documents, which left 65 studies for review. 15 studies were also removed because they were still at the final publication level, leaving 50 studies. Finally, 15 studies were excluded based on their source type, leaving the total number

of selected studies for systematic review at 35. This strict selection process guarantees that only the most appropriate and high-quality studies are used to examine the effect of digital transformation on employee retention in the Indian banking industry.

3. Literature Analysis

• *The Critical Enablers of Employee Retention in the Indian Banking Sector*

Three main factors impact employee retention within the Indian banking sector based on study findings which include leadership practices together with workplace conditions and employee participation and career trajectory support.

Marital and mental health satisfactions provide essential conditions for maintaining employee retention according to Yadav et al. (2022) in the banking industry. Adekanbi (2019) validated that organizations using transformational leadership approach both improve job satisfaction and minimize employee departures. According to Rahman et al. (2020) organizations should pay extra attention to career growth prospects together with workplace social dynamics because these elements matter greatly when keeping employees. Sahoo et al. (2024) established that technical hurdles as well as business competition and regulatory regulations function as primary factors which affect employee retention at Banking 4.0. According to Tiwari and Lenka (2020) employees demonstrate stronger commitment through better communication practices inside the organization and better knowledge-sharing activities. The authors Houssein et al. (2021) showed that addressing employee career advancement can help minimize workforce flight. A research by Ali et al. (2023) highlighted how work-life balance gains more importance because it helps banking institutions retain female workers better. Rezvani et al. (2024) provided research about organizational commitment establishing itself as the primary factor which influences employee retention. A specific retention strategy that connects to each employee's work experience requirements helps create better employee retention outcomes according to Dash et al. (2016). Elsafty et al. (2022) showed how employee commitment changes based on training and job satisfaction conditions and this demonstrates why firms must invest in ongoing learning systems for their talent retention efforts.

Research findings establish that employee retention in Indian banking relies on leadership together with career advancement opportunities and work-life balance and suitable organizational cultures.

• *The Contribution of Employee Retention to Sustainable Growth*

Employee retention strategies create sustainable growth for the Indian banking sector by strengthening human resource management and corporate social responsibility programs and developing sustainable work environments.

The authors Yadav et al. (2024) demonstrated that quality employee retention strengthens organizational sustainability through stable workforces and maintained organizational knowledge. The integration of green culture with CSR and employee retention represents Salha's (2022) proposed model for sustainability enhancement. The authors of Jarkovská et al. (2022) conducted research about how financial sector employees respond to CSR programs as it affects job retention and perception. Strategic HRM can enhance engagement and loyalty according to Choongo et al. (2023) which leads to improved firm performance. Employee retention along with commitment results from implementing green innovation strategies according to Fazal-e-Hasan et al. (2023). Green recruitment and branding (GRB) represents a principal method for developing sustainable banking industry personnel according to Bekhit et al. (2023). Adeyefa et al. (2023) investigated sustainable HRM practice effectiveness by implementing a structural equation modeling strategy. The paper presented by Ghani et al. (2022) developed an employee-focused framework to boost workplace sustainability initiatives as well as job satisfaction and employee retention rates. Green HRM practices demonstrate their crucial role for maintaining organizational growth according to Jam et al. (2020). According to Sharma et al. (2019) the combination of employer branding within company culture produces better employee retention rates and extends organizational duration.

Business sustainability mainly depends on

employee retention through the combination of strategic HRM and CSR policies as well as innovative retention strategies according to these research studies.

• ***The Dynamics of Employee Retention: Shifting with the Tides of New Technology***

This section looks at how digital transformation and emerging technologies affect employee retention in the Indian banking sector.

Thite et al. (2010) looked at the role of HR practices in Indian call centers, pointing to the need for digital HR strategies in the face of attrition. Bendapudi et al. (2002) argued that employee turnover impacts customer relationships and how a team-based digital knowledge-sharing approach can enhance retention. Eggers et al. (2018) discussed the impact of technological change on the ability of firms to retain talented employees. Mohlala et al. (2012) discuss the issue of skill shortages and how digital transformation worsens retention problems. Sandi (2024) delved into the concept of employee loyalty as part of the transformation of digital banking. According to Park et al. (2019), encouraging a collaborative digital culture can help more with the retention of employees than the monetary reward for employees. Zhang et al. (2023) examined how power dynamics in the IT outsourcing sector contribute to high turnover rates, stressing the need for strategic digital HRM. Nwokocha et al. (2012) proposed various retention strategies, such as flexible work arrangements and digital upskilling. Wahyudi et al. (2023) emphasized the necessity of integrating digital HR practices, talent development, and work-life balance to improve retention. Thite (2010) noted that retaining talent in the BPO industry was a challenge and that multiple retention strategies would be required as digital disruptions loomed.

These studies illustrate how digital transformation is changing the employee retention strategies and are emphasizing the use of technology-driven HR practices, digital engagement initiatives, and organizational adaptability to emerging workplace trends.

4. Discussion

Digitalization in the Indian banking industry has brought major challenges in employee retention, specifically job insecurity, change resistance, and work-life balance problems. The main concern is job displacement through automation and AI-based processes. With banks embracing sophisticated technologies like artificial intelligence, blockchain, and data analytics, employees are uncertain about their job functions and future career paths. Research by Singh and Gupta (2021) and Patil and Suresh (2019) indicates that the absence of defined career advancement opportunities in a digital setup contributes to increased turnover. Threatened employees who feel their jobs will be automated are less likely to stay loyal to their companies, hence making retention an emerging issue. Moreover, automation-based job loss lessens human participation in decision-making, leading employees to feel devalued, which also adds to disengagement (Roy & Lal, 2021).

The second significant challenge is employee resistance to change, especially those who are used to conventional banking operations. The transition to digital banking demands that employees learn new skills and adjust to a technology-based work environment, which is overwhelming for many. Sahoo and Sahu (2024) believe that the absence of formal training programs hinders this transition because employees cannot cope with changing technologies. Moreover, Jain and Dhar (2021) highlight that lack of communication and leadership transparencies also heighten resistance to adopting digital transformation. Workers who are not guided appropriately or are left out of decision-making tend to view technological progress as threats instead of opportunities, which results in dissatisfaction and turnover.

Digital transformation has also impacted work-life balance considerably. Increasing pressure for 24/7 banking services and work-from-home digital activities has placed greater workloads, leading to longer working hours and higher stress levels. Research by Ali and Parveen (2023) suggests that digital banking professionals tend to experience burnout as a result of being constantly available, making work-life balance a challenge. The diminished distinction between private and professional life

causes additional dissatisfaction, lowering worker retention rates.

In response to these challenges, banks have to introduce structured digital upskilling and training programs to ensure that employees adjust to new technology. According to research by Mehta and Kaur (2020), job insecurity is lessened and worker confidence is boosted through continuous development of skills. Furthermore, establishing a culture of open leadership and employee engagement will assist in addressing resistance to change (Park et al., 2019). Supporting flexible work arrangements and using digital monitoring systems to track workloads also better support work-life balance and decrease stress (Wahyudi & Park, 2023). Furthermore, bringing sustainability-led HR practices, including Green HRM initiatives and CSR programs, on board can enhance workforce stability and work motivation (Salha, 2022). Addressing these concerns by strategizing, the Indian banking industry can achieve effective digital transformation while sustaining a focused and engaged workforce.

Table 2: Challenges, Best Practices, and Research Directions in Digital Workforce Retention

S. No.	Challenges	Best Practices	Future Research Agendas	Citations
1	Job insecurity due to automation and AI-driven processes	Implement structured digital upskilling and training programs	Assess the long-term impact of AI-driven automation on workforce stability	(Singh & Gupta, 2021; Patil& Suresh, 2019; Roy & Lal, 2021)
2	Resistance to change in digital banking adoption	Foster transparent leadership and participatory decision-making	Investigate psychological effects of digital transformation on employee engagement	(Sahoo &Sahu, 2024; Jain & Dhar, 2021; Wahyudi & Park, 2023)
3	Work-life imbalance due to increased digital workloads	Introduce flexible work arrangements and digital work load management	Develop strategies to balance digital efficiency with employee well-being	(Ali &Parveen, 2023; Sharma & Prasad, 2019)
4	Lack of structured digital training programs	Utilize HR analytics for talent management and personalized training	Analyze the effectiveness of Green HRM practices in digital workforce retention	(Mehta & Kaur, 2020; Narang & Pahwa, 2020)
5	Poor leadership transparency in digital transformation	Encourage a collaborative digital culture to enhance adaptability	Explore leadership models that support digital adaptability and inclusion	(Roy & Lal, 2021; Park et al., 2019)
6	Employee stress due to digital workload expansion	Integrate AI-driven Integrate AI-driven engagement models	Examine HR analytics for forecasting workforce changes in digital banking	(Ghani & Zada, 2022; Rezvani & Khosravi, 2024)
7	Difficulty in integrating AI and digital banking with existing HR strategies	Develop hybrid working environments to improve workforce retention	Study the role of sustainability-driven retention strategies in digital workplaces	(Dash & Pradhan, 2016; Bekhit & Tolba, 2023)

5. Conclusion

The research methodically examined the effect of digital transformation on workforce stability in the Indian banking industry. The results indicate that although digital transformation increases banking efficiency and innovation, it also poses various challenges that have a direct impact on workforce stability. Advances in technology like artificial intelligence (AI), blockchain, and data analytics have transformed job functions, and organizations are required to emphasize strategic human resource management (HRM) to retain professionals. The research point out that employee retention is based on the adoption of systematic digital literacy initiatives, transparent leadership, and sustainable HR practices additionally, organizations that value employee well-being and work-life balance through flexible work arrangements and skill development programs are likely to have increased retention rates. Leadership styles that promote participation, transparency, and flexibility have also been identified as important in addressing workforce issues in the digital age. Thus, the success of digital banking transformation in banks is directly linked to how they can solve employees' issues as well as cultivate a culture of digital empowerment.

• Identified Gaps

Even though a vast amount of research has been conducted on digital transformation, there are some gaps in the literature as far as its effects on employee retention are concerned. One of the gaps is that little empirical evidence exists about AI-based retention approaches in the banking industry. Though AI is transforming banking activities, little has been studied about its direct effect on HR activities and worker motivation. Furthermore, there are few studies on the psychological effects of digital transformation on employees such as stress levels, burnout, and job satisfaction. There is also a lack of comparative studies among various industries. Research predominantly includes only the banking sector without considering how employee retention is impacted by digital transformation in fintech, healthcare, or other technology sectors. In addition, there is a lack of longitudinal research that follows long-term employee retention changes caused by digitalization. Research mostly gives short-term perspectives without studying trends over long periods. Finally, there is little research on the influence of digital transformation on employees by demographics like gender, age groups, and geography

• Implications for Theory and Practice

The results of this research hold important theoretical and practical implications. Theoretically, the study adds to knowledge on how digital transformation influences the retention of workers and offers insights into HRM practices that can be used to counteract staff turnover. The study also indicates the necessity of new conceptual models that combine digital adoption with human resource sustainability. The research highlights the significance of hybrid work patterns in enhancing work-life balance and is an area of importance for future research. From a pragmatic point of view, banking organizations must introduce systematic digital training modules to bridge the skill gap and reduce job insecurity. HR departments must use predictive analytics to foresee the trends in the workforce and create retention strategies proactively. Leadership training must emphasize participatory decision-making and transparency to create a culture of trust and employee engagement. Flexible work arrangements and workload monitoring systems must also be established to avoid burnout and increase employees' well-being. Corporate social responsibility (CSR) programs must also be implemented by organizations to increase workforce stability andLimitations.

• Limitations

Although offering useful insights, this research has certain limitations. First, it draws mostly on secondary data available from the existing literature that might not reflect real-time workforce trends in addition to novel HR practices. Second, it considers only the Indian banking sector, and hence, it becomes challenging to generalize the findings to other industries. Thirdly, as a result of the systematic review method, no primary data were gathered from banking experts, which restricts the validation of results through personal experience. Another limitation is that digital

transformation is dynamic—technologies and HR tactics change very fast, so results may become irrelevant in a short period of time. Moreover, the majority of the literature reviewed is based on large and mid-sized banks, with fewer insights into the experiences of workers in small-scale banking institutions and cooperative banks commitment.

• Future Direction

There needs to be further research in empirical studies to gauge the direct influence of AI and automation on retention of employees. Psychological research regarding stress, motivation, and work-life balance within digitally changing organizations must be done. Comparative analyses between industries will give more overall insights into the strategies for retention of the workforce. Long-term retention trends need to be observed through longitudinal studies in digital banking. Further, demographic-specific studies must investigate the impact of digital transformation on workers in terms of age, gender, and geographic variations. The focus on these areas will deepen knowledge and aid in more efficient workforce management initiatives.

***Doing Phd from Birla Institute of Technology, Mesra, Ranchi**

****JRF Qualified (commerce)**

CA , Assistant Manager in B.C.C.L (Coal India)

References:

1. Adeyefa, G. A., & Akinlabi, B. H. (2023). Green Human Resource Management Practices and Employee Retention: A SEM-RII Approach. *Journal of Human Resource and Sustainability Studies*, 11(2), 45-60.
2. Agarwal, R., & Bharadwaj, S. (2020). Organizational culture and its impact on retention in the digital era: A case study from Indian banks. *European Journal of Information Systems*, 29(4), 429-446.
3. Ali, F., & Parveen, S. (2023). Work-Life Balance and Employee Retention: A Study on Women Employees in the Indian Banking Sector. *Journal of Business Management*, 9(2), 112-125.
4. Bekhit, A., & Tolba, A. (2023). Green Recruitment and Branding: Building a Sustainable Culture and Retaining Talent in Egyptian Automobile Firms. *Journal of Sustainable Development*, 16(1), 99-115.
5. Bendapudi, N., & Leone, R. P. (2002). Managing Business-to-Business Customer Relationships Following Key Contact Employee Turnover in a Vendor Firm. *Journal of Marketing*, 66(2), 83-101.
6. Choongo, P., & van Burg, E. (2023). Strategic Human Resource Management and Firm Performance: The Mediating Role of Employee Retention, Engagement, and Loyalty in the Zambian Banking Industry. *International Journal of Human Resource Management*, 34(1), 67-89.
7. Dash, S., & Pradhan, R. K. (2016). Determinants of Employee Engagement: A Study in the Indian Banking Sector. *International Journal of Management Studies*, 3(2), 1-15.
8. Eggers, J. P., & Park, K. F. (2018). Incumbent Adaptation to Technological Change: The Past, Present, and Future of Research on Heterogeneous Incumbent Response. *Academy of Management Annals*, 12(1), 357-389.
9. Elsafty, A., & Ragheb, M. (2022). The Impact of Training and Development on Employee Retention: A Study on the Egyptian Private Sector. *International Journal of Business and Management*, 17(4), 1-14.
10. Fazal-e-Hasan, S. M., & Mortimer, G. (2023). Green Innovation and Employee Retention: The Role of Hope and Organizational Commitment. *Journal of Business Research*, 156, 113-125.
11. Ghani, U., & Zada, M. (2022). Improving Recruitment and Retention through Job Satisfaction: A Model for the Hospitality Industry. *International Journal of Hospitality Management*, 102, 103-115.
12. Houssein, A. A., & Ibrahim, M. (2021). Career Development and Employee Retention in the Banking Sector: The Mediating Role of Employee

Engagement. *International Journal of Human Resource Studies*, 11(1), 23-39.
13. Jain, R., & Dhar, U. (2021). Leadership in the age of digital transformation: Employee retention strategies in Indian banks. *Leadership & Organization Development Journal*, 42(6), 837-850.
14. Jam, F. A., & Khan, M. A. (2020). Green HRM Practices and Their Impact on Sustainability: Evidence from Educational Institutions in South Punjab. *Pakistan Journal of Commerce and Social Sciences*, 14(3), 715-730.
15. Jarkovská, M., &Kashi, K. (2022). Corporate Social Responsibility and Employee Attitudes: Evidence from Central Europe. *Central European Business Review*, 11(3), 25-40.
16. Kumar, V., & Mishra, A. (2022). Navigating digital transformation: Impacts on employee retention strategies in Indian banks. *Human Resource Management Review*, 38(2), 200-214.
17. Mehta, S., & Kaur, R. (2020). Upskilling for digital innovation: How Indian banks are retaining talent. *Management Decision*, 58(7), 1503-1521.
18. Mohlala, J., & Goldman, G. (2012). Employee Retention within the Information Technology Division of a South African Bank. *South African Journal of Human Resource Management*, 10(2), 1-11.
19. Narang, R., & Pahwa, M. (2020). Enhancing employee retention in banking through HR analytics. *Journal of Organizational Effectiveness: People and Performance*, 7(2), 179-195.
20. Nwokocha, I., & Iheriohanma, E. B. J. (2012). Emerging Trends in Employee Retention Strategies in a Globalizing Economy: Nigeria in Focus. *Asian Social Science*, 8(10), 198-207.
21. Park, R., & Searcy, D. (2019). Job Autonomy as a Predictor of Mental Well-Being: The Moderating Role of Quality-Competitive Environment. *Journal of Business and Psychology*, 34(2), 269-283.
22. Patil, A., & Suresh, M. (2019). The impact of technological change on employee retention in the banking sector. *Journal of Financial Services Marketing*, 24(3-4), 122-130.
23. Rahman, M. S., Ferdausy, S., & Karan, R. (2020). The Impact of Non-Monetary Factors on Employee Retention: Evidence from the Private Banking Sector in Bangladesh. *International Journal of Business and Management Future*, 4(2), 15-26.
24. Rezvani, A., & Khosravi, P. (2024). Organizational Commitment and Employee Retention: A Study of the Iranian Banking Industry. *Management Science Letters*, 14(3), 567-578.
25. Roy, D., & Lal, S. (2021). Managing digital transformation challenges: Employee perspectives in Indian public banks. *Journal of Change Management*, 21(1), 52-70
26. Sahoo, C. K., & Sahu, G. P. (2024). Banking 4.0: Digital Transformation and Its Impact on Employee Retention. *Journal of Management Research*, 16(1), 45-58.
27. Salha, A. (2022). Integrating Green Culture, Organizational Identification, and Employee Retention: A New Model for Sustainable Organizations. *Journal of Cleaner Production*, 345, 131-145.
28. Sandi, A. (2024). Dynamics of Employee Loyalty in the Technosphere: Drivers and Barriers to Retention. *Journal of Technology and People*, 17(1), 45-62.
29. Sharma, N., & Prasad, A. (2019). Employer Branding: Key Dimensions and Implications for Employee Retention. *IIMB Management Review*, 31(3), 207-217.
30. Singh, A., & Gupta, P. (2021). Digital Transformation and Employee Retention in Indian Banks: A Qualitative Analysis. *Journal of Business Research*, 123, 289-301.
31. Thite, M. (2010). All That Glitters Is Not Gold: Employee Retention in Offshored Indian Information Technology Enabled Services. *Journal of Organizational Computing and Electronic Commerce*, 20(1), 7-22.
32. Thite, M., & Russell, B. (2010). The Role of HR Practices in Indian Call Centers: A Case Study.

Journal of World Business, 45(1), 19-27.
33. Tian, H., Iqbal, S., Akhtar, S., Qalati, S. A., Anwar, F., & Khan, M. A. S. (2020). The Impact of Transformational Leadership on Employee Retention: The Roles of Organizational Citizenship Behavior and Communication. *Frontiers in Psychology*, 11, 314.
34. Tiwari, P., & Lenka, U. (2020). Internal Communication and Knowledge Sharing: Impact on Employee Engagement and Employer Branding. *Industrial and Commercial Training*, 52(5), 281-293.
35. Wahyudi, S., & Park, S. M. (2023). Holistic Approach to Employee Retention: Integrating Talent Development, Work-Life Balance, and Organizational Culture. *Public Personnel Management*, 52(1), 3-25.
36. Yadav, R. K., & Yadav, S. (2022). Spirituality in the Workplace: Enhanced Job Satisfaction Through Employee Well-being and Work-life Balance. *JurnalManajemenTeoridanTerapan*, 15(3), 318-328.
37. Yadav, R. K., & Yadav, S. (2024). Employee Retention Strategies for Sustainable Organizations. *Journal of Management and Sustainability*, 14(2), 45-58.
38. Zhang, L., & Wang, Y. (2023). Power Dynamics in IT Outsourcing: Implications for Talent Retention. *Information Systems Journal*, 33(1), 85-112.

साकेत की आधुनिकता : एक समकालीन दृष्टिकोण

डॉ. सज्जन कुमार

शोध सार:

मैथिलीशरण गुप्त का महाकाव्य 'साकेत' न केवल रामकथा का पुनर्पाठ है, बल्कि यह बीसवीं शताब्दी की सामाजिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक चेतना का प्रतीक भी है। यह काव्य परंपरा और आधुनिकता के संगम का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। जहाँ परंपरागत रामकाव्य श्रीराम के दिव्यता और आदर्शों पर केंद्रित रहता है, वहीं 'साकेत' में गुप्त जी ने उपेक्षित पात्र 'उर्मिला' को केंद्र में लाकर नारी दृष्टिकोण और उसकी अंत:चेतना को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। यही दृष्टिकोण इसे आधुनिकता से जोड़ता है।

'साकेत' की आधुनिकता का आधार इसकी वैचारिक संरचना, मानवीय दृष्टिकोण और तर्कप्रधान दृष्टि में निहित है। इसमें राम को ईश्वर से अधिक मानव के रूप में चित्रित किया गया है, जो आधुनिक विचारधारा – जैसे कि मानवतावाद, राष्ट्रवाद, स्त्री विमर्श और सामाजिक उत्तरदायित्व से गहरा से जुड़ा हुआ है। गुप्त जी का राम केवल एक धार्मिक आदर्श नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का वाहक और जनकल्याण के लिए समर्पित व्यक्ति है।

इस महाकाव्य में चित्रित दृश्य, संवाद, चरित्रों की मनोवृत्तियाँ तथा सामाजिक संकेत अत्यंत समकालीन और आधुनिक बोध से युक्त हैं। 'साकेत' में आधुनिक नारी की छवि, राष्ट्रधर्म की व्याख्या, धर्म और राजनीति के अंत:संबंध तथा मनुष्य की अंतर्दृष्टि का गहरा चित्रण मिलता है।

इस शोध का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि 'साकेत' केवल एक पौराणिक आख्यान नहीं, बल्कि आधुनिक चेतना, समाज-सापेक्ष मूल्यबोध और साहित्यिक नवोन्मेष का सफल उदाहरण है। यह अध्ययन 'साकेत' की आधुनिकता को विभिन्न आयामों वैचारिक, सामाजिक और सौंदर्यात्मक के माध्यम से प्रस्तुत करता है।

मूल शब्द :

आधुनिकता, मानवतावाद, नारी विमर्श, रामकथा का पुनर्पाठ, उर्मिला का पुनर्स्थापन, राष्ट्रवाद, तर्कशीलता, समकालीन दृष्टिकोण

प्रस्तावना :

'साकेत' मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित एक अत्यंत महत्वपूर्ण महाकाव्य है, जो न केवल रामकथा की पुनर्रचना करता है, बल्कि उसे आधुनिक मूल्यों और दृष्टिकोणों से भी जोड़ता है। बीसवीं शताब्दी के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिवेश में गुप्त जी ने रामकथा की परंपरागत सीमाओं से बाहर जाकर उसमें ऐसे तत्व जोड़े जो तत्कालीन भारतीय समाज की ज्वलंत समस्याओं को रेखांकित करते हैं। इस काव्य में केवल राम की नहीं, बल्कि उपेक्षित पात्रों जैसे– उर्मिला को केंद्र में लाकर नारी विमर्श की न दिशा प्रस्तुत की गई है, जो इसे आधुनिक दृष्टिकोण से समृद्ध बनाता है।

'साकेत' की आधुनिकता उसकी भाषा, भावबोध, दृष्टिकोण और मूल्यपरक दृष्टि में निहित है। गुप्त जी ने धर्म, भक्ति और राष्ट्रवाद को जिस प्रकार मानवीय दृष्टिकोण और उपयोगितावादी संदर्भों से जोड़ा है, वह इस काव्य को परंपरा और आधुनिकता के बीच एक संवादात्मक सेतु में परिवर्तित करता है। साथ ही, काव्य में तर्क, विवेक, स्वतंत्र चेतना, मानवतावाद, और नारी की गरिमा को स्थान देकर गुप्त जी ने 'साकेत' को केवल धार्मिक आख्यान नहीं, बल्कि एक सामाजिक, सांस्कृतिक

और वैचारिक दस्तावेज बना दिया है।

इस संदर्भ में 'साकेत' एक ऐसा ग्रंथ बनकर उभरता है जो पौराणिकता के भीतर आधुनिक चेतना का संचार करता है। मैथिलीशरण गुप्त ने रामकथा के पात्रों को केवल देवी-देवताओं की तरह नहीं, बल्कि सामाजिक, नैतिक और मानवीय संदर्भों में प्रस्तुत किया है। उन्होंने 'राम' को एक लोकनायक के रूप में चित्रित किया है जो मानवता, न्याय और त्याग का प्रतीक है। वहीं 'उर्मिला' जैसे उपेक्षित पात्रों को मुखर बनाकर उन्होंने नारी अस्मिता और आत्मबल की गहरा को उजागर किया है।

'साकेत' में चित्रित 'समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदान' जैसी अवधारणाएँ आधुनिक लोकतांत्रिक मूल्यों और राष्ट्रनिर्माण की विचारधारा से गहरा से जुड़ती हैं। राम का राज्य त्याग और उर्मिला का एकांत तप दोनों ही आदर्श नायक-नायिका के आधुनिक रूप में सामने आते हैं, जहाँ निजी सुख से अधिक समाज और राष्ट्र का हित सर्वोपरि है।

इसके अतिरिक्त, गुप्त जी का उपयोगितावादी दृष्टिकोण, उनका नैतिक यथार्थवाद, धर्म और कर्म के आधुनिक व्याख्यान तथा स्त्री की गरिमा का उन्नयन यह सिद्ध करते हैं कि 'साकेत' केवल एक काव्य कृति नहल्, बल्कि आधुनिक भारतीय मानस की चेतना का आ ना है।

'आधुनिक', 'आधुनिकता' 'आधुनिकीकरण' और 'आधुनिकतावाद' शब्द का प्रयोग यूरोप में वर्तमान में किया जाता है। 'आधुनिकता' शब्द एक सापेक्ष अर्थ व्यक्त करता है। प्राचीन मूल्यों की सापेक्षता में वर्तमान नवीन मूल्यों को पुराने मूल्य कहकर तिरस्कृत करेगी। वस्तुत: 'आधुनिकता' की व्याख्या अतीत के सापेक्षता में ही की जा सकती है। अतीत से नितान्त निरपेक्ष रखकर 'आधुनिकता' की को व्याख्या नहीं हो सकती। अंग्रेज समीक्षक 'जी.एस.फ्रेजर' के अनुसार- ''आधुनिकता को अपनी सुरक्षा के लिए अतीत से संबंध रखना चाहिए।''

'आधुनिकता' का मूल्य ऐतिहासिक दृष्टिकोण के साथ ही है। पुरातन मूल्यों एवं 'ऐतिहासिक' बोध का मानसिक प्रत्यक्षीकरण करके ही हम 'आधुनिकता' की अवधारणा से परिचित हो सकते हैं। प्रसिद्ध समीक्षक डॉ. जगदीश गुप्त के अनुसार 'आधुनिकता' का मूल आधार मानवतावादी दृष्टि है। यह दृष्टि ही सुविचारित 'आधुनिक' दृष्टिकोण है और मानव मुक्ति से किसी न किसी रूप में अवश्य जुड़ी होती है।'

'आधुनिकीकरण' सामाजिक वर्गों की सीमाओं को मिटाने नगरों, महानगरों का विकास सामाजिक गतिशीलता शिक्षा का प्रसार, ज्ञान-विज्ञान का विस्तार और सामंती मूल्यों का ह्रास है। आधुनिकीकरण धर्म-दर्शन, ज्ञान-विज्ञान जैसे प्रत्येक क्षेत्र के नये दृष्टिकोण को कहा गया है। जो निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है।

''आधुनिकता का संबंध आधुनिकीकरण के फलस्वरूप पुरातन तथा परंपरागत विचारों एवं मूल्यों, धार्मिक विश्वासों और रूढ़िगत रीति-रिवाजों के विरुद्ध नवीन और वैज्ञानिक आविष्कारों, विचारों, नए मूल्यों आदि से है। 'आधुनिकीकरण' राष्ट्र और समस्त परिवर्तनों तथा प्रक्रियाओं के लिए प्रयोग किया जाता है जो पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत औद्योगीकरण तथा यंत्रीकरण के कारण प्रकट हुए हैं।''[1]

'मैथिलीशरण गुप्त' द्विवेदी युग के सर्वाधिक लोकप्रिय राष्ट्रवादी और सामंजस्यवादी कवि थे। ये भक्त कवि के साथ-साथ राष्ट्रवादी श्रृंगारिक कवि के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। 'रामानंदी संप्रदाय' में दीक्षित 'गुप्त जी' आजीवन मस्तक पर तिलक और कंठी धारण किया करते थे। ये जागरूक चेतना प्रवण और युग प्रवर्तक साहित्यकार थे। ये राम के अनन्य भक्त थे। 'साकेत' के माध्यम से इन्होंने 'राम काव्य' को एक नया स्वरूप दिया। कवि ने पौराणिक रामकथा के कुछ स्थलों को लेकर उसके आधार पर 'साकेत' की कथानक की रचना की गुप्त जी ने 'साकेत' में रामायण के परित्यक्त विस्मृत एवं उपेक्षित प्रसंगों व पात्रों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। 1931 में प्रकाशित साकेत महाकाव्य में 12 सर्ग हैं। प्रारंभिक सर्गों में साकेत नगरी का वर्णन, कैकेयी का दशरथ से वचन, श्रीराम को वनवास का आदेश, अयोध्यावासियों का करूण रूदन और वन गमन की झाकियाँ हैं।

'साकेत' महाकाव्य के प्रारंभ में मंगलाचरण और सरस्वती वंदना है। 'नवम् सर्ग' को छोड़ कर सभी संर्ग में एक ही छंद का प्रयोग है। 'साकेत' में उपयोगितावाद तथा नारी की महत्ता का प्रतिपादन है। 'साकेत नगरी' देश-प्रेम, पति-पत्नी संबंध, राजा-प्रजा संबंध आदि का चित्रण मिलता है। जो निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

"साहित्यदर्पणकार के अनुसार 'साकेत' में महाकाव्य के बहुत से लक्षणों की पूर्ति हुई है। प्रारंभ में गणेश को लेकर मंगलाचारण है और सरस्वती को लेकर वंदना। कथा लोक-प्रसिद्ध नायक की जो सदृंशजात क्षत्रिय है। आठ के स्थान पर बारह सर्ग है। नवम् सर्ग को छोड़कर प्रत्येक सर्ग में एक ही

छंद का प्रयोग है और सर्ग के अंत में छंद बदल जाता है। प्रधान रस श्रृंगार (विप्रलंभ) है। वीर, करूण आदि आए हैं पर गौण रूप से। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से धर्म की सिद्धि होती है। वर्णनों में नगर (साकेत), प्रेम, यात्रा, प्रभात, संध्या, रजनी, सरिता (सरयू और गंगा), पर्वत (चित्रकूट), षट् ऋतुओं, मृगया, वन, रण-सज्जा, युद्ध आदि के वर्णन हैं। इनके अतिरिक्त, कला, देश-प्रेम, पति-पत्नी संबंध, भौतिकवाद, राजा-प्रजा के संबंध, उपयोगितावाद तथा नारी की महत्ता आदि पर भी व्याख्यान है। प्रबंधबद्ध कथानक, चरित्र-चित्रण, दृश्य वर्णन और रस, चारों दृष्टियों से यह महाकाव्य करीब-करीब खरा उतरता है।''[2]

'साकेत' में 'उर्मिला' को महत्व दिया गया है। रामकथा परंपरा में वस्तु तत्व में नये संदर्भों का संयोजन 'साकेत' की 'आधुनिकता' का उल्लेख पक्ष है। सत्य नया नहीं होता उसका साक्षात्कार नया होता है।

'साकेत' में बुद्धिवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है 'राम' के ईश्वरत्व पर प्रश्न करते हुए 'मैथिलीशरण गुप्त' कहते हैं-

''राम तुम मानव हो, ईश्वर नहीं हो क्या?
विश्व में रमें हुए नहीं सभी कहीं हो क्या?
तब मैं निरीश्वर हूँ ईश्वर क्षमा करें;
तुम न रमो तो मन तुममें रमा करे।''[3]

साकेत में 'आधुनिकता' का स्वर प्रबल है। इसमें कवि ने स्वर्ग को भूतल से छोटा माना है। कवि ने माना है कि भूतल का विस्तार बढ़ रहा है और भाग्य के सूर्य उदित हो रहा है ईश्वर न सगुण है न निर्गुण है वे मानव रूप में अवतरित हो रहे हैं अखिलेश रूप में अवतरित हो रहे हैं जो निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है-

''स्वर्ग से भी आज भूतल बढ़ गया,
भाग्य भास्कर उदयगिरि पर चढ़ गया।
हो गया निर्गुण सगुण-साकार है,
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।''[4]

'साकेत' में चित्रकूट प्रसंग का भी कलात्मक वर्णन है 'राम' और 'सीता' का संवाद इस प्रसंग का विशेष तत्व है। 'रावण' की बर्बरता के कारण जनता त्राहिमान है यहाँ 'संकेत' में रावण सत्ता है और जनता आम लोग का प्रतीक है। अध्यात्मिक तौर पर लोगों को यज्ञ प्रथा वेद वाणी की तरफ उन्मुख होते दिखाया गया है। चित्रकूट प्रसंग में 'राम-रावण' का युद्ध दो सभ्यताओं का युद्ध है दो देशों का युद्ध है। यहाँ ईश्वर को प्रतीक लेकर राष्ट्र एवं आमजन की समस्याओं आदि को लेखक ने दिखाया है आर्य एवं अनार्य की समस्या को भी दिखाने का प्रयत्न किया गया है जो निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है-

''मैं दूँगा अब आर्यत्व उन्हें निज कर से।''[5]

भारतीय संस्कृति में प्रारब्ध और पुरूषार्थ का विवरण है। इसलिए कर्म पर बल दिया गया है। आलस के त्याग पर बात की गई है। भारत वसुधैव कटुबंकम् का पालन करता है। गुप्त जी ने इसी भावना को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि समष्टि के लिए व्यष्टि का बलिदान हमारे संस्कृति की पहचान है। राम जनकल्याण के लिए राज्य को त्यागकर वनवासी हो जाते हैं और पिता के वचन और राज्य के लिए चौदह बरस का वनवास अंगीकार कर लेते हैं। यहाँ भी राम का 'आधुनिक' स्वरूप परिलक्षित हुआ है। समकालीन प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है जो निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है-

''हम हों समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी।''[6]

'साकेत' बीसवीं शताब्दी का 'आधुनिक' महाकाव्य है जिसे 'मैथिलीशरण गुप्त' ने पौराणिक राम कथा को आधार बनाकर नये संदर्भों में रेखांकित किया है। 'गुप्त जी' सामंजस्यवादी कवि हैं वे समय संदर्भों के साथ तादात्म्य स्थापित करते चलते हैं। इन्होंने 'साकेत' के माध्यम से भारतीय संस्कृति, राष्ट्रीय भावना लोक-कल्याण वैविध्यपूर्ण जीवन को रेखांकित किया है जो निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट है-

'''गुप्त जी भारतीय संस्कृति और राष्ट्र-भावना के यज्ञ के पुरोधा कहे जाते हैं, क्योंकि इन्होंने देश के वैविध्यपूर्ण जीवन को एकता के सूत्र में आबद्ध करने का स्तुत्य प्रयास किया और युग के लिये कल्याणकारी जीवनमूल्यों की स्थापना की। भाव, विचार, भाषा और शैली सभी क्षेत्रों में उनका योगदान अभूतपूर्व है। अपनी काव्य-प्रतिभा से न केवल अपने युग को आलोकित करने अपितु परवर्ती युगों के लिये आलोक-स्तंभ बनने का श्रेय भी उन्हें हैं।''[7]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'साकेत' रामकाव्य का आधुनिक महाकाव्य है। इसमें उर्मिला के माध्यम से तात्कालीन नारियों की स्थितियों का चित्रण है, साथ ही सभी पात्रों को तात्कालीन आधुनिक परिस्थितियों से जोड़ने का भी प्रयत्न किया हैं।

सहायक प्राध्यापक
ज़ाकिर हुसैन कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सन्दर्भ सूची

1. हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक राष्ट्रवली, डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, पाँचवां छात्र संस्करण, 2018, पृष्ठ सं.-59-60
2. विश्वम्भर 'मानव' रामकिशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम पुनर्मुद्रित संस्करण-2011, पृष्ठ सं.-51
3. आधुनिक प्रतिनिधि कवि, डॉ. शान्ति स्वरूप गुप्त सूर्य प्रकाशन, न दिल्ली, संस्करण-1983, पृष्ठ सं.-12
4. साकेत-मैथिलीशरण गुप्त, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण-2012, पृष्ठ सं.-1
5. विश्वम्भर 'मानव' रामकिशोर शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पुनर्मुद्रण संस्करण, 2016, पृष्ठ सं.-52
6. आधुनिक प्रतिनिधि कवि, डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त, सूर्य प्रकाशन, न सड़क, दिल्ली संस्करण, 1983, पृष्ठ संख्या-16
7. आधुनिक प्रतिनिधि कवि, डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त सूर्य प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली संस्करण-1983, पृष्ठ संख्या-20

Research Paper

Hira Chand Mehta

Role of Women in Panchayati Raj

Summary

'Man is the best creation of God and this development chain of human society has been passing through the ups and downs of the world ocean of men and women. In today's world, along with men, women have also definitely become aware and are succeeding in achieving their separate identity. Panchayati Raj system has played an important role in this separate identity of women. By giving 50 percent reservation to women in Panchayati Raj institutions, the results have been positive and the position of women has become stronger than before. It has also been guaranteed in our Constitution that equality will be maintained between men and women in public appointments and it has been stated as the duty of every citizen to abandon the practices contrary to the dignity of women. The provisions mentioned in the Constitution have to some extent brought about a change in the narrow mindset of men and the priority of implementation of subjects like women's education, gender equality has started being accepted and new consciousness, new strength and self-confidence has increased in women and the process of women empowerment has become stronger.

Keywords:

Women awareness, Panchayati Raj constitutional provisions, change in the mindset of society, encouragement of women empowerment

Introduction

Humans are the best creation of God and this development chain of human society has been passing through the ups and downs of the world in the form of men and women. In today's world that has entered the twenty-first century, along with men, women have also definitely become aware and are succeeding in achieving their separate identity. Panchayati Raj system has played an important role in the social, political, economic and cultural progress achieved by women in the society. The main objective of establishing Panchayati Raj is to bring about all-round development of rural life and the issues of basic development are closer to women, so they can understand them better and give better direction.Emphasis is being laid on making women not only equal partners in economic development but also the need is being felt to consider them 'equal' on every front. Along with this, the question of equal political participation of women as men is also a very popular topic of discussion in the modern civilization of the world. Constitutional efforts: The concept of giving rights to women is more popular in developing societies like India. As soon as the Constitution was implemented in India, women were given equal political rights and civil liberties. It is well known that active participation and empowerment of women is very important for the overall and balanced development of the country.

Main Body of the assignment:

As the nation leader Swami Vivekananda had said that "Just as a bird cannot fly with one wing, similarly no nation can progress without the participation of

women."[1] Late Mrs. Indira Gandhi expressed similar views. She assessed the problems of women in a more realistic manner. Mrs. Gandhi had said that "I want our women to be treated like human beings. They do not want to become goddesses but they should be given full opportunity to develop their talents and abilities so that they can use it for the service of the nation."[2]

Our constitution also guarantees that equality will be maintained in public appointments and at the same time it is the primary duty of every citizen to renounce practices that are detrimental to the dignity of women. Keeping this sentiment in mind, the preamble of the constitution also sets the objective of giving equal rights and facilities to all citizens of the country, whether men or women. If we talk about Rajasthan, a separate provision has been made to encourage women's education. Here, to fulfil the basic needs of the all-round development of children and a better life of their mothers, the Women and Child Development Department was also formed in 1985, under which the following programs were started :-

- Integrated Child Development Services (RCDS)
- Women's Development Program
- New facilities for widows and divorced women
- Women's scholarships
- Grant programs
- Special grant schemes for women entrepreneurs, etc.

But despite this, participation of women in politics was recorded to be low. Keeping this fact in mind, it has been mentioned in the report of the National Committee on Women that "Women cannot be considered a minority in terms of numbers, but due to inequality in status and political power, the characteristics of minorities are increasing among them. This committee in its report recommended the participation of women in local governance to ensure active participation of women in the decision-making process and to provide them equal opportunities.

Through the 73rd constitutional amendment, people of every society got the right to representation. The most happiness was celebrated in those villages where even after the existence of Panchayat Raj, it was only buried on paper. People were deprived of the right to contest elections, in such a situation the constitutional amendment proved to be an effective weapon. Panchayat Raj could become completely independent and democratic. Half the population also got the right to public representation which was already available in the constitution but in front of patriarchy, despite having this right in the constitutional amendment, it was deprived of this right. "The participation of women in the overall development of the country was accepted, but when it came to their rights, they were pushed back. History is a witness that women have always cooperated shoulder to shoulder in progress, whether it is home, family, farm or any other place, women have never lagged behind."[3]

According to the Rural Development Ministry of the Government of India, the participation of women at the Panchayat level is constantly increasing. In the year 2000, the number of women Sarpanchs in the whole country was 772677, while in 2004 their number reached 838245. Similarly, the number of women in Panchayat Samiti increased from 38412 in the year 2000 to 47455 in 2004. In the District Panchayat, the number increased from 4088 in the year 2000 to 4923 in the year 2004, while in Madhya Pradesh alone, after the implementation of women reservation in 1994, 150500 women were elected at the district, block and gram panchayat level. In Jharkhand, after giving 50 percent reservation to women, in the Panchayat elections held in December 2010, more than 80 percent women occupied the Zilla Parishad. And at the Panchayat level, about 55 percent women ensured their victory. In the year 2019, the election of Gram Pradhan was held on 60 seats in Haldwani block of Nainital district of Uttarakhand, out of which 35 seats were won by women representatives, which is 58 percent of the total seats. As against the total 39 seats of area panchayat members, 21 women representatives were elected, which is 53 percent of the total. And out of 27 seats of district panchayat members, women representatives have been elected in 14 seats. Now apart from reserved seats, women are also getting elected from general seats. Year after year, the number

of women elected from general constituencies is increasing. This is an important achievement of a society divided into categories and dominated by men.

By bringing positive change in their areas as elected women representatives across the country, leaving their mark, these women are playing the role of role models for other women. While people with male-dominated mindset have often argued that women cannot do the work of panchayats properly, but the findings of surveys are contrary to this. Women public representatives are playing an important role in giving unprecedented speed to rural development, which is clear from these examples. "Kali Bai, Sarpanch of Batkidoh Gram Panchayat of Betul district of Madhya Pradesh was awarded the National Award in 2014 for the best work done in the Gram Panchayat such as increasing the irrigation area by increasing the water level by constructing ponds, providing clean drinking water to rural households and important role in providing employment under MNREGA."[4] The female head of Chand Samand Gram Panchayat of Karnal district of Haryana developed ponds under MNREGA for the purpose of cleaning dirty water which are being used for gardening and irrigation purposes. The female head of Dhauj Gram Panchayat of Haryana has taken many new initiatives towards women empowerment such as skill development of women and girls, motivating school girls for their rights, running a campaign against customs like purdah ghunghat etc. In the same sequence, Sarpanch Chhabi Rajput of Soda Gram Panchayat of Rajasthan made better efforts to ensure solar energy, paved roads, toilets and banking facilities in her Gram Panchayat. Besides, Fatima Bi (Andhra Pradesh), Sudha Patel (Gujarat), Gudiya Bai (Madhya Pradesh), Savita Ben (Gujarat) etc. are many such women who have taken forward many social and economic works of rural development by taking the leadership of Panchayats. But this does not mean that the challenges and obstacles for women have ended, rather the reality is that they have achieved this position only by overcoming the challenges and obstacles.

"Many countries of the world have experienced that women do not get adequate representation in elections at the rural and national level. Better opportunities to increase this representation can be found in the institutions of local self-government."[5] From this point of view, the example of India has been important because due to the system of reservation for women in the Panchayati Raj institutions here, the highest number of women are elected at the level of local self-government in the world in India. The study of various successful Panchayats led by women has revealed that by coming forward under the leadership of women, success is achieved in taking forward the development work with more dedication and honesty, working in mutual harmony, promoting greenery and water conservation and giving priority to social reforms like reducing drug addiction.

Initially, as soon as women reservation was implemented in Panchayat Raj institutions, women got elected to the Panchayats but the work related to the Panchayat was done by their husbands or relatives. All the dreams of women reservation and women empowerment seemed to be shattered, but gradually the circumstances are changing. And now the women elected to the Panchayats are no longer puppets of their male relatives, now they are taking decisions by coming forward and realizing the dream of women empowerment. Today politically aware women are contesting elections in Panchayats and after winning the elections are taking decisions independently. Most of the women who are getting elected to the Panchayats are young and educated. They are breaking the myth that women have less political capability than men. The social condition of women in rural areas is not good, but due to the democratic environment and reserved seats for public participation, the situation has started changing. For some time, women in different parts of the country have shown unprecedented awakening. 'At present, provision of 50 per cent reservation for women has been made in Panchayati Raj of about 21 states including Uttarakhand, Bihar, Madhya Pradesh, Himachal Pradesh, Rajasthan and Gujarat, in which Bihar is the first state which has played an important role in women empowerment by giving 50 percent reservation to women in 2006."[6] Through this system, most of the women stepped into the public sector for

the first time, it was not easy for these women who were limited to the kitchen to prove themselves in the new role, but when they got rights and responsibilities came on their heads, gradually they also learnt the way of working. On one hand, the system of reservation given to women in Panchayats has changed the fate of women, on the other hand, it is also changing the picture of Panchayats because women have become politically empowered by this system. Self-confidence has been awakened in them. Along with this, this system has worked to improve the condition of women and bring awareness in them by making them partners in power. Today, the involvement of rural women is not limited to the kitchen but is becoming important in policy making in political and social areas. The progress of various social schemes has brought about a lot of change in the economic and social life of the village. Through the Panchayat, various social schemes are directly reaching the villages and villagers. The central government is constantly trying to strengthen the Panchayati Raj institutions at the grassroots level. The strengthening of Panchayati Raj has also led to the rise of a new generation in politics. The new steps being taken by the government to further strengthen the Panchayati Raj have instilled new confidence in the people. Now the situation is that along with the participation of women in the Panchayats, their self-reliance is also great. They are adopting self-employment through small self-help groups and are contributing to the development of the Panchayats. In this way, it would not be wrong to say that the political and empowerment campaign of women gained momentum from the Panchayats. Only when their participation in the Panchayats increased, they were able to move ahead in every direction.

Provision of reservation for women in Panchayati Raj

Keeping in view the suggestions of the "National Committee on Women, to promote the status of women as much as possible, to improve their social and family living standards and to increase political awareness, the government provided 1/3 (one third) reservation to women in the Panchayati Raj system through the 73rd Constitutional Amendment in April 1993."[7]

In the year 2009, the cabinet headed by the Prime Minister decided that by passing a bill to amend Article 243 (D) of the Constitution of the country, a minimum of 50 percent reservation will be given to women in Panchayati Raj institutions. Which was 33 percent earlier.

In Bihar, Uttarakhand, Himachal Pradesh, Madhya Pradesh and Rajasthan, provision of 50 percent reservation for women has been made in Panchayati Raj system.

Due to getting the shield of reservation in Panchayati Raj system, political consciousness, political awakening and political participation has been initiated among women. Due to this participation of women, an unexpected increase has been recorded in their socio-economic status, respect and prestige. Men have also started accepting the ability, capacity and experience of women.

To some extent, there has been a change in the narrow mindset of men. Due to which the priority of implementation of subjects like women education, girl education and gender equality has started being accepted.

The above positive changes have given rise to new consciousness, new strength and self-confidence in women and the process of women empowerment has been strengthened. The Panchayati Raj system has also been strengthened due to the entry of women in power.

Obstacles and Challenges:

Despite many social and constitutional efforts for active participation of women in Panchayati Raj, effective participation of women in politics is not being ensured due to illiteracy, dual social values, economic backwardness, traditional social background, lack of adequate information etc.

Keeping this fact in mindIt is necessary that proper arrangements for education and training of illiterate elected women should be made. "Personality development"[8] camps should be organized for the development of feelings like self-confidence and self-esteem in women. Women's education should be

promoted so that self-confidence, awareness, reasoning power can be developed in them and they can use their rights, strength and power in the true sense. By doing this, it will also be possible to regulate domestic violence, harassment and exploitation in the society.

In this context, it is rightly said that "Dense forests and darkness are a silent invitation, deception, there is no trust, we have to walk a long way."[9]

In conclusion, it can be said that the women, who are called half of the world, do not hold back from demonstrating their efficient leadership and management when they get the opportunity and position. The leadership capabilities of women have come to the fore through Panchayati Raj. Also, the number of women elected from general constituencies is also increasing year after year. This fact is enough to indicate how women are participating in political work. The increasing success of women leadership in Panchayats is an important achievement not only from the point of view of women empowerment but also from the point of view of development work and social reform, but despite this, even today many types of challenges exist before women in Panchayats. Therefore, there is an extreme need to train women in Panchayats about their rights, powers, responsibilities and various rules and laws for conducting Panchayat proceedings. Also, it is the responsibility of the male class to change their mindset and support half of the population. Only then will women be able to play their role effectively in Panchayats. Even though women representatives face many challenges, they are still performing their responsibilities well and doing panchayat related work promptly. And are writing their success stories in the rural society. In fact, the picture of women is changing with the increasing participation of women in panchayats.

Asst. Professor of Political Science
MLA College Kasba
Purnea UniversityPurnia, Bihar

References:

1. Dr. Sharma, Shrinath Panchayati Raj and Rural Development Aditya Publishers (Bina-M.9) 2000 pp. 17.
2. Kothari, Rajni. "Panchayati Raj Reassessment" Economic and Political Weekly May 13, 1965 p. 758.
3. Dr. Chaturvedi, Geeta. Women Administrators of India 1985.
4. Shri Verma, Sudhir, Women's Struggle and Political Space, 1997.
5. Dr. Rathore, Amar Singh. Rural Development and Women, Rajasthan Development October 1989 p. 22 and 23.
6. Kumar, Dr. Abhay, Gandhiji's concept of rural development, 15 October 1992.
7. Above mentioned page no. 27.
8. Singh, Hoshiyaar, Kurukshetra October 2006.
9. Gandhiji's concept of Swaraj, page no. 21.

प्रमुख संस्कृत नाटकों में चित्रित समाज एवं संस्कृति

डॉ. वन्दना सूरज भान

सारांश

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। विशेष रूप से संस्कृत नाट्य साहित्य का इस दृष्टि से अद्वितीय महत्त्व है। संस्कृत नाटकों में तत्-तत्कालीन समाज एवं संस्कृति के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है। किसी भी स्थान अथवा प्रदेश की संस्कृति में परिगणित किए जाने वाले तत्त्व - परिवार एवं विवाह, शिक्षा, नारी की स्थिति, वेशभूषा, अलङ्कार, खान-पान, संस्कार, उत्सव इत्यादि हैं, जिनका वर्णन संस्कृत नाटकों में कथानक एवं परिस्थितियों के प्रसंगानुसार स्वाभाविक रूप से उपलब्ध होता है। संस्कृत के महान् नाटककार वर्तमान विद्वत्वर्ग द्वारा हृदय से वन्दनीय हैं जिनके कारण हम आज भी तत्कालीन समाज एवं संस्कृति की व्यवस्था को जानने में समर्थ हैं।

बीज शब्द - उपर्युक्त - ऊपर कहा गया, परिशीलन - गंभीर अध्ययन, आह्लादित - प्रसन्न, हर्षित, अन्वेषण - खोज, प्रकरण - प्रसंग, संदर्भ, व्यवस्थित - विधिपूर्वक, वल्कलवस्त्र - वृक्ष की छाल का वस्त्र, अवगुण्ठनवती - घूंघट से युक्त, संतप्त - दु:खी, उदास, खिन्न, निवारण - दूर करना, रोकना, संस्थापन - निश्चित/स्थापित।

काव्येषु नाटकं रम्यम्

संस्कृत नाटकों के विषय में उपर्युक्त प्रसिद्धोक्ति से हम सभी सुपरिचित हैं। काव्य के द्विविध भेदों दृश्य एवं श्रव्य में से दृश्यकाव्य (नाटक) की परिभाषा देते हुए आचार्य विश्वनाथ ने कहा है - **'दृश्यं तत्राभिनेयं, तदूपारोपात्तु रूपकम्।'**[1] आचार्य धनञ्जय ने नाटक तथा रूपक की परिभाषा देते हुए कहा है - **'अवस्थानुकृतिनाट्यम्य रूपकं तत्समारोपात्।'**[2] इस प्रकार अभिनयाधारित होने के कारण नाटक के मूल में अनुकरण का होना स्पष्टत: स्वीकृत है। यह अनुकरण अथवा अभिनय इस सम्पूर्ण विश्व में विद्यमान लोकजीवन में घटित किसी भी घटना अथवा उसके किसी अंश पर आधारित हो सकता है।

आचार्य भरतमुनि द्वारा अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में स्पष्ट किया गया है कि नाट्यरचना का सर्वोपरि उद्देश्य लोक का मनोरञ्जन तथा दुश्चिन्ताओं का निराकरण करना है -

दु:खार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद्भविष्यति॥[3]

उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में संस्कृत साहित्य का परिशीलन करने पर ज्ञात होता है कि संस्कृत भाषा की साहित्य परम्परा में अनेक सुप्रसिद्ध नाटक एवं नाटककार विद्यमान हैं। इन कवियों ने अपनी नाट्यरचनाओं के माध्यम से सहृदयों को अनुपम रूप से आह्लादित एवं रसास्वादित किया है।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। इसी प्रकार एक नाटककार भी तत्तत् कालीन समाज का प्रतिनिधित्व करता है। एक सफल एवं प्रतिभाशाली रचयिता नाटक के सरस कथानक के माध्यम से लोकानुरञ्जन के साथ-साथ उस काल में विद्यमान समाज एवं संस्कृति का चित्रण भी हमारे सम्मुख उपस्थित करता है।

संस्कृत नाटकों का कथानक अधिकांशत: राजसी पात्रों के जीवन पर आधारित होता है किन्तु इस कथानक रूपी ताने-बाने में अनेक सूत्र तथा रंग राजेतर पात्रों से भी सुसज्जित होते हैं जिसके कारण राजसी एवं सामान्य दोनों प्रकार की जीवनशैली तथा परिस्थितियों का परिचय प्राप्त होता है। समाज तथा संस्कृति से जुड़े विविध तत्त्वों का कतिपय संस्कृत नाटकों में अन्वेषण करना अत्यन्त रोचक विषय है। इनमें तत्कालीन समाज में

प्रचलित परिधान, उत्सव, भोजन, शिक्षा, विविध कलाएँ, विवाह व्यवस्था, नारी की स्थिति, दण्डविधान आदि अनेक बिन्दु हैं, जो इन नाटकों का अनुशीलन करने से ज्ञात होते हैं।

विवाह

किसी समाज की मूलभूत ईकाई परिवार को माना जाता है तथा किसी परिवार का प्रारम्भ गृहस्थाश्रम में प्रवेश के साथ होता है। ब्रह्मचर्य आश्रम की पूर्ति के पश्चात् व्यक्ति गृही बनकर जीवन में विविध उत्तरदायित्व निभाता है। भारतीय संस्कृति में विवाह को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। इसका प्रमाण अनेक शास्त्रों अथवा ग्रन्थों में भी प्रतिपादित किया गया है। महाराज मनु के द्वारा विवाह के आठ प्रकार बताए गए हैं। संस्कृत नाटकों में बहुधा नायक-नायिका अथवा सहायक पात्रों के विवाह सम्बंध एवं समाज में प्रचलित एवं स्वीकृत विवाह-प्रकारों का परिचय मिलता है। कन्या का विवाह करवाना पिता अथवा भाई की जिम्मेदारी होती थी - ऐसा अनेक प्रसङ्गों द्वारा ज्ञात होता है। मालतीमाधव नाटक में बौद्धसंन्यासिनी कामन्दकी के कथनों से इसकी पुष्टि होती है -

कामन्दकी - अपि नाम कल्याणिनोर्भूरिवसुदेव-रातापत्ययोरनयोर्मालतीमाधवयोरभिमतं पाणिग्रहमङ्गलं स्यात्।[4]

कामन्दकी - अयि सरले! किमत्र भगवत्या शक्यम्? प्रभवति प्रायः कुमारीणां जनयिता दैवैवं च।[5]

अभिज्ञानशाकुन्तल में भी प्रथम अंक में पिता द्वारा पुत्री का विवाह सम्पादन किए जाने का वर्णन मिलता है -

प्रियंवदा - आर्य धर्मचरणेऽपि परवशोऽयं जनः। गुरोः पुनरस्या अनुरूपवरप्रदाने सकल्पः।[6]

यद्यपि दुष्यन्त तथा शकुन्तला एवं स्वप्नवासवदत्त में उदयन एवं वासवदत्ता के गान्धर्व विवाह का वर्णन है, तथापि चतुर्थ अंक में ऋषि कण्व द्वारा इस विवाह को स्वीकृति प्रदान करने का सुखद वर्णन है - **दिष्ट्या धूमाकूलितदृष्टेरपि यजमानस्य पावक एवाहुतिः पतिता।**[7] इसी प्रकार वासवदत्त के षष्ठ अंक में उदयन-वासवदत्ता के गान्धर्व/राक्षस विवाह को स्वीकार करके वासवदत्ता के माता-पिता उन दोनों के चित्र बनवाकर उनका व्यवस्थित रूप से विवाह भी करवाते हैं। रानी अङ्गारवती का संदेश है -

अथ चावाभ्यां तव च वासवदत्तायाश्च प्रतिकृतिं चित्रफलकायामालिख्य विवाहो निर्वृत्तः।[8]

ऐसा संकेत भी मिलता है कि राजाओं की एक से अधिक पत्नियाँ होने के साथ-साथ सामान्य जन को भी बहुविवाह का अधिकार था। अभिज्ञानशाकुन्तल के छठे अंक में धनमित्र नामक व्यापारी की अनेक पत्नियाँ होने का उल्लेख मिलता है -

राजा - बहुधनत्वाद्बहुपत्नीकेन तत्रभवता भवितव्यम्। विचार्यतां यदि काचिदापन्नसत्त्वा तस्य भार्यासु स्यात्।[9]

इसी प्रकार मृच्छकटिक नाटक में चारुदत्त एक पत्नी के होने पर भी वसन्तसेना से विवाह करता है, जो कि एक गणिका है। इसी प्रकार उसका मित्र शर्विलक भी दूसरा विवाह करता है।

परिवार में सन्तान का न होना दु:ख का कारण माना जाता था जैसा कि राजा दुष्यन्त का कथन है - **कष्टं खल्वनपत्यता।** इसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तल के सप्तम अंक में बालक सर्वदमन से संयोग होने पर दुष्यन्त का मर्मस्पर्शी कथन है -

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम्।

कां निवृतिं चेतसि तस्य कुर्याद्यस्यायमङ्कात्कृतिनः प्ररूढः॥[10]

मृच्छकटिक में उल्लेख है कि गणिकाओं से भी सन्तानोत्पत्ति हो सकती थी जिसे बन्धुल कहा जाता था।

विवाह विषयक अन्य तत्त्वों में विशेष है विवाह के समय विशेष रेशमी वस्त्रों एवं आभूषणों को धारण करना (अभिज्ञानशाकुन्तल, चतुर्थ अंक), मालविकाग्निमित्र के पञ्चम अंक में वर्णित वैवाहिक वेष (५/७), मालतीमाधव के षष्ठ अंक में मालती को अलङ्कृत करने का वर्णन आदि। इस प्रकार विभिन्न नाटकों में विवाह सम्बन्धी विविध जानकारी प्राप्त होती है।

जीवन शैली

संस्कृत नाटकों में समकालिक जीवन शैली का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, जिसमें मुख्य रूप से तत्कालीन वेशभूषा, परिधान, अलंकार तथा खान-पान का उल्लेख किया जा रहा है। ध्यातव्य है कि पुरुष वर्ग के वस्त्रादि का अधिक उल्लेख नहीं मिलता किन्तु अभिज्ञानशाकुन्तल तथा स्वप्नवासवदत्त में बहुधा संन्यासियों के द्वारा वल्कल वस्त्र तथा काषाय वस्त्र धारण करने का वर्णन मिलता है। उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण का कथन है -

कार्यं नैवार्थैर्नापि भोगैर्न वस्त्रैर्नाहं काषायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः।

धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे

भगिन्याः ॥[11]

इसी प्रकार तापसी कन्याओं के रूप में शकुन्तला तथा उसकी सखियों द्वारा भी वल्कल वस्त्र धारण किए गए हैं।

आभूषणों के विषय में बात की जाए तो कृत्रिम पदार्थों का प्रयोग नहीं किया जाता था। नारियों के द्वारा प्राकृतिक पदार्थों यथा पुष्प एवं पत्रादि को आभूषण के रूप में पहनने का उल्लेख मिलता है, यथा – अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अंक में नटी का गीत निम्न प्रकार से है –

ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि।
अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि ॥[12]

मालविकाग्निमित्र नाटक के तृतीय अंक में आम्रमञ्जरी को तथा अशोक के पल्लवगुच्छ को कर्णाभूषण के रूप में पहनने का चित्रण है –

बकुलावलिका – न तावद्भर्ता। एषोऽशोकशाखाव-लम्बी पल्लवगुच्छः। अवतंसयैनम्।[13]

वैवाहिक अवसर पर नववधू के द्वारा रेशमी वस्त्र तथा अलंकार धारण करने का उल्लेख मिलता है। मालविकाग्निमित्र नाटक के पञ्चम अंक में मालविका के वैवाहिक वेश का वर्णन है। अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अंक में शकुन्तला की विदाई के अवसर पर वनदेवताओं द्वारा प्रदान किए गए वस्त्र तथा आभूषण इस संदर्भ में सर्वोत्कृष्ट दृष्टान्त है –

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ॥[14]

इसी प्रकार मृच्छकटिक नाटक में अनेक स्थानों पर वसंतसेना के प्रचुर मात्रा में स्वर्ण आभूषणों की स्वामिनी होने का उल्लेख मिलता है। मालविकाग्निमित्र के पञ्चम अंक तथा अभिज्ञानशाकुन्तल के पष्ठिम अंक में नववधू के अवगुण्ठनवती अर्थात् घूंघट में रहने का संकेत मिलता है। स्वप्नवासवदत्त में वासवदत्ता भी प्रोषितभर्तृका होने के कारण पर्दे में प्रदर्शित की गई है। वहीं पति से वियोग की स्थिति में अलंकारों, साजसज्जा तथा केशसज्जा का निषेध भी चित्रित किया गया है यथा वासवदत्ता एवं शकुन्तला का प्रसंग।

विविध कलाएँ

संस्कृत नाटकों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि नृत्य, संगीत, गीत, चित्रकारी आदि विविध कलाएँ तत्कालीन जीवन का एक अभिन्न अंग थीं। अब इन्हें मनोरञ्जन का साधन माना जाए अथवा लोगों की शिक्षा का एक भाग, राजसी वर्ग हो अथवा सामान्य समाज – ये कलाएँ किसी न किसी रूप में चित्रित की गई हैं। चित्रकला का वर्णन अनेक नाटकों में मिलता है, यथा – मालती द्वारा माधव का एवं माधव द्वारा मालती का चित्र बनाना तथा दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला तथा तपोवन का चित्र बनाना अत्यन्त जीवन्त रूप में चित्रित किया गया है। मालविकाग्निमित्र नाटक में चित्रशाला तथा शिल्पी द्वारा चित्र बनाने का उल्लेख है –

शृणु। चित्रशालां गता देवी यदा प्रत्यग्रवर्णरागां चित्रलेखामाचार्यस्यालोकयन्ती तिष्ठति।[15]

संस्कृत नाटकों में नृत्य कला विषय अनेक हृदयग्राही दृश्य मिलते हैं। मालतीमाधव नाटक के तृतीय अंक में मालती की नृत्य–गीत से उदासीनता का उल्लेख है। इसी प्रकार पष्ठिम अंक में कापालिकद्वय द्वारा देवी चामुण्डा की स्तुति के समय निशुम्भ नामक नृत्य विशेष का उल्लेख मिलता है –

सावष्टम्भनिशुम्भसम्भ्रमनमद्भूगोलनिष्पीडन-
न्यञ्चत्कर्परकूर्मकम्पविगलद्ब्रह्माण्डखण्डस्थिति।[16]

मालविकाग्निमित्र के प्रथम अंक में ही छलिक नामक नृत्य तथा नाट्याचार्य गणदास एवं मालविका के मध्य गुरु–शिष्या सम्बंध का वर्णन है – **''आज्ञाप्तास्मि देव्या धारिण्या। अचिरप्रवृत्तोपदेशं छलिकं नाम नाट्यमन्तरेण कीदृशी मालविकेति नाट्याचार्यमार्यगणदासं प्रष्टुम्। तत्तावत्संगीतशालां गच्छामि।''**[17]

स्वाभाविक है कि कोई भी विद्या अथवा कला गुरु के बिना सीखना सम्भव नहीं। इसी प्रकार यदि संगीत तथा गीत आदि का उल्लेख किया जाए तो स्वप्नवासवदत्त नाटक में घोषवती नामक वीणा विशेष का अत्यन्त आदरपूर्वक विशेष स्थान दिखाया गया है। राजा उदयन द्वारा वासवदत्ता को वीणा वादन की शिक्षा देने के दौरान ही उन दोनों में प्रेमाङ्कुर प्रस्फुटित हुआ था। वासवदत्ता की विरहावस्था में उदयन अत्यन्त हताश रूप से उसका स्मरण करता है –

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया।[18]

मृच्छकटिक नाटक में तो गीत संगीत एवं वाद्ययन्त्रों को बहुधा वर्णन मिलता है। तृतीय अंक में चारुदत्त के घर में मृदंग, दर्दुर, पणव, वीणा, बांसुरी अनेक वाद्ययन्त्रों का चित्रण किया गया है –

''शर्विलक – (समन्तादवलोक्य) अये कथं मृदंगः।

अयं दर्दुरः। अयं पणवः। इयमपि वीणा। एते वंशाः। अमी पुस्तकाः। कथं नाट्याचार्यस्य गृहमिदम्।''[19]

गणिका होने के कारण वसन्तसेना की संगीत तथा नृत्य में रुचि होना स्वाभाविक था किन्तु चारुदत्त द्वारा रेभिल के गाए सुन्दर गीत की प्रशंसा करने से, पुरुषों में भी संगीत की अभिरुचि का परिचय मिलता है–

रक्तं च नाम मधुरं च समं स्फुटं च
भावान्वितं च ललितं च मनोहरं च।
किं वा प्रशस्तवचनैर्बहमिर्मदुक्तै
रन्तर्हिता यदि भवेद्वनितेतिमन्ये॥[20]

अतः स्पष्ट होता है कि मृच्छकटिक के काल में विविध कलाएँ समुचित रूप से विकसित थी।

उत्सव

उत्सवों का मानव जीवन में विशिष्ट एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। उत्सव शब्द को सुनकर अनायास ही ऐसे एक आयोजन का स्मरण हो आता है जिसमें जनसाधारण अपनी रोजमर्रा की चिन्ता, तनाव एवं थकान आदि को भूलकर आनन्द, मनोरञ्जन, पारिस्परिक सद्भावना तथा प्रेम आदि का अनुभव करता है। उत्सव एक सार्वजनिक अथवा निजी आयोजन भी हो सकता है। इसके माध्यम से किसी विशिष्ट धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, कलात्मक अथवा व्यक्तिगत गतिविधि या उपलब्धि का जश्न मनाने, उसे स्मरण करने अथवा बढ़ावा देने का उद्देश्य पूर्ण किया जा सकता है। संस्कृत नाटकों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में भी उत्सवों का विशिष्ट महत्त्व था। प्रत्येक वर्ष विभिन्न उत्सवों का आयोजन किया जाता था। यह भी ज्ञात होता है कि इन उत्सवों का आदेश राजसी पक्ष द्वारा दिया जाता था किन्तु सम्पूर्ण प्रजा इनकी तैयारियों में यथा – नगर सज्जा आदि में सोत्साह भाग लेती थी तथा प्रत्येक वर्ग बढ़–चढ़ कर आनन्दमंगल मनाता एवं प्रसन्नता का अनुभव करता था। मालतीमाधव में मदनोद्यान में मनाए जाने वाले मदनोत्सव का उल्लेख मिलता है (प्रथम अङ्क)। इस उत्सव में नागरिक एवं वणिक्जन सभी भाग लेते थे –

अनन्तरं च यात्रामङ्गप्रचलितस्य महतः पौरनैगम–जनस्य सङ्कुलेन विघटितायां तस्यामागतोऽस्मि।[21]

नाटक के नवम् अंक में एक अन्य कौमुदी महोत्सव का भी उल्लेख है जो कार्तिक–पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। यह प्रकृति के प्रेम का महापर्व माना जाता है। अभिज्ञानशाकुन्तल के षष्ठ अंक में वसन्त ऋतु (चैत्रमास) के आरम्भ में मनाए जाने वाले वसन्तोत्सव का वर्णन है। किन्तु शकुन्तला के विरह में संतप्त दुष्यन्त के द्वारा वसन्तोत्सव मनाने पर रोक लगा दी है –

अस्मात्प्रभवतो वैमनस्यादुत्सवः प्रत्याख्यातः।[22]

प्रतीत होता है कि किसी अनपेक्षित कारण से एतद्विध उत्सवों का निषेध भी राजाज्ञा से किया जा सकता था जिसका सम्पूर्ण प्रजा पालन करती थी। इसी प्रकार मुद्राराक्षस नाटक में तृतीय अंक में जब सुगाङ्ग महल पर गए चन्द्रगुप्त के द्वारा कौमुदीमहोत्सव की तैयारी न होते हुए देखा गया तब वह अत्यधिक क्रोधित एवं खिन्न हुआ। नाटक में उल्लिखित पार्वण विधि से स्पष्ट होता है कि यह उत्सव शरत्पूर्णिमा के दिन मनाया जाता था तथा इसे समाज के सभी वर्ग – नागरिक, धनिक, यहाँ तक कि वेश्याएँ भी उत्साहपूर्वक मनाते थे। यहाँ चाणक्य द्वारा कारण विशेष से उत्सव का निषेध दर्शाया गया है। मृच्छकटिक नाटक के प्रथम अंक में विवाह तथा पुत्रजन्म को भी एक उत्सव के रूप में चित्रित किया गया है।

इसी प्रकार एक विशेष उद्यान में कामदेव के मन्दिर के समीप वसन्तोत्सव नाम से प्रसिद्ध कामदेवोत्सव मनाए जाने का वर्णन है। संभवतः अनेक दिनों तक चलने वाले इस उत्सव में प्रेमी युवक–युवतियाँ उल्लासपूर्ण आनन्द मनाते होंगे। इसी प्रकार देवराज इन्द्र के सम्मान में मनाए जाने वाले इन्द्र महोत्सव का भी उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि ये सामयिक उत्सव सभी के लिए मनोरञ्जिन एवं आनन्दानुभूति का साधन थे।

नारी की स्थिति

सामान्यतः नारी को समाज में आदरमय स्थान प्राप्त था। प्रायः किसी भी स्थान पर में उन्हें प्रताड़ित अथवा दुःखी करने का चित्रण नहीं मिलता। अपवाद रूप में शकुन्तला तथा वासवदत्ता हमारे सम्मुख आती है कि उस कष्ट का भी अन्ततः कारण ज्ञापन तथा निवारण दिखाया गया है। नारी को स्वतः विवाह करने का अधिकार था जैसा कि अभिज्ञानशाकुन्तल तथा मालतीमाधव में वर्णित है। शकुन्तला द्वारा दुष्यन्त को प्रेमपद्य लिखने तथा मालतीमाधव में कामन्दकी द्वारा मालती को शास्त्र–शिल्पादि की शिक्षा देने से स्पष्ट होता है कि समाज में नारी शिक्षा का प्रचलन था। सभी विवेच्य नाटकों में नारी को आदर्श पत्नी, उदारहृदया, स्नेही जन के रूप में चित्रित किया गया है। यदि सभी नारी पात्रों को शास्त्रपारंगत नहीं भी दिखाया गया हो, फिर भी उन्हें विभिन्न कलाओं में निपुण चित्रित किया

गया है। शाकुन्तल में नटी तथा हंसपदिका का गीत, मालती द्वारा माधव का चित्र बनाना, वासवदत्ता के द्वारा माला का गूंधना व वीणावादन शिक्षा, वसन्तसेना का नृत्य गीत, संगीत, शृंगार तथा केशविन्यास आदि कलाओं में निपुण होना इसका दृष्टान्त है कि नारियों को विभिन्न कलाओं में निपुण किए जाने का प्रचलन था। स्त्रियों को अपनी इच्छा एवं आवश्यकता के अनुसार वस्त्र, आभूषण प्रसाधन आदि धारण करने की भी स्वतन्त्रता थी। मालविका एवं इरावती को क्रमशः गणदास एवं हादत्त द्वारा संगीत की शिक्षा प्रदान करने के प्रसंग से गुरु शिष्या परम्परा का भी संकेत मिलता है (मालिविकाग्निमित्र, प्रथम अंक)

अन्य विविध पक्ष

तत्कालीन समाज एवं संस्कृति के प्रतिबिम्ब स्वरूप अन्य अनेक पक्ष हैं जिनके माध्यम से उस समय के जीवन का परिचय मिलता है।

रोग एवं चिकित्सा

यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय की जीवनशैली स्वस्थ तथा रोगमुक्त थी फिर भी कहीं-कहीं वैद्य चिकित्सों का भी उल्लेख मिलता है। यथा - मालविकाग्निमित्र में चतुर्थ अंक में विदूषक को सर्प द्वारा डंसने की प्राथमिक चिकित्सा परिव्राजिका के द्वारा एतद्विध कही गई है -

छेदो दंशस्य दाहो वा क्षतेर्वा रक्तमोक्षणम्।
एतानि दष्टमात्राणामदूष्याः प्रतिपत्तयः॥[23]

इसके अतिरिक्त विष उतारने वाले वैद्य भी होते थे यथा इस प्रसंग में ध्रुवसिद्धि वैद्य का नामोउल्लेख मिलता है। स्वप्नवासवदत्त में रानी पद्मावती की शिरोवेदना का प्रकरण दर्शाया गया है जिसके उपचार हेतु शीर्षानुलेपनरूप उपचार कहा गया है -

पदि्मनिका - तेन हि भत्रे निवेदयैनाम्। यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि।[24]

रोगी को सिर की पीड़ा से कुछ राहत देने के लिए उसे समुद्रगृह में रखे जाने का भी उल्लेख है। मालविकाग्निमित्र में भी समुद्रगृह का वर्णन मिलता है। यह आनन्ददायक गृह कृत्रिम जलाशय के बीच बनाया जाता है जो जलयन्त्रों द्वारा तापनियन्त्रित होता था -

विदूषक - त्वरतां भवान् समुद्रगृहे सखीसहितां मालविकां स्थापयित्वा भवन्तं पत्युद्गतोऽस्मि।[25]

अभिज्ञानशाकुन्तल के तृतीय अंक में कामसन्तप्तशरीर वाली शकुन्तला को तापज्वर से पीड़ित समझकर गौतमी उसका उपचार दर्भ द्वारा छिड़के गए जल से करती है -

ज्योतिष एवं शकुन-अपशकुन

इन नाटकों में अनेक स्थानों पर ज्योतिष विद्या एवं शकुन-अपशकुन विषयक तथ्य भी दृष्टिगोचर होते हैं। सिद्ध पुरुषों के कथनों पर विश्वास तथा शारीरिक एवं प्राकृतिक लक्षणों एवं संकेतों के आधार पर कुछ शुभ या अशुभ होना इनका संस्थापन नाटककारों के द्वारा कथानक के प्रसंगानुसार चित्रित किया गया है।

अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अंक में तपोवन में प्रवेश करते समय दुष्यन्त की दाईं भुजा फड़कने का चित्रण है जिसका फल शकुनशास्त्र में कलत्रप्राप्ति बताया गया है -

राजा -शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य।

अथवा भवितव्यतानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र॥[26]

मृच्छकटिक नाटक में तो चित्रित किया गया है कि न केवल अशिक्षित वर्ग, अपितु शिक्षित लोग भी शकुनों पर आधारित शुभ तथा अशुभ में दृढ़तापूर्वक विश्वास किया करते थे। नवम् अंक में न्यायालय में प्रवेश करते समय चारुदत्त अपशकुनों के समुदाय से अत्यधिक घबरा जाता है -

रुक्षस्वरं वाशति वायसोऽयममात्यभृत्या मुहुराह्वयन्ति।
सव्यं च नेत्रं स्फुरति प्रसह्य, ममानिमित्तानि हि खेदयन्ति॥[27]

मुद्राराक्षस नाटक में अद्वितीय राजनैतिक गुणों से सम्पन्न होने पर भी चाणक्य वामाक्षिस्पन्दन, सर्पदर्शन तथा क्षपणक दर्शन सदृश संकेतों को मानता है तथा किसी अशुभ घटना की आशंका करता है। तत्कालीन समाज में ज्योतिष विद्या का भी प्रचलन दिखाई पड़ता है। स्वप्नवासवदत्त में यौगन्धरायण ने सिद्ध भविष्यवक्ताओं के कथन पर विश्वास करके ही वासवदत्ता को पद्मावती के पास धरोहर के रूप में छोड़ा -

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री
दृष्टा विपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा।
तत्प्रत्ययात् कृतमिदं न हि सिद्धवाक्या-
न्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि॥[28]

इससे ज्योतिषविद्या के विषय में लोगों के भरोसे की जानकारी मिलती है। मृच्छकटिक के षष्ठ अंक में भी विविध ग्रहों की (कुण्डली के) स्थानों पर होने का तथा उनके परिणाम का उल्लेख है। अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक के आरम्भ में भी

जानकारी मिलती है कि ऋषि कण्व शकुन्तला के दैव में किसी प्रतिकूल अदृष्ट की शान्ति हेतु सोमतीर्थ जाते हैं –

इदानीमेव दुहितां शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शयितुं सोमतीर्थं गतः।[29]

मुद्राराक्षस के चतुर्थ अंक में क्षपणक राक्षस को तिथि की अपेक्षा ग्रहों को अधिक महत्त्वपूर्ण बताते हुए उसे युद्ध के लिए प्रस्थान करने का परामर्श देता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि संस्कृत नाटकों का अध्ययन करना मनों ज्ञान के किसी गहरे समुद्र में पैठने के समान है। यह समुद्र समाज तथा संस्कृति रूपी मणियों एवं रत्नों से भरा हआ है। पूर्वविवेचित विषयों के अतिरिक्त कुछ अन्य बिन्दु भी हैं, यथा – समाज में प्रति दण्डविधान, खान–पान, क्रीड़ाएँ आदि। इनका विस्तारभय के कारण उल्लेखमात्र किया जा रहा है। वस्तुतः समाज एवं लोगों से सम्बन्धित हर छोटी–बड़ी बात प्रसंगानुसार संस्कृति एवं जीवनशैली से जाकर जुड़ सकती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि यद्यपि इन संस्कृत नाटकों की रचना के समय सम्पूर्ण परिस्थितियाँ एवं परिवेश आज के युग की भाँति विज्ञान एवं तकनीकी दृष्टि से सर्वथा भिन्न था तथापि उस समय भी लोग सामर्थ्यानुसार जीवन में सर्वाङ्गीण उन्नति का प्रयास किया करते थे। आज विज्ञान के बल पर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अत्याधुनिक उपकरणों का समावेश दृष्टिगोचर होता है। किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुरातन समाज में भी लोग उस समय उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग करके जीवन व्यतीत करने में सफल थे।

एसोसिएट प्रोफेसर
लेडी श्रीराम महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
ई–मेल – vandanasbhan@lsr.du.ac.in

सन्दर्भ सूची

1. साहित्यदर्पण–6/1
2. दशरूपक–1/7
3. नाट्यशास्त्र–1/114
4. मालतीमाधव, प्रथम अंक, पृ. 15
5. मालतीमाधव, द्वितीय अंक, पृ. 92
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथम अंक, पृ. 61
7. वही, पृ. 179
8. स्वप्नवासवदत्त, षष्ठ अंक, पृ. 116
9. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, षष्ठ अंक, पृ. 341
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, सप्तम अंक, पृ. 389
11. स्वप्नवासवदत्त–1/9
12. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रथम अंक, पृ. 10
13. मालविकाग्निमित्रम्, तृतीय अंक, पृ. 138
14. अभिज्ञानशाकुन्तलम्–4/5
15. मालविकाग्निमित्रम्, प्रथम अंक, पृ. 14
16. मालतीमाधवम्, पञ्चम अङ्क, पृ. 193
17. मालविकाग्निमित्र, प्रथम अङ्क, पृ. 10
18. स्वप्नवासवदत्त 6/3
19. मृच्छकटिक, तृतीय अङ्क
20. मृच्छकटिक 3/4
21. मालतीमाधव, प्रथम अङ्क
22. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, षष्ठ अङ्क, पृ. 304
23. मालतीमाधव 4/4
24. स्वप्नवासवदत्त, पञ्चम अङ्क
25. मालविकाग्निमित्र, चतुर्थ अङ्क
26. अभिज्ञानशाकुन्तल, 1/16
27. मृच्छकटिक 9/10
28. स्वप्नवासवदत्त 1/11
29. अभिज्ञानशाकुन्तल, प्रथम अङ्क, पृ. 24

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अभिज्ञानशाकुन्तल, डॉ. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1998
2. मालतीमाधव, डॉ. गंगासागर राय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2017
3. मालविकाग्निमित्र, तारिणीश झा, रामनारायणलाल बेनीप्रसाद, इलाहाबाद, 1964
4. मुद्राराक्षस, डॉ. (श्रीमती) पुष्पा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 2012
5. मृच्छकटिक, डॉ. प्रत्यूषवत्सला द्विवेदी, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2015
6. भासनाटकचक्र, आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2008
7. स्वप्नवासवदत्त, डॉ. धर्मेन्द्रकुमार गुप्त, मेहरचन्द लक्षमनदास, दिल्ली, 1975
8. दशरूपक, डॉ. भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1998
9. भारतीय संस्कृति, प्रीतिप्रभा गोयल, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2011
10. महाकवि शूद्रक, डॉ. रमाशंकर तिवारी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1967
11. महाकवि भास, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1972

Research Paper

Dairy Cooperatives : A Confluence of Economic Theory and Rural Transformation

Prof. (Dr.) Rajeshwar Prasad Shrivastava*

Ramesh Kumar**

Abstract

Dairy cooperatives have played a pivotal role in agricultural development and rural empowerment, especially in countries like India. These institutions are grounded in the cooperative movement, aiming to provide equitable benefits to their members. This paper explores the application of various economic theories—ranging from classical to contemporary—to dairy cooperatives, analysing their functioning, structure, and rolein the rural transformation. The theoretical framework includes the principles of cooperative economics, neoclassical theories of firm behaviour, transaction cost economics, behavioural economics, game theory, and development economics. The paper specifically references India's Amul model and Sudha Dairy to illustrate the real-world applicability of these theories in understanding and evaluating the operations of dairy cooperatives.

Keywords:

Dairy cooperatives, economic theory, cooperative economics, transaction costs, development economics.

1. Introduction

Dairy cooperatives are voluntary associations of milk producers formed to collectively market their produce and procure inputs at fair prices. Dairy cooperatives are essential components of the agricultural economy, particularly in countries like India, where they play a pivotal role in empowering farmers, improving income stability, ensuring fair trade practices, ensuring nutritional security and fostering rural development. These cooperatives are user-owned, user-controlled, and user-benefited organizations that enable producers to aggregate resources, access markets, and negotiate better prices for their products (Birchall, 2011). The cooperative model is grounded in economic principles that explain collective behaviour, transaction cost minimization, profit distribution, and socio-economic welfare (Bardhan, 1989). While traditional economic theories often focus on profit-maximizing firms, dairy cooperatives operate on principles of mutual benefit, equitable surplus distribution, and democratic governance. Understanding the economic underpinnings of dairy cooperatives necessitates a multi-theoretical approach that goes beyond neoclassical economics. This paper explores how various economic theories apply to the operations, behaviour, and efficiency of dairy cooperatives, with an emphasis on the Indian context.

2. Theoretical Foundations of Cooperatives

2.1 Classical Economic Theory

Classical economics, based on the works of Adam Smith and David Ricardo, emphasizes the role of self-interest and market forces in resource allocation. While cooperatives may seem contrary to self-interest, they emerge as a response to market failures. Dairy farmers, especially smallholders, often face exploitation by middlemen. Cooperatives provide a mechanism for collective bargaining and improved market access, aligning with the classical notion of maximizing utility (Smith, 1776).

2.2 Neoclassical Economic Theory

Neoclassical economics focuses on utility maximization, marginal analysis, and rational decision-making. In cooperatives, members seek to maximize collective welfare rather than individual profits. The theory of the firm in a neoclassical framework can be applied to cooperatives by modifying the assumption of profit maximization to service maximization (Bardhan, 1989). Cooperatives operate where marginal cost equals marginal revenue, ensuring efficiency. The pricing of milk and allocation of surplus also follow neoclassical principles.

2.3 Institutional Economics

Institutional economics, championed by Thorstein Veblen and later by Douglass North, focuses on the role of institutions in shaping economic behaviour. Cooperatives are institutional responses to the socio-economic challenges faced by dairy farmers. They reduce transaction costs, create trust-based relationships, and provide governance mechanisms (North, 1990). The institutional framework of cooperatives—democratic control, patronage dividend, and open membership—enhances their resilience and adaptability.

2.4 Behavioural Economics

Behavioural economics incorporates psychological insights into economic decision-making. Dairy cooperatives often rely on trust, loyalty, and social norms, which cannot be explained solely by rational choice models. Members may prioritize long-term community benefits over short-term gains. The behavioural approach explains why farmers continue to supply milk to cooperatives even when private buyers offer marginally higher prices (Bijman, 2016).

3. Application of Economic Theories in Dairy Cooperatives

Application of Economic Theories in Dairy Cooperatives involves using following economic principles to enhance efficiency, decision-making, and sustainability in cooperative dairy operations.

3.1 The Economics of Collective Action

The Economics of Collective Action examines how individuals work together to achieve shared goals, addressing challenges like free-riding and ensuring cooperative behaviour.

3.1.2 Mancur Olson's Logic of Collective Action

Mancur Olson's seminal work *The Logic of Collective Action* (1965) theorizes that individuals with shared interests can achieve mutual benefits through collective efforts. However, Olson also emphasizes the inherent difficulty in organizing such collective action due to the risk of free-riding, where individuals benefit from group efforts without contributing. In the context of dairy cooperatives, this challenge is addressed through structured incentive mechanisms, strong social cohesion, and shared community values. Cooperatives mitigate the collective action problem by fostering transparency, encouraging active member participation, and maintaining regular communication and engagement among stakeholders. These mechanisms are particularly critical for rural dairy farmers who often struggle with market access, limited bargaining power, and inadequate infrastructure (Olson, 1965).

3.1.2 Elinor Ostrom's Common Pool Resource Theory

Elinor Ostrom (1990) refuted the conventional "tragedy of the commons" hypothesis by demonstrating that communities can effectively self-organize to manage shared resources. Her principles—such as collective choice arrangements, monitoring, and graduated sanctions—are directly applicable to dairy cooperatives. These cooperatives efficiently govern common facilities like milk chilling centers and veterinary services through participatory decision-making and localized oversight, exemplifying Ostrom's framework for sustainable resource management (Ostrom, 1990).

3.2 Economies of Scale

The concept of economies of scale, which refers to the cost advantages that enterprises experience as production expands, originates from the foundational work of Adam Smith (1776). In *The Wealth of Nations*, Smith highlighted how division of labour and specialization lead to increased productivity and reduced per-unit costs. Building on this, Alfred Marshall (1920) distinguished between **internal economies of scale**, which arise within a firm due to factors like technical efficiency and managerial specialization, and **external economies of scale**, which benefit entire industries through factors such

as industry clustering and shared infrastructure.

Dairy cooperatives exemplify economies of scale by aggregating milk from millions of small producers, thereby achieving cost efficiencies in procurement, processing, packaging, and distribution (Chand et al., 2011). Bulk purchasing of inputs such as cattle feed, veterinary medicines, and packaging materials allows cooperatives to negotiate lower prices, reducing input costs across the value chain. For example, large-scale procurement of tetra packs and refrigeration equipment enables significant savings, which can be passed on to members in the form of better milk procurement prices or annual patronage bonuses. Additionally, centralized processing facilities equipped with modern technology improve productivity, maintain consistent quality, and reduce operational costs, further amplifying the benefits of scale.

3.3 Game Theory and Cooperative Game Theory

The foundations of game theory—particularly cooperative game theory—were laid by John von Neumann and Oskar Morgenstern in their seminal work *Theory of Games and Economic Behaviour* (1944). Game theory provides a framework to analyse strategic interactions among rational agents, where the outcome for each participant is influenced not only by their own actions but also by the actions of others. Within this framework, **cooperative game theory** examines how individuals or entities can form coalitions to enhance mutual gains and how those gains can be fairly distributed among participants (Osborne & Rubinstein, 1994).

Dairy cooperatives function as real-world applications of cooperative game theory. Individual dairy farmers collaborate by pooling their milk and sharing infrastructure, thereby enhancing their collective bargaining power and market access. At the same time, mechanisms are in place to ensure that individual incentives are preserved. For instance, payment structures are typically linked to milk quality—especially fat content—and quantity, which encourages optimal production behaviour (Kurien, 2005). Societies that implement best practices in animal care, feed quality, and hygiene standards are rewarded with quality bonuses, promoting both competitiveness and cooperation. This structure aligns individual farmer goals with the overall welfare of the cooperative, mitigates free-riding, and fosters a high-trust environment essential for collective success.

3.4 Alternative Theory of the Firm (Patronage-Based Model)

The **Alternative Theory of the Firm**, particularly the **patronage-based model**, challenges the traditional neoclassical view that firms operate solely to maximize profits. Instead, this model posits that firms, especially cooperatives and public institutions, often pursue objectives such as political influence, social embeddedness, and personal gain through networks of patronage (Hansmann, 1996; Zamagni, 2005). This framework includes several key theoretical strands:

- **Transaction Cost Economics**, introduced by Coase (1937) and expanded by Williamson (1985), suggests that firms arise to minimize the costs associated with market transactions, including search, bargaining, and enforcement.
- **Agency Theory** (Jensen & Meckling, 1976) focuses on resolving conflicts between owners (principals) and managers (agents) by aligning incentives.
- **Resource-Based Theory** (Barney, 1991) highlights how a firm's internal resources and capabilities are the main sources of sustainable competitive advantage.

These alternative perspectives help explain the unique behaviour of cooperatives, which, unlike Investor-Owned Firms (IOFs), are driven by **member benefit maximization** rather than profit.

Dairy cooperatives in India exemplify the patronage-based model by distributing surplus earnings not on capital contributions but on member patronage. Surpluses are reinvested into services such as veterinary care, artificial insemination, fodder distribution, and training programs, thereby enhancing both productivity and member welfare (Kurien, 2005; Singh & Singh, 2015). For example, during festive occasions, many cooperatives offer bonuses proportional to the quantity of milk supplied by members. Subsidized health camps and regular veterinary support also contribute to improving the productivity of livestock and the economic well-being of rural dairy farmers.

3.4.1 Transaction Cost Theory

Transaction Cost Theory, initially proposed by Ronald Coase (1937), asserts that firms and institutions exist primarily to reduce the costs associated with economic transactions—such as searching for information, bargaining, and enforcing agreements. By internalizing these processes within organizational structures, firms can function more efficiently than relying entirely on market mechanisms (Coase, 1937; Williamson, 1985). Dairy cooperatives exemplify this principle by significantly reducing transaction costs through centralized operations and infrastructure. For instance, cooperatives streamline the milk procurement process by implementing Automated Milk Collection Units (AMCUs), which provide real-time feedback on milk quality and quantity while ensuring prompt digital payments to producers (Birthal et al., 2017). This eliminates the need for continuous bargaining and minimizes the risks of opportunistic behaviour. Additionally, by removing intermediaries, cooperatives help ensure that dairy farmers receive fair compensation, while also maintaining quality standards for consumers. In this way, the cooperative serves as an efficient transaction platform that fosters trust, reduces monitoring costs, and aligns producer-consumer interests.

3.4.2 Principal-Agent Theory

The principal-agent theory, articulated by Jensen and Meckling (1976), addresses the challenges that arise when the interests of agents (managers) diverge from those of principals (owners). In the context of dairy cooperatives, dairy farmers act as the principals, delegating operational responsibilities to appointed professional managers. To mitigate agency problems, cooperatives implement governance mechanisms such as regular general body meetings, transparent financial disclosures, and systematic performance audits. These measures aim to align managerial incentives with the collective welfare of farmer-members. Additionally, the inclusion of elected representatives from member societies on the board of directors ensures that strategic decisions are rooted in the interests of the producers (Jensen & Meckling, 1976).

3.4.3 Resource Dependency Theory

Resource Dependence Theory (RDT), developed by **Jeffrey Pfeffer and Gerald R. Salancik** in their seminal work *The External Control of Organizations: A Resource Dependence Perspective* (1978), posits that organizations are not autonomous but are dependent on external resources for survival. To manage this dependency and reduce environmental uncertainty, organizations strategically form alliances, adapt structures, and influence their external environment (Pfeffer & Salancik, 1978).

In the context of rural India, dairy cooperatives exemplify the principles of RDT by acting as both resource users and providers. For instance, dairy cooperatives like **Sudha** facilitate access to vital resources for member farmers, including veterinary care, artificial insemination services, fodder supply, and training programs. This support enhances the productivity and economic well-being of farmers. In return, farmers provide the cooperative with a consistent supply of raw milk, ensuring operational stability and market competitiveness.

This interdependence creates a symbiotic relationship that aligns the interests of both the cooperative and its members. A practical example is the deployment of **mobile veterinaryvans** in remote areas by dairy federations like Sudha, which reduces animal morbidity, enhances milk yield, and strengthens member loyalty—ultimately reinforcing the cooperative's control over critical input resources (Kurien, 2005; Singh & Singh, 2020).

3.5 Social Capital Theory

Social capital is a multidimensional concept with hybrid theoretical origins, having been explored across disciplines such as economics, sociology, political science, and evolutionary biology. It is particularly relevant for scholars investigating human cooperation, social networks, and collective action. Social capital is broadly applicable within diverse theoretical paradigms, including **game theory** and **evolutionary socio-biology** (Fukuyama, 2001; Bowles & Gintis, 2002).

The conceptual development of social capital is commonly attributed to three foundational theorists, each offering a distinct lens:

- **Pierre Bourdieu** (1986) approached social capital as a form of capital arising from durable networks of relationships that provide access to resources and social mobility.

- **James Coleman** (1988), using a rational-choice framework, emphasized the utility of social capital in facilitating individual and group actions through obligations, expectations, and norms.
- **Robert Putnam** (2000) adopted a civic and democratic perspective, defining social capital as "features of social organization, such as networks, norms, and trust, that facilitate coordination and cooperation for mutual benefit.

In the context of dairy cooperatives, social capital plays a pivotal role in fostering trust, collaboration, and community engagement. For example, cooperatives promote strong social networks through shared norms and regular participation, which in turn enhance organizational resilience and efficiency (Putnam, 2000; Krishna, 2002). Women-led **Self-Help Groups (SHGs)** have emerged as integral components of cooperative networks, contributing to gender equity and inclusive development (Desai & Joshi, 2013). The **Amul Model** serves as a prominent case wherein the strategic deployment of social capital has enabled large-scale mobilization, efficient coordination, and the empowerment of millions of rural producers, thereby inspiring replication across India (Kurien, 2005).

3.6 Inclusive Growth and Development Economics

Inclusive growth is a development approach that prioritizes not only the rate but also the pattern of economic expansion, ensuring that the gains from growth are distributed equitably across various segments of society. This concept emphasizes broad-based participation in the development process, particularly by the poor, women, and marginalized communities, thereby promoting social justice and long-term sustainability (Sen, 1999; World Bank, 2009).

Dairy cooperatives play a significant role in fostering inclusive growth by integrating millions of rural farmers—many from disadvantaged castes and economically weaker sections—into the formal dairy economy. These cooperatives provide members with stable and regular incomes, training and skill development, veterinary care, and access to financial and insurance services (Kurien, 2005; FAO, 2011). For instance, the success of dairy cooperatives in tribal and remote regions of India, such as under the Sudha Dairy model in Bihar, illustrates the transformative potential of cooperative structures in promoting equity and social inclusion. Furthermore, the active participation of women, especially through Self-Help Groups (SHGs), has reinforced gender empowerment, rural employment, and financial inclusion, positioning dairy cooperatives as vital agents of sustainable and inclusive rural development (Narayan, 2002; Singh & Datta, 2020).

4. Empirical Insights from Indian Dairy Cooperatives

Empirical Insights from Indian Dairy Cooperatives refer to data-driven findings highlighting their impact on rural development, member participation, income generation, and cooperative sustainability.

4.1 The Amul Model

The Gujarat Cooperative Milk Marketing Federation (GCMMF), founded in 1946, popularly known as Amul, exemplifies the application of multiple economic theories. Founded on the principles of equity, participation, and self-reliance, Amul has transformed the dairy industry in India (Kurien, 2005; GCMMF, 2022). Its three-tier cooperative structure (village societies, district unions, and state federations) ensures efficiency, transparency, and member empowerment.This structure reduces transaction costs and aligns incentives among stakeholders. Economic theories explain Amul's ability to manage scale, minimize costs, and neoclassical pricing models are used to generate fair returns. Behavioural economics explains the high degree of loyalty among members (Kurien, 1997).

4.2 Sudha Dairy in Bihar

The Bihar State Milk Co-operative Federation Ltd. (COMFED), established in 1983, operating under the brand Sudha, exemplifies the cooperative model in a less-developed state. It has significantly improved milk production, rural incomes andhas helped to increase women's participation in dairy activities(COMFED, 2022).Institutional economics is evident in its structured governance and community engagement. Collective action is promoted through regular training, transparency, and local leadership. Sudha's ability to reach remote villages demonstrates

the scalability of cooperative principles.

5. Challenges and Theoretical Gaps

• **Dual Objectives**: Cooperatives pursue both economic and social goals, complicating standard models of firm behaviour.

• **Dynamic Preferences**: Member motivations evolve, requiring dynamic and flexible theoretical models.

• **Measuring Social Capital**: The role of trust and social norms remains hard to quantify.

• **Policy Dependence**: Many cooperatives are heavily reliant on government support, raising questions about long-term sustainability

6. Future Prospects and Policy Implications

Dairy cooperatives must innovate and adapt to changing market dynamics. Policy support is crucial for infrastructure, training, and digitalization. Economic theories offer valuable frameworks for designing robust cooperative models. Strengthening governance, incentivizing innovation, and expanding market access are key to their sustainability (Bijman, 2016; Government of India, 2021).

7. Conclusion

Dairy cooperatives represent a dynamic intersection of economic principles and social objectives. Their functioning can be comprehensively understood through the application of classical, neoclassical, institutional, and behavioural economic theories. Classical and neoclassical frameworks highlight aspects such as cost efficiency, pricing mechanisms, and resource allocation, while institutional and behavioural approaches shed light on the social embeddedness, trust dynamics, and strategic decision-making processes that are central to cooperative behaviour (Williamson, 1985; Ostrom, 1990).

More than just economic enterprises, dairy cooperatives act as vehicles for equity, collective welfare, and inclusive growth. They embody a business model that balances efficiency with empowerment—aligning individual incentives with community development. In an era marked by globalization, agrarian distress, and market volatility, the cooperative model offers a resilient, sustainable, and inclusive alternative, particularly suited to rural economies (Sen, 1999; Birchall, 2004).

The practical experiences of Amul Dairy in Gujarat and Sudha Dairy in Bihar demonstrate how economic theories not only explain cooperative functionality but also inform strategies for sustainable rural transformation. These cooperatives have integrated marginalized farmers into the formal economy, enhanced income stability, and promoted local entrepreneurship through backward and forward linkages (Kurien, 2005; FAO, 2011). By aggregating demand and supply, facilitating access to inputs and services, and reinvesting surpluses into member welfare, they create self-reinforcing cycles of economic empowerment.

Sudha Dairy, in particular, exemplifies how cooperatives can be tailored to local socio-economic conditions. Its inclusive strategies—ranging from women's participation through self-help groups to outreach in tribal areas—demonstrate how economic development can be both broad-based and equitable. As Bihar continues to confront structural challenges such as poverty, unemployment, and rural underdevelopment, strengthening cooperative institutions like Sudha will be pivotal in driving long-term socio-economic progress (Singh & Datta, 2020).

For policymakers, development agencies, and rural entrepreneurs, dairy cooperatives offer valuable lessons. They illustrate how collective enterprise, guided by sound economic principles and rooted in social capital, can foster not only economic resilience but also transformative rural development.

*** Department of Economics,**
Jai Prakash University, Chapra

****Assistant Professor**
Department of Economics,
Jai Prakash University, Chapra

References:

• Barney, J. (1991). Firm resources and sustained competitive advantage. *Journal of Management, 17*(1), 99–120.

• Bardhan, P. (1989). *The economic theory of agrarian institutions*. Clarendon Press.

• Birchall, J. (2004). *Cooperatives and the Millennium Development Goals*. International

Labour Office.
- Birchall, J. (2011). *People-centred businesses: Co-operatives, mutuals and the idea of membership*. Palgrave Macmillan.
- Bijman, J. (2016). The changing nature of farmer collective action: Introduction to the analytical framework. *Annals of Public and Cooperative Economics, 87*(4), 349–361.
- Birthal, P. S., Negi, D. S., & Roy, D. (2017). Strengthening the dairy value chain in India: Enhancing productivity and competitiveness of smallholders. *Indian Journal of Agricultural Economics, 72*(1), 6–27.
- Bourdieu, P. (1986). The forms of capital. In J. Richardson (Ed.), *Handbook of theory and research for the sociology of education* (pp. 241–258). Greenwood.
- Bowles, S., & Gintis, H. (2002). Social capital and community governance. *The Economic Journal, 112*(483), F419–F436.
- Chand, R., Raju, S. S., & Pandey, L. M. (2011). Effective utilization of agricultural resources through cooperatives: The case of dairy cooperatives in India. *Indian Journal of Agricultural Economics, 66*(3), 487–498.
- Coase, R. H. (1937). The nature of the firm. *Economica, 4*(16), 386–405.
- Coleman, J. S. (1988). Social capital in the creation of human capital. *American Journal of Sociology, 94*, S95–S120.
- COMFED. (2022). *Sudha Dairy annual report*. Bihar State Milk Co-operative Federation Ltd.
- Desai, R. M., & Joshi, S. (2013). Collective action and community development: Evidence from self-help groups in India. *The World Bank Economic Review, 28*(3), 492–524.
- FAO. (2011). *Dairy development in India: The role of the cooperative sector*. Food and Agriculture Organization of the United Nations.
- Fukuyama, F. (2001). Social capital, civil society and development. *Third World Quarterly, 22*(1), 7–20.
- GCMMF. (2022). *Amul annual report*. Gujarat Cooperative Milk Marketing Federation Ltd.
- Government of India. (2021). *Annual report 2020–21*. Ministry of Fisheries, Animal Husbandry & Dairying.
- Hansmann, H. (1996). *The ownership of enterprise*. Harvard University Press.
- Jensen, M. C., & Meckling, W. H. (1976). Theory of the firm: Managerial behavior, agency costs and ownership structure. *Journal of Financial Economics, 3*(4), 305–360.
- Krishna, A. (2002). *Active social capital: Tracing the roots of development and democracy*. Columbia University Press.
- Kurien, V. (2005). *I too had a dream*. Roli Books Pvt. Ltd.: New Delhi
- Kurien, V. (1997). *India's milk revolution: Investing in rural producer organizations*. World Bank.
- Marshall, Alfred (1920). *Principles of Economics* (8th ed.). Macmillan.
- Narayan, D. (2002). *Empowerment and poverty reduction: A sourcebook*. World Bank Publications.
- North, D. C. (1990). *Institutions, institutional change and economic performance*. Cambridge University Press.
- Olson, M. (1965). *The logic of collective action: Public goods and the theory of groups*. Harvard University Press.
- Osborne, M. J., & Rubinstein, A. (1994). *A course in game theory*. MIT Press.
- Ostrom, E. (1990). *Governing the commons: The evolution of institutions for collective action*. Cambridge University Press.
- Pfeffer, J., & Salancik, G. R. (1978). *The external control of organizations: A resource dependence perspective*. Harper & Row.
- Putnam, R. D. (2000). *Bowling alone: The collapse and revival of American community*. Simon & Schuster.
- Sen, A. (1999). *Development as freedom*. Oxford University Press.
- Singh, R. K., & Singh, K. (2015). Role of dairy cooperatives in rural development. *International Journal of Management and Social Sciences, 3*(1), 54–60.
- Singh, S., & Datta, K. (2020). Women empowerment through dairy cooperatives: A case study of SHGs in rural Bihar. *Indian Journal of Rural Studies, 6*(2), 115–128.
- Smith, Adam. (1776). *An inquiry into the nature and causes of the wealth of nations*. W. Strahan and T. Cadell.
- Von Neumann, J., & Morgenstern, O. (1944). *Theory of games and economic behavior*. Princeton University Press.
- Williamson, O. E. (1985). *The economic institutions of capitalism*. Free Press.
- World Bank. (2009). *What is inclusive growth?* World Bank.
- Zamagni, S. (2005). The economic role of social cooperatives. *Annals of Public and Cooperative Economics, 76*(3), 451–465.

Research Paper

Factors Contributing to Improved Performance in Diverse Workplace Contexts

Mr. Kun Seyha* **Dr. Ashish Ranjan****

Abstract

Workplace performance is essential, in all industry, to an organization's competitiveness and success. A lot of research has been conducted in the past few decades to pinpoint and seek understanding on the components, which contribute to improved worker performance. The literature review indicates key elements supporting workplace performance improvement through the findings from various studies, theoretical models and analyses.

The review identifies technological innovation, work-life balance and well-being, organizational culture and climate, employee motivation, leadership and management styles, and professional development and training. All the themes are thoroughly examined, with a concentration on how they are related to each other and on how these elements create a workplace that encourage increased creativity, productivity and job satisfaction, to name a few.

For managerial level, human resource specialists and researchers, seeking to improve workforce effectiveness and organizational success, this review provides a thorough knowledge of the several, linked elements that affect performance. Also, future research directions are put forwarded to reflect the development of a more sophisticated, adaptable framework for preserving high performance in a setting growing in complexity.

Keywords: Workplace Performance, Employee Motivation, Organizational Culture, Leadership Styles, and Technological Innovation, Work-Life Balance

1. Introduction

The majority of people concur that an organization's longevity and success are significantly influenced by the performance of its employees. Higher-performing employees enhance a company's competitive position in the market, innovation, customer satisfaction, and strategic goals (Delaney & Huselid, 1996; Pfeffer, 1998).

The broad concept of performance encompass both task performance, or performing important job duties, and contextual performance, or taking optional actions that enhance organizational efficacy (Borman & Motowidlo, 1997). Due to this complexity, scholars have pursued a number of factors, including leadership styles, contributing to the improvement of employee outputs (Bass & Riggio, 2006), incentives and reward systems (Deci & Ryan, 1985), organizational culture and climate (Denison, 1990), continuous professional development (Arthur et al., 2003), work-life balance and employee well-being (Greenhaus & Powell, 2006), and the role of technology and innovation (Brynjolfsson & McAfee, 2014).

Management and leadership styles significantly influence individual and team performance. Research indicates that transformational leaders remarkably enhance creativity, discretionary effort, and employee engagement, all of which have the contributions to the improvement of organizational performance (Breevaart et al., 2014; Judge & Piccolo, 2004). In support of sustained high performance, motivational

framework such as Self-Determination Theory emphasize the importance of fulfilling intrinsic needs, including autonomy, competence and relatedness (Ryan & Deci, 2000b). Organizational culture greatly influences performance by shaping the norms, values, and expectations, which govern employee behavior (Schein, 2010).

A positive culture characterized by adaptability, involvement, and consistency has been associated with improved innovation, collaboration, and overall productivity (Denison & Mishra, 1995). Meanwhile, investments in training and development have been shown to have a strong positive impact on skill acquisition, job satisfaction, and career progression, contributing to higher levels of workplace performance (Noe, 2020).

Work-life balance and well-being programs for employees are increasingly seen as important parts of performance management plans, not just ways to keep employees. Allen et al. (2000) argued that employees are more likely to be engaged, loyal, and effective if they have more freedom, less stress, and better help with their personal needs.

When used correctly, technology can make it easier for people to work together, speed up processes, and make work schedules more fluid, all of which can increase work outputs (Brynjolfsson & McAfee, 2014; Davenport & Ronanki, 2018a).

2. Leadership and Management Styles

Across all sorts of organizations, leadership is one of the most critical factors that influences employee performance. It has been emphasized in a multitude of empirical studies and theoretical models that the manner in which leaders interact with employees, establish expectations, provide feedback, and establish an organizational climate has a direct impact on motivation, job satisfaction, and ultimately workplace performance.

2.1. Transformational Leadership

Transformational leaders are characterized by their ability to inspire and motivate employees beyond immediate self-interests through the articulation of a compelling vision, intellectual stimulation, and individualized consideration. According to Bass and Riggio (2006), transformational leaders are distinguished by their capacity to inspire and drive staff members beyond their immediate self-interests by articulating a compelling vision, providing intellectual stimulation, and showing individual consideration. Higher levels of employee engagement, inventiveness, and discretionary effort are all fostered by transformational leadership, according to research (Breevaart et al., 2014; Creswell, 2007).

According to Zhu et al. (2009), transformational leaders are also linked to the development of work setting that promote psychological empowerment, which gives workers a stronger feeling of purpose, competence, and autonomy.

2.2. Transactional Leadership

On one hand, transactional leadership prioritizes the establishment of rigid structures and reward and punishment systems that are contingent upon employee work performance. On the other hand, transactional leadership has demonstrated to be effective in organizations, where efficiency and results are prioritized, especially those that require repetitive, standardized work, despite its reputation as less inspiring (Bass & Stogdill, 1990; Podsakoff et al., 1996).

Research indicates that transactional leadership can improve task performance via mechanisms like contingent rewards, which involve explicit rewards for achieving specific objectives, and active management by exception, where leaders oversee employee performance and intervene when deviations arise (Judge & Piccolo, 2004).

2.3. Servant Leadership and Ethical Leadership

The effect that emerging leadership philosophies like ethical and servant leadership have on workforce performance has also drawn attention. Servant leadership emphasizes the leaders' role as a caretaker who gives priority to employee needs, capacity development, and well-being (Greenleaf, 2013; Liden et al., 2008). Brown et al. (2005) asserted that ethical leadership promotes moral conduct through individual actions and interpersonal dynamics, whereas servant leadership is noted to enhance organizational citizenship behaviors and foster long-term organizational commitment (Hunter et al., 2013). Workforce trust, engagement, and performance are

favorably connected with ethical leadership, particularly in sector where public perception and corporate social responsibility are paramount.

2.4. Leadership Flexibility and Contextual Considerations

Recent research on leadership highlights that there isn't a single style that will always work in every situation. Effective leaders must; therefore, modify their approaches in accordance with the task maturity and competency of their subordinators, according to the situational leadership theory (Hersey & Blanchard, 1969). Likewise, according to the path-goal theory (House, 1971), leaders need to make it clear on how employees can reach their goals and modify their behavior to suit the needs of both workforces and workplaces. Thus, leaders who can adjust themselves with ease between different leadership philosophies are becoming necessary and relevant for organizations functioning in volatile, uncertain, complex, and ambiguous (VUCA) environments.

2.5. Leadership Development Programs

Organizations in various types and levels make considerable investments in leadership development programs because they could see that there is a significant influence that leadership styles actually have on personnel performance. Hence, to ensure that successive leaders can maintain high performance for the organization, there should be leadership competencies available that are in line with strategic goals and cultural values.

3. Motivation and Incentive Systems

Motivation is a key concept in understanding employee performance because it affects how hard, where, and how long people work at their job (Richard M. Steers et al., 2004). A lot of research has shown that motivated employees are more productive, more committed to organizational goals, and more likely to do things outside of work that make the workplace more effective overall (Ryan & Deci, 2000a).

3.1. Intrinsic Motivation and Self-Determination Theory

One is more likely to be intrinsically motivated—that is, to engage in work activities for their own sake rather than for some separate consequence—when the three fundamental psychological needs of autonomy (the need to feel in control of one's actions), competence (the need to experience mastery), and relatedness (the need to feel connected to others) are satisfied (Deci & Ryan, 1985; Ryan & Deci, 2000b).Supporting these psychological needs at workplace has been proved to gain better levels of employee engagement, creativity, learning behavior, and overall performance (Gagné & Deci, 2005). Leaders who offer employees the freedom to make their own decisions, give them constructive feedback, and build good relationships with others, help employees become intrinsically motivated, which ultimately leads to high performance in a sustainable manner. Also, Cerasoli et al. (2014) showed that intrinsic motivation was a better predictor of good performance than extrinsic incentives, especially for jobs that needed people to be creative and solve problems.

3.2. Extrinsic Motivation and Incentive Systems

When actions are motivated by outside incentives including: compensation, bonuses, promotions, or recognition, this is known as extrinsic motivation. Current research highlights the complex effects of extrinsic incentives, whereas previous motivational theories, such Expectancy Theory (Vroom, 1964), proposed that explicit connections involving effort, performance, and reward are essential for influencing employee behavior.

According to research by Gerhart and Fang (2014), performance-based awards are more successful at increasing employee effort in the settings where tasks are repetitive, measurable, and clear-cut in terms of objectives. The over-justification effect by Deci et al. (1999) described how depending on extrinsic motivators alone can occasionally trump intrinsic motivation.Therefore, a balanced approach is essential, especially when designing incentives.

3.3. Integrated Motivation Models and New Approaches

Using the Self-Determined Work Motivation Theory, one should view motivation as a whole and acknowledge that occasionally internal and extrinsic motivators might cooperate (Gagné & Deci, 2005). Goal-setting theory indicated a noticeable point on

setting specific, challenging, and achievable goals (Locke & Latham, 2002). If getting access to defined performance objectives, and regular feedback, employees are more inclined to sustain their motivation and accomplish elevated levels of work performance. This is a great initiative to combine intrinsic and extrinsic motivators in order to keep people interested, especially younger groups (Hamari et al., 2014). In addition, motivational strategies need to be more specifically attached to each person to respond to elements such as generational ideas, cultural backgrounds, and personal goals (Ng et al., 2007).

4. Organizational Culture and Climate

Major elements influencing attitudes, behaviors, and performance of employeesare known as organizational culture and climate. Although they are used frequently synonymously, culture and climate are different but related concepts. While organizational climate reflects employees' opinions of organizational policies, practices, and procedures, organizational culture refers to the underlying shared values, beliefs, and assumptions that influence how work is performed (Schneider et al., 2013).

Higher degrees of employee engagement, satisfaction, commitment and performance, among others, have repeatedly been shown to be related with a positive and supporting organizational culture and climate (Denison, 1990; Ostroff et al., 2003).

4.1. Defining Organizational Culture

According to Schein (2010), organizational culture is a set of basic beliefs that a particular group of people learn as they work through the issues. Organizational culture has been categorized in a number of typologies. Four dominating culture types identified by Cameron and Quinn's (2011) research on the Competing Values Framework, are: 1) clan culture, which is cooperative, familial, and emphasizes mentoring and involvement; 2) adhocracy culture, which is dynamic, entrepreneurial, and innovative; 3) market culture, which is competitive and results-driven; and 4) hierarchy culture, which is organized, regulated, and centered on efficiency and stability.

While hierarchical cultures might be more appropriate for situations needing strict control and risk avoidance, research suggests that clan and adhocracy cultures are especially favorable to high employee engagement, innovation, and overall performance (Hartnell et al., 2011).

4.2. Organizational Climate and Its Impacts

Organizational climate can be exemplified when an employee feels about their workplace as a whole. It has a more direct and noticeable effect on how people act in their daily lives (Patterson et al., 2005). Support, recognition, fairness, and chances for growth in a positive work environment have been the factors, among others, contributing to improve job satisfaction, lower turnover, and boost task and performance (Kuenzi & Schminke, 2009).

Researchers have also found that certain types of climates can predict performance outcomes. For example, a psychological safety climate (Edmondson, 1999)lets employees express their concerns, try new things, and come up with new ideas without worrying about what might happen, which improves their learning and performance. A service climate (Schneider et al., 1998) makes customers happier and, thushelps service businesses make more money. Besides, an ethical climate (Victor & Cullen, 1988) encourages employees to make moral decisions and cuts down on misconduct, which builds trust and cooperation among workers.

4.3. Culture, Climate and Performance Linkages

Relationship among factors such as organizational culture, climate, and performance hasbeen conducted extensively. Based on empirical analysis of a sizable sample of companies, four fundamental cultural traits, driving effectiveness are:involvement,consistency, adaptability, and mission (Denison, 1990). High performers in these cultural aspects usually result in better staff engagement, customer satisfaction, creativity, and financial performance (Denison & Mishra, 1995).

Likewise, organizational climate acts as a mediator between culture and results, according to Schneider et al. (2013). In this aspect, culture determines climate perceptions, which in turn affects employee attitudes and behaviors.

4.4. Building and Managing a High-Performance Culture

Some certain leadership actions are necessary to

establish a high-performance culture. According to Schein (2010), leaders must consistently employ the model organizational values and behaviors; prioritize cultural fit to ensure alignment between workforces and organization values (Chatman, 1991), in terms of recruitment and onboarding practices; and provide regular feedback, recognition, and communication, which are essential for reinforcing desired cultural attributes (Patterson et al., 2005). Culture, in this aspect, is not a static entity. In order to remain consistent with evolving internal objectives and external environments, organizations must consistently evaluate and modify their cultural attributes (Kotter, 2012). Most of the time, cultural change initiatives or efforts fail since people seem to look at actions on the surface, but not at deeper assumptions and values (Schein, 2010).

5. Training and Professional Development

The capacity of employs to consistently acquire new skills and knowledge is getting more critical than ever as workplaces become more complex, globalized and technology-driven (Noe, 2020). More research studies have confirmed that investments in workforce learning yield positive outcomes, including job performance, employee engagement, satisfaction, retentions, and innovation (Salas et al., 2012). In this sense, training, and professional development have long been acknowledged as fundamental strategies for improving both individual and organizational performance.

5.1. The Role of Training in Enhancing Performance

Training is a process designed systematically to enhance the knowledge, skills, and attitudes, necessary for employees to perform their current roles more effectively (Goldstein & Ford, 2002). Evidences from meta-analysis indicates that effective training programs enhance task performance, decrease errors, and boost adaptability (Arthur et al., 2003).

Initiatives for training enhance work performance in a variety of ways, including: skill development, 2) knowledge enhancement, and behavioral change facilitation. Besides, offering ongoing training is essential in sectors marked by rapidly changing technological advancements, while the obsolescence of skills poses a significant issue (Aguinis & Kraiger, 2009).

5.2. Professional Development and Lifelong Learning

Professional development is a longer-term process for both personal and professional capacity development, whereas training is basically focused on short-term skills with linkage to the job. Some examples can be attending conferences and meetings, joining professional groups, getting a mentor, taking part in leadership programs and going to college (London, 2011).

The encouragement to get access to lifelong learning at workplaces fosters a good learning habit or culture where employees are eager to learn new things, question the way things have always been done, and find new ways to solve problems. Interestingly, companies that set professional growth as the first priority get numerous benefits, including having more resilient employees, better performance, and stronger organizational citizenship behavior (Sessa & London, 2006). In today's changing world, learning agility has become an important sign of long-term leadership and organization's success (Meuse et al., 2010).

Training effectiveness is determined by various design and implementation factors. The transfer of training model proposed by Baldwin and Ford (1988) posits that the training is beneficial in performance enhancement only when the knowledge and skills gained during training are effectively utilized in the workplace. Effective training programs are characterized by the components such as need assessment, clear learning objectives, opportunities for practice and feedback and supportive work environment (Burke & Hutchins, 2007; Goldstein & Ford, 2002; Sitzmann, 2011).

5.3. Training and Development in the Digital Era

It is generally observed that technological developments have changed the way development and training are provided. Scalable, reasonably priced, adaptable learning solutions are increasingly available with the utilization of e-learning, micro-learning, virtual reality simulations, as well as massive open online courses (MOOCs), among others. (Salas

et al., 2012).

From the other corner, another trend which is seen to gain popularity among companies or businesses is called personalized learning path—the training modality that is matched to individual skill gaps and career objectives (Bell & Federman, 2013).

Despite the fact of that, the concept and implementation of digital training must take adult learning principles in account to ensure continuation of success and effectiveness in response to learners' goals, practical application, and self-directedness (Knowles et al., 2014).

6. Work-Life Balance and Employee Well-being

In the last few decades, work-life balance and employee health and happiness have become an important agenda in most workplaces. Work institutions have begun to realize that their employees' personal and professional lives are closely affiliated. They also understand that caring for their employees' well-being is not only the right and immediate things to do, but it is the strategic solutions for improving their workplace performance in a long run (Grawitch et al., 2006).

Findings from research indicated that employees who have a better work-life balance and overall health are more engaged, productive, creative, committed to their job and happy with their jobs. In contrast and simple speaking, workforces are less likely to burn out, miss work, or leave their job (Kossek et al., 2011; Schaufeli & Bakker, 2004).

6.1. Conceptualizing Work-Life Balance

Work-life balance is the understanding of a person on how compatible their non-work activities are with their current life priorities, thereby fostering development in line with their priorities (Greenhaus & Allen, 2011). It is about attaining a lasting, fulfilling integration of both spheres rather than about equally separating time between work and personal life (Clark, 2000).

Emphasizing that good spillover between work and personal life is conceivable rather than only conflict, Greenhaus and Powell (2006) on work-family enrichment theory indicated that events in one domain can improve the quality of life in the other.

Flexible work schedules are favorably linked, according a meta-analysis, to job satisfaction, organizational commitment, and performance (Baltes et al., 1999).

6.2. Employee Well-being and its Impact on Performance

Employee well-being includes some key elements regarding: physical, psychological, and social health (Warr, 2002). A healthy workforce can directly influence organizational outcomes in case it is in the condition of more energetic, focused, and resilient (Danna & Griffin, 1999).

High quality performance depends especially on psychological well-being, which covers lower level of anxiety, despair, and burnout. Job Demands-Resources (JD-R)– encompassing the components of support, autonomy, and chances for development, can buffer the negative impact of job demands (workload and emotional strain, etc.) on well-being and can directly encourage work engagement, according to Schaufeli and Bakker (2004).

Increased productivity, profitability, customer satisfaction, and lower absenteeism have been associated to higher employee engagement, which is a pleasant, gratifying, work-related frame of mind marked by vigor, devotion, and absorption(Harter et al., 2002).

6.3. The Role of Organizational Support

Employee performance and retention are much predicted by perceived organizational support (POS) – the degree to which workforces believe that their company not only values their contribution but also cares about their well-being (Rhoades & Eisenberger, 2002).

According to Cropanzano and Mitchell (2005), employees who feel supported while implementing or handling their duties, as well as personal obligations are more likely to return with increased degree of loyalty, commitment and discretionary effort.

In addition, studies have also revealed that support from their supervisors or management levels for work-life balance is exceptionally important. Those direct managerial actions such as providing flexibility, respecting family obligations, and supporting breaks, among others, greatly help to lower work-family conflict (Hammer et al., 2009).

7. Technological Innovation and Workplace Tools

Technological innovation has fundamentally reshaped the majority of modern workplaces, influencing how employees communicate, collaborate, perform tasks, and access information, etc. An organizations adapt to increasingly dynamic and digital environments, the effective integration of technology has become a critical driver of employee performance and organizational success (Brynjolfsson & McAfee, 2014). If implemented thoughtfully and carefully, technology can actually enhance productivity, foster innovation, improve flexibility, and support more data-driven decision-making (Davenport & Ronanki, 2018b).

7.1. Technology as a Permanent Enabler

Several research studies highlighted how digital tools can help people do better at their jobs. Knowledge management system, collaboration platforms (like Microsoft Teams, Zoom, Slack, etc.), enterprise resource planning (ERP) systems all make things more efficient by making task completion more convenient to communicate, standardizing processes, and getting information faster (Alavi & Leidner, 2001).

According to Willcocks et al. (2015), the utilization of automation, particularly AI-enable tools, has genuinely reduce working duration employees spend on boring and repetitive tasks, freeing them up to do more important, mentally challenging work. Similarly,Nicholas Bloom et al. (2015) added that virtual teamwork tools, cloud computing, and digital management systems not only support remote work, which make things more flexible and opens up job opportunities, but also make it possible for teams with diversity to work together efficiently, and complete more challenging projects.

7.2. The Role of Digital Literacy and Change Management

Digital literacy, which is defined as the capacity to utilize digital tools effectively and assess digital content critically, is currently recognized as an essential competency in almost all workplaces (Laar et al., 2017). Institutions that promote digital skills via structured learning initiatives improve their workforce's flexibility and resilience to technological change.

In this regard, there must be effective change management strategies, which are essential to support technology-driven transformations. According to Kotter (2012), key themes that should be considered includes leadership communication, user involvement in technology selection and customization, ongoing feedback mechanisms and recognition of early adopters.

Furthermore, the creation of digital innovation culture, where experimentation, learning from failure, and continuous improvement are encourage, will genuinely be able to fosters greater acceptance and proactive use of technology (Westerman et al., 2011).

7.3. Methodological Limitations

Numerous methodological issues remain prevalent in the research theme of workplace performance, including: 1) bias in self-reporting – depending mainly on employee self-reports regarding performance, motivation, and well-being (Podsakoff et al., 2003), 2) cross-sectional designs – studies utilize cross-sectional data,restricting the capacity to establish causal inferences and 3) single-source data, relying on data from a single respondent source. Considerations for future research should be on multi-source, longitudinal, and experimental designs so as to enhance the establishment of causality and generalizability.

8. Conclusion

It can be inferred that the evidence is clear enough in a sense that performance is the result of a complex interaction of individual, organizational, and technical factors, rather than being driven by one single component. Environments that promote engagement, motivation, and discretionary effort are found to have fostered by leadership styles, especially supportive and transformative ones.

To meet the psychological demands of employee, an organization must ensure that motivational systems are thoughtfully designed so provision of both internal and external rewards are made available. This measure is more likely to keep performance at a high level. In addition, collaboration, creativity, and resiliencyflourish in environments that are both supportive of employees and the organization's values.

Organizations which remain competitive and agile through sufficient investmentcapacity development enable their employees to stand ready for the adoption of changes. The importance of promoting employee well-being and work-life balance is increasingly acknowledged, not only for ethical reasons but also as a strategic decision for sustainable work performance.

Although the current research is already extensive, there are still gaps to be refilled. A critical need exists for more integrative models that reflect the interconnectedness such as longitudinal designs and cross-cultural and context-specific studies and so on.

Finally, better workplace performance results from integrated solutions that acknowledge the human, organizational, and technology aspects of contemporary work rather than from only one single intervention. Future studies and practice have to keep changing to fit this new reality so that work environment stays both humane and highly performing.

***Full-time Ph.D. Scholar**
Ph.D. Enrollment No. 471
Department of Education,
Central Institute of Education (CIE),
University of Delhi
skun@cie.du.ac.in

****Professor**
Department of Education,
Central Institute of Education (CIE),
University of Delhi
aranjan@cie.du.ac.in

References

- Aguinis, H., & Kraiger, K. (2009). Benefits of training and development for individuals and teams, organizations, and society. Annual review of psychology, 60(1), 451–474. https://doi.org/10.1146/annurev.psych.60.110707.163505
- Alavi, M., & Leidner, D. E. (2001). Knowledge management and knowledge management systems: Conceptual foundations and research issues. MIS quarterly, 25(1), 107–136. https://doi.org/https://doi.org/10.2307/3250961
- Allen, T. D., Herst, D. E., Bruck, C. S., & Sutton, M. (2000). Consequences associated with work-to-family conflict: a review and agenda for future research. Journal of occupational health psychology, 5(2), 278–308. https://doi.org/10.1037/1076-8998.5.2.278
- Arthur, W., Bennett, W., Edens, P. S., & Bell, S. T. (2003). Effectiveness of training in organizations: a meta-analysis of design and evaluation features. Journal of Applied Psychology, 88(2), 234–245. https://doi.org/10.1037/0021-9010.88.2.234
- Baldwin, T. T., & Ford, K. (1988). Transfer of training: A review and directions for future research. Personnel Psychology, 41(1), 63–105. https://doi.org/https://doi.org/10.1111/j.1744-6570.1988.tb00632.x
- Baltes, B. B., Briggs, T. E., Huff, J. W., Wright, J. A., & Neuman, G. A. (1999). Flexible and compressed workweek schedules: A meta-analysis of their effects on work-related criteria. Journal of Applied Psychology, 84(4), 496–513. https://doi.org/10.1037/0021-9010.84.4.496
- Bass, B. M., & Riggio, R. E. (2006). *Transformational leadership* (2nd ed.). Psychology press.
- Bass, B. M., & Stogdill, R. M. (1990). *Bass & Stogdill's handbook of leadership: Theory, research, and managerial applications*. Simon and Schuster.
- Bell, B. S., & Federman, J. E. (2013). E-learning in postsecondary education. The future of children, 165–185. https://doi.org/https://www.jstor.org/stable/23409493
- Borman, W. C., & Motowidlo, S. J. (1997). Task Performance and Contextual Performance: The Meaning for Personnel Selection Research. Human performance, 10(2), 99–109. https://doi.org/10.1207/s15327043hup1002_3
- Breevaart, K., Bakker, A., Hetland, J., Demerouti, E., Olsen, O. K., & Espevik, R. (2014). Daily transactional and transformational leadership and daily employee engagement. Journal of occupational and organizational psychology, 87(1), 138–157. https://doi.org/10.1111/joop.12041
- Brown, M. E., Treviño, L. K., & Harrison, D. A. (2005). Ethical leadership: A social learning perspective for construct development and testing. Organizational behavior and human decision processes, 97(2), 117–134. https://doi.org/https://doi.org/10.1016/j.obhdp.2005.03.002

- Brynjolfsson, E., & McAfee, A. (2014). *The second machine age: Work, progress, and prosperity in a time of brilliant technologies* (Vol. 236). W.W. Norton & Company.
- Burke, L. A., & Hutchins, H. M. (2007). Training transfer: An integrative literature review. Human resource development review, 6(3), 263–296. https://doi.org/https://doi.org/10.1177/1534484307303035
- Cameron, K., & Quinn, R. E. (2011). *Diagnosing and Changing Organizational Culture: Based on the Competing Values Framework* (3rd ed.). Jossey-Bass.
- Cerasoli, C. P., Nicklin, J. M., & Ford, M. T. (2014). Intrinsic motivation and extrinsic incentives jointly predict performance: a 40-year meta-analysis. Psychological bulletin, 140(4), 980–1008. https://doi.org/10.1037/a0035661
- Chatman, J. A. (1991). Matching people and organizations: Selection and socialization in public accounting firms. *Administrative science quarterly*, *36*(3), 459–484
- Clark, S. C. (2000). Work/family border theory: A new theory of work/family balance. Human relations, 53(6), 747–770. https://doi.org/https://doi.org/10.1177/0018726700536001
- Creswell, J. W. (2007). *Qualitative inquiry and research design: Choosing among five approaches*. Sage publications.
- Cropanzano, R., & Mitchell, M. S. (2005). Social exchange theory: An interdisciplinary review. Journal of management, 31(6), 874–900. https://doi.org/https://doi.org/10.1177/0149206305279602
- Danna, K., & Griffin, R. W. (1999). Health and well-being in the workplace: A review and synthesis of the literature. Journal of management, 25(3), 357–384. https://doi.org/https://doi.org/10.1177/014920639902500305
- Davenport, T. H., & Ronanki, R. (2018a). Artificial intelligence for the real world. *Harward Business Review 96*(1), 108–116.
- Davenport, T. H., & Ronanki, R. (2018b). Artificial intelligence for the real world. *Harvard Business Review*, 67.
- Deci, E. L., Koestner, R., & Ryan, R. M. (1999). A meta-analytic review of experiments examining the effects of extrinsic rewards on intrinsic motivation. Psychological bulletin, 125(6), 627–668. https://doi.org/10.1037/0033-2909.125.6.627
- Deci, E. L., & Ryan, R. M. (1985). The general causality orientations scale: Self-determination in personality. Journal of research in personality, 19(2), 109–134. https://doi.org/https://doi.org/10.1016/0092-6566(85)90023-6
- Delaney, J. T., & Huselid, M. A. (1996). The impact of human resource management practices on perceptions of organizational performance. Academy of Management journal, 39(4), 949–969. https://doi.org/10.5465/256718
- Denison, D. R. (1990). Corporate Culture and Organizational Effectiveness: NY: Wiley.
- Denison, D. R., & Mishra, A. K. (1995). Toward a theory of organizational culture and effectiveness. Organization science, 6(2), 204–223. https://doi.org/10.1287/orsc.6.2.204
- Edmondson, A. (1999). Psychological safety and learning behavior in work teams. Administrative science quarterly, 44(2), 350–383. https://doi.org/https://doi.org/10.2307/2666999
- Gagné, M., & Deci, E. L. (2005). Self determination theory and work motivation. Journal of organizational behavior, 26(4), 331–362. https://doi.org/10.1002/job.322
- Gerhart, B., & Fang, M. (2014). Pay for (individual) performance: Issues, claims, evidence and the role of sorting effects. Human Resource Management Review, 24(1), 41–52. https://doi.org/https://doi.org/10.1016/j.hrmr.2013.08.010
- Goldstein, I. L., & Ford, K. (2002). *tions: Needs Assessment, Development and Evaluation. Fourth* (4th ed., Vol. 239). Wadsworth.
- Grawitch, M. J., Gottschalk, M., & Munz, D. C. (2006). The path to a healthy workplace: A critical review linking healthy workplace practices, employee well-being, and organizational improvements. Consulting Psychology Journal: Practice and Research, 58(3), 129–147. https://doi.org/https://psycnet.apa.org/doi/10.1037/1065-9293.58.3.129
- Greenhaus, J. H., & Allen, T. D. (2011). Work–family balance: A review and extension of the literature. American Psychological Association, 165–183. https://doi.org/https://doi.org/10.1037/10474-000
- Greenhaus, J. H., & Powell, G. N. (2006). When work and family are allies: A theory of work-family enrichment. Academy of management review, 31(1), 72–92. https://doi.org/10.5465/amr.2006.19379625

- Greenleaf, R. K. (2013). *Servant leadership: A journey into the nature of legitimate power and greatness*. Paulist press.
- Hamari, J., Koivisto, J., & Sarsa, H. (2014). Does gamification work?—a literature review of empirical studies on gamification. 2014 47th Hawaii international conference on system sciences,
- Hammer, L. B., Kossek, E. E., Yragui, N. L., Bodner, T. E., & Ginger C. Hanson. (2009). Development and validation of a multidimensional measure of family supportive supervisor behaviors (FSSB). Journal of management, 35(4), 837–856. https://doi.org/https://doi.org/10.1177/0149206308328510
- Harter, J. K., Schmidt, F. L., & Hayes, T. L. (2002). Business-unit-level relationship between employee satisfaction, employee engagement, and business outcomes: a meta-analysis. Journal of Applied Psychology, 87(2), 268–279. https://doi.org/10.1037/0021-9010.87.2.268
- Hartnell, C. A., Ou, A. Y., & Kinicki, A. (2011). Organizational culture and organizational effectiveness: a meta-analytic investigation of the competing values framework's theoretical suppositions. Journal of Applied Psychology, 96(4), 677–694. https://doi.org/10.1037/a0021987
- Hersey, P., & Blanchard, K. H. (1969). Life cycle theory of leadership. *Training & development journal*, *23*(5), 26–34, Article 1970-19661-001.
- House, R. J. (1971). A path goal theory of leader effectiveness. Administrative science quarterly, 321–339. https://doi.org/10.2307/2391905
- Hunter, E. M., Neubert, M. J., Perry, S. J., Witt, L., Penney, L. M., & Weinberger, E. (2013). Servant leaders inspire servant followers: Antecedents and outcomes for employees and the organization. The leadership quarterly, 24(2), 316–331. https://doi.org/https://doi.org/10.1016/j.leaqua.2012.12.001
- Judge, T. A., & Piccolo, R. F. (2004). Transformational and transactional leadership: a meta-analytic test of their relative validity. Journal of Applied Psychology, 89(5), 755–768. https://doi.org/10.1037/0021-9010.89.5.755
- Knowles, M. S., III, E. F. H., & Swanson, R. A. (2014). *The adult learner: The definitive classic in adult education and human resource development*. Routledge.
- Kossek, E. E., Baltes, B. B., & Matthews, R. A. (2011). How work–family research can finally have an impact in organizations. Industrial and organizational psychology, 4(3), 352–369. https://doi.org/10.1111/j.1754-9434.2011.01353.x
- Kotter, J. P. (2012). *Leading Change*. Harvard Business Review Press.
- Kuenzi, M., & Schminke, M. (2009). Assembling fragments into a lens: A review, critique, and proposed research agenda for the organizational work climate literature. Journal of management, 35(3), 634–717. https://doi.org/10.1177/014920630833055
- Laar, E. V., Deursen, A. J. V., Dijk, J. A. V., & Haan, J. D. (2017). The relation between 21st-century skills and digital skills: A systematic literature review. Computers in human behavior, 72, 577–588. https://doi.org/https://doi.org/10.1016/j.chb.2017.03.010
- Liden, R. C., Wayne, S. J., Zhao, H., & Henderson, D. (2008). Servant leadership: Development of a multidimensional measure and multi-level assessment. The leadership quarterly, 19(2), 161–177. https://doi.org/https://doi.org/10.1016/j.leaqua.2008.01.006
- Locke, E. A., & Latham, G. P. (2002). Building a practically useful theory of goal setting and task motivation: A 35-year odyssey. American Psychologist, 57(9), 705–717. https://doi.org/10.1037/0003-066X.57.9.705
- London, M. (2011). *The Oxford handbook of lifelong learning*. Oxford University Press.
- Meuse, K. P. D., Dai, G., & Hallenbeck, G. S. (2010). Learning agility: A construct whose time has come. Consulting Psychology Journal: Practice and Research, 62(2), 119–130. https://doi.org/10.1037/a0019988
- Ng, T. W., Sorensen, K. L., & Feldman, D. C. (2007). Dimensions, antecedents, and consequences of workaholism: A conceptual integration and extension. Journal of Organizational Behavior: The International Journal of Industrial, Occupational and Organizational Psychology and Behavior, 28(1), 111–136. https://doi.org/10.1002/job.424
- Nicholas Bloom, Liang, J., Roberts, J., & Ying, Z. J. (2015). Does working from home work? Evidence from a Chinese experiment. The Quarterly journal of economics, 130(1), 165–218. https://doi.org/10.1093/qje/qju032
- Noe, R. A. (2020). *Employee training and*

development (5th ed.). McGraw-Hill.
- Ostroff, C., Kinicki, A. J., & Tamkins, M. M. (2003). Organizational climate and culture. *Comprehensive handbook of psychology*, *12*, 565–593.
- Patterson, M. G., West, M. A., Shackleton, V. J., Dawson, J. F., Lawthom, R., Maitlis, S., . . . Wallace, A. M. (2005). Validating the organizational climate measure: links to managerial practices, productivity and innovation. Journal of organizational behavior, 26(4), 379–408. https://doi.org/10.1002/job.312
- Pfeffer, J. (1998). *The human equation: Building profits by putting people first*. Harvard Business Press.
- Podsakoff, P. M., MacKenzie, S. B., & Bommer, W. H. (1996). Transformational leader behaviors and substitutes for leadership as determinants of employee satisfaction, commitment, trust, and organizational citize. Journal of management, 22(2), 259–298. https://doi.org/https://doi.org/10.1016/S0149-2063(96)90049-5
- Podsakoff, P. M., MacKenzie, S. B., Lee, J.-Y., & Podsakoff, N. P. (2003). Common method biases in behavioral research: a critical review of the literature and recommended remedies. Journal of Applied Psychology, 88(5), 879–903. https://doi.org/10.1037/0021-9010.88.5.879
- Rhoades, L., & Eisenberger, R. (2002). Perceived organizational support: a review of the literature. Journal of Applied Psychology, 87(4), 698–714. https://doi.org/10.1037/0021-9010.87.4.698
- Richard M. Steers, Mowday, R. T., & Shapiro, D. L. (2004). The future of work motivation theory. In (Vol. 29, pp. 379–387): Academy of Management Review.
- Ryan, R. M., & Deci, E. L. (2000a). Intrinsic and extrinsic motivations: Classic definitions and new directions. Contemporary educational psychology, 25(1), 54–67. https://doi.org/https://doi.org/10.1006/ceps.1999.1020
- Ryan, R. M., & Deci, E. L. (2000b). Self-determination theory and the facilitation of intrinsic motivation, social development, and well-being. American Psychologist, 55(1), 68–78. https://doi.org/10.1037/0003-066x.55.1.68
- Salas, E., Tannenbaum, S. I., Kraiger, K., & Smith-Jentsch, K. A. (2012). The science of training and development in organizations: What matters in practice. Psychological science in the public interest, 13(2), 74–101. https://doi.org/10.1177/1529100612436661
- Schaufeli, W. B., & Bakker, A. B. (2004). Job demands, job resources, and their relationship with burnout and engagement: A multi sample study. Journal of Organizational Behavior: The International Journal of Industrial, Occupational and Organizational Psychology and Behavior, 25(3), 293–315. https://doi.org/10.1002/job.248
- Schein, E. H. (2010). *Organizational culture and leadership* (4th ed., Vol. 2). Jossey-Bass.
- Schneider, B., Ehrhart, M. G., & Macey, W. H. (2013). Organizational climate and culture. Annual review of psychology, 64(1), 361–388. https://doi.org/10.1146/annurev-psych-113011-143809
- Schneider, B., White, S. S., & Paul, M. C. (1998). Linking service climate and customer perceptions of service quality: Tests of a causal model. Journal of Applied Psychology, 83(2), 150–163. https://doi.org/10.1037/0021-9010.83.2.150
- Sessa, V. I., & London, M. (2006). Continuous learning in organizations: Individual, group, and organizational perspectives (1st ed.). Psychology Press. https://doi.org/doi.org/10.4324/9781315820941
- Sitzmann, T. (2011). A meta analytic examination of the instructional effectiveness of computer based simulation games. Personnel Psychology, 64(2), 489–528. https://doi.org/https://doi.org/10.1111/j.1744-6570.2011.01190.x
- Vroom, V. H. (1964). *Work and motivation*. Oxford, England: Wiley.
- Warr, P. (2002). The Study of Well-being, Behaviour and Attitudes. *Psychology at work* 1–25.
- Westerman, G., Calméjane, C., Bonnet, D., Ferraris, P., & McAfee, A. (2011). Digital Transformation: A roadmap for billion-dollar organizations. *MIT Center for digital business and capgemini consulting*.
- Willcocks, L. P., Lacity, M., & Craig, A. (2015). The IT function and robotic process automation.
- Zhu, W., Avolio, B. J., & Walumbwa, F. O. (2009). Moderating role of follower characteristics with transformational leadership and follower work engagement. Group & organization management, 34(5), 590–619. https://doi.org/https://doi.org/10.1177/1059601108331242

Research Paper

Future of Ayurveda in India

Dr. C A Kishore* **Prof. V. Girish Chandra****

ABSTRACT

Indian healthcare innovation blends modern technology with traditional herbal and Ayurvedic remedies, improving disease prevention and treatment access.

The future of healthcare in India is rapidly changing, with disease prevention, innovation and research playing a significant role. Many companies and institutions in the country, such as Patanjali Research Institute, Dabur India Limited, and Sun Herbals, are conducting clinical trials for Ayurvedic medicines and promoting preventive healthcare.

Government initiatives, such as Ayushman Bharat and Digital Health Mission, have increased access to healthcare services in both rural and urban areas.

KEY WORDS

e-sanjeevini, Artificial Intelligence, Laxatives, Ayush,

INTRODUCTION

Sanskrit origins of words define Ayurveda as “knowledge of life” or “science of longevity”.

As the definition itself explains, Ayurveda is a medical practice that deals with analysing, preventing, and curing medical ailments of the body thus increasing the longevity of life.

The future of healthcare in India is rapidly changing through innovation and research. Platforms such as telemedicine and e-Sanjeevani in the country have provided remote patients with access to specialist medical care. Through technological advancements, artificial intelligence (AI), biotechnology and digital health solutions, the country's healthcare system is becoming more accessible, affordable and effective.

The company says that over 500 scientists at the Patanjali Research Institute (PRI) are developing evidence-based medicines by combining Ayurveda with modern medical science. The company claims that Patanjali's telemedicine initiative and herbal products are providing affordable and accessible healthcare services in rural areas of India.

Environmentally friendly products and organic farming are now being promoted in the country. Patanjali claims, "Our research and investment have played a significant role in bringing Ayurveda into the mainstream. This effort by Patanjali is not only making healthcare services more accessible, but is also establishing India's cultural heritage on the global stage."

Ayurveda has got its unique way of medications that include:

- Herbal medicines
- Laxatives
- Yoga
- Meditations
- Special diets, and so on.

Ayurvedic medicine covers a wide bandwidth of physical treatment, surgeries, and mental therapies.

Valuing the impeccable benefits of Ayurveda, around 77% of Indian households use ayurvedic medicine. This is a straight mark indicating major

scope in Ayurveda in India.

Scope of Ayurveda in future:

Ayurveda has climbed higher and higher in recent decades as the scope for Ayurveda has drastically developed both in India and abroad. Students pursuing ayurvedic courses in the best Ayurveda colleges in India are finding job opportunities all around the world.

Here is a detailed view of the scope of Ayurveda in India

1. Ayurveda scope in India:

Job opportunities for ayurvedic graduates are immensely available both in the government and private sectors

2. Government job scope:

Ministry of AYUSH has taken multiple steps in developing the stand of Ayurveda by making major investments and thus hiring many ayurvedic graduates for various positions

3. Many private ayurvedic colleges and hospitals are recently established with the aim of strengthening Ayurveda in our land like:

- Ayurveda doctor
- Sales representative
- Medical transcriptionist
- Research & Development executive
- Health supervisor/therapist
- Clinical research associate
- Medical officer

4. Relevant industries that hire Ayurveda graduates in India:

- Healthcare Industry
- Healthcare IT Industry
- Pharmaceutical Industry
- Nursing
- Insurance Industry
- Life Science Industry
- Medical Tourism Industry
- Education/Academics

These industries hire Ayurveda graduates to ensure high Ayurveda scope in India.

Ayurveda scope abroad:

In recent years, Ayurveda has lightened up in foreign nations as well. From being a medical practice, Ayurveda has transformed into a relaxation therapy in resorts in foreign countries.

Here are the key sectors where Ayurveda graduates are hired abroad:

- Health care Sector
- Ayurvedic Resorts
- Research Institutions
- Ayurvedic Spa Centres
- Hospitals
- Dispensaries
- Health Resort
- Key Factors Driving Growth:
- Rising Demand:

Consumers are increasingly seeking natural and holistic approaches to healthcare, leading to a surge in demand for Ayurvedic products and services.

Government Support:

The Indian government is actively promoting traditional medicine systems, including Ayurveda, through initiatives like research and development, and promoting "Make in India" brands.

Global Interest:

The global market for alternative medicine is expanding, and Ayurveda is gaining recognition and popularity worldwide.

Holistic Approach:

Ayurveda's focus on holistic health, encompassing physical, mental, and spiritual well-being, aligns with the growing interest in wellness and preventive healthcare.

Career Opportunities:

With the growing demand for Ayurvedic practitioners and products, there are numerous career opportunities for those interested in this field, both in India and abroad.

Integration with Modern Healthcare:

Integrating Ayurveda with modern healthcare systems and practices can create synergistic benefits.

Research and Innovation:

Continued research and development in Ayurveda, including the use of modern technology and dosage forms, are essential for advancing its practice and applications.

Global Collaboration:

International collaboration and knowledge sharing can further promote Ayurveda and its benefits globally.

Conclusion

Since the ayurvedic market is widening in India as well as abroad, the scope in Ayurveda is great all around the world. Students pursuing Ayurvedic studies can experience a well-established career in the upcoming years. Possessing Indian roots, Ayurveda is today one of the best globally practiced medical practices.

Ayurveda's future in India is very promising, with the Indian Ayurveda market projected to reach significant heights in the coming years, driven by growing demand for natural and holistic healthcare solutions. The market is expected to expand due to increased awareness of Ayurveda's benefits, a shift towards sustainable healthcare, and government support for traditional medicine systems. Ayurveda's scope extends beyond India, with increasing global interest and potential for Ayurvedic professionals in various sectors.

***Research Scholar**
Department of Inter Disciplinary
Karnataka Sanskrit University Bengaluru

****Professor**
Dean Language Department
Karnataka Sanskrit University Bengaluru

Bibliography

1. Charaka Samhitaa –Vidyotinee (Hindi), Kashinaatha Shastri et10) al, Chaukhambha Bharati Academy, Varanasi, 2002, Sixth Edition.
2. Charaka Samhitaa -Vol. 1 to 5 (English), Bhagvan Dash, Chaukhambha Sanskrit Series,Varanasi, 2001, Seventh Edition.
3. Charaka Samhitaa-(Marathi), Vd. Y.G. Joshi, Vaidyamitra Prakashan ,Pune, 2003, First Edition.
4. Bhaishjya Ratnaavalee, Kaviraj Ambika Datta Shastri, Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi, 2005, Eighteen revised.
5. Asht`aanga Hridaya (Hindi), Dr. Brahmananda Tripathi, Chaukhambha Sanskrit Pratishthan, Delhi, 2003.
6. Maadhava Nidaana (Hindi), Dr. Brahmananda Tripathi , Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi, 2004.
7. Sus`hruta Samhitaa (Hindi) Ayurvedatattva Deepikaa, Dr. Ambika Datta Shastri, Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi.
8. Sus`hruta Samhitaa (English) Vol 1 to 5, Dr. P.V. Sharma, Chaukhambha Vishwabharati, Varanasi, 2001, First Edition.
9. S`haaragdhara Samhitaa -A treatise on Ayurveda (English), Prof. K.R. Srikanta Murthy, Chaukghambha Orientaliya ,Varanasi, 2001, Fourth Edition.
10. Kaas`hyapa Samhitaa with English Translation and Commentary, Prf. Km.P.V. Tiwari, Chaukhambha Vishwabharati, Varanasi , 2002, Reprint

डॉ. रीता नामदेव

रावण का प्रश्न

शोधसार

ऐसा कहा जाता है कि लंका विजय के बाद राम ने लक्ष्मण को, रावण के पास राजनीति का ज्ञान प्राप्त करने हेतु भेजा था। यह बात व्यवहारिक नहीं, काल्पनिक लगती है क्योंकि किसी का संपूर्ण वंश मिटा कर युद्ध का विजयेता पराजित मुखिया से न मिलने जाए, न जुहार, न नमस्कार करे सीधे ज्ञान की मांग करे यह तो सभ्य होने का नहीं बर्बरता का चिन्ह है इस लिये ऐसा लगता है कि राम विजय के उपरान्त रावण से अवश्य मिले होंगे और युद्ध के लिये कौन जिम्मेदार है इस विषय पर चर्चा हुई होगी! परिस्थितियां आज की हों या किसी भी युग की स्त्री को मानवीय अधिकार प्राप्त हों तो रावण को सभ्य, सुसंस्कृत, आदर्श भाई, न्यायकारी राजा कहा जाएगा। राम पर स्त्री-स्वतन्त्रता, स्त्री-सम्मान द्रोही होने का आरोप लगेगा। प्रथम अपराध राम की ओर से शुरू तभी हो जाता है जब पंचवटी में शूर्पणखा राम से प्रण्य निवेदन करती है। ऐसा लगता है राम ने जबरन युद्ध कर भरत से श्रेष्ठ योद्धा साबित कर प्रजा के सामने अयोध्या के राज्य का स्वयं को सही दाबेदार प्रस्तुत करने के लिये ही रावण को युद्ध के लिये विवश करने के उद्देश्य से दक्षिण की ओर गए थे! गोस्वामी तुलसीदास लिखते हैं-

''लछिमन रिपु भगिनी जानी।
प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी।।
सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा।
पराधीन नहिं तोर सुपासा।।"

अभी रावण ने कोई अपराध नहीं किया है न शूर्पणखा ने कोई अपराध किया है लेकिन लक्ष्मण ने यह निश्चय कर लिया कि यह शत्रु की बहन है इसके साथ दुर्व्यवहार करना है! पहले दोनों भाइयों ने शूर्पणखा के प्रणय निवेदन का मजाक बनाया एक-दूसरे के पास भेज-भेज कर अपना मनोरंजन किया और फिर लक्ष्मण ने कह दिया-

''लछिमन कहा तोहि सो बरई।
जो तृन तोरि लाज परिहरई।।"

जब शूर्पणखा को अहसास हुआ कि उसका अपमान व उपहास किया जा रहा है तो उसे क्रोध आ गया। शूर्पणखा के क्रोध करते ही शूर्पणखा के मुख को विकृत कर उसका सामाजिक अस्तित्व समाप्त कर दिया गया ताकि अब वह किसी और के सामने प्रणय निवेदन के योग्य न रहे। यदि शूर्पणखा के भाई में थोड़ा-सा भी स्वाभिमान हो तो युद्ध करे और राम अपने को भावी श्रेष्ठ योद्धा और अयोध्या का राजा साबित कर सके। चौदह वर्ष बहुत होते हैं जनता के हृदय में स्थान बनाने और राजनीतिक परिस्थितियों को अपनी ओर मोड़ने के लिये इसी लिये यदि अयोध्य्या की प्रजा ने भरत को राजा के रूप में स्वीकार कर लिया हो तो समकालीन समय में अजेय समझी वाली लंका-विजय कर अयोध्य्या लौटा जाए तो, (राम ही अयोध्य्या के राजा होने योग्य है) यह हवा बनाने में राम के सहयोगियों को अपूर्व सफलता मिलने की उम्मीद की जा सकती है।

भूमिका

राम रावण जीवन चरित पर अनेक ग्रंथ लिखे गए हैं। लगभग सभी धार्मिक ग्रंथों में राम को न्यायोचित बताया गया है तथा रावण को अन्यायी सिद्ध करने का पूर्ण प्रयास किया गया है। तर्क पर आधारित सफलता न मिलने पर राम को ईश्वर

सर्वशक्तिवान व तर्क से परे चित्रित कर तर्क के लिये गुंजाइश समाप्त कर ईश्वर के क्रोध का भय दिखा कर अनेक मनगढ़ंत कथाओं के क्षेपक जोड़ कर जनता को राम के पक्ष में खड़ा किया गया किंतु बुंदेलखंडी एक गीत में बहुत सीधे-सरल शब्दों में तर्कपूर्ण रावण-राम संवाद सुनने को मिलता है। यह बुंदेलखंडी लोकभजन सुनकर लोकगीत के लेखक का नाम मालूम नहीं होता क्योंकि लेखक के नाम का गीत में प्रयोग नहीं किया गया है। न यह मालूम हो पाता है कि सबसे पहले किस गायक कलाकार ने इस गीत को गाया था मगर यह गीत अनेक गायक कलाकारों द्वारा गाया गया है। लोकगीत के लेखक ने सहज और स्वाभाविक बुंदेलखंडी भाषा में गीत को लिखा है। गीत में निष्कर्ष की अभिव्यक्ति नहीं है लेकिन प्रारंभिक मुखड़े से लेकर अंतरे की अंतिम पंक्ति तक श्रोता को रावण का पक्ष न्यायोचित तर्कसंगत तथा राम का पक्ष निर्बल एवं अन्यायपूर्ण महसूस होता रहता है।

मूल आलेख

सबसे पहले रावण राम से धार्मिक प्रश्न करता है, दीनानाथ! बताओ, बसी-बसाई यानि समृद्धि से पूर्ण लंका को उजाड़ कर तुम को शर्म नहीं आई!

''बस्सी बसायी लंका तुमने, दीनानाथ मिटायी!
कहो तुम्हें शर्म नहीं आई?''

दीनानाथ शब्द में व्यंग्य शर्म नहीं आई में धिक्कार का स्वर है।

यदि कोई अपने-आप को दीनों का दुख दूर करने वाला, दीनों को सहारा देने वाला कहता है या ऐसा करने वाला माना जाता है तो वह हँसते-खेलते खाते-पीते परिवारों को अनाथ व बेसहारा कैसे कर सकता है!

शर्म नहीं आई वाक्य में प्रश्न और तिरस्कार दोनों प्रतिध्वनित होते हैं। आप ईश्वर का अवतार कहला कर अपने नाम और चरित्र के विपरीत कार्य करने में तुम्हें शर्म नहीं आई! दीनानाथ और शर्म नहीं आई शब्द, धर्म की धज्जियां उड़ा देते हैं।

राम ने सामाजिक मर्यादा के विषय को उठाते हुए कहा, दसानन तुमने मायाजाल रचकर यानि छद्म वेश धरकर छल से सिया को अकेली व अबला यानि असहाय देखकर चुराया इसी कारण इतना बवाल बढ़ गया और युद्ध आवश्यक हो गया। अपने परिजन और प्रजा-जनों को युद्ध में झोंक कर तुम्हें शर्म नहीं आई!

''तुमने रचके माया जाल, ऐसी चली दसानन चाल।
इस से इतनो बढ़ो बबाल।
अबला जान, अकेली तुमने छल से सिया चुराई!
कहो तुम्हें शरम नहीं आई?''

रावण बताता है कि राम पहले आपने किस तरह सामाजिक मर्यादाओं की धज्जियां उड़ाई हैं। रावण कहता है, तुमने तो खुद ही वनबिहार करने गई मेरी छोटी बहन को अकेली और अबला जान कर हाय नाक और दोनों कान काट लिये जबकि परमब्रह्म का अवतार कहलाते हो! वाह रे परमब्रह्म भगवान्! परमब्रह्म होकर इतना घृणित कार्य करने में तुम्हें शर्म नहीं आई? रावण के उत्तर से राम की मर्यादा और ईश्वर का अवतार दोनों धूल में मिल जाते हैं।

''तुमने खुद हा अबला जान, काटे नाक और दओउ कान!
वाह रे पारब्रह्म भगवान!
बनबिहार करबे को गई थी छोटी बेन हमाई
कहो तुमें शरम नहीं आई?''

रावण का तर्कपूर्ण उत्तर सुनते ही, राम का उत्तर बहुत हल्का और बेईमानी से भरा हुआ लगने लगता है। पहले शूर्पणखा का मजाक बनाना, अपमानित करना और फिर उसका अंगभंग करना वह भी शरीर के सर्वश्रेष्ठ अंग मुख का! मुख में भी श्रेष्ठ नासिका को काट लेना! नाक शरीर और सम्मान दोनों का प्रतीक है। इस अपमान के सामने सीता का चुराना लज्जा-जनक कार्य की अनुभूति नहीं होने देता। ''वाह रे पारब्रह्म भगवान्'' में धधकता हुआ व्यंग्य और अनेक ज्वलंत प्रश्न हैं।

किसी स्त्री के मुख को विकृत कर उसका सामाजिक अस्तित्व समाप्त कर देना वहीं किसी स्त्री को राजधानी के शाही वाटिका में स्त्रियों के संरक्षण में ठहराना।

अपराध की तुलना बराबरी के स्तर पर कहीं नहीं ठहरती।

सामाजिक मर्यादा का विषय निरस्त हो जाने के बाद राम, रावण से युद्ध-नीति के विषय पर आधारित उत्तर देता है, प्रश्न का जवाब देते हुए कहता है, हमने अंगद को संधि करने के लिये भेजा था लेकिन तुम तो उसका पैर उठा कर दांव जीतने के फेर में पड़ गए। तुम तो खुद ही मरने के लिये फिर रहे थे तभी तो तुमने हमारे से अपने को श्रेष्ठ समझने की भूल कर अपनी हँसी कराई तुमको शर्म आनी चाहिये थी।

''अंगद भेजो संधी करबे, ऊको तुम लगे ते पांव धरबे ।
तुम खुद फिर रै ते मरबे।
काए भरी सभा में अपने हाथन हँसी कराई!

कहो तुमें शरम नहीं आई!''

राम का उत्तर सामंती दंभ की बू से भरा हुआ है। ''वाह रे पार ब्रह्म भग्वान'' का व्यंग्य अभी भी धधकता रहता है जिसका राम से कोई उत्तर नहीं बन पड़ा है।

अंगद द्वारा लाए संधि के प्रस्ताव पर, रावण उत्तर देता है, संधि प्रस्ताव भेजने से पहले तुमने दूत हनुमान को भेज कर मेरी आन-बान और शान सब मिटा कर तार-तार कर दी थी! पूरे नगर के घर जला दिये एक भी घर नहीं छोड़ा ऐसे विध्वंसकारी दूत को संधि-प्रस्ताव से पहले भेज कर लंका और मेरी प्रतिष्ठा मिटाने में तुमहें शर्म नहीं आई?

''मोरी आन-बान अरु सान, कर गए तार-तार हनुमान।
छोड़ो नईयां एक मकान।
हनुमान कौं पोंचा तुमने घर-घर आग लगाई!
कहो तुमें शरम नहीं आई?''

संधि प्रस्ताव भेजने से पहले दूत द्वारा पूरे नगर का विध्वंस कर देने का मतलब साफ था कि हम संधि नहीं, दासता स्वीकार कराना चाहते हैं। यदि राम के शरण में आकर पराधीनता स्वीकार करो तो ही युद्ध टल सकता है। ऐसे में जो बलवान हो, श्रेष्ठ योद्धा हो, स्वाभिमानी भी हो अन्याय भी उसी के साथ हुआ हो तब वह भला कैसे पराधीनता स्वीकार करेगा!

युद्ध नीति के विषय के बाद राम, पारिवारिक क्षति का विषय उठाता है, तुमने भी तो अपने पुत्र बलवान् मेघनाथ को युद्ध के लिये भेजा जिसने ऐसी प्राण-घातक शक्ति मारी जिसकी आसपास कोई औषधि नहीं थी! सारी रात दवाई ढूंढते फिरते रहे तब कहीं जाकर प्राण बचे। मुझे इतने भयंकर संकट में डाल कर तुम्हे शर्म नहीं आई!

"पोंचा मेघनाथ बलवान, ऐसो मारो सक्ति बान!
जैसे-तैसे बचे परान।
ऐसी सक्ति लगी रात भर ढूंड़त फिरे दबाई!
कहो तुमें शरम नहीं आई?''

रावण, राम के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहता है, तुमने मेरे छोटे भाई विभीषण को प्रेम व प्रलोभन के जाल में फँसा कर आधी से अधिक शक्ति को क्षीण कर दिया। विभिन्न प्रकार की वाक्य और प्रलोभनों का जाल बिछा कर बहला-फुस्ला कर मेरी मृत्यु का रहस्य पूछा और तब मेरी नाभि में बाण मार कर मुझे घायल किया अन्याय से प्राप्त विजय पर तुम्हें शर्म नहीं आई? साम, दाम, दंड, भेद सभी प्रकार के दांव-पेंच अपना कर विभीषण को अपनी ओर मिला लेना और फिर मेरी मृत्यु का रहस्य मालूम करके मुझे मारना कोई वीरता नहीं है कहकर रावण, राम के अंतिम तर्क को भी निरस्त कर देता है।

''तुमने ऐसो डारो डोरो, मोरो हल्को भईया फोरो।
मोरो हाथ दाइनो टोरो!
पुटेया-पुटेया तुमने ऊसे पूछी मौत हमाई।
कहो तुमें शरम नहीं आई?''

डोरो डारो-प्रलोभन देकर फंसाना। फोरो-फूट डाल कर अपनी ओर मिला लिया। पुटिया-पुटिया- बहलाना-फुसलाना, विभिन्न प्रकार से रिझा कर अपने अनकूल कार्य कराना। हाथ दाहिनो टोरो-बहुत ही महत्वपूर्ण सगे-संबन्धी को दूर कर देना।

निष्कर्ष

यदि हनुमान की लंका यात्रा के दौरान लंका-दहन, अक्षय कुमार वध जैसी घटनाएं नहीं होती और फिर संधि-प्रस्ताव भेज कर, राम ने शूर्पणखा के साथ किये गए दुर्व्यवहार के लिये क्षमा मांगी होती। शूर्पणखा के साथ किये गए अपराध की भरपाई के रूप में, अपने साथ या अपने किसी भाई के साथ विवाह-प्रस्ताव के साथ संधि-प्रस्ताव भेजा गया होता तो शायद इस पर विचार किये जाने की उम्मीद की जा सकती थी। रावण के संवादों में सशक्त उत्तर धधकते हुए ज्वलंत प्रश्न हैं जबकि राम के संवादों में अपने पक्ष में दी गई दलीलें निरर्थक मालूम होती हैं। संपूर्ण लोकगीत में रावण का पलड़ा भारी रहता है। रावण के प्रश्न लोकतान्त्रिक समाज के अनुकूल व्यवहारिक तर्कसंगत हैं। राम के जवाब तानाशाही सामंती व्यवस्था की मानसिकता पर आधारित हैं। गीत में चार गंभीर विषय उठाए गए हैं- 1. धर्म का अवतार, 2. सामाजिक मर्यादा, 3. युद्धनीति, 4. पारिवारिक क्षति। तीनों विषयों में रावण के तर्क सशक्त तथा तथ्यात्मक हैं। प्रत्येक संवाद के अंत में (शर्म नहीं आई) वाक्य की पुनर्वृत्ति से समाप्त होता है। रावण के सशक्त तर्कों के कारण ''शर्म नहीं आई'' शब्द जलता हुआ प्रश्न छोड़ जाता है वहीं राम के अशक्त तर्कों के कारण ''शर्म नहीं आई'' वाक्य की आवृत्ति सिर्फ गीत का सौंदर्य बनाए रखने में सहायक है, प्रश्न को महत्व प्राप्त नहीं होता।

सहप्राध्यापक
हिंदी विभाग
भगिनी निवेदिता कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

सन्दर्भ सूची

1. राम रावण जवाबी गीत जरूर सुने बसी, बसाई लंका तुमने दीनानाथ मिटाई, गायक वृंदावन नरवरिया एंड पार्टी, Lodhi Studio Gora Kalan, 12 minutes, 42 seconds, 423 views, 1 year ago
2. का हो तुमें शरम नईं आई /गीत चंद्रप्रकाश / बुन्देली लोक भजन / Brajesh Kumar sangitacharya, meri awaz, Sangeetachary Brijesh Kumar, 10 minutes, 52 seconds, 631K views, 2 years ago
3. भजन। बसी बसाई लंका तुमने दीनानाथ मिटाई क्या तुम्हें कतई शर्म ना आई। Halke Ram Kushwah | लखन रघुवंशी, 61K views, 8 months ago...more
4. चेतावनी_भजन//बसी बसाई लंका तुमने दीनानाथ मिटाई क्या तुम्हें शर्म ना आई// HalkeRam Kushwah_ लखन रघुवंशी, JAYPRAKASH STUDIO, 13 minutes, 12 seconds, 140K views, 6 months ago
5. यूट्यूब पर पहली बार बुंदेली भाषा में भजन/बसी बसाई लंका तुमने दीनानाथ मिटाई/ Bundeli New Bhajan 2023, 19K views, 8 months agoSee #Raghu1c videos...more

Research Paper

Dr. Rama Srivastava* **Dr. Nandini Sahay****

Transforming Rural Development: AI's Role in Boosting the Jeevika Program's impact

Abstract

Leveraging AI for Sustainable Rural Development: A Strategic Management Perspective on the Jeevika Programme"

Introduction

Bihar is one of India's most economically challenged states. It has faced significant developmental obstacles, especially in its rural areas. To address these challenges and uplift the socio economic status of rural population, the JEEViKA Programme was introduced. This initiative focuses on empowering Bihar's rural communities. By fostering economic empowerment and social inclusion, JEEViKA aims to break the cycle of poverty and create sustainable development pathways for the people of Bihar.

Objective

- To conduct longitudinal trend analysis of Jeevika programme.
- Critically assess the impact of Jeevika Programme in improving rural livelihoods and enhancing social and economic empowerment of the rural poor in Bihar.
- Explore the potential of AI-driven solutions to enhance the effectiveness and reach of the Jeevika program.

Research Methodology

It is a desk study.Secondary data was sourced through published reports and documented records of World Bank and Jeevika available in public domain. Further, articles and research papers pertaining to rural transformation and upcoming AI technology were also explored with the help of key words.PRISMA Technique was used for sourcing data. The data sourced were analysed thematically through trend analysis of financial years 2018-2023.

Findings

There has been consistent positive increase in the all the variables aiming at livelihood promotion, health empowerment and vulnerability reduction. This means that programme is reaching a larger number of rural people each year aiming at rural transformation which is the basic objective of Jeevika programme. However, still there are many challenges which can be addressed through AI interface.

Recommendation

The integration of Artificial Intelligence (AI) and technology in the Jeevika Programme can significantly enhance its effectiveness, efficiency, and outreach.

Keywords

Transformation. Rural Development, Jeevika, AI, Financial Inclusion, Vulnerability Reduction, Bihar

Transforming Rural Development: AI's Role in Boosting the Jeevika Program's Impact

Introduction

Bihar has historically been one of India's most

impoverished states. It has a high number of poor people, with 26.59% of the population considered multidimensionally poor in 2022-23[1]. This is much higher than the national average of 11.28%. The agriculture sector in Bihar is stagnant and unable to provide enough jobs for the growing population. People are increasingly looking for employment outside of agriculture, either through migration or commuting. Further, Bihar has poor infrastructure, including electricity supply, drainage, and sanitation.

JEEViKA Programme, a World Bank supported program of the Government of Bihar was introduced to uplift the socio economic status of rural households. Originally a state-level partnership funded by the World Bank, it has grown into a multifaceted program. JEEViKA now implements the National Rural Livelihood Mission (NRLM) and the World Bank-funded Bihar Transformative Development Project (BTDP). Beyond its core activities, it serves as a platform for the targeted delivery of government policies and entitlement programs, aiming to enhance the livelihoods of rural populations, particularly women and marginalized communities

It is against this background this study was conducted with an aim to assess the impact of Jeevika programme. A longitudinal trend analysis was conducted for this purpose and potential of AI-driven solutions were proposed which could enhance the effectiveness and reach of the Jeevika program.

Methodology

To assess the impact desk research was conducted. Secondary data was sourced through published reports and documented records of World Bank and Jeevika available in public domain.

PRISMA Technique was used for sourcing data. The following steps were followed.

1. IDENTIFICATION	• Non Personalised Search Engine: Under keywords relating to Financial Inclusion without specification of location in English Language
2. INITIAL SCREENING	• Initial Screening: based on Title and Description of the article referring to transformative development initiatives in Bihar
3. ELIGIBILITY	• Credibility and Integrity of Sources: Published Reports available on Government Site were sourced • Accessibility: Reports and data that was available in Public Domain
4. OBTAINING DATA	• Data Extraction: Data was extracted through World bank reports and Annual Reports Published by JEEVIKA
5. EXCLUSION & INCLUSION CRITERIA	• Exclude Duplicate: Duplicate data from the reports was excluded • Conformance of Data type: Only that data was kept which was verifiable with the published Annual report of JEEVIKA • Relevance Criteria: To analyse the transformative development initiatives
6. SUB SET DATA EVALUATION	• Appropriate amount of Relevant Data: Data was sourced from 2017-2023 only as World bank's initiative commenced from 2016 • Clarity, Understandability and Interpretability: Data was grouped into sub sets / themes for evaluation and interpretation • Self-Representation: Data was represented through bar graphs and charts
7. ANALYSED DATA	• Included Published Annual Reports of JEEVIKA for the year 2017-2023 for the purpose of data analysis

Social Mobilization, Financial inclusion, livelihood and skill development are some of the heads under which various variables were selected and comparatively reviewed. Further, articles and research papers

pertaining to rural transformation and upcoming AI technology were also explored with the help of key words. The data sourced were analysed through trend analysis from financial years 2018 to 2023. The findings of the comparison of selected variable are given below.

Findings

Social Mobilization

Social mobilization is a community-based approach to help poor households deal with the problems of poverty.The main objective of Jeevika project at Bihar was to promote social inclusion and mobilization of underprivileged class in the entire state. In this study, three components were identified to measure the social mobility of beneficiaries of Jeevika project.

This includes the count of Self-Help Groups established, the number of Village Organizations created, and the number of Cluster Level Federations formed.

Self-Help Groups (SHGs)

Formation of Self-Help Groups (SHGs) of women was proved to be an important step in the process of social mobilization of rural poor households and this has mobilized crores of poor women who became part of SHG groups. Figure-1 explains the number of Self-Help Groups (SHGs) formed each year from 2018-19 to 2022-23 under the social mobilization and inclusion programs

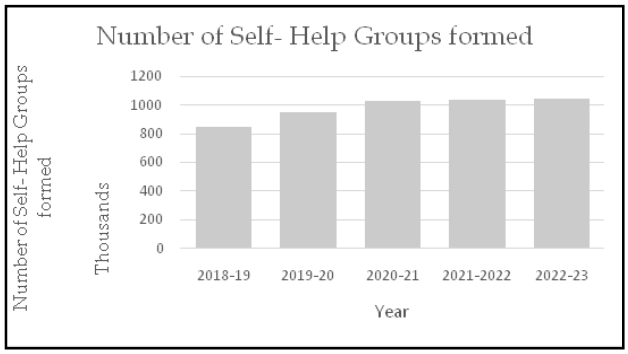

Figure-1

The trends shows that in the financial year 2018-19 around 848,896 SHGs were formed which increased to 948,159 in the year 2019-20. This represents a significant growth of about 12% compared to the previous year. In 2020-21, the number of SHGs further increased to 1,028,147, marking a rise of about 8.4% over the previous year. A slight increase occurred in 2021-22 with 1,035,183 SHGs, which is a growth of around 0.7% from the previous year. This suggests that the rate of growth slowed down in this period. In 2022-23, the number of SHGs reached 1,046,002, showing another modest increase of about 1% from the previous year. The figure shows that there has been a consistent increase in the formation of SHGs over the five-year period. The most significant growth occurred between 2018-19 and 2019-20, while the growth rate slowed down in the later years. Despite the slowdown, the overall trend is positive, with the number of SHGs steadily increasing each year. This steady growth indicates a continuous effort toward social mobilization and inclusion through the formation of SHGs, though the pace of new group formation has slowed over time.

Village Organizations

Village organisations(Vos) are mid-level structure whose job is to enhance solidarity amongst members and serve as a platform for greater collective action. The following Figure-2 shows that the highest growth of VOs formation occurred between financial year 2018-19 and 2019-20. The number of VOs increased from 55625VOsto 60356 indicatinggrowth of about 8.5% from the previous year. Data shows that number formation of VOs increased every year although at a decreasing rate. The overall trend was positive.

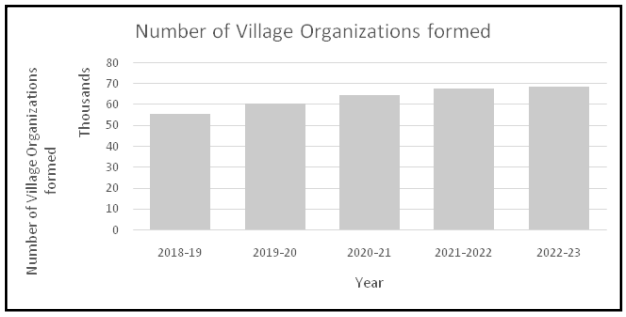

Figure-2

Cluster Level Federations

Cluster Level Federations (CLFs) serve as the third-tier institution in the three-tier community-

managed institutional framework. The following figure (Figure-3) shows that there has been a steady growth of the formation of Cluster Level Federations. This indicates that there has been continuous progress in building federations at the cluster level contributing to community empowerment.

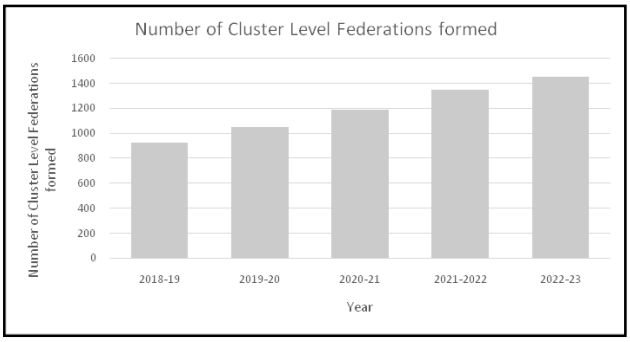

Figure-3

Findings reveal that the highest percentage increased between 2018-19 to 2020-21 in all the above mentioned variables.

Financial Inclusion

Self-Help Groups

Access to essential financial services plays a crucial role in alleviating poverty and fostering prosperity. The Self-Help Groups (SHGs) promoted by JEEViKA have become key platforms that enhance access to financial services such as savings, credit, and insurance. Opening an SHG account is an important step towards financial empowerment. Indicators like SHGs with bank accounts, credit linkages of SHGs with bank and rise in the number of credit linkages had been critically analysed to assess the financial inclusion status. The findings reveal that the number of SHGs with bank accounts had been increasing continuously. The most significant growth occurred between 2018-19 and 2019-20. The trend remained positive which indicates that more SHGs were having access to financial institution which is very important for economic empowerment. This is depicted in the following figure (Figure-4).

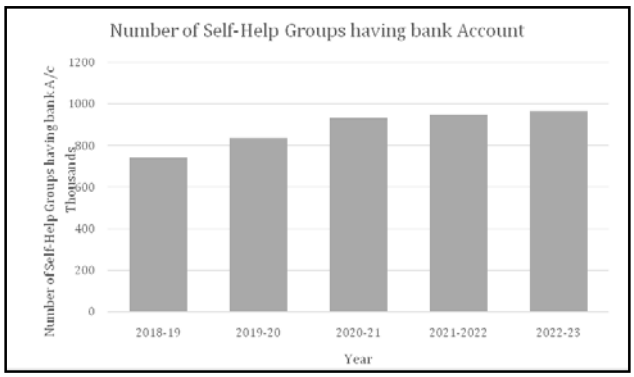

Figure-4

SHGs Linked with Banks

There is a continuous increase in the number of SHGs credit-linked with banks which indicates that the programme Jeevika has been successful in increasing the number of SHGs having access to formal credit. In the financial year **2019-20** the number of SHGs credit-linked with banks increased significantly to 1,034,922, showing a growth of around 27.7%. It further increased to 1,211,546 in 2020-21. There was a significant increase in 2022-23 when the number reached 1,750,112(Figure-5) suggesting that more SHGs were linked with banks in this period because of support of financial institutions and government schemes.

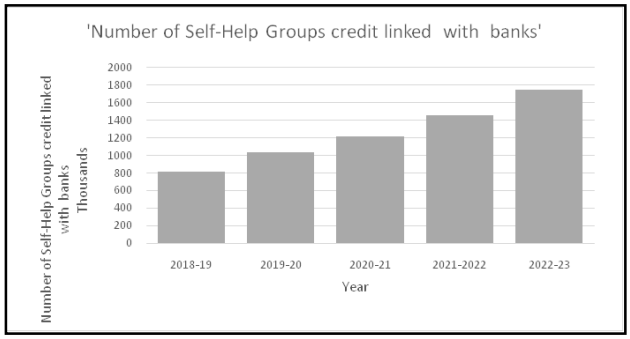

Figure-5

Amount of Credit Linkage

Findings reveal that the total amount of credit linked to SHGs has increased in a substantial manner over the 5-year period from 2018-19 to 2022-23. It reflects that there is a rising trend in the funds which

were made available to SHGs.

The biggest jump in the availability of funds happened between 2021-22 and 2022-23 when there was an increase of 35.9 percent growth (Rs. 8,764.42 crore).This happened because of the help of the government and other financial institution. Another key point is that the total credit linkage tripled over in 5 years (from Rs. 8,168.82 crore in 2018-19 to Rs. 29,838 crore in 2022-23) (Figure-6).

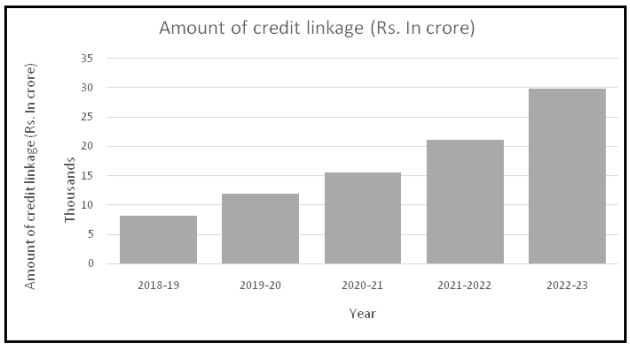

Figure-6

Livelihoods Farm

Number of SHGs HHs undertaken Paddy Cultivation

Figure-7 shows thathere has been significant growth in the number of SHG households involved in paddy cultivation over the five-year period, with the numbers increasing more than threefold from 464,126 in 2018-19 to 1,664,264 in 2022-23. The most significant increase happened in the 2022-23 period, where the number of households involved in paddy cultivation increased to doubled compared to the previous year whereas it can be seen that there is a minor dip in the number of SHG households in 2021-22. However, it can be seen that there was a substantial increase in 2022-23, indicating that the overall trend was positive. Use of SRI, DSR, and seed replacement techniques and enhanced support for SHG households who engaged in farming are the primary reasons for these positive trends.

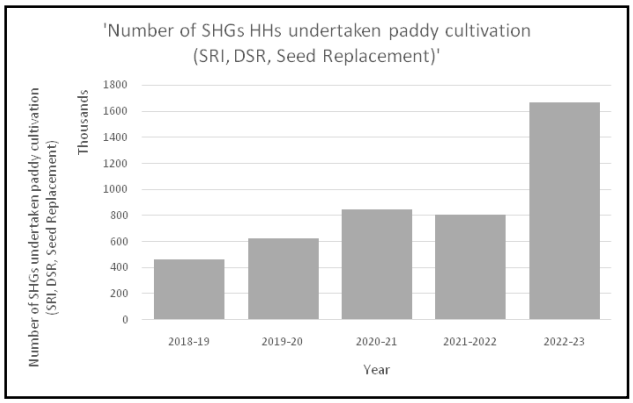

Figure-7

Number of SHGs HHs undertaken Wheat Cultivation (SWI, Zero Tillage & Seed Replacement)

The number of SHG households engaged in wheat cultivation using these techniques has increased significantly from 517,711 in 2018-19 to 1,426,156 in 2022-23. This represents almost a threefold increase over the 5-year period (Figure-8)

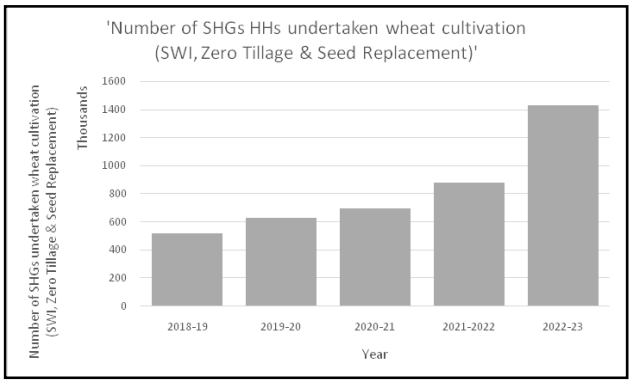

Figure-8

Number of SHG HHs involved in Kitchen Garden

Figure-9 shows the number of SHGs increased in kitchen gardening which increased significantly from 559,375 in 2018-19 to 2,061,090 in 2022-23. This shows that there was fourfold increase in last five years.A significant growth (around 60 percent) was recorded in **2020-21 to 2021-22**. Awareness campaign by government and NGOs have contributed in encouraging households to do kitchen gardening.

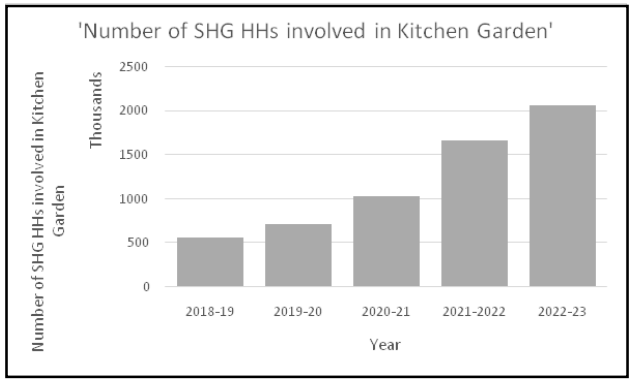

Figure-9

Number of SHG HHs involved in Vegetable Cultivation

The data shown in the Figure-10 shows that the number of SHG households involved in vegetable cultivation has shown an upward trend, increasing from 312,626 in 2018-19 to 992,452 in 2022-23. In 2021-22 to 2022-23 records the biggest increase in vegetable cultivation (from 534,013 to 992,452), reflecting an 85.9% growth. This could be because of new initiatives or increased market demand for vegetables.

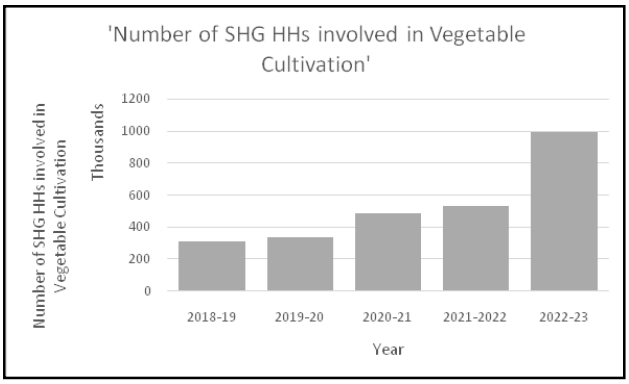

Figure-10

Livestock

Poultry Intervention

The Jeevika program includes initiatives related to livestock, poultry, and dairy sectors which have been critically evaluated in this study. Figure-11 shows that the number of households involved in poultry interventions fluctuated over the years. In 2018-19 to 2019-20 there was 0.5% decrease. This further decreased in 2019-20 to 2020-21 (from 181,292 to 131,363), which was around 27.5% decrease. A small recovery was observed in 2020-21 to 2021-22, which recorded 13% growth in poultry intervention.

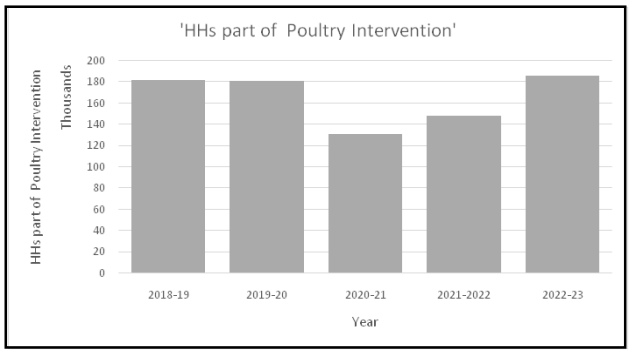

Figure-11

Dairy Intervention

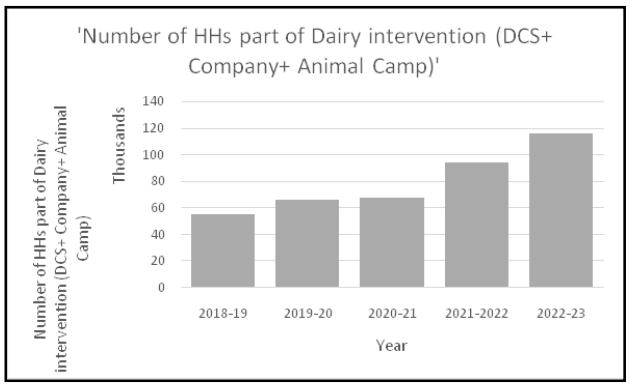

Figure-12

The findings reveal that there has been an overall steady growth in last five years. The number of households involved in dairy interventions has more than doubled from 55,482 in 2018-19 to 115,506 in 2022-23. It was also observed that the most significant growth significant occurred in 2021-22 to 2022-23. The number of households in dairy sector increased from 67,810 to 94,363 showing an increase of around 39% growth. Another significant increase of **22.4% growth was observed** between **2021-22 to 2022-23.**

Number of HHs linked with Producer Groups and Enterprises

Households linked with Producer Groups

indicator is related to "Livelihoods Promotion" within the program framework. Overall Growth of the number of households linked with Producer Groups (PGs) and enterprises has grown significantly, from 29,422 in 2018-19 to 231,670 in 2022-23 as it is evident in the following figure-13. This reflects that there has been an eightfold increase in the span of five-year. It is interesting to note that a rapid surge occurred during 2020-21 to 2021-22 when around 420% growth was recorded. The growth further increased in 2021-22 to 2022-23 from 216,061 to 231,670.

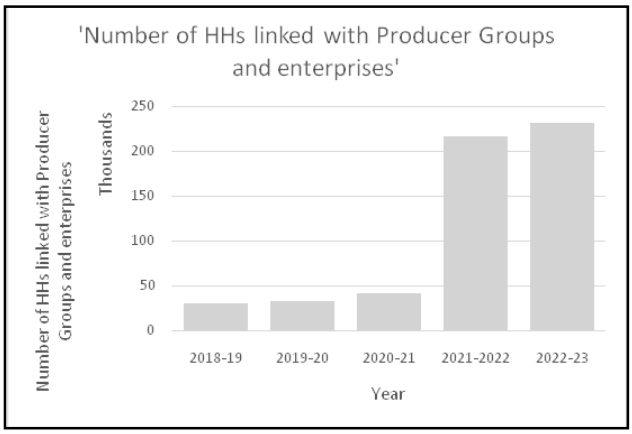

Figure-13

Jobs

Number of Youths Trained

Figure 15 shows the number of youths trained under DDU-GKY (Deen Dayal Upadhyaya Grameen Kaushalya Yojana) and RSETI (Rural Self Employment Training Institutes). Data shows that there has been an overall growth. Around 67 percent growth was observed over the five-year period. Another important interpretation is that there has been consistent increase in the number of youths getting trained every year. This means that programme must be reaching a larger number of participants each year. This must have contributed in increasing employment in rural areas.

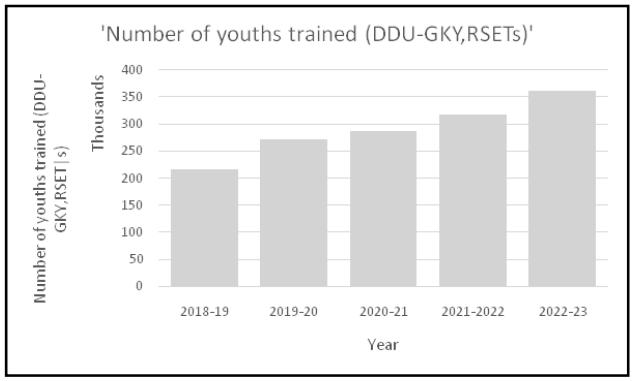

Figure-14

Vulnerability Reduction

Number of VOs involved in Food Security intervention

The Jeevika project in Bihar focused on reducing the vulnerability of rural households by addressing critical socio-economic challenges. There has been a significant expansion in the number of Village Organizations (VOs) involved in food security interventions. It has increased from 23,720 in 2018-19 to 47,624 in 2022-23 which is almost a double fold increase.In 2019-20 to 2020-21a major surge occurred when number of Vos increased from 27, 268 to 46, 225). This shows a remarkable growth of 69.5%. In later years it can be seen that there was an overall increase which suggests that food security interventions through Village Organizations became a successful endeavour.

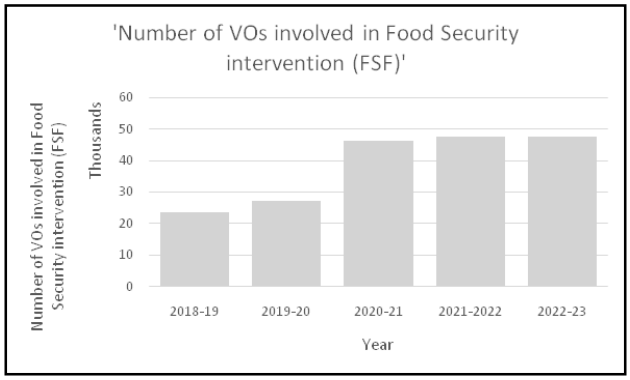

Figure-15

Number of VOs involved in Health intervention

The following figure-17 shows the number of

Village Organizations (VOs) involved in health interventions. Data shows that health interventions increased from 37,635 in 2018-19 to 51,518 in 2022-23, showing a 37% increase over the five-year period. The largest growth in health interventions occurred between 2018-19 and 2019-20 and continued steadily until 2020-21.

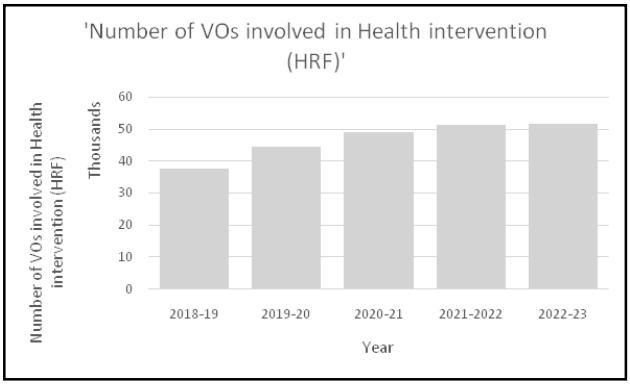

Figure-16

The above findings paint a positive picture of the Jeevika programme. However, the data also reveals that all the households have not been covered under this programme especially people residing in remote and underdeveloped areas. Lack of real time data, difficulty in tracking the implementation of the programmes, weak accountability mechanisms are some of the challenges which is acting as a barrier in the implementation of the programme.

Recommendation

Proposed role of Artificial Intelligence (AI) and technology in the Jeevika Programme

The Jeevika Programme, officially known as the Bihar Rural Livelihoods Project (BRLP), aims to promote self-reliance among rural communities by enhancing their livelihoods through various sustainable and scalable initiatives. The integration of Artificial Intelligence (AI) and technology in the Jeevika Programme can significantly enhance its effectiveness, efficiency, and outreach. Here are some potential future scopes for AI and technology in the programme, particularly concerning financial inclusion:

Harnessing AI and technology for enhancing financial inclusion has a very promising future especially in the Jeevika programme. AI can be very useful in analysing the data related to socio economic status of the most vulnerable class. This would be helpful in preparing a customized intervention programme. Further models predicted by AIs can predict future trends and accordingly programms can be introduced. They can also assess the influence of various welfare programs on the socio economic life of beneficiaries. This would also ensure that modifications of the programs on the basis of the data retrieved with the help of AI. Further AI driven chatbot and virtual assistant can provide literacy related to financial management. It can guide rural people to save and invest in best available opportunity. These AI based literacy programms can also make tailored made financial education lessons depending on the literacy level of the beneficiary. Digital banking, partnership with tech companies, AI tools can be helpful in management of SHG groups and rural entrepreneurs. They can track activities of SHG and assist them in monitoring funds, savings, inventory, and sales data. Digital Markets can be created with the help of AI. These platforms would be useful for beneficiaries in showcasing the products and optimizing the price. This would also enable them to identify market trend, the demand for a particular product, management of supply chain, pricing trends and reach large number of customers. This would also eliminate the role of the middlemen.

The Jeevika Programme are implemented to empower rural population economically with the help of Self-Help Groups (SHGs). The amalgamation of AI and technology can boost livelihood opportunities for farming and livestock management. AI algorithms can be helpful in analysing condition of the crop, health of the soil, and weather condition. This would help farmers in making make informed decision about their farming. AI Powered devices can also be helpful in management of livestock. Early detection of disease, monitoring health of livestock can reduce morbidity and mortality rates of livestock. Data driven analysis can aid farmers in choosing the best breed based on performance metrics. Advisory services provided by AI and Chat can provide real time guidance on agriculture and animal husbandry practices to farmers.

AI algorithms can assess the skills of the beneficiaries and can prepare tailored made programme for beneficiaries on the basis of the demand existing in the market. Virtual and Augmented Reality Technologies can provide vocational training such as crafts,technical skills. Further technology based platforms can connect the rural artisans with open market which ensures better pricing, increase in sale and also eliminates the role of middlemen.

Machine learning can be helpful in tracing the most appropriate plots and crops based on the climate, data related to eco system and mapping of risks. This can be helpful in making accurate decision regarding land use. Enhancing automated irrigation systems,crop and soil monitoring, detecting disease and pests, yield mapping and sorting harvest procedure are some of the benefits of AI in the field of agriculture which would take care of the food security.

The Jeevika Programme, or Bihar Rural Livelihoods Project, aims to reduce poverty in rural Bihar by promoting self-employment and supporting households. Integrating AI and technology can enhance its effectiveness, particularly in improving food security. Key areas of focus include data-driven decision-making, precision agriculture, supply chain optimization, risk management, and capacity building. Additionally, AI can facilitate better market access, price forecasting, and targeted nutritional interventions. Overall, leveraging these technologies can empower farmers and foster a sustainable rural economy in Bihar, requiring collaboration among various stakeholders.

The integration of Artificial Intelligence (AI) and technology in the Jeevika Programme pertaining to health interventions can have profound impact in many ways. As it helps in AI driven predictive analysis of data and can be helpful in identification of the needs of the population at risk and judiciously allocating resources for desired interventions. Further AI driven algorithms will help in studying the trends for early detection and preventive measures to deal with the health challenges. Further technology can help in reaching out to the people in remote areas for health education in guiding them on nutrition, hygiene and disease prevention. and consultation. Developing mobile apps can be helpful in accessing the local health care services , resources and facilities from the comfort of their home. Moreover, AI can also support in designing customised health services by calculating risk based on the lifestyle and history of the patient thus managing the vulnerabilities. AI enabled monitoring and evaluation can be useful in real time feedback tracking that will help in designing data driven outcome strategies. Technology driven interface will improve the supply chain management by regulating the Inventory of medicines and demand forecasting. Skill development initiatives through digital literacy will facilitate the integration of local health system with public health campaigns.

Policy Initiative

The proposed AI intervention in the JEEViKA program has significant policy implications for enhancing rural livelihoods in Bihar. These AI will ensure equitable access to AI tools, improved digital literacy by strengthening digital infrastructure. Special ethical considerations are imperative to protect the interest of the vulnerable communities and secure data privacy measures. AI interface will be useful in optimum allocation and utilisation of resources thereby creating collaborative partnership with stakeholders. AI driven big data management will be useful in identifying the gaps and upgrading the existing Jeevika programme. Issues of inclusivity, sustainability and efficiency in Jeevika initiatives can be strengthened through AI interface.

Ethical use of AI, coupled with robust data privacy measures, must be prioritized to protect the interests of vulnerable communities. Policies should be introduced to focus on optimizing resource allocation and targeting through AI-driven insights while nurturing collaborative partnerships with stakeholders. By addressing these areas, AI can significantly enhance the efficiency, inclusivity, and sustainability of JEEViKA initiatives.

Conclusion

Rural development initiatives in India can have a wider reach and transformative implications with AI intervention. The complexities of the large data needs

automated processes of AI to address the challenges in several sectors in health care, agriculture, infrastructure, education etc in the rural sector.

***Associate Professor**
Amity Institute of Social Sciences
K - 3 Block, Amity University Campus,
Sector - 125, Noida - 201313
Gautam Budh Nagar, U.P. (India)
Email : rsrivastava2@amity.edu
ORCID : 0000-0002-2116-582X

****(Corresponding Author)**
Assistant Professor
Amity Institute of Social Sciences
K - 3 Block, Amity University Campus,
Sector - 125, Noida - 201313,
Gautam Budh Nagar, U.P. (India)
Email : nsahay4@amity.edu
ORCID : 0000-0003-1629-9361

Reference:

1. MultidimensionalPoverty in India Since2005-06,A Discussion Paper, NITI Ayog, Retrieved from https://www.niti.gov.in/sites/default/files/2024-01/MPI-22_NITI-Aayog20254.pdf

Other References

1. Ahmed, F. (2014). Women Empowerment through National Rural Livelihoods Mission in Jharkhand: A Comparative Analysis. International Journal of Management, IT and Engineering, 4(6), 127-143.
2. Alkire, S., & Foster, J. (2011). Counting and Multidimensional Poverty Measurement. Journal of Public Economics, 95(7-8), 476-487.
3. Barman, P., & Kumar, V. (2021). Assessing the Impact of NRLM in Empowering Rural Women: A Study of Jharkhand. South Asian Journal of Social Sciences and Humanities, 2(1), 91-106.
4. Behera, D., & Karami, E. (2019). Impact of National Rural Livelihood Mission (NRLM) on Household Income and Expenditure: Evidence from Odisha, India. Agricultural Economics Research Review, 32(2), 296-304.
5. Bharti, N., & Kumar, A. (2018). Economic and Social Empowerment of Women through NRLM in Haryana. Indian Journal of Agricultural Economics, 73(1), 68-77.
6. Bhattacharya, D., & Kundu, S. (2019). Impact of National Rural Livelihood Mission (NRLM) on Poverty Alleviation in India: A District-level Analysis. Indian Journal of Agricultural Economics, 74(4), 586-600.
7. Jayaraj, R. (2015). Evaluation of National Rural Livelihoods Mission in Kerala: Challenges and Opportunities. Journal of Rural Development, 34(2), 129-152.
8. J. Hancock, M. Penumaka and M.Takada- Note 1, Main Findings of Implementation Completion Review Report—Lessons from a Decade of Implementation of BRLP in M.Takada and M.R.Choudhury. Ed.A Decade of RuralTransformation, Lessons Learnt from the Bihar Rural Livelihoods Project – JEEViKA, JEEViKA Learning Note Series, No.1,World Bank Publications, 2017
9. Joshi, S., & Rao, P. (2019). NRLM as a Catalyst for Sustainable Livelihoods: A Study of Select Districts in Maharashtra. Indian Journal of Human Development, 13(1), 96-112.
10. Kumar, S., & Sengupta, D. (2022). NRLM: A Catalyst for Financial Inclusion in Rural India. The Indian Journal of Social Work, 83(1), 91-108.
11. Minocha, S., & Jain, S. (2020). NRLM and Rural Development: An Analysis of Selected Indian States. International Journal of Rural Management, 16(1), 77-95.
12. Mitra, A., & Singh, A. (2017). The Impact of National Rural Livelihoods Mission (NRLM) on Rural Poverty: A State-Level Analysis in India. Journal of Rural Development, 36(3), 511-532.
13. Nagaraju, M., & Veeresh, B. (2016). Economic and Social Empowerment of Rural Women through NRLM in Karnataka: An Empirical Analysis. International Journal of Business Economics & Management Research, 6(3), 26-34.
14. Narzary, B., & Rahman, M. M. (2019). Socio-economic Impact of National Rural Livelihood Mission in Assam: An Empirical Analysis.

International Journal of Current Research and Review, 11(19), 30-36.
15. Patel, R., & Upadhyay, M. (2018). Women's Empowerment through NRLM: A Study in Rajasthan. Social Change, 48(1), 63-78.
16. P. Sanyal, V. Rao, and S. Majumdar. Recasting culture to undo gender: A sociological analysis of Jeevika in Rural Bihar, India. World Bank Policy Research Working Paper, (7411), 2015
17. Sharma, D. (2017). Socio-Economic Empowerment of Rural Women through NRLM: A Case Study of Jammu District of Jammu and Kashmir. Indian Journal of Economics and Development, 5(11), 101-105.
18. Singh, S., & Chakrabarti, M. (2022). NRLM and Rural Development: A Case Study of Bihar. Indian Journal of Economics and Development, 12(3), 689-698.
19. U. Dutta, V. Hoffman, V. Rao, V. Surendra – Report on the Impact of JEEViKA: Evidence from a Randomized Rollout 2011-2014
20. World Bank Document. International Development Association Project Appraisal Document on a Proposed Credit in the Amount of US$290 million to the Republic of India for a Bihar Transformative Development Project JEEViKA II June 1, 2016, Report No. PAD1892
21. World Bank Document – Implementation Completion Report Review. India - Bihar Rural Livelihoods Project (English), July 5, 2017, Report No. ICRR0020734
22. World Bank Document – Working Paper. A decade of rural transformation: lessons learnt from the Bihar Rural Livelihoods Project - JEEViKA (English), January 1, 2018, Report No. 122548
23. http://pubdocs.worldbank.org/en/715151459872408615/Socio-Economic-Impacts-of-JEEViKA-A-Large Scale- Self-Help-Group-Project-in-Bihar-India.pdf
24. http://documents.worldbank.org/ curated/en/298391515516507115/A-decade-of-rural-transformation-lessons- learnt-from-the-Bihar-Rural-Livelihoods-Project-JEEViKA
25. https://www.3ieimpact.org/sites/default/files/2019-01/IE71-Bihar-livelihoods.pdf
26. https://ksrlps.karnataka.gov.in/storage/pdf-files/NRLM%20framework%20%20121%20pages.pdf
27. https://www.c3india.org/uploads/news/Bihar_Gender_Report_Card_2019_28th_Jan_2020_FOR_ WEB_FILE1.pdf18

शोध-पत्र

एआई के माध्यम से हिन्दी का विकास : चुनौतियाँ और संभावनाएं

प्रीति सागर

एआई शब्द का प्रारम्भिक प्रयोग वर्ष 1950 के दशक में शुरू हुआ, लेकिन सूचना प्रौद्योगिकी और रोबोटिक्स में पिछले कुछ वर्षों की प्रगति से सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के संगठनों में कृत्रिम मेधा के विकास और उपयोग में काफी तेजी आई है। बिग डाटा, कंप्यूटिंग और स्टोरेज क्षमता में सुधार तथा डाटा प्रसंस्करण मशीनों की तूफानी रफ्तार से एआई के उपयोग को अधिक बल मिला है। विभिन्न क्षेत्रों में एआई आधारित प्रणालियों के उपयोग के अनेक अवसर सामने आए हैं। विशेष तौर से उन क्षेत्रों में सहायता के लिए इन प्रणालियों के कई मौके हैं जहां संरचित निर्णय की आवश्यकता है। एआई में मानव की संगणकीय तीव्रता, बौद्धिक और संभवत: कल्पनाशीलता की सीमाओं में से कुछ के पार पहुंचने की क्षमता है। इससे स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, शासन, विनिर्माण, विधि, चिकित्सा, कृषि, विपणन, बिक्री, वित्त, संचालन और आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन, सार्वजनिक सेवाओं की डिलीवरी तथा साइबर सुरक्षा जैसे क्षेत्रों में एआई के उपयोग के नये द्वार खुल रहे हैं।

प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में एआई बुद्धिमत्तापूर्ण गेम आधारित ज्ञानार्जन का परिवेश, शिक्षण प्रणाली और व्याख्या की प्रौद्योगिकियां मुहैया कराती है। विशेषकर ऐसे क्षेत्रों में इसका इस्तेमाल शिक्षकों की प्रभावशीलता और छात्रों की जिज्ञासा को बढ़ाने में किया जा सकता है। ''मेलजर के अनुसार शिक्षा पर एआई तीन तरह से प्रभाव डाल सकती है। सबसे पहले तो एआई समर्थित व्यक्तिकरण से छात्र विशेष के लिये ज्ञानार्जन प्रोफाइल तथा क्षमता, विद्यार्जन के तरीके और अनुभव पर आधारित अनुकूलित अधिगम परिवेश के विकास में सहायता मिल सकती है। दूसरे, एमेजॉन एलेक्सा, गूगल होम, एपल सीरी और माइक्रोसॉफ्ट कोर्टाना जैसे स्मार्ट असिस्टेंस और संबंधित प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल छात्रों के लिये काफी सहायक बन सकता है। विश्वविद्यालयों में परिसर, छात्रों के कार्यक्रम और पाठ्यक्रमों के बारे में सामान्य सवालों के जवाब देने के लिये वॉयस असिस्टेंस की मदद पहले से ही ली जा रही है। तीसरे, एआई प्रणालियां शिक्षकों को ग्रेडिंग गतिविधियों, छात्रों के लिये व्यक्तिगत जवाब मुहैया कराने, सामान्य और बार-बार की कागजी कार्रवाइयों को निपटाने तथा संचालन संबंधी मामलों से निपटने में सहायता कर सकती है।''[1] एआई आधारित विश्लेषण विभिन्न क्षेत्रों में शैक्षिक अनुसंधान में मददगार हो सकता है। वह सहूलियत के लिये पुस्तकालय प्रक्रियाओं और कर्मचारियों की नियुक्ति की जरूरतों में बदलाव लाने में सक्षम है।

हिन्दी भाषा, साहित्य की भाषा होने के साथ-साथ, आधुनिक ज्ञान, विज्ञान को अंगीकार करके अग्रसर होने में सक्षम भाषा है। कृत्रिम मेधा ज्ञान की एक नई विधा है और भारत इसमें बहुत प्रगति कर चुका है, और कर रहा है। इस प्रगति में हिन्दी साथ चल रही है। हिन्दी में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य घटित हो रहा है। ध्वनि प्रसंस्करण की बदौलत वाक् से पाठ और पाठ से वाक् प्रौद्योगिकी उपलब्ध हो गई है। कंप्यूटरविजन के कारण हिंदी के दस्तावेजों को स्कैन करके उनके पाठ को कंप्यूटर में टाइप किए गए पाठ के रूप में सहेजना संभव हो गया है। 150 से अधिक वैश्विक भाषाओं और बीस से अधिक भारतीय भाषाओं के साथ हिन्दी के पाठ का दो तरफा अनुवाद संभव है। अलेक्सा, कोर्टाना, सिरी और

गूगल असिस्टेंट जैसे डिजिटल सहायकों के साथ या तो हिंदी में संवाद करना संभव है या इंटरनेट सर्च तथा अनुवाद आदि के लिए उनकी मदद ली जा सकती है। गूगल और माइक्रोसॉफ्ट जैसी कंपनियों की एपीआई का प्रयोग करके हिंदी में एआई बुद्धिमत्ता से युक्त एप्लीकेशन बनाना संभव हो गया है। चैटजीपीटी तो ऐसी कृत्रिम बुद्धिमत्ता है जिसके साथ संवाद किया जा सकता है और अपने प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किये जा सकते हैं।

हिंदी भाषा कृत्रिम मेधा के साथ जुड़कर भविष्य की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम हो सकती है। इस दिशा में कुछ प्रगति हुई है और बहुत कुछ अभी शेष है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता हिन्दी भाषा के लिए नए रास्ते खोल सकती है और अस्तित्व को सुरक्षित रखने में योगदान दे सकती है। माइक्रोसॉफ्ट में भारतीय भाषाओं के प्रभारी श्री बालेंदु शर्मा दाधीच लिखते हैं- ''कृत्रिम बुद्धिमत्ता हिन्दी के स्थायी भविष्य को सुनिश्चित कर सकती है। यूनेस्को ने अपनी एक रिपोर्ट में कहा था कि दुनिया की 7200 भाषाओं में से लगभग आधी इस शताब्दी के अंत तक विलुप्त हो जाएगी। अगर हम हिन्दी को विलुप्त होने वाली इन भाषाओं की सूची में नहीं देखना चाहते तो हमें कृत्रिम मेधा को खुले दिल से अपनाना चाहिए। वजह यह है कि यह प्रौद्योगिकी भाषाओं के बीच दूरियों समाप्त करने में सक्षम है। आज हम अंग्रेजी की प्रधानता से त्रस्त हैं और कृत्रिम मेधा तथा दूसरी आधुनिक प्रौद्योगिकियों अंग्रेजी के दबदबे से मुक्त होने में हमारी मदद कर सकती है।''[2]

विविध भारतीय भाषाओं में काम करने वाली हनुमान एआई की मूल कंपनी एसएमएल जेनरेटिव एआई के संस्थापक डॉ. विष्णु वर्धन कहते हैं, ''अगले एक दशक में जेनरेटिव एआई का उपयोग व्यापक हो जाएगा। यदि हम इस समय का सदुपयोग नहीं करते हैं और हिंदी सहित देश की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के लिए मजबूत एआई मॉडल विकसित नहीं करते हैं तो लोगों की अंग्रेजी पर निर्भरता और बढ़ सकती है। इससे हमारी क्षेत्रीय भाषाओं के अस्तित्व पर संकट आ सकता है। अगर हम इन भाषाओं के लिए खासकर वॉयस बेस्ड एआई मॉडल्स तैयार करते हैं, तो शिक्षा, संचार और मनोरंजन के क्षेत्र में इन भाषाओं के उपयोग को नए आयाम मिल सकते हैं।''[3]

कृत्रिम बुद्धिमत्ता की सहायता से हिन्दी भाषा के क्षेत्र में सबसे बड़ा कार्य यह हो सकता है कि अन्य प्रमुख भाषाओं के साथ हिंदी के गहरे संबंधों को विकसित किया जा सकता है। हिन्दी साहित्य के साथ हमारे पौराणिक ग्रंथ जो की हिन्दी के सबसे नजदीक हैं जैसे रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता, वेद, पुराण, उपनिषद आदि ग्रंथ। आयुर्वेद, योग जैसी ज्ञान संपदा आदि वैश्विक स्तर पर गैर हिंदी पाठकों तक सुलभता से पहुँच सकती है। इससे कहीं अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण है विश्व के ज्ञान, शोध, साहित्य का हिंदी भाषी लोगों तक पहुँचना। हिंदी में विज्ञान, तकनीक, चिकित्सा, अर्थव्यवस्था आदि विषयों पर विश्य-स्तरीय सामग्री की कमी है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता की मदद से ऐसी सामग्री हिंदी में तैयार की जा सकती है और मशीन अनुवाद के माध्यम से वैश्विक ज्ञान को हिन्दी भाषा में ग्रहण किया जा सकता है। यह ज्ञान अंग्रेजी से भी आगे बढ़कर अन्य क्षेत्रों-पूर्वी-पश्चिमी, उत्तरी तथा दक्षिणी से भी प्राप्त किया जा सकेगा।

भाषा अनुवाद के क्षेत्र में मशीन अनुवाद आर्टिफियल इंटेलिजेंस का एक हिस्सा है। मशीन अनुवाद की मदद से भाषाओं के बीच दूरियों कम हो रही है। यह मशीन अनुवाद निरंतर बेहतर हो रहा है क्योंकि कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव-व्यवहार, कामकाज, डेटा भंडारों, फीडबैक आदि से सीखने तथा स्वयं को निरंतर निखारने में सक्षम है। बालेन्दु शर्मा दाधीच लिखते है- ''कुछ वर्षों के भीतर हम ऐसे मशीन अनुवाद की स्थिति में पहुँच सकते हैं जो मानवीय अनुवाद की ही टक्कर का होगा। सबसे बड़ी बात यह है कि यह अत्यंत स्वाभाविक रूप से उपलब्ध होगा कंप्यूटर तथा मोबाइल के जरिए ही नहीं बल्कि दर्जनों किस्म के डिजीटल उपकरणों के जरिए जो हमारे घरों, दफ्तरों, विद्यालयों और यहाँ तक कि रास्तों और इमारतों में भी मौजूद होंगे।''[4]

कृत्रिम मेधा की सहायता से विद्यालयों, महाविद्यालयों में शिक्षण कार्य को अप्रत्याशित ढंग से बेहतर, विस्तृत और वैश्विक बनाया जा सकता है। हिंदी में शिक्षण सामग्री तैयार करना आसान और तेज हो जायेगा। अन्य भाषाओं की पुस्तकों को स्कैन करके अत्यंत कम समय में सीधे हिंदी में अनुवाद करना संभव हो गया है। इससे लाभयह होगा कि हम हिंदी में जिन विषयों में अच्छी अध्ययन सामग्री की कमी से जूझते रहे हैं. उन विषयों में पर्याप्त पुस्तके उपलब्ध हो जाएंगी। ''हिंदी में पारंपरिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण आसान हो जाएगा। याचिक ज्ञान को डिजिटल स्वरूपों में सहेजा जा सकेगा। हिंदी भाषी लोग वैश्विक संस्थानों में पढ़ सकेंगे, भाषाओं की सीमाओं से मुक्त रहते हुए कौशल प्राप्त कर सकेंगे और विश्व को अपनी

सेवाएँ दे सकेंगे। हिन्दी बोलने याला व्यक्ति प्रौद्योगिकी के प्रयोग से अंग्रेजी, जापानी, चीनी, स्पैनिश फ्रेंच या अन्य भाषा-भाषी लोगों को कन्टेन्ट और सेवाएँ उपलब्ध करा सकेगा, बिना उन भाषाओं की जानकारी रखे।''[5]

आज इक्कीसवीं सदी के भारत में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस जैसी अत्याधुनिक विज्ञान और तकनीक का हिन्दी में प्रयोग करके भारत की साहित्यिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक संपदा को वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाई जा सकती है। आज हिन्दी विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। तकनीक ने इसे विश्व के सुदूर देशों तक पहुँचाया है और अब यह कृत्रिम मेधा से जुड़ कर विद्वानों और ज्ञान की भाषा बन रही हैं। इस दिशा में निरन्तर सजग रहने और अपने समय की उन्नत तकनीक के साथ जुड़े रहने की अधिक आवश्यकता है। तकनीक की मदद से भाषाई चुनौतियों तथा दूरियों का सिमटना और अप्रत्याशित अवसरों का घटित होना संभव है। ''जिस अविश्वसनीय और चमत्कारिक अंदाज में कृत्रिम बुद्धिमत्ता चीजों को बदल रही है, उसे देखते हुए अगले एक दो दशकों में हम भाषा-निरपेक्ष विश्व की ओर बढ़ सकते हैं। ऐसा विश्व जिसमें हिंदी जैसी भाषाएँ बोलने-लिखने वाला व्यक्ति अवसरों से वंचित न हो क्योंकि प्रौद्योगिकी एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद को इतना सटीक, सहज, सरल तथा सार्वत्रिक बना सकती है कि आप अंग्रेजी की सामग्री को हिंदी में पढ़ सकेंगे और हिन्दी की सामग्री को अंग्रेजी में। आप हिंदी में बोलेंगे और लोग आपको अंग्रेजी में सुन सकेंगे जबकि अंग्रेजी बोलने वाले व्यक्ति को आप हिंदी में सुन सकेंगे।''[6] ऐसा उदाहरण हिन्दी फिल्म 'डंकी' में देख सकते हैं, जहाँ अवैध रास्ते से लंदन पहुँचे भारतीय नवयुवकों को जब अंग्रेज जज के सामने पेश किया जाता है तो कोर्ट की कार्यवाही के दौरान जो संवाद होता है उसमें दोनों ही पक्ष अपनी-अपनी भाषा का प्रयोग करते हैं। भारतीय नवयुवक हिंदी में अपनी बात कहते हैं, जज उसे अंग्रेजी में सुनता है और जज अंग्रेजी में बोलता है, और भारतीय नवयुवक उसे हिंदी में सुनते हैं। इस प्रकार भाषा उनके संवाद में कहीं बाधा नहीं बनती है। आश्चर्य नहीं कि भविष्य में यह तकनीक सभी के लिए स्वाभाविक रूप से उपलब्ध हो जाए।

ऐसी स्थिति में यह बात अधिक महत्वपूर्ण नहीं रह जाती कि किस भाषा में शिक्षा ग्रहण की है और किस भाषा में अपना कामकाज करते हैं। महत्वपूर्ण यह हो जाता है कि भाषा और तकनीक के बीच दूरी कितनी हुई है। हमारी भाषा अपने समय की तकनीक से जुड़े, आधुनिक अनुप्रयोगों को आशंका या उपेक्षा की दृष्टि से न देखकर उनके प्रति खुला दृष्टिकोण रखे। आधुनिक तकनीक से जुड़ने के बाद, हिंदी भाषा को लेकर जो आशंकाएं, हीनता बोध, और वैश्विक बाजार एवं प्रतिस्पर्धा में पिछड़ने का भय हमारे भीतर रहा है, उससे हम निरन्तर उबर रहे हैं क्योंकि कृत्रिम बुद्धिमता जैसी तकनीक भाषाई दूरियों को समाप्त करने में सक्षम है। कृत्रिम मेधा के साथ जुड़कर हम अपनी ही भाषा में अन्य भाषा-भाषी लोगों के साथ सम्पर्क कर सकते हैं, अपनी बात, अपना ज्ञान, संस्कृति, साहित्य उनसे साझा कर सकते हैं। जब हम कृत्रिम मेधा और भाषा के संबंध की बात कर रहे हैं तो यह भी उल्लेखनीय है कि ''विश्व में कृत्रिम बुद्धिमत्ता का सबसे पहले प्रयोग संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा किया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस प्रौद्योगिकी का प्रयोग सबसे पहले अंग्रेजी भाषा को रूसी भाषा में परिवर्तित करने तथा रूसी भाषा को अंग्रेजी भाषा में परिवर्तित करने के लिए किया था। कृत्रिम बुद्धिमता प्रौद्योगिकी का यह अनुप्रयोग संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा उस समय किया गया था, जब रूस और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच शीतयुद्ध चल रहा था। तो ऐसे में, सुरक्षा के दृष्टिकोण से संयुक्त राज्य अमेरिका ने रूसी भाषा को अंग्रेजी भाषा में अनूदित करने के लिए इस तकनीक का विकास किया था।''[7]

निष्कर्षत: भाषा किसी भी व्यक्ति, समाज और देश की प्राथमिक पहचान होती है. क्योंकि भाषा सभ्यता और संस्कृति से विशेष रूप से जुड़ी होती है। वैश्विक स्तर पर हिन्दी को स्थापित करने में तकनीक की बढ़ी भूमिका रही है और रहेगी। कृत्रिम मेधा ने भारतीय ज्ञान को संस्कृत और हिन्दी भाषा के माध्यम से विश्वभर में प्रसारित किया है। हिंदी भाषा परम्परागत ज्ञान के विस्तार, प्रचार-प्रसार में कृत्रिम बुद्धिमता की महत्वपूर्ण भूमिका है। कृत्रिम मेधा जैसी तकनीक से जुड़ने से हिंदी भाषा अपने स्थायी भविष्य को सुनिश्चित कर सकती है, अपने को अधिक सक्षम एवं व्यापक बना सकती है। साथ ही भारतीय ज्ञान एवं पारंपरिक प्रणालियों को विश्व की बहुत बड़ी जनसंख्या तक पहुँचाया जा सकता है। प्रतिस्पर्धा एवं प्रतियोगिता पर आधारित विश्व की व्यवस्था को समावेशन और सह अस्तित्व पर आधारित वैकल्पिक दृष्टि प्रदान करने में हिंदी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारी भाषा निरन्तर अपने दौर की तकनीक से जुड़ी

रहे और अपने समय के साथ तालमेल बनाकर चलने से नई तकनीक हमारी भाषा को इतना सक्षम कर सकती है। लोकप्रिय बना सकती है कि हमारी भाषा वैश्विक रूप तो ग्रहण करेगी ही, साथ ही हमारे अपने लोग जो अंग्रेजी के दबदबे से त्रस्त रहे हैं, पुनः अपनी भाषा की ओर लौट आएंगे, हमारी भाषा हमारे लोगों के बीच भी पुनः लोकप्रिय हो जाएगी। साथ ही डिजिटल पीढ़ी के लिए हिंदी माषा सीखने में मी आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का उपयोग उचित होगा।

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
मगध विश्वविद्यालय,
(बोध गया) बिहार

सन्दर्भ सूची

1. डीओआई : https://doi.org/10.1016/j.ijinfomgt.2019.08.002
2. https://panchjanya.com/2023/02/22/267775/sci-tech/artificial-intelligence
3. https://hindi.business-standard.com/hindi-diwas/ai-will-enable-hindi-and-the-language-wall-will-fall-id-370699
4. हिन्दी विमर्श की मुख्यधारा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता, बालेन्दु शर्मा दाधीच, साहित्य परिक्रमा, जुलाई- 2023,पृ. स. 20
5. वही, पृ. स. 21
6. वही, पृ. स. 21
7. वही, पृ. स. 20

Research Paper

The Impact of Artificial Intelligence on Customer Satisfaction in Indian Banks

Abstract

The goal of this study is to analyse the impact of Artificial Intelligence (AI) on customer satisfaction in Indian banks. Most of the Indian banks are now adopting AI with the advancement of digital banking. Technologies like chatbots, automatic answering services, and even predictive analysis can assist banks in meeting customer demands more precisely and promptly. All of these needs help in providing quicker, round-the-clock services, and personalized banking.

The study is based on both surveys and case studies conducted on major Indian banks like SBI, HDFC, and ICICI to gauge customer reactions towards AI-enabled services. The analysis indicates that the majority of customers tend to enjoy AI services as they save time and ease banking. Nevertheless, other customers do experience challenges especially with regard to data security concerns, lack of understanding of digital interfaces, and the need for an actual human presence during intricate situations. The paper concludes that AI is increasingly exerting influence on customer satisfaction in the banking sector in India.

1. Introduction

In the last decade, the banking sector in India has undergone significant transformation. Digitalization, which has made banking quicker, simpler, and more convenient for consumers, is one of the main causes of this shift. The application of artificial intelligence (AI) is a key component of this digital expansion. Through the use of technologies like chatbots, intelligent apps, and automated systems, AI has assisted banks in enhancing their customer service. These tools improve the efficiency and personalization of banking. The impact of AI on customer satisfaction in Indian banks is examined in this paper. Because it keeps customers happy and loyal, customer satisfaction is crucial for banks' long-term success and expansion.

Objectives:

- To analyse the extent of AI adoption in Indian banks.
- To assess the impact of AI-driven services on customer satisfaction.
- To identify challenges and opportunities associated with AI implementation.

2. Literature Review

Global research has been done on the application of artificial intelligence (AI) in banking. AI is frequently used to enhance customer service, control financial risks, and identify fraud. These intelligent technologies make banking safer and more effective. AI is now being used in the day-to-day operations of several major Indian banks, including ICICI Bank, HDFC Bank, State Bank of India (SBI), and Axis Bank. To provide better customer service, they employ technologies like data analysis, voice assistants, and chatbots. Everyone will find banking more convenient and dependable thanks to these AI systems' ability to respond to consumer inquiries promptly, make decisions more quickly, and provide more

individualized services.

Key AI Technologies in Banking:

- Chatbots and Virtual Assistants: e.g., ICICI's 'iPal' and HDFC's 'Eva'.
- Predictive Analytics: For personalized financial recommendations.
- Process Automation: Reducing service turnaround time.
- Voice and Facial Recognition: Enhancing security and user access.

Research shows that AI tools significantly reduce operational costs and improve response time, both of which are critical to customer satisfaction.

3. Research Methodology

3.1 Design of Research

Because this study employs a mixed-method approach, it incorporates both quantitative data (numbers and statistics) and qualitative data (personal experiences, feelings, and opinions). Using both types of data helps give a complete and balanced understanding of how Artificial Intelligence (AI) affects customer satisfaction in Indian banks.

For collecting primary data, the researchers conducted surveys with bank customers. These surveys helped gather information directly from people about their experiences with AI-based banking services, such as chatbots or mobile apps. The responses were used to find trends, measure satisfaction levels, and understand what customers liked or disliked.

For secondary data, the study looked at existing information such as research articles, official reports,

Data Collection

500 bank customers from metro cities like Delhi and Mumbai as well as semi-urban areas were surveyed in order to gather useful data for this study. This allowed the researchers to better understand how AI is affecting different types of customers, including those who are more tech-savvy and those who may not be as familiar with digital services. In addition to the customer surveys, the researchers also interviewed bank employees, particularly those working in customer service and digital banking departments, who shared their experiences using AI tools like chatbots, automated systems, and mobile apps. Their perspectives helped explain how banks

4. Findings and Analysis

4.1 AI Adoption Levels

- 87% of surveyed banks have deployed at least one AI-based customer service tool.
- Most common tools: Chatbots (65%), Automated loan processing (42%), Voice-based banking (28%).

4.2 Customer Perception

- Positive Impacts:
- Speed: 78% of customers reported faster resolution.
- Availability: 24/7 support improved customer trust.
- Personalization: 60% appreciated AI-driven product recommendations.
- Concerns:
- 40% raised concerns about data privacy.
- 30% preferred human interaction for complex queries.

4.3 Case Studies

- HDFC Bank: 'Eva' handles over 5 million queries, reducing branch visits by 15%.
- SBI YONO App: Integrates AI for loan eligibility checks, improving loan processing time by 35%.

5. Discussion

According to the study's findings, customer satisfaction in Indian banks is positively correlated with the use of artificial intelligence (AI). Customers are generally happier when banks use AI tools like chatbots, smart apps, and automated services because the services are faster, more accurate, and available around-the-clock. But how these AI tools are applied is also crucial. Customers will feel more at ease if the technology is simple to use and comprehend. Customers may become frustrated, particularly in complex situations, if banks rely too heavily on machines and do not offer the option to speak with a human for assistance. Banks must strike a healthy balance because not all of their clients are tech-savvy. While AI can handle routine tasks, human

6. Challenges and Limitations

Using AI in Indian banks presents certain difficulties. Digital literacy is one of the main problems. Because they are unfamiliar with technology, many elderly consumers and those living in rural areas find it challenging to use AI-based services like chatbots and online banking apps. Privacy and trust is another issue. Consumers frequently worry about how AI systems will use or store their financial and personal data. Last but not least, infrastructure is an issue, particularly for smaller banks. These banks may not have enough money, skilled staff, or proper technology to fully adopt AI, which limits their ability to improve services.

7. Recommendations

Some crucial actions can be taken to improve the effectiveness of Artificial Intelligence (AI) in Indian banks: First, banks should implement hybrid models, in which AI tools, such as chatbots, are used for simple tasks while human staff are available for complex or emotional issues. This improves customer satisfaction and creates a better balance. Second, customer education is crucial, where banks organize workshops, training sessions, and basic tutorials to help people, particularly the elderly and those living in rural areas, learn how to use digital and AI services with confidence. Third, banks must have transparent data policies. Customers should be aware of how their personal information is used and protected, which fosters trust and encourages more people to use AI-based services. Finally, the government and banking authorities

8. Conclusion

In India, artificial intelligence (AI) is transforming the banking experience for consumers. Faster services, convenient access to banking at any time, and tailored recommendations based on client needs are just a few advantages it offers. People now appreciate faster responses and better service, which has increased customer satisfaction. But there are still certain difficulties. Not all users find AI-based services easy to use, particularly those who live in rural areas or are older. There are also concerns about privacy and whether personal data is safe. For AI to truly succeed in Indian banks, it must focus on being customer-friendly and inclusive. This means using AI for innovation, but also keeping the human touch where needed. Empathy, clear communication, and support are just as important as technology.

Dr. Jagveer Singh
Assistant Professor
N.R.E.C College Khurja

Binny Kantiwal
Research Scholar
N.R.E.C College Khurja

References:

1. Reserve Bank of India Reports on Digital Banking (2023)
2. ICICI Bank AI Implementation Whitepaper (2022)
3. "Artificial Intelligence in Banking" – PwC India (2021)
4. Jain, R. & Mehta, S. (2023). AI-Driven Customer Experience in Indian Banks. Journal of Banking Innovation, 8(2), 45-59.
5. World Bank Digital India Reports (2022)

शोध-पत्र

सुमित कुमार सिंह

तुलसी कृत श्रीरामचरितमानस और राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना

हम जानते हैं कि भक्ति आंदोलन का स्वरूप अखिल भारतीय था। कहने का तात्पर्य है कि आंदोलन ने उत्तर से लेकर दक्षिण तक तथा पूर्व से लेकर पश्चिम तक विभिन्न प्रदेशों में भारत की संस्कृति की एकता को न केवल सुदृढ़ किया अपितु राष्ट्र निर्माण में अपनी अहम् भूमिका का भी निर्वाह किया। हम जानते हैं कि यह आंदोलन ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी में भक्ति आंदोलन के रूप में यह दक्षिण भारत में उपजी तथा दक्षिण भारत से धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर आई। इस संदर्भ में दक्षिण भारत और उत्तर भारत के बीच भक्ति के जो सूत्रधार थे, वह संत कबीर तथा रामानंद जी हैं। इसी संदर्भ में कबीर कहते हैं–

'भक्ति द्रविड़ उपजि लाए रामानंद'

जहां तक सांस्कृतिक राष्ट्र का संबंध है तो हम जानते हैं कि भारतवर्ष समस्त विश्व की संस्कृतियों की जननी है अर्थात् कहने का तात्पर्य है भारत की सनातन संस्कृति सबसे प्राचीनतम संस्कृति है। यहाँ की संस्कृतियों पर विभिन्न अन्य संस्कृतियों ने आकर आक्रमण किया और इसके सांस्कृतिक मूल्यों को तोड़ा और मरोड़ा लेकिन इस संस्कृति ने भी अपने भीतर उन सभी आताताइयों के मूल्यों को न केवल ग्रहण किया अपितु अपने श्रेष्ठ मूल्यों को बचाए भी रखा। भक्ति आंदोलन की शुरुआत धर्म और दर्शन के क्षेत्र में नवीन उत्थानों से होती है लेकिन यह विशुद्ध रूप से एक धार्मिक आंदोलन न होकर एक सामाजिक और सांस्कृतिक आंदोलन के रूप में हमारे सामने आता है। करवट लेती हुई सामाजिक शक्तियाँ इसमें मुखर होकर बोलती हैं। कई विद्वानों ने इसीलिए इसे नवजागरण का नाम दिया है। साहित्य, संस्कृति, धर्म और उपासना के क्षेत्र ने इसमें व्यापक परिवर्तनों को जन्म दिया। भक्ति आंदोलन को हिंदी साहित्य के पाठक भक्तिकाल और महान भक्त कवियों के साहित्य के माध्यम से जानते हैं लेकिन निश्चित रूप से इसका एक अखिल भारतीय स्वरूप भी रहा है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी यानी उत्तर से दक्षिण पूरब तथा पश्चिम तक इसका पूरा मानचित्र बनाया जा सकता है। इसमें परस्पर संस्कृति का सामाजिक साझापन तो है ही लेकिन भिन्नताएं भी कम नहीं हैं। धार्मिक संप्रदायों की स्थापना और उनके संस्थापकों तथा धार्मिक दार्शनिक आचार्यों के भावों के साथ-साथ भक्ति आंदोलन के लिए सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियाँ भी जिम्मेदार रही हैं। इन परिस्थितियों के भीतर ही महान काव्यों की प्रतिभाशाली सांस्कृतिक भवन खड़े हुए हैं। जिनके कारण भक्ति आंदोलन संसार भर के लिए चर्चा का विषय बना। जब हम हिंदी साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते हैं तो यह पाते हैं कि हर्षवर्धन के बाद भारत की केंद्रीय सत्ता पर कोई राजा नहीं हुआ जो राष्ट्र को नियंत्रित कर सकने का सामर्थ्य रखता हो। जब हम देखते हैं कि आदिकाल से लेकर भक्तिकाल तक किस तरह राजसत्ता के खिलाफ संघर्ष चलता रहा। विदेशी जातियों के आक्रमण से यहां की जनता मर्माहत थी। उसी समय तुलसी ने अपनी रचनाओं से समाज को जो सहानुभूति प्रदान की वह सदा ही भारत की संस्कृति को सुरक्षित एवं संरक्षित करने में सहायक सिद्ध हुई। तुलसीदास ने दर्द से पीड़ित जनता को दवा दे दी हो। हम जानते हैं कि भारत की संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है और किसी भी राष्ट्र की उन्नति वहां की संस्कृति पर निर्भर होती है। जिस देश की संस्कृति जितनी प्रबल होगी उस राष्ट्र की उन्नति भी उतनी ही होगी। तुलसी

कृत रामचरितमानस राष्ट्र को सशक्त बनाने, सांस्कृतिक चेतना को जगाने के साथ-साथ आदर्श समाज की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है। रामचरितमानस के अलावा अन्य रचनाएं भी राष्ट्र की संस्कृति को उजागर करने में अपनी भूमिका निभाती है तो इसीलिए सिर्फ रामचरितमानस को ही सर्वश्रेष्ठ मान लेना कहीं से भी उचित नहीं है हालांकि इस विषय में रामचरितमानस को केंद्र बिंदु में रखा गया है इसलिए इस विषय पर ज्यादा चर्चा आवश्यक हो जाती है। तुलसी पर अपना विचार व्यक्त करते हुए शिवकुमार मिश्र कहते हैं, ''जहाँ तक गोस्वामी तुलसीदास का सवाल है इसे उनके मूल्यांकन की विडंबना या एकांगिता ही कहा जाएगा कि उन पर जो रायजनी होती हैं, आम तौर से उनके रामचरितमानस को केन्द्र में रखते हुए, जबकि हम सब जानते हैं कि 'रामचरितमानस' उनकी अकेली रचना नहीं है, छोटे-बड़े महत्वपूर्ण और कम महत्वपूर्ण एक दर्जन के लगभग उनकी प्रामाणिक रचनाएँ हैं। इन रचनाओं को समग्रता में तुलसीदास को देखना हो उन्हें समूचेपन में देखना है।''[1]

हम देखते हैं कि जिस प्रकार मैथिलीशरण गुप्त अपनी कविता में कहते हैं ''मुझे फूल मत मारो, मैं अबला-बाला वियोगिनी, मुझ पर दया विचारो' और इस प्रकार उर्मिला के चरित्र पर जो प्रकाश डाला गया है वह विशुद्ध भारतीय नारी का प्रतीक है। वह भारतीय संस्कृति की प्रतीक है जो किसी भौतिक सुख-सुविधाओं के लालच में न आकर मन वचन और कर्म से सिर्फ अपने पति के बारे में सोचती हैं। चाहे जितनी भी परेशानी हो वह अपने पति का साथ नहीं छोड़ती, इस प्रकार तुलसीदास जी ने भी रामचरितमानस में कहा है।

'धीरज धर्म मित्र अरू नारी
आपातकाल परखिए चारी।'[2]

वस्तुत: साहित्यकार का काम समाज में आदर्श की खोज और उसकी स्थापना से जुड़ा होता है। इस आदर्श के लिए वह अपने अनुसार पात्रों की योजना करता है क्योंकि रामचरितमानस सिर्फ एक साहित्यिक कृति नहीं है। वह सभी वर्गों के मूल्यों की प्रस्तुति है। वह आस्था का प्रतीक है और सभी वर्ग के लोग उसमें अपना जीवन दर्शन अनुभव करते हैं। इसी कारण उसमें राष्ट्रीयता की स्पष्ट झलक दिखाई देती है जो राष्ट्रीय हित के लिए कल्याणकारी है तथा राष्ट्र को नई ऊंचाइयां प्रदान करती है।

''सियाराम मय सब जग जानी
करउँ प्रनाम जोरि जग पानी''[3]

राष्ट्र को सशक्त बनाने के लिए हमें संगठित होने की जरूरत है। हम जितना संगठित होंगे, राष्ट्रीय भावना उतनी ही विकसित होगी। हमें समाज में फैले कुप्रथाओं तथा बुराइयों को दूर करके सभी के प्रति प्रेम का भाव, सम्मान का भाव तथा बंधुत्व की भावना को निभाना होगा। राष्ट्र को मजबूत बनाने के लिए समाज में समानता स्थापित करना आवश्यक है। तभी तो संविधान के अनुच्छेद 14 से 18 तक समानता का अधिकार प्रदान किया गया है। गोस्वामी तुलसीदास श्री रामचरितमानस में समानता का भाव स्थापित करते हुए लिखते हैं।

''सब नर करहिं परस्पर प्रीति
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।''[4]

गोस्वामी तुलसीदास श्रीरामचरितमानस में जिन आदर्श नायक की कल्पना करते हैं वह न सिर्फ अपने राष्ट्र बल्कि संपूर्ण विश्व में सौहार्द, प्रेम, मैत्री, बंधुत्व को स्थापित करने के लिए तत्पर हैं। यह भारत की परंपरा और संस्कृति ही है जहां का नायक संपूर्ण विश्व को सुखमय बनाना चाहता है और वह चाहता है कि राष्ट्र में किसी प्रकार का अकाल न हो, किसी प्रकार की गरीबी न हो, किसी प्रकार का रोग ना हो। और एक आदर्श समाज के लिए एक आदर्श राष्ट्र के लिए ऐसे हीं समाज निर्माण की आवश्यकता होती है।

''नहीं दरिद्र कोऊ दुखी न दीना
नहीं कोऊ अबुध न लच्छन हीना।''[5]

जब हम राष्ट्र की बात करते हैं तो हमें सबसे पहले इस और ध्यान देना चाहिए की राष्ट्र बनता किससे है? तब हम पाते हैं कि राष्ट्र जो है वह व्यक्ति से बनता है। समाज की सबसे छोटी इकाई व्यक्ति है, व्यक्ति से परिवार बनता है, परिवार से समाज बनता है और समाज से राष्ट्र बनता है और राष्ट्र से विश्व की उत्पत्ति होती है। जब हम राष्ट्रीय संदर्भ में श्री रामचरितमानस को देखते हैं तो पाते हैं कि समाज में रहने वाले जो लोग थे, स्त्रियां थीं, गरीब थे, उनकी स्थिति का किस प्रकार वर्णन हमें रामचरितमानस में दिखाई देता है। नारी का सम्मान हमारे देश की परंपरा भी रही है और संस्कृति भी रही है। यह हमें भूलना नहीं चाहिए कि राष्ट्र के निर्माण में नारी की भी विशेष भूमिका होती है।

तुलसीदास कृत श्रीरामचरितमानस में पारिवारिक मूल्यों को भी गोस्वामी जी ने उजागर किया है वह मानते हैं कि राष्ट्र में भागीदारी निभा रहे पारिवारिक मूल्यों का भी विशेष महत्व होता है क्योंकि एक परिवार एक समाज की स्थापना करता है प्रत्येक

नागरिक को अपने राष्ट्र का सम्मान अपना सम्मान समझना चाहिए। एक तरफ जहाँ समाज को सुंदर बनाने का, नए निर्माण का तथा राष्ट्र को उच्चतम शिखर पर पहुँचाने का कार्य करना चाहिए वहीं आतंकवाद की वर्तमान स्थिति से राष्ट्र को भारी क्षति हो रहा है। तुलसीदास इसीलिए अपनी रचना में असुरों के वध को आवश्यक मानते हैं।

''गाधि तनय मन चिंता व्यापी।
हरि बिन मरहि न निसिचर पापी।"[6]

तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस में राष्ट्रीयता का वर्णन अनेक जगहों पर दिखाई देता है। श्रीरामचरितमानस में तुलसीदास राम के चरित्र के साथ-साथ उनकी नीतियों, उनके कर्तव्यों के माध्यम से भारत की सांस्कृतिक एकता और राष्ट्रीयता के पहचान को स्थापित करते हैं। राम के चरित्र के माध्यम से प्रशासनिक व्यवस्था न्याय व्यवस्था सामाजिक संगठन तथा भारत की प्राचीन मूल्य और परंपराओं को पुनर्स्थापित करने का कार्य श्रीरामचरितमानस में किया गया है। राम अपने देश और समाज की रक्षा के लिए सदैव तट पर दिखाई देते हैं या अपने नागरिकों से प्रेम सिर्फ एक भावनात्मक जुड़ाव नहीं है बल्कि एक जिम्मेदारी भरा कार्य भी है। स्वयं के सुख की चिंता ना करके अपने प्रजा की चिंता करना अपने राष्ट्र को प्रबल बनाना अपने राष्ट्र में रहने वाले लोगों की बातों को सुनना यह सभी एक आदर्श राजा का कर्तव्य होता ही है। राजसत्ता के लिए मन में लोभ या लालच की लालसा भर जाना यह देश प्रेम नहीं होता है। इस प्रकार श्रीरामचरितमानस में रावण और राम के युद्ध में राम की विजय को भारत की राष्ट्रीय गौरव और शक्ति के रूप में दर्शाया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास के श्रीरामचरितमानस में भारत की राष्ट्रीयता और भारत की संस्कृति स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आती है। यह रचना इसलिए भी विशिष्ट हो जाती है क्योंकि इसमें सिर्फ हमें राष्ट्रीय सांस्कृतिक झलक ही नहीं दिखाई देती अपितु सामान्य मनुष्य के जीवन में आने वाले कठिनाइयों से मुक्ति का मार्ग भी दिखाई देता है।

नयी दिल्ली
Email : sumitpakwalia@gmail.com

सन्दर्भ सूची

1. शिवकुमार मिश्र, भक्ति आंदोलन और भक्तिकाव्य, पृष्ठ-203
2. श्रीरामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर मूल मझला साईज, पृ. 322
3. वही, पृ. 22
4. वही, पृ. 485
5. वही, पृ. 485
6. वही, पृ. 111

शोध-पत्र

भारत में क्षेत्रीयता का सवाल और विकास की अवधारणा

सुनील कुमार

भारत विविधताओं का देश है। भारत में कई प्रकार की जातियाँ और जनजातियाँ निवास करती हैं। इन सभी जातियों और जनजातियों का अपना सांस्कृतिक आधार है, उनकी अपनी भाषा है। यही कारण है कि भारत में सामाजिक राजनीतिक और सांस्कृतिक सामंजस्य नहीं होने के कारण संघर्ष की स्थिति और पहचान का संकट बना रहता है। पहचान का संबंध अस्मिता से है और अस्मिता का सवाल मनुष्य के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास से जुड़ा हुआ है। मनुष्य की सामाजिक अस्मिता का निर्माण ऐतिहासिकता, सांस्कृतिक विरासत, लोक-परंपरा, सामाजिक मिथक और भाषा के जरिए होता है। दरअसल, ऐतिहासिकता, सांस्कृतिक विरासत, लोक-परंपरा, सामाजिक मिथक और भाषा क्षेत्रीय मूलक अस्मिता का आधार है।

क्षेत्रीय मूलक अस्मिता या क्षेत्रीयता का अर्थ अन्य क्षेत्र के संदर्भ में अपनी पहचान सुनिश्चित करना है। यही कारण है कि क्षेत्रीयता भारत में विभिन्न समस्याओं के निदान के रूप में वैचारिक आधार रहा है। क्षेत्रीयता की माँग राष्ट्रीयता के भीतर संवैधानिक प्रावधानों के तहत क्षेत्र के विकास में अपना वैधानिक हिस्सा तथा योजनाबद्ध ढंग से किए जा रहे शोषण के अंत पर बल देता है।

भारत में राज्यों की संख्या अट्ठाईस है और दस केंद्र शासित प्रदेश है। प्रांतों का बँटवारा उनकी प्रकृति के अनुसार ही हुआ है, लेकिन केंद्र में जो नीतियाँ बनती है, वह सभी राज्यों को एक समान मानकर ही बनती है। जबकि अलग-अलग राज्यों की अलग-अलग समस्याएँ हैं। यही कारण है कि भारत में विकास परंपराबद्ध न होकर अलग-अलग रूप में स्वतंत्र ढंग से हुआ है। केरल, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में विकास का स्वरूप अलग-अलग है। क्योंकि अलग-अलग जगह में मनुष्य और वानस्पतिक संबंध अलग-अलग होता है। उनकी भाषा, बोली, रहन-सहन, जलवायु अलग-अलग होता है। यानी उत्पादन की प्रणाली भी अलग-अलग होती है। मनुष्य का सामाजिक अस्तित्व मनुष्य के भौतिक जीवन के उत्पादन प्रणाली पर निर्भर होता है। उत्पादन प्रणाली ही क्षेत्र-विशेष के लोगों के विचार, मनोवृत्ति, दृष्टिकोण, दर्शन आदि को नियंत्रित करता है। यही क्षेत्र-विशेष के लोगों के गीत-संगीत, मिथक, लोककथा आदि का आधार होता है। उत्पादन की नई प्रणाली उसके इस संबंध को तोड़ती है। जिससे क्षेत्र-विशेष का जन-जीवन प्रभावित होता है। यही कारण है कि क्षेत्रीयता 'अंचल/क्षेत्र-विशेष बनाम राज्य' जैसे मुद्दे को जन्म देता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विशेष का सामान्य रूप में पहचान आवश्यक था। दरअसल, स्वाधीनता प्राप्ति के बाद हरेक क्षेत्र में उत्सुकता थी कि विकास में क्षेत्रों के महत्व को किस प्रकार देखा जाएगा? क्या विभिन्न क्षेत्रों की विशेषताओं के महत्व को स्वीकार किया जाएगा या नहीं? विकास मॉडल को एक ही समान मानकर सभी क्षेत्रों में लागू कर दिया जाएगा? या फिर भारतीय स्थानीय समस्या को ध्यान में रखकर ही कार्य किए जाएंगे? यही बुनियादी प्रश्न क्षेत्रीयता के प्रश्न को स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सभी प्रदेशों में एक साथ आगे बढ़ाते हैं। आगे हम देखते हैं कि राज्यों के विकास में असमानता है। केरल जैसे राज्य विकास के मामले में आगे है तो वहीं बिहार, उत्तर प्रदेश जैसे राज्य पिछड़े हुए हैं। इसलिए आवश्यक था

कि भारतीय अर्थव्यवस्था को पहचानने के लिए क्षेत्रीय विविधताओं के अंतर को समझाना। ताकि संघ का स्थानीयता से लगाव बना रहे और सत्ता का विकेंद्रीकरण हो। ऐसे में क्षेत्रीय विविधताओं के अंतर को समझना आवश्यक हो जाता है।

क्षेत्रीय विविधताओं के अंतर को समझाते हुए समाजशास्त्री लुण्डबर्ग लिखते हैं, ''क्षेत्रीयता उस अध्ययन से संबंधित है, जिसमें किसी एक भौगोलिक क्षेत्र तथा मानव व्यवहार के बीच पाए जाने वाले संबंधों पर बल दिया जाता है। इस रूप में क्षेत्रीयता एक प्रकार का विश्वपरिस्थिति विज्ञान है क्योंकि इसकी रुचि विभिन्न क्षेत्रों के बीच तथा एक ही क्षेत्र के विभिन्न अंगों के बीच पाए जाने वाले प्रकार्यात्मक सावयावी संबंधों (फंक्शनल ऑर्गेनिक रिलेशन्स) में है।''[1]

अर्थात् इस विषय का अध्ययन अन्य क्षेत्रों के संदर्भ में एक क्षेत्र-विशेष के लोगों का सामाजिक व्यवहार है। साथ ही यह मानव-व्यवहार की एक विशेष अभिव्यक्ति है, जो उनके बीच के फंक्शनल ऑर्गेनिक रिलेशन्स में है। यानी क्षेत्र-विशेष के किसी भी भाग में कोई परिवर्तन होगा तो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वह परिवर्तन पूरे क्षेत्र में दिखाई देगा। समाज में यह परिवर्तन आर्थिक ढाँचा के बदलने पर होता है। आर्थिक ढाँचा के बदलने से सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आता है। रवींद्रनाथ मुकर्जी लिखते हैं, ''जब लोगों के जीवन विधियों (मॉड्स ऑफ लाइफ) उनके सामाजिक संबंधों का सामाजिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन होता है तो उनके विचारों, दृष्टिकोणों, धारणाओं में भी परिवर्तन होता है।''[2] यह परिवर्तन कितना और किस रूप में हुआ है? इसे समझना आवश्यक हो जाता है।

भारत में विकास के लक्ष्यों को ध्यान में रखकर विभिन्न क्षेत्रों के आर्थिक गतिविधियों को गतिशील बनाना था। इसके लिए शुरुआत में विकास का लक्ष्य 5-7% आर्थिक वृद्धि दर से आगे बढ़ाना तथा इसे बनाए रखना था। इसके लिए कृषि-क्षेत्र के निर्भरता को कम करके औद्योगिक क्षेत्र के उत्पादन और सेवा वाले उद्योगों के विस्तार पर ध्यान केंद्रित किया गया। इससे विभिन्न क्षेत्रों में उद्योग-धंधों की स्थापना की गई। शुरू-शुरू में यह उत्साहवर्धक था। लेकिन इस विकास का लाभ जनसंख्या के एक छोटे हिस्से तक सीमित रहा। वह आम आदमी तक नहीं पहुँच सका। इससे कई विरोधाभासों का जन्म हुआ। क्षेत्र-विशेष में अन्याय, विषमताएँ, जातीय उत्पीड़न, भाषाई उत्पीड़न आदि में वृद्धि देखा गया। दरअसल, विकास की जटिलताओं को स्थानीय स्तर पर समझा ही नहीं गया। विकास की इस अवधारणा में स्थानीय लोगों की उपेक्षा की गई। जिन लोगों ने उद्योग-धंधों को स्थापित करने के लिए अपनी जमीनें दी, उन्हें हाशिए पर डाल दिया गया। दरअसल, ''विकास की तकनीकें अनुकरणमूलक और अनुपयुक्त थीं और विकास के कार्यक्रम में स्थानीय और क्षेत्रीय वरीयताओं को विशेष स्थान नहीं दिया था।''[3] इससे हुआ यह कि विकास को लेकर एक संशय की स्थिति उत्पन्न हुई। जैसा कि फ्रांसिस बेकन ने अपनी पुस्तक 'दि एडवांसमेंट ऑफ लर्निंग' में कहा है-''सन्देहों को व्यक्त करने के दो लाभ हैं एक हमें गलती करने से बचाते हैं, दूसरा यह कि जाँच-पड़ताल की कुछ ऐसी प्रक्रिया की शुरुआत कर देते हैं जिससे हमारी समझ में वृद्धि होती है।''[4]

आगे उन्होंने कहा कि-''जो प्रश्न हमारे बगल से चुपचाप गुजर जाते हैं , उनपर अब ध्यान दिया जाता है और गंभीरता से विचार किया जाता है जो संदेह किए बिना संभव नहीं है।''[5] इन सन्देहों के देखते हुए विकास को पुनर्परिभाषित किया गया तथा विकास की अवधारणा में तीन केंद्रीय मूल्यों को जोड़ा गया- जीवन-यापन, आत्मगौरव तथा विकल्प चुनने की आजादी। लेकिन विकास का यह सरल तर्क है कि अर्थव्यवस्था में जितना उत्पादन होगा लोगों को पाने के अवसर उतनी ही होंगे लेकिन सत्य है यह कि इससे केवल जी.डी.पी. में वृद्धि होता है। जी.डी.पी. के बढ़ने का यह अर्थ कतई नहीं है कि गरीबी, बेरोजगारी और असमानता में कमी आई है। उल्टे इसके परिणाम भयावह हैं। दरअसल, जी.डी.पी. में वृद्धि समानता और सामाजिक न्याय दिलाने में असफल रहा है। इस असफलता को ध्यान में रखकर विकासशील देश के सरकारों ने पुनर्वितरण पर बल दिया, जिसका लक्ष्य रखा गया- मूल आवश्यकताओं की पूर्ति, रोजगार दिलाना तथा सामाजिक सेवाओं में सुधार में लाना। इसलिए बाजार पर से सभी प्रकार के नियंत्रण को हटा दिया गया।

आधुनिक समय में बाजार का तर्क है कि ''वे सभी पदार्थ और सेवाएँ, जिनके उपभोग पर हमारा कुशल क्षेम निर्भर करता है, बाजार में खरीदें और बेचें जा सकते हैं।''[6] आज बाजार का इतना ठाट-बाट है कि उसकी गूँज सभी जगह पर सुनाई दे रहा है। मनुष्य के जीवन के बेहतरी के लिए जो भी पदार्थ और सेवाएँ हैं उनका बाजारीकरण हो गया है। यानी हमारे जीवन में

बाजार का अतिशय उपयोग है। बिना बाजार के हमारा चलना मुश्किल है। बाजार हमारे घरों में घुस चुका है। यानी बाजार पर कोई नियंत्रण नहीं है बल्कि उल्टे वह मनुष्य के सामाजिक जीवन को नियंत्रित करता है। बाजार पर निर्भरता इस कदर बढ़ चुका है कि उसके दोष विवेचन की गुंजाइश ही नहीं बचती है।

मुक्त बाजार को अपनाने के पीछे का तर्क यह दिया गया था कि ''विकासशील देशों ने आर्थिक और राजनीतिक अस्थिरता से बचने के लिए भूमंडलीकरण के लक्ष्य स्वीकार कर अपने विकास की दिशा का निर्धारण बाजार के तर्क पर छोड़ दिया। इस प्रक्रिया में अनेक घोषित तथा अघोषित लक्ष्य परिवर्तित न हुए य आर्थिक वृद्धि दर पर पुनः ध्यान केंद्रित हुआ और विकास के मानवीय और सामाजिक लक्ष्य एकाएक पृष्ठभूमि में चले गए।''[7]

आर्थिक वृद्धि दर से विकास के मानवीय और सामाजिक लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो सकती है, बल्कि आर्थिक वृद्धि दर समाज में असमानता को बढ़ावा देता है। इसके साथ-साथ बढ़ते मूल्यों से लोगों में असुरक्षा की भावना पनपती है। इसलिए आज विकास का सारा तर्क आर्थिक और राजनीतिक अस्थिरता को ढँकने का काम करती है। बाजार अनायास ही कुछ लोगों को फायदा पहुँचाता है तो वह कुछ लोगों को नुकसान पहुँचाता है। बाजार का यही चरित्र है। बाजार ने सबसे अधिक नुकसान परंपरागत सभ्यताओं और आदिम मूल्यों का किया है। इसलिए पी.हटिंगटन ने कहा है कि-''अब संघर्ष का केंद्र स्थान बदलकर सभ्यताओं के बीच संघर्ष की ओर चला गया है।''[8] यह अस्वाभाविक नहीं है कि विकास के चलते क्षेत्रीय बनाम अन्य को लेकर दुनिया भर में 370 से अधिक आंदोलन चल रहे हैं। इन सारे आंदोलनों के मूल में विकास के अवधारणाओं में दोष चिह्नित किए गए हैं। दरअसल, ''एक देश के विकास के बारे में पूछे जाने वाले प्रश्न हैं : गरीबी के साथ क्या होता रहा है? बेरोजगारी के साथ क्या होता रहा है? असमानता के साथ क्या होता रहा है? यदि इन तीनों की उच्च मात्राओं की कमी आई है तो निस्संदेह उस अवधि में विकास हुआ है। यदि इनमें से एक या दो केंद्रीय समस्याओं की हालत दयनीय हुई है, विशेषतः यदि सभी तीन की तो इस परिणाम को विकास नहीं कह सकते हैं, चाहे प्रति व्यक्ति आय दुगुनी ही क्यों ना हो गई हो।''[9]

दरअसल, यह देखा गया कि गरीबी में कमी न आकर उसमें बढ़ोतरी ही हुई। कृषि से अलग उद्योग-धंधों से नए स्लम एरिया का विकास हुआ। मजदूरों की बहुतायत ने कम वेतन पर काम लेने की प्रवृत्ति को अपनाया गया। क्षेत्रीय स्तर पर भेदभाव किए गए। नई कालोनियों का निर्माण हुआ तथा स्वतंत्र भारत में शोषण की एक नई परम्परा की शुरुआत हुई। भारत में साठ के दशक तक आते-आते ही विभिन्न माँगों को लेकर आंदोलन शुरू हो गए। सर्वप्रथम भाषाई अस्मिता ने जोर पकड़ा और भाषा के आधार पर मद्रास राज्य का विभाजन कर तमिल भाषी के लिए तमिलनाडु राज्य तथा तेलुगू भाषी के लिए आंध्र प्रदेश राज्य का गठन हुआ। इसी तरह गुजराती भाषी के लिए गुजरात राज्य का गठन किया गया और मराठी भाषी के लिए महाराष्ट्र राज्य का गठन हुआ। इसी तरह क्षेत्र के आधार पर नागालैंड राज्य का गठन हुआ। यह सिलसिला यहीं नहीं रुका है , आगे चलकर 'मिजो' विद्रोह हुआ। जिससे उन माँगों को ध्यान में रखकर मिजोरम राज्य का गठन हुआ। असम के विभाजन में भी भाषाई और जातीय अस्मिता के साथ-साथ विकास में विभिन्न जातियों और जनजातियों की भागीदारी का सवाल था। इसलिए असम का विभाजन कर दिया गया। असम में अभी भी समस्याएँ खत्म नहीं हुई हैं। अनिल यादव ने लिखा है, ''कोई किसी को नहीं भगा सकता। सब आपस में कट मर जाएगा। असमिया कहता है पहले बंगाली ने दबाया अब बिहारी दबा रहा है। बोडो कहता है कि असमिया हमको दबाता है। इस तरह बोडो के ख़िलाफ राभा, राभा के ख़िलाफ मिरी, मिरी के ख़िलाफ टिवा और टिवा के ख़िलाफ दिमाचा बोलता है। सब एक दूसरे से लड़ने को तैयार हैं। ऐसे में कौन किसको भगा पाएगा।''[10] असम में बोडो आंदोलन जारी है जो असम के मैदानी और जनजातियों के लिए अलग राज्य की माँग कर रहे हैं। इसी तरह मणिपुर में मतई और कुकी समुदाय के बीच भाषाई अस्मिता का सवाल है। इस तरह की समस्या पश्चिम बंगाल में भी जहाँ एक अलग राज्य की माँग उठ रही है और जिसका संबंध संथाल भाषा आंदोलन से है। कुछ प्रदेशों की माँगें पूरी हुई हैं जैसे- आदिवासी और जनजातियों की समस्याओं को ध्यान में रखकर झारखंड, छत्तीसगढ़ और उत्तराखंड राज्य का निर्माण हुआ।

इस तरह देखा जाए तो विभिन्न क्षेत्रों की स्थानीयता के आधार विभिन्न माँगें हैं। क्षेत्र-विशेष के जटिलताओं को समझने के लिए जातीय, भाषाई और क्षेत्रीय संघर्ष का एक उदाहरण

देखा जा सकता है। अनिल यादव अपने यात्रा-संस्मरण 'वह भी कोई देस है महराज' में लिखते हैं-''कई महीनों बाद समझ आया कि यह पूर्वोत्तर की राष्ट्रीयताओं और जनजातीय संस्कृतियों के संघर्ष की एकदम सच्ची तस्वीर थी। हर प्रमुख आदिवासी जाति के पास अपना एक उग्रवादी संगठन है, जो अलग देश के लिए लड़ रहा है और एक साहित्य सभा है जो अपनी लिपि विकसित करने के काम में लगी हुई है। मार जनजाति की आबादी सिर्फ तीस हजार है लेकिन वे भी असम और दिल्ली के उपनिवेशवाद के खिलाफ लड़ रहे हैं। अफसर कहते हैं कि वे जिला बनाने भर के नहीं हैं।''[11] पूर्वोत्तर के कई जिलों में स्वायत्त सरकार चलाने का प्रावधान है। जैसा कि असगर वजाहत लिखते हैं-''भारतीय संविधान निर्माता के पास यह समझ थी कि भारत जैसे विशाल देश और विविधता से भरे उपमहाद्वीप में से कुछ ऐसे इलाके हो सकते हैं, जो अपनी परंपरा संस्कृति और सभ्यता को बचाए रखने के लिए स्वशासन की माँग कर सकते हैं। इस संभावना के तहत भारतीय संविधान के छठे शेड्यूल में आदिवासी क्षेत्रों को स्वशासन देने का प्रावधान है। मिजोरम के तीन आदिवासी क्षेत्रों में से ऐसे तीन जिले हैं जो अपने ऊपर स्वयं शासन करते हैं। लाई, मारा और चकमा आदिवासियों के तीन आटोनोमस रीजन बनाए गए हैं।''[12] इसी तरह के माँगों को लेकर अन्य आदिवासी समुदाय आंदोलन कर रहे हैं।

क्षेत्र-विशेष की संस्कृतियाँ अपनी अस्मिता की पहचान और वैशिष्ट्य के प्रति अत्यंत संवेदनशील होती है और किसी अन्य संस्कृति का वर्चस्व आसानी से स्वीकार नहीं करती है। साथ ही प्रजाति, क्षेत्रीय भाषा और धर्म के आधार पर पुरातन इकाइयाँ अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए आंदोलन करती हैं। इन आंदोलनों का स्वरूप हमेशा के लिए लोकतांत्रिक नहीं रह सकती हैं। अनेक स्थितियों में उग्र और हिंसक हो जाती है और इस हिंसा के मूल में आर्थिक और राजनीतिक अस्थिरता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारत में क्षेत्रीयता का सवाल है और क्षेत्रीयता को बनाए रखने में विकास की अवधारणा संदिग्ध है।

शोधार्थी, हिंदी विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना

सन्दर्भ सूची

1. मुकर्जी रवींद्रनाथ, भरत अग्रवाल ;' सामाजिक समस्याएँ', विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली -7 (भारत) : छठा संस्करण, पृष्ठ सं-132
2. मुकर्जी, रवींद्रनाथ;'समकालीन उच्चतर समाज-शास्त्रीय सिद्धांत', किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद (भारत) : नवम् संस्करण, पृष्ठ सं.-294
3. दुबे, श्यामाचरण; 'विकास का समाजशास्त्र', लिटिल बुक्स प्रकाशन, शहादरा, दिल्ली (भारत): संस्करण 2012, पृष्ठ सं-55
4. सेन , अमर्त्य;' हिंसा और अस्मिता का संकट', राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली (भारत) : संस्करण 2022, पृष्ठ सं.-130
5. वही, पृष्ठ सं.-130
6. सेन, अमर्त्य; 'आर्थिक विकास और स्वातंत्र्य', राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली (भारत): संस्करण 2019, पृष्ठ सं.-141
7. दुबे, श्यामाचरण; 'विकास का समाजशास्त्र', लिटिल बुक्स प्रकाशन, शहादरा, दिल्ली (भारत) : संस्करण 2012, पृष्ठ सं.-153
8. टंडन, आलोक;' अस्मिता और अन्यता', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (भारत): संस्करण 2018, पृष्ठ सं. 27
9. दुबे, श्यामाचरण; 'विकास का समाजशास्त्र', लिटिल बुक्स प्रकाशन, शहादरा, दिल्ली (भारत): संस्करण 2012, पृष्ठ सं.-71
10. यादव, अनिल; 'वह भी कोई देस है महराज', अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद (भारत): पाँचवाँ पेपर बैक संस्करण 2018, पृष्ठ सं.-26
11. वही, पृष्ठ सं.-27
12. वजाहत, असगर;'उम्र भर सफर में रहा', अनन्य प्रकाशन, नवीन शहादरा, दिल्ली (भारत) : प्रथम पैपर बैक संस्करण, 2022, पृष्ठ सं.-312

Research Paper

The Cultural Ties of India and Indonesia, Shared Literatures and the Prospects of Soft Power

Hukam Singh Meena* **Gopal Khillo****

Abstract

In the bilateral relations of India and Indonesia, cultural linkage is always an important aspect to look forward. Due to deep cultural linkages, India has very strong sense of soft power reflections in Indonesian society. In this regard, the shared cultural literatures such as Ramayana and Mahabharata act as bridge of linkage between cultures of two societies. Alike Indian society, Indonesian society too refer these epics as their cultural treasures. This article is an effort to highlight the shared cultural values between two societies. With emphasis on India's soft power presence in Indonesia, alongside finding possible grounds to further deepening cultural ties.

Keywords:

India – Indonesia cultural ties, soft power, cultural literatures

Introduction

The two famous epics Iliad and Odyssey of ancient Greek poet Homer are well known to all. It has not only served as foundation base for ancient Greek literatures but also influenced Western literatures forcenturies. However, India does not need to worry about. It has two much more well-known epics Ramayana and Mahabharata. This hasgreat weight compared to its Greek peers in terms of influence and richness of literature. Adding to this,what Iliad and Odyssey lacks compared to these Indian epics? The immense soft power that comes with Ramayana and Mahabharata.

The Ramayana and Mahabharata has always a special place in Indian society. Since millennia, these epics are indispensable part of India's cultural and national identity. You will hardly find someone in India who is not aware about Ramayana and Mahabharata. No matter either they literate or illiterate most of masses aware about it. Once H. Y. Sharada Prasad, press adviser to former Indian Prime Minister Rajiv Gandhi speaks about his grandmother upon telling stanzas of Mahabharata, who herself was illiterate. "I remember once she recited sixty stanzas in a row of six lines each, and she told me that she had last recited that passage 60 years before" what he adds. This instance speaks volumes about the deep presence of these epics in Indian society (Weisman, 1987).

However, it is rare to find someone who has read Ramayana and Mahabharata in their original Sanskrit text. Rather you will find this is passing from generations to generations in oral form. This similar happening can observe in societies where historically India had influence including Indonesia.

Influence of Ramayana and Mahabharata beyond India

(i) Ramayana

Ramayana is famous around different parts of world. Valmiki writes the original text in Sanskrit. This has seven Kandas consisting around 24, 000 verses(Ahmed, 2024). However, there known to be exist of something three hundred versions of Ramayana as of present. Indeed, countries have their

own versions of Ramayana. The Ramayana called as, Langka Sip Hor in Yunnan, China. It is written in Tai Lu language, that has 280, 000 speaker in Yunnan and 700, 000 speakers in South East Asia (SEA). In Japan the Ramayana known as Ramaenna or Ramaensho. The spread of Buddhism had brought Ramayana to Japan (Shankar, 2025).

There are two variants of Ramayana in Nepal. One is Bhanubhaktako Ramayana written in Nepali and Siddhi Ramayana written in Nepal Bhasa. Incomplete manuscripts of Tibetan Ramayana found in Dunhuang, located eastern end of Silk Road. Yama Zatdaw or Yamayana is the Ramayana of Myanmar. There is also a well-known literature in Myanmar named Rama sa-khyan composed by Aung Phyo in 1775 that begins from Bala Kanda and ends at Yudha Kanda of Valmiki Ramayana (Shankar, 2025).

In Indonesiaitself, there are three main versions of Ramayana. Ramakavaca in Bali, Kakawin Ramayana in Java and third is Ramayana Swarnadwipa in Sumatra. Ramakien is Ramayana of Thailand. The Khmer version of Ramayana is Reamker. Throughout ancient Cambodia the Funan, Chenla and Angkor this epic had significant present. Phra Lak Phra Ram is version of Ramayana found in Laos. Hikayat Seri Rama is the Malay version of Ramayana (Shankar, 2025).

(ii) Mahabharata

The Mahabharata is longest epic ever written in humankind. It has over 100, 000 slokas, divided in 18 Parvas. Mahabharata has about 1.8 million words that consists around 200, 000 verses. In fact, this epic is ten times as long as Iliad and Odyssey combined (Basu, 2016).

The Mahabharata narrates the struggle for power between two group of cousins Pandavs and Kauravas. Alongside, power struggle it deals philosophy, ethics, statecraft, cosmology and many more domains. Within Mahabharata, there is portion in it the Bhagavad Gita. Over the years, this has inspired many prominent personalities around the world. This often referred as heart of Mahabharata (Basu, 2016).

The figures who found sense of guidance from Bhagavad Gita Swami Vivekananda, Gangadhar Tilak, M.K. Gandhi, Aurobindo, S.C. Bose and these are few names only. Beyond India, this has influenced many prominent personas around world Robert Oppenheimer – father of atom bomb, George Harrison – renowned musician, Sunita Williams – NASA astronaut and many others (Goswami, 2020). Indeed, Oppenheimer phrased "Now I become death, the destroyer of worlds" a line of Sri Krishna from Bhagavad Gita. This was when saw the consequences of his invention (Biswas, 2023). Interestingly, Hollywood filmmakers also had seen borrowing ideas from these texts. People who are habitual with Matrix movie they found references of Upanishads in sound track (Goswami, 2020).

Soft Power Reflections in Indonesia

(i) Soft Power

Since Professor Joseph Nye popularized the term, "soft power" in his book *Bound to Lead: The Changing Nature of American Power* published in 1990. Since then, concept of softpower is gaining massive prominence in international relations and foreign policy pursuance. Soft power is "when one country gets other countries to want what it wants might be called soft power in contrast with the hard or command power of ordering others to do what it wants" what author writes in book.Nye speaks about three resources from where country can draw its soft power. One culture, two political values and three legitimate foreign policies(Nye, 2017).In context of soft power of India few such elements are – yoga,spirituality, Ayurveda, Buddhism, Sanskrit, Indian cuisines, Diaspora, Bollywood, largest democracy tag or recent tag of most populous nation.

(ii) India – Indonesia Cultural Ties

The Indian cultural contact with South East Asia is believed be to happen through Hindu and Buddhist traders, merchants and princes who travelled there from India. Due to centuries old cultural linkage strong soft power presence of India found in South East Asia including Indonesia.

Starting from Aceh province of Sumatra Island, followed by Java, Bali, Indonesian part of Borneo,

Sulawesi to Indonesian Papua everywhere some Indic element found. Stretching from 7th century to 16th century this archipelago witnessed emergence numerous of Hindu – Buddhist kingdoms Srivijaya, Sailendra, Mataram, Kediri and Majapahit (Ramabadran, 2019).

Throughout history, The Eastern Coast of India had regularly kept trade and cultural contact with Southeast Asia. Prior to invasion of Mughal, parts of present-day Bengal, Bihar fell under control of them. That resulted decline of Hindu and Buddhist cultural presence. However, Kalinga remained powerful under Hindu kingship. Therefore, Kalinga or present-day Odisha was able to keep regular cultural exchanges for long period until colonial disruptions. Due to these feats influence of Odisha still found across the archipelago of Indonesia. The imprint of influence found in trade, culture and architecture still today.

(iii) References of Ramayana and Mahabharata in Indonesian Society

The Ramayana and Mahabharata based performances and music are still very part day today entertainment of Indonesian people. In every major township, you will see it. In fact, these performing events have more audience in Indonesia than itself in India.

Due to influence of ancient state system of India over Southeast Asia, it was appealing to adopt Ramayana and Mahabharata for ancient Indonesian kingdoms in Java and Sumatra. Today Indonesian demography consists more than eighty-five percent Islam while less two percent Hindu. Despite this Indonesian people strongly determined to glorify their Hindu and Buddhist cultural pride. This gives Indonesia unique identity of proud nation with own cultural values unlike other Islamic states.

We talked about existence of hundreds of versions of Ramayana. In Indonesia, it has three main versions of Ramayana. One Kakawin, this is the version of Ramayana in Java. Java is most populated island of nation having more than half of population. Java has four main cultural regions – Kejawen or Javanese heartland, Northern Java, Sunda area of West Java and fourthly Eastern Region of Blambangam. However, Kejawen is most dominant in terms of culture. That is because top military, political, aristocrat and business elites of Indonesia come from here (Ramabadran, 2019).

Second Ramakavaca, this is Balinese version of Ramayana. Later of 13th century, Islamic influence stepped into Java. This resulted decline of Hindu and Buddhist influences. This transition also initiated not welcome of Hindu artist and artisans as their work consider against of Islamic practices. This lead shifting of Hindu artisans to Bali, previously had hardly any cultural contacts. These people with themselves also carried their unique religious ceremonies, festivals, architecture styles, folk dances, and rituals including values from Ramayana and Mahabharata.

Due to these unique cultural presence millions of tourist visits Bali across the world. Perhaps its heavenly cultural atmosphere is truly rare of its kind. When Rabindranath Tagore visited This Hindu Balinese culture in 1927, "Wherever I go on the island, I see God" what he told. Later on, in 1950 Jawaharlal Nehru in his visit he refereed Bali as "Morning of the world" (Gururaj, 2021).

Third Swarnadwipa Ramayana, this version belongs to Sumatra. Sumatra Island is among very early places to have cultural linkages with India. In 6th century, Kalingga was earliest kingdom to flourish in Java. Later on,the powerful Srivijaya Empire between 7th to 13th centuries flourish in Java. Here Sumatra was trade place between India and Javanese Empires. This happening had introduced language, culture, and Sanskrit including Ramayana and Mahabharata (Gururaj, 2021).

The Mahabharata is Bharatayuddha in Indonesia. This Javanese interpretation of Mahabharata was first translated around 10th century under king Dharmawangsa.Sedahstarted the present version in 1157, MpuPanuluh has finished. However, this version of Mahabharata is Javanese centric. According to this epic Mahabharata, war fought between Pandavas and Kauravas. But this was not in Kurukshetra, Haryana rather Dieng Plateau, Central Java. Javanese believes Mahabharata had happened in Java rather India, this is their interpretation. These storylines often portrayed in Wayang, form of Javanese Puppet Theater. Wayang

Puppet Theater is also a UNESCO Intangible Cultural Heritage (Ramabadran, 2019).

Due to Javanese significance in Indonesia, their form of Ramayana is more mainstream compare to others. Kakawin Ramayana is a Kakawin or Kavya, meaning long poem in Sanskrit. Kakawin Ramayana had written in Central Java in rule of Mataram kingdom. As English translator Stuart Robson tells, "The Old Javanese Ramayana was written between 856 and about 930, with the likelihood of last section was added in 900 to 930" (Gururaj, 2021).

(iv) Socio – Cultural Values of Ramayana and Mahabharata in Indonesia

Ramayana and Mahabharata have very strong socio – cultural values in Indonesian society. The phrase in national symbol of Indonesia "Bhinneka Tunggal Ika" or unity in diversity itself borrowed from Upanishad. Sanskrit phrases "Dharmayukti", or Real Dharma and "Tri Dharma Eka Karma", or Three Services One Determination is motto of Supreme Court and Military of Indonesia respectively. Last but not the least, even "Pancasila" in Article 36A of Constitution of Indonesia has Indian roots (Mishra, 2011).

The specific Ramayana and Mahabharata reference found in Indonesian society are as follow. Lord Hanuman, symbol of power and agility in Ramayana is official military mascot of Indonesian forces. Garuda Indonesiais second largest Indonesia airline behind Lion Air. This named after Garuda, mount of Lord Vishnu. Lord Ganesha is in Twenty Thousand Rupiah currency of Indonesia. There is Kubera Bank, named after Hindu God of Wealth Kubera. These influences even found in their educational institutes. Their universities are Saraswati University and Gadjha Mada University (Ramabadran, 2019).

The unique construct of Hindu Culture in Bali not only letting Indonesian to realize potential of their culture but also each year generates decent tourism revenue. Bali has a mix culture of Animism, Buddhist and Hindu. However, they consider themselves among nice Hindu Sects in ancient Bali Pasupata, Bhairawa, ShiwaShidhanta, Waisnawa, Bodha, Brahma, Resi, Sora and Ganapatya. They have lot similarities with Indian Hindu including Gramadevata, or Village God worship practices (Chaudhury, 2023).

India – Indonesia Cultural Ties and theImplications on Present Geo-political Values

The shared cultural values brought feeling of oneness among nations. This was one of key reason that India supported Indonesian freedom struggle from Dutch in 1949 hosting conference attended by nineteen nations. Late they took a case to United Nations also. This was the credit that strong bilateral relations that Sukarno was first chief guest in 1950 at first Republic Day celebration of India. This had reached a new high when India gave effort in convening Asia – Africa Conference at Bandung in 1955. This has resulted emergence of Non – Alignment Movement, which seeks refuse to take either of side of superpowers during cold war. The late 1950s also experienced security agreements between two nations. However, this friendship saw some great lows when Sukarno sided with Zhou Enlai in 1962 Chinese Aggression to India (Mishra, 2011).

In 1967, Suharto ousted Sukarno. Prior to 1998 ousted of Suharto, there was improvement in Indonesian foreign policy seen. It has started reengaging with India in terms of maritime cooperation, joint patrolling and military exercises. In 2002, both countries signed cooperation agreement named "Ind – Indo Corpat" for mutual strategic enhancement. Since 2018, both navies carrying out a naval exercise named "Samudra Shakti" across Andaman Sea and Java Sea (Gururaj, 2021).

Conclusion

The sharing of cultural similarities not only brings common cultural values but also provides wider ground for prospects of geopolitical and strategic outlook. Cultural values provide scope for engage in both strategic and cultural dimensions.

Let us have look at following two such cases. One common culture in strategic values, if the intelligence collaboration *Five Eyes* exist consisting Australia, Canada, New Zealand, United Kingdom and United States, their shared Anglo sphere values

have critical role in it. Two the cultural cooperation, *Organisation Internationalede la Francophonie* is association of French speaking countries. However, it is more language centric rather cultural promotions. Still India can take lessons from nature of this organization in finding cooperation in cultural ground with Southeast Asia, to be specific Indonesia.

In year, 1989 India had built Jawaharlal Nehru Indian Cultural Centre at Jakarta with library facility. That provides lessons on Indian cultures as well as responsible to promote Yoga, Indian dance and music. India can take inspiration from Confucius Cultural Centre model of China as well in promoting culture abroad. India still needs to do a lot in terms of establishing cultural bodies to promote Sanskrit, Ramayana, Mahabharata and overall,its culture in abroad including Indonesia. Will conclude with adding, these thousand years of old civilization ties will always provide an extra room for strategic and cultural cooperation with Indonesia. Only pro-activeness is required to grab those opportunities.

*** PhD Research Scholar**
Centre for Indo-Pacific Studies,
School of International Studies,
Jawaharlal Nehru University, New Delhi
Email: 1701235@pg.du.ac.in,

****PhD Research Scholar**
Centre for Indo-Pacific Studies,
School of International Studies,
Jawaharlal Nehru University, New Delhi
Email: gopalk52_isn@jnu.ac.in

References:

- Ahmed, M. (2024, January 22). Different versions of 'Ramayana' across the globe, and what do they tell? *Deccan Herald*. Retrieved March 27, 2025, from https://www.deccanherald.com/india/different-versions-of-ramayana-across-the-globe-and-what-do-they-tell-2858889
- Basu, A. (2016, August 25). *Mahabharata*. Retrieved from World History Encyclopedia: https://www.worldhistory.org/Mahabharata/
- Biswas, S. (2023, July 25). Oppenheimer: How he was influenced by the Bhagavad Gita. *BBC*. Retrieved from https://www.bbc.com/news/world-asia-india-66288900
- Chaudhury, D. R. (2023, April 13). India gains from soft power in South East Asia. *Economic Times*. Retrieved from https://m.economictimes.com/news/politics-and-nation/india-gains-from-soft-power-in-south-east
- Goswami, D. (2020, August 3). Indian Epics and their Universal Influence. *India Foundation*. Retrieved from https://chintan.indiafoundation.in/articles/indian
- Gururaj, R. (2021, February 14). Sumatra's Indian Connect. *Jakarta Globe*. Retrieved from https://jakartaglobe.id/opinion/sumatras-indian-connect
- Mishra, R. (2011, January 19). Mosaics of Cultures: Investigating the Role of Cultural Linkages in India-Indonesia Relations. *Institute for Defense Studies and Analyses*. Retrieved from https://idsa.in/system/files/IB_IndiaIndonesia.pdf
- Nye, J. (2017, February 2017). Soft power: the origins and political progress of a concept. *Nature*. Retrieved from https://www.nature.com/articles/palcomms20178
- Ramabadran, S. (2019, May 3). Ramayana of India, Loved in Indonesia: How the great Indian epic ties India to Asia and ASEAN in an unbreakable bond. *Centre for Soft Power Studies*. Retrieved from https://www.csp.indica.in/ramayana-of-india-loved-in-indonesia-how-the-great-indian-epic-ties-india-to-asia-and-asean-in-an-unbreakable-bond
- Shankar, R. (2025, March 22). *The Legend of Shri Rama, Ramayana in other countries outside Bharatvarsha (India)*. Retrieved March 22, 2025, from https://lordrama.co.in/ramayana-in-different-parts-of-the-world.html
- Weisman, S. R. (1987, October 27). Many Faces of the Mahabharata. *The New York Times*. Retrieved March 25, 2025, from https://www.nytimes.com/1987/10/27/arts/many-faces-of-the-mahabharata.html

Research Paper

Sunita Meena

Political and Socio-Economic Empowerment of Tribal Women Through Women-Centric Policies in Rajasthan

Abstract

Many Bhil, Meena and Sahariya women in Rajasthan have a difficult time with low levels of education (44.4% for tribal women versus 66.1% for other women in the state, Census 2011), shortage of resources and traditional gender roles. Women-specific policies have greatly supported their growth in politics and the economy. Thanks to the 73rd Amendment, Rajasthan's 50% reservation for women and the Panchayats (Extension to Scheduled Areas) Act in 1996, more than 1.45 million tribal women have been elected as representatives in PRIs, improving their political role. Such steps as the Model Women-Friendly Gram Panchayats (2025) have made governance more sensitive to gender concerns. Because of the Rajasthan MSME Policy and Self-Help Groups (SHGs) through the Rajeevika Mission, tribal women have found opportunities in entrepreneurship and microcredit and almost 78% of them now make better decisions than before. Though the Forest Rights Act, 2006, now supports people giving them land titles and economic benefits, its coverage is not yet complete. Thanks to PadhoPardesh and BhamashahSwasthya Bima Yojana, Rajasthan has better literacy (56.97% in 2011) and access to healthcare services. Even though there are improvements, issues like opposition from men in power, differences in schooling and lack of resources continue for many, as shown by the fact that 25% of women aged 20-24 have married before 18 (The Hindu, 2023). The article analyzes policies, reviews their effects and finds out about ongoing problems in the field, backed by up-to-date data and examples. It states that improved approaches and addressing common beliefs can give tribal women in Rajasthan better empowerment, growth opportunities and development.

Key Word

Political empowerment, Social empowerment, Tribal Women, Women centric policy etc.

Introduction

About 9.2 million tribal people or 13.5% of the population, live in Rajasthan, a state that is famous for its rich culture and history (Census of India, 2011). Most of the tribal populations in Rajasthan, for example, the Bhil, Meena, Garasia, Sahariya and many more, live in the southern and southeastern regions including Udaipur, Banswara, Dungarpur and Pratapgarh. Many tribes have a strong female presence and these women support their communities through farming, working in the forests and looking after their homes. Even so, they are challenged by having low degrees of female literacy (44.4% among tribal women vs. 66.1% across females in India in 2011), restricted access to tools for work, discrimination based on gender and not being involved in key decisions. In addition, being far from cities, living under traditional rules and lacking economic support have usually stopped women from having opportunities and independence.

The Rajasthan government has introduced a variety of policies that specifically support women, as part of the national goals for equality. They also cover issues such as giving key positions in government, starting businesses with Micro, Small and Medium Enterprises (MSMEs) and Self-Help Groups (SHGs), land rights under Forest Rights Act, 2006 (FRA) and special education and health plans. For several decades such programs have helped tribal women gain leadership positions, earn income and raise their status in society. Nevertheless, because many policies are not fully put into action and old social beliefs are strong, the challenges have not disappeared.

This article provides an in-depth analysis of these women-centric policies, their impact on the political and socio-economic empowerment of tribal women in Rajasthan, and the persistent barriers to achieving equitable outcomes. By drawing on recent data, case studies, and original references, it highlights the progress made and the areas requiring further attention. The discussion is structured around political empowerment, socio-economic initiatives, challenges, and recent data, offering a comprehensive perspective on how these policies are reshaping the lives of tribal women in Rajasthan.

The significance of empowering tribal women extends beyond individual benefits. As key stakeholders in their communities, empowered tribal women contribute to sustainable development, poverty alleviation, and social cohesion. Their increased participation in governance and economic activities strengthens grassroots democracy and fosters inclusive growth. For instance, tribal women in Rajasthan have been instrumental in advocating for community needs, such as access to clean water, education for girls, and healthcare services. Yet, their journey toward empowerment is fraught with obstacles, including resistance from patriarchal structures, limited access to education, and inadequate infrastructure in tribal areas. By examining the interplay of policy interventions and ground realities, this article aims to shed light on the transformative potential of women-centric policies and the need for sustained efforts to address systemic challenges.

Political Empowerment Through Women-Centric Policies

Constitutional and Legislative Frameworks

The Constitution was changed to require at least one-third of Panchayati Raj Institutions (PRIs) to be reserved for women by the 73rd Constitutional Amendment Act, 1992. As a result of the Rajasthan Panchayati Raj (Amendment) Act, 2008, women and those belonging to the Scheduled Tribe (ST) community got an additional 50% representation in local councils. By passing the Panchayats (Extension to Scheduled Areas) Act, 1996 (PESA), the government went further to ensure that ST women would be given reserved seats for Panchayat elections in areas dominated by tribal people, acknowledging that they have unique governance needs. Because of these laws, tribal women have become more involved in their communities and have a greater impact on local government.

It is easy to see the effects of reservations in Rajasthan by looking at the high number of women elected to PRIs. There are more than 1.45 million women across the state on the PRI and this group includes many tribal women, with many serving as sarpanches (village heads) or members of gram panchayats. In Udaipur, Banswara and Dungarpur, women sarpanches have become agents of change, dealing with problems such as child marriage, supporting women's education and ensuring proper services are given. In Banswara, Kamla Devi, a tribal woman sarpanch, led a campaign to put in handpumps in her village, helping the women there have cleaner water nearby and lift some of the burden of fetching water for long distances.

In 2025, when the Ministry of Panchayati Raj launched the Model Women-Friendly Gram Panchayats (MWFGP), it helped these efforts grow. The goal is to establish governance systems that pay attention to safety, include all genders and value equality. Programs from MWFGP have been introduced in tribal parts of Rajasthan, giving women leaders training and resources to lead better. These panchayats have organized special grievance cells only for women and arranged events to raise awareness on gender-based violence. A panchayat in

Pratapgarh, led by women, successfully spoke up to have a community health center built which greatly improved healthcare services for expectant mothers and young children.

Impact on Political Participation

Tribal women playing larger roles in PRIs has given them a newfound political power. As shown by a study from the National Council of Applied Economic Research (NCAER) in 2023, more women, including tribal women, have been participating in village meetings in Rajasthan, going up from 19.3% in 2005 to 46.6% in 2013. Because youth are now joining politics, India has seen the construction of better roads and bridges, more students able to go to school and better enforcement of laws against issues like child marriage. For example, in Udaipur, tribal women in charge of villages have joined forces with local NGOs to create "Balika Manch" (Girls' Forums) for adolescent girls to stand up for their education and rights.

Yet, becoming politically empowered is full of challenges. Women in tribal communities frequently have limited say, as those above them in the hierarchy such as men in their family or local leaders, usually direct the decisions of elected women representatives. Because of proxy representation, the purpose of reservations is not fully achieved. In Rajasthan in 2021, a report found that even though women were officially in charge of some panchayats, men really made the main decisions. Besides, requirements like having "only two children" and a minimal school background for PRI candidates mostly hurt tribal women who rarely have the education or family planning they require. In 2015, the government of Rajasthan changed the rules to require a Class 8 diploma for gram panchayat and Class 10 completion for the higher PRI elections which disqualified many tribal women from receiving nominations.

Because of these obstacles, capacity-building programs are being offered so that tribal women can gain the abilities required for effective governance. Management courses are organized by the RGAVP for PRI members that cover leadership, money factors and law matters. Such schemes have supported Shanti Bhil from Dungarpur, who was able to do watershed management training and implement her project in the village, benefiting over 200 households. Achievements in women's rights are still limited due to a lack of continuing support, limited knowledge and opposition from society.

Socio-Economic Empowerment Initiatives

Economic Empowerment Through MSMEs and SHGs

Economic empowerment forms a foundation of tribal women's growth and Rajasthan's officials have emphasized programs to promote their financial autonomy and business success. There are policies and programmes created by the state government to help rural women, both women from general communities and women from tribes, by giving them access to credit, financial support and skills. Because of these programs, tribal women are now able to start small businesses, including handicraft units, dairy cooperatives and food processing enterprises. A recent study covered in 2023 proved that females-led MSMEs in Rajasthan encouraged other women to begin their own businesses and reduced poverty, helping sustain the region.

Self-Help Groups (SHGs) have led the way in economic empowerment, mostly in places where tribes are found. SHGs are linked with PRIs and they support group saving, opportunities for microcredit and skill improvement. More than 2.5 million women in Rajasthan have been enlisted into SHGs through the Rajeevika Mission (part of RGAVP) and a large number of these women come from tribal communities. Some things these groups take part in are making handicrafts, collecting different forest produce (e.g., honey, mahua, medicinal herbs) and farming poultry in smaller quantities. The "Adivasi Mahila Sakhi Mandal" in Banswara now allows tribal women to sell their traditional embroidery which earns each woman about Rs. 5,000–Rs. 10,000 every month.

In Rajasthan, the Kudumbashree model which comes from Kerala, has been particularly successful. It mainly stresses working together, starting businesses and improving local communities. A survey released in 2024 in Rajasthan demonstrated that women's economic, social and psychological empowerment

increased due to SHGs. The survey found that 78% of the women said they now make more choices in their homes and 65% said they had gained more control over their finances. SHGs have promoted social unity by bringing various tribal women together and making them disregard caste and clan differences.

Land Ownership and the Forest Rights Act, 2006

The Scheduled Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (Recognition of Forest Rights) Act, 2006 (FRA) extends identical rights to own land and use forest resources to tribal women as men. Through the FRA, women in Rajasthan's tribal areas, especially widows and those single, were given control of land ownership for the first time. In southern Rajasthan, women who have land titles are now seen to have greater financial stability and social prestige, studies show. For example, after getting 2 hectares through FRA in Udaipur, Leela Bai was able to grow crops and work less as a wage laborer.

Even so, there are problems in applying the FRA such as red tape, insufficient knowledge and opposition from some forest officials. Results of a 2019 survey in Rajasthan showed that just half of eligible tribal families had land titles and many women were not included in the process because of traditional male authority. It is also the case that complementary resources like irrigation, seeds and markets are rarely accessible, preventing many farmers from gaining economic benefits from having land. These also gaps have led NGOs such as the Seva Mandir in Udaipur to conduct awareness programs and help tribal women handle FRA claims.

Education and Health Initiatives

Being educated is key to improving oneself economically and the government in Rajasthan has set up many programs for tribal girls to help them go to school. The PadhoPardesh project provides funding for tribal students and the Kasturba Gandhi Balika Vidyalaya (KGBV) system offers homes for girls so they can finish their schooling in faraway areas. Because of these schemes, the number of students enrolled and retaining has increased, leading to higher female literacy in Rajasthan: from 43.85% in 2001 to 56.97% in 2011. Several tribal girls decide to leave school early because they are married young, must look after their family and find the educational environment is not right for them.

Programs aimed at health have made a difference in restricting social and legal barriers to tribal women. The BhamashahSwasthya Bima Yojana which started in 2015, names the female head of the household as the primary cardholder so she can receive cashless healthcare services. It has been of special value for people in tribal areas, since such regions often lack adequate healthcare services. Annapurna Rasoi Yojana gives marginalized populations subsidized food to tackle the lack of nutrients among tribal girls and mothers. In 2023, about 1 million meals were provided through the scheme in tribal districts and it improved the health of mothers and their children.

Challenges to Empowerment

Despite the progress made, several challenges hinder the full empowerment of tribal women in Rajasthan:

1. Patriarchal Norms: Many tribal groups have male-dominated systems where females seldom hold important positions. Because of opposition from men in their families and the community, women find it harder to participate in politics and business. In some tribal villages, women sarpanches have to ask for advice from men before carrying out their duties which lowers their power.

2. Resource Constraints: Lack of credit, markets and technology makes it hard for women entrepreneurs to expand their businesses. Since tribal areas lack infrastructure such as roads and electricity—even though SHGs and MSMEs help a little—it is difficult for their economies to grow.

3. Educational Disparities: Lack of education and high departure from schools for tribal girls are still major issues. According to a 2023 report in The Hindu, not all girls in Rajasthan can attend school, as only 63.5% of them aged 6+ are enrolled and tribal girls have challenges due to often getting married young and needing to handle household tasks.

4. Policy Implementation Gaps: Since the policies are not always applied properly, they do not have much effect. Many challengers in the system such as administration problems, lack of awareness and refusal from local officials usually slow down or stop

empowerment plans.

5. Social Evils: Child marriage and dowry practices again hold women back. Even though it is forbidden, the latest report from The Hindu shows that 25% of women aged 20 to 24 were married before they reached 18 in Rajasthan.

Solving these problems calls for various actions such as educational programs, better roads and buildings and stricter enforcement of the law.

Recent Data and Insights

Analysis of recent information brings to light advances and differences in empowering tribal women. The 2023 report by The Hindu found that Rajasthan doesn't fare well in women's empowerment, as girls aged 6 and above often miss school (63.5%) and a quarter of women between 20 and 24 were married as children. But political representation has advanced, as there is now 50% representation for women in PRIs which is clearly making a difference. As a result of having women-led panchayats, efforts are made to ensure all pregnant people receive prenatal vitamins and there are more efforts to guarantee clean water.

A survey in 2024 on Community-Based Organizations (CBOs) in Rajasthan highlighted their part in empowering the community. 78% of women surveyed said they have more control over decisions and 65% notice they have a bigger say in financial matters. In these areas, women have led changes that provide more education and healthcare and enrollment in KGBVs has increased by 20% since 2015.

Conclusion

Because of policies for women such as PRI reservations, FRA, MSME initiatives, SHGs and education and health programs, tribal women in Rajasthan have become more empowered. Because of these programs, tribal women can take on leadership responsibilities, gain chances to make an income and feel more respected by others. Even so, bureaucratic influence, limited resources, differences in education and challenges in making reforms hold back women from achieving equality. For empowerment to be fair in Rajasthan, community participation, increasing skills and expanding infrastructure should be made top government goals. When tribal women are supported, Rajasthan can see strong and fair development, further grassroots democracy and protect its environment.

Research Scholar
Department of Political Science
Jai Narain Vyas University Jodhpur

References:

1. Census of India. (2011). *Primary Census Abstract: Scheduled Tribes*. Government of India.
2. National Council of Applied Economic Research. (2013). *Women's Participation in Village Meetings in Rajasthan*.
3. Tiwari, S., & Saha, S. (2020). *Impact of MSMEs on Women's Empowerment in Rajasthan*. Journal of Management Research and Analysis.
4. Zaidi, M. (2019). *Tribal Women's Empowerment Through the Forest Rights Act, 2006 in Southern Rajasthan*. Asian Journal of Women's Studies, 25, 47-75.
5. *The Hindu*. (2023). *Rajasthan Lags Behind in Women Empowerment and Economic Measures*.

Research Paper

Strategies for Professional Development of Teachers for Effective Teaching-Learning Process in view of NEP 2020

Dr. Neha Gupta* **Dr. Raj Lakshmi Raina**** **Dr. Nameirakpam Rohen Meetei*****

Abstract

New Educational Policy (NEP-2020) is a revolutionary document for Indian Educational system. It not only talks about the need of paradigm shift in values, content and multidimensional development of students but also give due importance to professional development of teachers as it is the teaching fraternity which bears the sole responsibility of converting theory into practice. Because of multiple roles of teachers and other curricular concerns, teachers lack motivation to perform at their best. They face difficulties in aligning themselves with the changing demands of educational system.

Keeping the exponentially decreasing pattern of quality education in mind, this research is conducted to study the perceptions of teachers towards the professional development.This paper is an attempt to identify the potential challenges faced by teachers for their professional development. It also proposes the possible action plan with reference to NEP 2020 for effective teaching-learning by developing teachers professionally. It is a Qualitative research based on the series of Focussed Group Discussion and Interview of various school Principals from different states. The findings of this research listed various strategies for professional development of teachers like provision of institutional support system, maintenance of database, implementation of peer-based assessment, provision of positive feedback, willingness to change and self-development of teachers. The results of this research will be useful for stakeholders to implement action plan for effective professional development of teachers. It will also give insight to statutory bodies of Teacher education for conducting and funding professional development activities round the year with the aim of active and maximum level of participation.

Keywords:

Continuous Professional Development, Quality Education & Teachers, Institutional Provisions, Peer-evaluation, Feedback

Introduction:

"The only skill that will be important in the 21st century is the skill of learning new skills. Everything else will become obsolete over time".

Peter Drucker

The National Education Policy 2020 (NEP 2020), which was agreed upon by the Union Cabinetof India on 29 July 2020, gives the vision and guidelines of India's new education system.The vision of the National Education Policy is:

"National Education Policy 2020 envisions an India-centric education system that contributes directly to transforming our nation sustainably into an equitable and vibrant knowledge society by providing high-quality education to all." In addition to this vision, NEP has one very precise vision to have certifiedand professionally trained teachers by 2030.

According to the union minister of education Ramesh Pokhriyal, "Teacher professional learning is

of increasing interest as a critical way to support the increasingly complex skills students need to learn in order to succeed in the 21st century". To focus more on this area of concern, training development programmes for In-service teachers were significantly became part of several Government of India's schemes during 1994. Over the years, from DPEP (1994) to the SSA (2014), the fixed 20-days annual training module developed into institutionalised training.

High quality learning and teaching from teachers is the need of the society. To meet these needs and to maintain the benchmark of educational system, it becomes imperative for teachers to have certain skill set in assessment and other teaching practices.

Meaning of Professional Development

According to Steyn and Niekerk (2002) and Gulston [2010], Professional development describes "an ongoing development programme that focuses on the whole range of knowledge, skills and attitudes required to educate learners effectively". Professional development activities may include in-service training programmes, academic activities like curriculum designing and reviewing, peer-based learning/ collaboration, mentoring activities, participation inseminars/workshops/conferences etc. The rationale behind professional development is centred on the development of student growth and achievement. Effective professional development is familiar with multiple formats factors, and contexts. It uses combinations of different approaches, models and mediums, based on the needs of the school community. The focus of these programs is to design and develop processes for improving professional knowledge, skills and attitude of professionals and in turn for improving students' performance. Training is an important part of teacher preparation programs, especially for those aspects of teaching that are more skill-like in their conception, but there are many other important aspects of teaching that can only be nurtured through reflective strategies and experiences (Rahman, et al, 2011). According to Solheim, (2017), effective teacher learning is a continuous process that encourages teachers' teaching skills, master new knowledge, develop new proficiency which in turn, help improve students' learning.Studies suggest that teachers undergoing professional development programmes can bring more effective changes and improvement than those who do not undergo any professional development programmes. According to the Zey (1984, cited in Ingersoll & Strong, 2011), if the teachers have received effective training and induction program, they can implement their teaching profession effectively and keep their retention in their profession and then can provide the improved students' learning.

The skills necessary for the 21st century, including critical thinking, problem solving, and creativity, are essential for teachers to effectively use in their classrooms. To be proficient in these instructional approaches, it is important for teachers to complete professional training and ongoing professional development, such as teacher induction and training programs. Research has shown that teachers with a strong pedagogical background and effective training are more successful in their profession. Teacher induction can involve a variety of activities designed to support new teachers, including orientation sessions, faculty collaboration, meetings with supervisors, developmental workshops, extra classroom assistance, reduced workloads, and mentorship. Professional development helps teachers to increase their knowledge and understanding of their subject area and pedagogy, which can ultimately improve their teaching effectiveness.

While it has been well established that ongoing professional development can contribute to the effectiveness of teachers, there are many questions that remain unanswered about the most effective ways for teachers to learn and grow through professional development, the challenges and dilemmas that teachers may face during professional development, and the ways in which professional development can be supported and encouraged within the institutional context. These questions include the effective ways for promoting learning in teachers, challenges and dilemmas that teachers face for participation in professional development programme etc. There is a wide variety of questions pertaining to this comprehensive domain like; How can adequate time,

resources, funding, and facilities be provided to ensure that teachers have the opportunity to participate in professional development and meet the objectives of NEP2020? How can innovations in teaching practice be linked to institutional goals, and how can student feedback be incorporated into the professional development framework for teachers? Understanding the answers to these questions can help to inform the design and implementation of professional development programs that are effective in supporting teacher growth and development.

As it is the teaching fraternity which bear the sole responsibility of converting theory into practice. This paper is an attempt to understand and analyse the strategies and challenges faced by teachers for their professional development. It is a Qualitative research based on Focussed Group Discussion and Interview of various school Principals from different states of India.

Research Questions

The objectives of the research workwere as follows:

1. To study the perception of in-service teachers towards the professional development.
2. To identify the potential challenges faced by in-service teachers in professional development for effective teaching-learning.
3. To identify/suggest workable strategies for professional development of in-service teachers for effective teaching-learning.

Methodology

The present research employed Qualitative research approach for identifying strategies for professional development of in-service teachers. The researchers conducted focussed group discussions and interviews with 100 school principals of different states.

The interview and FGDs were focussed on varied aspects of NEP 2020 in relation of professional development like possibility of quality teaching after 4-years B.Ed. programme, action-plan of schools for skill development of teachers, mechanism to encourage peer-evaluation, constructive feedback and coaching etc.

Findings

Objective 1: To study the perception of in-service teachers towards the professional development

In order to know the perception of school principals towards professional development, they were asked about the status of the same. They all were in agreement about the infancy stage of professional development. According to them, continuous professional development should not be looked upon only as an upskilling or periodic in-service intervention but as a major elaborative and systematic management system to make our teachers well-equipped and updated with the changes around the world so that they facilitate in meeting the vision of NEP 2020.

Objective 2: To identify the potential challenges faced by in-service teachers in professional development for effective teaching-learning

As per the responses of stakeholders, there are many hurdles for teachers to work for their own professional development. Most of the teachers take teaching as a compulsion in place of passion and interest which stop them for any adaptation or adoption. As a result, they lack willingness for growth and changes. Further, they confined themselves to the syllabus assigned to them which resist them to take learning outside the boundaries of classroom. The other challenges posed by stakeholders are listed in figure 1.

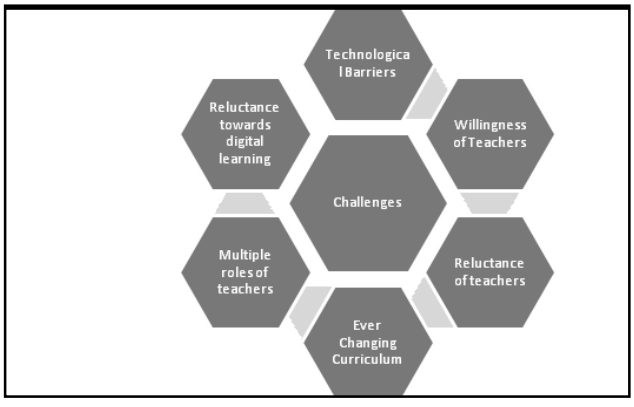

Figure 1: Potential Challenges in professional development of teachers

Objective 3: To identify/suggest workable strategies for professional development of in-service teachers for effective teaching-learning.

In order to overcome the above-mentioned challenges, respondents suggested numerous strategies which can be adopted in order to motivate the teachers at all levels. The staircase of the professional development will start from the requirement of intelligent, bright, and committed teachers who can work to fulfil the ambitious vision of the policy. The education system should practice flexibility and autonomy for teachers so that they can go beyond the prescribed syllabus with emphasis on horizontal rather than the top down approach. We need to earmark 2040 as the target to achieve equitable access to highest quality education irrespective of the socio-economic background of individuals. The Outcome model was also suggested by stakeholders for encouraging teachers for professional development consists of 5 basic aspects: *Awareness, Desire, Knowledge, Ability and Reinforcement.* The other strategies suggested by the cohort of respondents are as follows

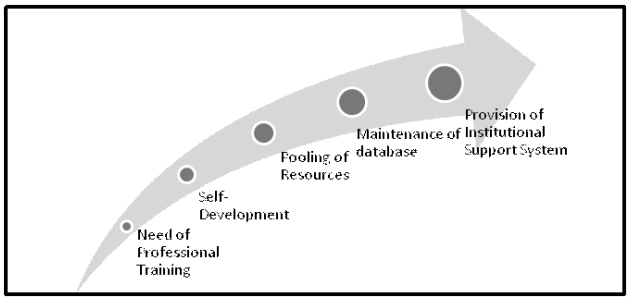

Figure 2: Staircase of Professional Development

a. Provision of Institutional Support System: For continuous professional development, there should be a provision of institutional support in terms of opportunities as well as encouragement (scholarships, incentives, allowances, certifications, overseas-training, exchange programs, awards, rewards etc). to boost the teachers' morale. The institution should provide accessible and engaging professional development opportunities by promoting and creating multiple platforms, both offline and online, for the knowledge upgradation of teachers.

b. Maintenance of Database: A sound database for maintaining a record of the teachers attending any development programme, training programme etc. is required. This database can also be used for sharing resources, team and peer teaching, inter-disciplinary learning, peer evaluation etc.

c. Pooling of resources: Huge pooling of human and non-human resources (financial and other resources) is required to improve the quantity and quality of teachers and to deliver them a proper training and research development which is one of the major challenges of NEP.

d. Self-development: The major stumbling block that was reported as a part of the study is the apprehension and reluctance of teachers towards their development. They need to come out of their comfort zone and convince themselves for the necessary changes.

e. Need of Professional Training: There is a dire need for professional training in making a shift from traditional methodology to the latest one which can make teachers enable to deal with children with varied needs.

f. *Refinement in Pedagogy:* The pedagogy required for teaching needs refinement. Policies should be customized, the teacher should be invested, school administration should provide support to teachers and teachers should take small steps to grow and develop accordingly.

Implications

The findings of the study revealed the actual state of professional development of teachers. Professional development is still a serious concern for teaching fraternity. Irrespective of its important inclusion in almost all-important documents, it is still in the process of implementation. The findings of this study in this regard will be useful for the policymakers and educationists to understand the challenges that in-service teachers face for professional development practices. It will also give insights for practicing some practical strategies for professional development of in-service teachers.

***Assistant Professor,**
AIBAS, Amity University, Noida
****Assistant Professor,**
AIBAS, Amity University, Noida
*****Assistant Professor,**
AIBAS, Amity University, Noida

References

- Kalyani, P. (2020). An Empirical Study on NEP 2020 [National Education Policy] with Special Reference to the Future of Indian Education System and Its effects on theStakeholders. Journal of Management Engineering and Information Technology
- New Education Policy (2020), Ministry of Human Resource Development, Government of India, English version. Retrieved fromhttps://www.mhrd.gov.in
- Panditrao M.M., &Panditrao M.M. (2020). National Education Policy 2020: What is in it for a student, a parent, a teacher, or us, as a Higher Education Institution/University? *Adesh Univ J Med SciRes. 2*(2):70-9.
- Aithal, P. S., &Aithal, Shubhrajyotsna (2019). Analysis of Higher Education in Indian National Education Policy Proposal and Its Implementation Challenges. *International Journal of Applied Engineering and Management Letters, 3* (2).
- Jebaraj, P. (2 August 2020). "The Hindu Explains | What has the National Education Policy 2020 proposed?". The Hindu. ISSN 0971-751X

Websites and URLs

- https://timesofindia.indiatimes.com/readersblog/theaitics/implications-of-the-national-educationpolicy-2020-on-higher-education-in-india-2-24729/
- chrome extension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://ijrpr.com/uploads/V3ISSUE2/ijrpr2644-a-study-on-national-education-policy2020.pdf
- https://www.therandomvibez.com/skill-quotes/chrome extension://efaidnbmnnnibpcajpcglclefindmkaj/https://files.eric.ed.gov/fulltext/ED606741.pdf
- https://www.intechopen.com/chapters/65929https://www.researchgate.net/profile/Dolores-Hervie/publication/330282723_Enhancing_Teachers%27_Performance_through_Training_and_Development_in_Ghana_Education_Service_ A_Case_Study_of_Ebenezer_Senior_High_School/links/5da97f1492851c577eb82141/Enhancing-Teachers-Performance-through-Training-and-Development-in-Ghana-Education-Service-A-Case-Study-of-Ebenezer-Senior-High-School.pdf?origin=publication_detail
- https://www.academia.edu/44394602/Sailing_against_the_Waves_Challenges_and_Coping_Mechanisms_of_Teachers_Assigned_in_a_Coastal_School

राष्ट्रियशिक्षानीतौ प्रतिबिम्बितम् औपनिषदिकं शिक्षादर्शनम्

डा. कल्पना आर्या

शोधसारः

विश्वस्मिन्विश्वे वैदिकवाङ्मयं प्राचीनतमसाहित्यमस्तीति सर्वैरपि विद्वद्भिः सहर्षमङ्गीक्रियते। वैदिकसाहित्यमिदम् अत्यन्तविस्तृतं सुसङ्घटितञ्च वर्तते, यच्च संहिता-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषत्सु चतुर्षु भागेषु विभक्तम्। वैदिकवाङ्मयस्य विकासक्रमे आरण्यकानामनन्तरमुपनिषदां स्थानमस्ति। उपनिषत्शब्देन तात्पर्यं '**समेषाम् अर्थोत्पादकानां सांसारिकक्रियाकलापानां विमोहकर्त्री विद्या**' इति। उपनिषत्सु गुरुशिष्ययोः संवादरूपेण आत्मा-ब्रह्म-जगत्-इत्यादिगूढविषयाणां सरलतापूर्वकं प्रतिपादनमस्ति। भारतीयसंस्कृतेः मान्यतानुसारं शिक्षा मुक्तिदात्री भवति '**सा विद्या या विमुक्तये**'। शिक्षाव्यवस्था संस्कृतिसमाजयोः विकासाय आधारभूता भवति। यस्याः दयनीयस्थित्या भारतशासनेन नूतनशिक्षानीतेः आवश्यकता अनुभूता। एतदर्थमेव खीष्टस्य 2020 तमवर्षे नूतनराष्ट्रियशिक्षानीतिः (NEP-2020) निर्मिता। इयं भारतीयसंस्कृतेः महनीयतत्त्वैस्सह अर्वाचीन-वैज्ञानिक दृष्टिकोणैः समन्विता अस्ति। एतस्यामुपनिषदाम् उदात्तविचाराणां प्रतिष्ठापनार्थं कीदृशः प्रयासरू विहितः? इति शोधपत्रेऽस्मिन् परिशीलनीयमस्ति।

राष्ट्रियशिक्षानीतौ विद्यालयी शिक्षा, उच्चतर-शिक्षा, अन्याः केन्द्रीयविचारणीयाः बिन्दवः, क्रियान्वयनस्य रणनीतिश्चैते चत्वारः भागाः सप्तविंशति-अध्यायाश्च सन्ति। अत्र भारतीयभाषाभिः स्वकीयज्ञानपरम्परायाः सांस्कृतिकसम्पदश्च ज्ञानं मुख्यं ध्येयमस्ति। राष्ट्रियशिक्षानीतिः उपनिषदां शिक्षादर्शनमुद्दिश्य निर्मिता। यस्य प्रभावः नूतनशिक्षानीतेः आलोके निर्मितायाम् 'आधारभूतस्तरस्य राष्ट्रियपाठ्यचर्यायाः रूपरेखायाम्[1] अपि दरीदृश्यते। या तैत्तिरीयोपनिषदः 'पञ्चकोशविकासः' इत्यनेन सम्बद्धाऽस्ति। व्यक्तित्वनिर्माण-प्रक्रियासन्दर्भे एते पञ्चकोशाः अत्यन्तप्रभावशालिनः भवन्ति।[2] राष्ट्रियपाठ्यचर्यायाः रूपरेखानुरूपं राष्ट्रियशैक्षिकानुसन्धान-प्रशिक्षणपरिषदा पञ्चकोशविकासमुद्दिश्य नूतनपाठ्यपुस्तकानां निर्माणमारब्धम्। राष्ट्रियशिक्षानीतौ उपनिषदां तर्कः, प्रश्नः संवादश्च इत्यादिविधीनामनुगुणमधिगमस्य विभिन्नयुक्तयः अनुसृताः। अनेन उपर्युक्तविमर्शेण स्पष्टमस्ति यत् औपनिषदिकशिक्षादर्शनं भारतीयसंस्कृतौ महनीयं रत्नमिव प्रतिभाति। उपनिषदां शिक्षादर्शनस्य पञ्चकोशादितत्त्वा-नामङ्गीकरणेन राष्ट्रियशिक्षानीतौ अस्य स्पष्टप्रभावः दरीदृश्यते।

शोधलेखः

भारतीयसंस्कृतेः मान्यताया अनुसारं शिक्षा मुक्तिदात्री भवति, तदाह—'**सा विद्या या विमुक्तये**'। शिक्षायाः माध्यमेन व्यक्तेः चरित्रस्य निर्माणं भवति। शिक्षयैव मानवीयगुणानां सर्वाङ्गपूर्णः विकासोऽपि सम्भवति। अतः एव प्रत्येकं समाजः उत्तमशिक्षाव्यवस्थायाः कामनां करोति। शिक्षाव्यवस्था संस्कृतेः समाजस्य च विकासाय आधारभूता भवति। यस्याः दयनीयस्थितेः कारणेन नूतनायाः शिक्षानीतेः आवश्यकता अनुभूता। अपि च जगतः परिवर्तनशीलत्वात् निश्चिते समयान्तराले नवनीतीनां निर्माणम् अपेक्ष्यते। एतदर्थमेव खीष्टस्य 2020 तमे वर्षे भारतशासनेन नूतना राष्ट्रियशिक्षानीतिः (NEP-2020) निर्मिता। इयं भारतस्य प्राचीनसंस्कृतेः महनीयतत्त्वैः सह अर्वाचीन-वैज्ञानिकदृष्टिकोणैः समन्विता अस्ति। एतस्यां राष्ट्रियशिक्षानीतौ उपनिषदाम् उदात्तविचाराणां प्रतिष्ठापनस्य कीदृशः प्रयासः विहितः? इत्यत्र अस्मिन् शोधपत्रे परिशीलनीयम् अस्ति।

विश्वस्मिन्विश्वे वैदिकवाङ्मयं प्राचीनतमं साहित्यम् अस्तीति सर्वैरपि विद्वद्भिः सहर्षम् अङ्गीक्रियते। भारतीयसंस्कृतौ वैदिकवाङ्मयस्य व्यापकः प्रभावः महत्त्वपूर्ण स्थानं च वर्तते। मानवजातेः प्राचीनतमः इतिहासः, सामाजिकनियमः, सदाचारः, दर्शनम्, कला, संस्कृतिः धर्मश्च इत्यादीनाम् आधारः वेद एव भवति। वेदानां महनीयगौरवस्य वर्णनं कुर्वता भगवता मनुना निगदितं यत्—

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनाम् आत्मनस्तुष्टिरेव च॥
'यः कश्चित् कस्यचिद् धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः'॥[3]

वैदिकवाङ्मयं भारतीयसंस्कृतेः, आध्यात्मिकजीवनस्य सांस्कृतिकविकासस्य च ज्ञानाय कोशग्रन्थ इव प्रमाणस्वरूपं वर्तते। साहित्यमिदं सहस्राब्दिभिः प्रचलितमस्ति। भारतीयसंस्कृतेः परिपूर्ण ज्ञानमस्य समुचितं रसास्वादं विना नैव सम्भवति। वैदिकं साहित्यमिदम् अत्यन्तं विस्तृतं सुसङ्घटितञ्च वर्तते, यच्च संहिता, ब्राह्मणम्, आरण्यकम् उपनिषत् चैतेषु चतुर्षु भागेषु विभक्तमस्ति। एतेषु वेदशब्देन मुख्यतया मन्त्ररूपेण संहिताभागस्य ग्रहणं भवतिय ब्राह्मणानि आरण्यकानि उपनिषदश्च वेदमन्त्राणां भाष्यं व्याख्या वा भवन्ति।

वैदिकवाङ्मयस्य विकासक्रमे आरण्यकानां पश्चात् उपनिषदां स्थानं भवति। वैदिकसाहित्यस्य अन्तिमभागत्वेन उपनिषद्ग्रन्थाः 'वेदान्तः' इत्यनया संज्ञया अपि व्यवह्रियन्ते। उपनिषत्सु आत्मज्ञानम्, मोक्षज्ञानम्, ब्रह्मज्ञानञ्च इत्यादितत्त्वानां प्राधान्यं भवति। अत एव उपनिषदः आत्मविद्या, मोक्षविद्या ब्रह्मविद्या चेति नाम्नाऽपि ज्ञायन्ते। उपनिषत्शब्देन तात्पर्य **'समेषाम् अर्थोत्पादकानां सांसारिकक्रियाकलापानां विमोहकर्त्री विद्या'** इति वर्तते। उपनिषदाम् अध्ययनेन ऐहिकविषयेषु वैराग्यं जायते, तस्मात् संसारस्य बीजभूता विद्या विनष्टा भवति। अतः जीवः अविद्यायाः बन्धनाद्विमुच्य ब्रह्मज्ञानस्य प्राप्तावपि समर्थः भवति।

उपनिषत्साहित्यम् आध्यात्मिकज्ञानस्य स्रोतांसि भवन्ति। उपनिषत्सु गुरुशिष्ययोः संवादरूपेण आत्मा, ब्रह्म, जगत् इत्यादीनां गूढविषयाणां सरलतापूर्वकं प्रतिपादनं जातम्। उपनिषदां संख्या शताधिकं मन्यते। वेदस्य शाखानां ब्राह्मणानाम् आरण्यकानां च सदृशमेव कालचक्रे अधिकांशोपनिषदः लुप्तप्रायताम् अवाप्नुवन्। मुक्तिकोपनिषदि दशोपनिषदः समुल्लिखिताः वर्तन्ते। तद्यथा

'ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्य-तित्तिरिः।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यकं दश'॥ इति।

उपनिषदः अध्यात्मविद्यायाः दर्शनस्य च अद्वितीयाः ग्रन्थाः सन्ति। औपनिषदिके शिक्षादर्शने ब्रह्म, जीवः, जगत्, अध्यात्मश्च इत्येतेषां विषये चिन्तनं भवति। उपनिषदां माहात्म्यम् इदं वर्तते यत् तेषाम् उत्तरवर्तिग्रन्थेषु अध्यात्मदर्शनस्य प्रभावो दृश्यते। न केवलं पुरातनकाले एव प्रत्युत 'साम्प्रतम् अपि न कोऽपि एतादृशः जनः स्यात्, यस्य हृदये उपनिषदां विशुद्धानां प्रश्नानां पवित्राणां विचाराणां च अध्ययनेन नूतनानां भावानाम् उदयानुभूतिः न भवेत्, यः स्वस्य चक्षुषां समक्षं नवप्रकाशं न पश्येत्'। यद्यपि उपनिषदः ज्ञानकाण्डरूपेण अध्यात्मविद्यायाः प्रतिपादनं कुर्वन्ति, तथापि साधारणमनुष्यैः स्वकीयजीवने कथं कर्म कर्तव्यम्? इत्यस्य उल्लेखनम् अपि उपनिषत्सु प्राप्यते।

वेदोपनिषत्कालीना भारतीया ज्ञानपरम्परा कालातिवर्तिनी वर्तते। या हि वैदिककालात्परं बौद्धकाले, जैनकाले तदुत्तरवर्तिकाले चापि सततं प्रचल्यमाना आसीत्। समृद्धा भारतीया ज्ञानपरम्परेयं मुगलानाम् आङ्ग्लानां च शासनैः ह्रसत्वम् उपागता। एतस्याः पुनरुज्जीवनाय अस्माकं शिक्षाव्यवस्थायां नीतिगतं परिवर्तनम् अपेक्षितं भवति। अत एव स्वातन्त्र्योत्तरकाले ख्रीष्टस्य 1948, 1952, 1964, 1968, 1986, 1992 वर्षेषु भारतीयशासनेन विभिन्नसमितयः संघटिताः। याभिः शिक्षाव्यवस्थायाः तत्सम्बद्धनीतीनां निर्धारणस्य च कार्यं विहितम्। किन्तु स्वतन्त्रतायाः प्राप्तेरनन्तरं वाममार्गिविचारैः प्रभावितजनाः भारतीयशासनस्य उच्चपदेषु समारूढाः। अपि च शीर्षनीतिनिर्माणस्य संस्थासमित्यादिषु तेषाम् एकाधिकारः अभवत्। तस्मात् अस्माकं सनातनसंस्कृतिं तद्विशालवैदिक-ज्ञाननिधिं च प्रति पूर्वाग्रहपूर्णः व्यवहारः जातः। परिणामतः भारतस्य शिक्षाव्यवस्थायाः स्वरूपम् एव परिवर्तितं जातम्। यस्याः ज्ञानपरम्परायाः प्रचारः प्रसारः सम्मानं च करणीयम् आसीत्य तां प्रति अज्ञानम्, अनभिरुचिः दुराग्रहश्च स्यात् इत्यस्य कुटिलः प्रयासः जातः। एतेषां दुर्गुणानाम् उपशमनार्थमेव भारतशासनेन भारतस्य प्राचीनज्ञानपरम्परायाः अनुगुणं राष्ट्रियशिक्षानीतेः निर्माणं कृतम्।

राष्ट्रियशिक्षानीतौ निम्नोक्ताः चत्वारः भागाः सन्ति विद्यालयी शिक्षा, उच्चतर-शिक्षा, अन्याः केन्द्रीयविचारणीयाः बिन्दवः, क्रियान्वयनस्य रणनीतिः चेति। ये हि सप्तविंशति-अध्यायेषु अन्तर्विभक्ताः सन्ति। विकसितभारतस्य संकल्पानुसारं शशिक्षानीतिरियं ख्रीष्टस्य 2040 तमवर्षपर्यन्तं भारतस्य

अद्वितीयशिक्षाप्रणालीं निर्मातुं सफला भविष्यती'[4] त्यत्र एषा कामना विहिता।

अस्यां नवनिर्मितायां राष्ट्रियशिक्षानीतौ बहुविषयी शिक्षा, सर्वाङ्गीणः विकासः, मानवात् मानवतां प्रति, जडतः जगत्पर्यन्तञ्च इत्येते विचाराः समाविष्टाः वर्तन्ते। राष्ट्रियशिक्षानीतौ भारतीयभाषाणां माध्यमेन स्वस्य ज्ञानपरम्परायाः तथा च सांस्कृतिकसम्पदः विषयकम् अवगमनं स्यात् इति ध्येयं वर्तते। यत्र भारतीयभाषाः प्रारम्भिकशिक्षया सह योजिताः सन्ति। अनेन दुर्गमक्षेत्रस्थानां जनानां जीवने धनात्मकः प्रभावः स्यात्, तद्यथा- यदि आदिवासिक्षेत्रस्थजनानां सन्ततिः स्वकीयानां स्थानीयभाषोपभाषाणां माध्यमेन पठितुमिच्छति चेत् सः सरलतापूर्वकम् अधिगन्तुम् अवसरान् लभेत।

पूर्ववर्तिनीभिः शिक्षानीतिभिः छात्राणां ज्ञानं केवलं जीविकोपार्जनं पर्यन्तमेव सीमितम् आसीत्। तस्मात् कारणात् अवसराणाम् अभावेन निरुद्योगितायाः समस्या प्रवर्धिता जाता। एतादृशीनां समस्यानां समाधानाय नूतनशिक्षानीतौ भारतस्य प्राचीनज्ञानपरम्परायाः विशिष्टं स्थानं कल्पितम्। यस्मिन् योगायुर्वेदाद्याः पारम्परिकनिधयः कौशलाधारिता शिक्षा च पाठ्यक्रमे समाविष्टाः सन्ति। अपि च अस्मिन् क्षेत्रे नूतनानाम् अनुसन्धानकार्याणां माध्यमेन समग्रमानवविकासस्य संकल्पना विकसिता भवेत्।

साम्प्रतिकशिक्षाव्यवस्थायाः नीतिनिर्मातृभिः उपनिषदां शिक्षादर्शनस्य प्रमुखतत्त्वानि उद्दिश्य नूतनशिक्षानीतिः निर्मिता। येषां प्रभावः नूतनशिक्षानीतेः आलोके निर्मितायाम् 'आधारभूतस्तरस्य राष्ट्रियपाठ्यचर्यायाः रूपरेखा - 2023' (NCF-FS)[5] इत्यस्यामपि दरीदृश्यते। राष्ट्रियशिक्षायाः नवनीतावस्याम् औपनिषदिकशिक्षादर्शनस्य महत्त्वपूर्णानां तत्त्वानां विनिवेशः सिद्धान्तरूपेण एव न कृतः, प्रत्युत तस्य व्यावहारिकप्रयोगाय अपि प्रयत्नानि प्रारब्धानि। एतदर्थं राष्ट्रियशैक्षिकानुसन्धानप्रशिक्षणपरिषदा (NCERT)[6] राष्ट्रियपाठ्यचर्यायाः रूपरेखानुरूपं नूतनपाठ्यपुस्तकानां निर्माणकार्यमपि सम्पादितम्। यस्मिन् औपनिषदिकशिक्षादर्शनस्य प्रतिबिम्बः पूर्णतया परिलक्षितो भवति।

'आधारभूतस्तरस्य राष्ट्रियपाठ्यचर्यायाः रूपरेखा' मुख्यतः तैत्तिरीयोपनिषदि आधारिता वर्तते। या हि तैत्तिरीयोपनिषदः ''पञ्चकोशविकासः'' इत्यस्य आधारभूतावधारणया सम्बद्धा वर्तते। ते च पञ्चकोशाः भवन्ति - अन्नमयकोशः, प्राणमयकोशः, मनोमयकोशः, विज्ञानमयकोशः आनन्दमयकोशः चेति। तैत्तिरीयोपनिषदि ब्रह्मवल्ल्याम्[7] एतेषां पञ्चकोशानां वर्णनमित्थं विहितम् -

1. **अन्नमयकोशः** - ''स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः तस्येदमेव शिरोऽयं दक्षिणः पक्षः, अयमुत्तरः पक्षः, अयमात्मा, इदं पुच्छं प्रतिष्ठा''।

2. **प्राणमयकोशः** - ''तस्माद् वा एतस्मादन्नरसमयात् अन्योऽन्तर आत्मा प्राणमयः। तेनैष पूर्णः। स वा पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधताम्। अन्वयं पुरुषविधः। तस्य प्राण एव शिरः। व्यानो दक्षिणः पक्षः। अपानमुत्तरः पक्षः। आकाश आत्मा। पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा''।

3. **मनोमयकोशः** - ''तस्माद्वा एतस्मात् प्राणमयात् अन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधताम्। अन्वयं पुरुषविधः। तस्य यजुरेव शिरः। ऋग्दक्षिणः पक्षः। सामोत्तरः पक्षः। आदेश आत्मा। अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा''।

4. **विज्ञानमयकोशः** - ''तस्माद् वा एतस्मान्मनोमयात्, अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधताम्। अन्वयं पुरुषविधः। तस्य श्रद्धैव शिरः। ऋतं दक्षिणः पक्षः। सत्यमुत्तरः पक्षः। योग आत्मा। महः पुच्छं प्रतिष्ठा''।

5. **आनदमयकोशः** - ''तस्माद्वा एतस्माद् विज्ञानमयात्, अन्योऽन्तर आत्मा आनन्दमयः। तेनैष पूर्णः, स वा एष पुरुषविध एव, तस्य पुरुषविधताम्, अन्वयं पुरुषविधः। तस्य प्रियमेव शिरः, मोदो दक्षिणः पक्षः, प्रमोद उत्तर पक्षः, आनन्द आत्मा, ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा''। इति।

'आधारभूतस्तरस्य राष्ट्रियपाठ्यचर्यायाः रूपरेखा - 2023' औपनिषदिकदर्शनस्य पञ्चकोशम् अधिगमस्य पञ्च आयामैः साकं योजयति। एते पञ्च आयामाः अधोलिखिताः सन्ति- शरीर-गत्यात्मकः, समाज-संवेगात्मकः, भाषा-साक्षरता, संस्कृतिः तथा च समाजबोधः। पञ्चकोशविकासस्य प्रक्रियायां मानवस्य व्यक्तित्वस्य पञ्चविधानां कोशविशिष्टानां विकासः निहितः भवति। मानवजीवने व्यक्तित्वनिर्माणस्य प्रक्रियायाः सन्दर्भे एते पञ्चकोशाः अत्यन्तं प्रभावशालिनः भवन्ति।

'आधारभूतस्तरस्य राष्ट्रियपाठ्यचर्यायाः रूपरेखा' याः निर्देशानाम् अनुगुणं निर्मितेषु पाठ्य-पुस्तकेषु सम्प्रति प्रथम-द्वितीय कक्षयोः एव पुस्तकानां निर्माणं जातम्। अवशिष्टानां तृतीयाकक्षातः द्वादशीकक्षायाः पाठ्य-पुस्तकानि अग्रिमे शैक्षणिकसत्रे उपलब्धानि भविष्यन्ति इति परिषदः अधिकारिभिः

सूच्यते।[8] पञ्चकोशम् आधृत्य उपर्युक्तकक्षयो: भाषागणितविषययो: पुस्तकानि एव उपलब्धानि सन्ति। येषु एकं पुस्तकं गणितस्य अस्ति। अन्यानि हिन्दीभाषाया: आङ्ग्लभाषाया: उर्दूभाषाया: च पुस्तकानि सन्ति। उभयो: कक्षयो: समेषां पुस्तकानां नामानि समानानि एव सन्ति। गणितस्य पाठ्य-पुस्तकस्य नाम 'आनन्दमय गणित' इति वर्तते। हिन्दीभाषाया: पुस्तकस्य नाम 'सारंगी' इति अस्ति। आङ्ग्लभाषाया: पुस्तकस्य नाम 'मृदङ्ग' तथा च उर्दूभाषाया: पुस्तकस्य नाम 'शहनाई' इति वर्तते। राष्ट्रियशैक्षिकानुसन्धानप्रशिक्षणयोर्परिषद: अनुसारम् एतानि पुस्तकानि दक्षताधारितां सामग्रीं सरलां रुचिपूर्णा च विधास्यन्ति।

शिक्षानीतिविषये राष्ट्रियस्तरस्य विचारविमर्शात्परं राज्यानि अपि नवनीतिम् अनुसृत्य भारतीयज्ञानपरम्परां प्रति उन्मुखा: अभवन्। अस्मिन्नेव क्रमे छत्तीसगढ़प्रदेशस्य राज्य-शैक्षिक-अनुसन्धान-प्रशिक्षणयोर्परिषदा (SCERT-CG) अपि उपनिषदां शिक्षादर्शनस्य अनुसरणं कृतम्। तत्रापि तैत्तिरीयोपनिषद: पञ्चकोशात् प्रेरणाम् अवाप्य नूतनानां पाठ्य-पुस्तकानां निर्माणं कृतम्। छत्तीसगढ़शासनस्य शिक्षाविभागघ्स्य अनुसारम् एतेषां पुस्तकानां रचनायां 'जादुई पिटारा' इत्यस्य अवधारणा समाहिता अस्ति। अत्र पाठ्यचर्याया: लक्ष्येण सह पञ्चकोशानां समावेशनस्य कार्यमपि विहितम्। येन छात्राणां जीवनस्य शारीरिकं सामाजिकं भावनात्मकं नैतिकञ्च उन्नयनं भवेत्।

उपनिषदां तर्क:, प्रश्न: संवादश्च इत्यादीनां विधीनाम् अनुगुणम् अधिगमस्य विभिन्ना: युक्तय: अनुसृता: सन्ति। एतेषाम् अतिरिक्तम् अत्र तादृशीनां विषयसामग्रीणां गतिविधीनां च प्राचुर्यम् अपि वर्तते, या: छात्रेषु पर्यावरणं प्रति संवेदनशीलताया: भावनाया: विकासे अत्यन्तं सहायिका: भवन्ति।

भारतीयसंस्कृति: विविधताभि: सम्पन्ना अस्ति। असंख्यका: भाषोपभाषा: शास्त्रीयं नृत्यं सङ्गीतं पारम्परिकलोककलाश्च इमां सांस्कृतिकरूपेण समृद्धां कुर्वन्ति। स्वादिष्टानि व्यञ्जनानि उत्तमवस्त्राभरणादीनि च जीवनस्य प्रत्येकस्मिन् क्षेत्रे भारतीयसंस्कृते: वैविध्यस्य प्रमाणभूतानि सन्ति। एतानि बहुमूल्यानि सांस्कृतिकतत्त्वानि अस्माकं न्यासभूतानि सन्ति। यानि भाविसन्ततिभ्य: अवश्यमेव संरक्षणीयानि। शिक्षाप्रणाल्यां व्यावहारिकप्रयोगेण एतेषां पोषणाय प्रयत्नानि विधातव्यानि। अस्माकं वैदिकसंस्कृते: समृद्धं रूपम् उपनिषत्सु एव अवलोक्यते। उपनिषदां अध्यात्मदर्शनयो: ज्ञानेन एव तात्कालिकशिक्षाव्यवस्थाया: अभिज्ञानं भवितुं शक्यते। उपनिषत्कालिकसाहित्ये वैज्ञानिकं दार्शनिकं धार्मिकं चिन्तनं द्रष्टुं शक्यते। वर्तमानमिव तस्मिन् समये अपि जीवनस्य लक्ष्याणां पूर्तये शिक्षा महत्साधनत्वेन मन्यते स्म। राष्ट्रियशिक्षानीतौ अपि उक्तमस्ति यत् - मानवस्य लक्ष्याणां निर्धारणं तात्कालिकानाम् आवश्यकतानाम् आदर्शानाञ्च आधारेण भवति।

राष्ट्रियपाठ्यचर्याया: रूपरेखाया:[9] अनुसारं '**भारतस्य शिक्षाया: इतिहासस्य समालोचनेन ज्ञायते यत् प्राचीनभारते शिक्षाया: मुख्यम् उद्देश्यं ज्ञानप्राप्ति: आसीत्**'। औपनिषदिकशिक्षायां ज्ञानं सर्वोच्च-उपलब्धि: मन्यते स्म, यतोहि शिक्षाया: मुख्यम् उद्देश्यम् आध्यात्मिकचेतनाया: विकास:, चरित्रस्य निर्माणम्, मनस: उच्चतमाम् अवस्थां यावत् नैतिकम् उत्थानञ्च आसीत्। तथा चैतस्य उद्देश्यं मानवीय-शिष्टाचारस्य अनुसारं व्यवहार: आसीत्। अत:एव कठोपनिषदि मानवमात्रस्य कृते निम्नोक्तम् आह्वानं कृतम् -

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निहिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति॥[10]

तैत्तिरीयोपनिषदि आरम्भे एव उल्लिखितम् अधोलिखितं प्रार्थनामन्त्रम् औपनिषदिकशिक्षादर्शनस्य महनीयं स्वरूपम् उपस्थापयति। यस्मिन् गुरु: शिष्यश्च सम्भूय उपविश्य प्रार्थयन्ति यत् -

''ॐ सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै''॥[11]

इममेव भावम् अङ्गीकृत्य राष्ट्रियशिक्षानीतौ (2020) शिक्षकस्य छात्राणां च अन्तस्सम्बन्धस्य संकल्पना विहिता अस्ति। तदुक्तम् - **अस्माकं छात्राणां राष्ट्रस्य च सर्वोत्तमसम्भव-भविष्यस्य निर्माणार्थं शिक्षकाणां सशक्तीकरणस्य आवश्यकता अस्ति।**[12]

ऋग्वेदे उक्तमस्ति यत् **''आ नो भद्रा: क्रतवो यन्तु विश्वत: दब्धासो अपरीतास:''** अर्थात् प्रत्येकं दिशात: आगच्छन्त:, सात्विका: विचारा: स्वीकर्तव्या:, न केनापि वस्तुना वंचितो भव, सुवचनानि ग्रहीतव्यानि तदैव कल्याणं स्यात्। आधुनिकपरिदृश्ये भारतस्य उपनिषदादिग्रन्थेषु वर्णिताया: प्राचीनज्ञानपरम्पराया: आवश्यकता समस्तमपि विश्वम् अनुभवति। अत एव अस्मिन् विषये अस्माभि: विचारपूर्ण मन्थनं विधातव्यम्। उपनिषदां शिक्षादर्शनस्य अनुसारं मानवेन विद्यया मोक्षप्राप्ति: कर्तव्या। तदुक्तम् -

'विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते'॥[13]

राष्ट्रियशिक्षानीतौ (2020) अपि प्राचीनभारतीयज्ञान-परम्परायां शिक्षायाः लक्ष्यं निम्नोक्तरूपेण समुल्लखितम् अस्ति यत् - **''ज्ञान, परम्परा और सत्य की खोज को भारतीय विचार परम्परा और दर्शन में सर्वदा सर्वोच्च मानवीय लक्ष्य माना जाता था।''**[14]

इत्थम् उपर्युक्तविमर्शेण इदं स्पष्टम् अस्ति यत् औपनिषदिकं शिक्षादर्शनं भारतीयसंस्कृतौ महनीयं रत्नमिव प्रतिभाति। उपनिषदः पञ्चकोशानाम् अङ्गीकरणेन राष्ट्रियशिक्षानीतौ अस्य स्पष्टः प्रभावः अपि दरीदृश्यते। छात्राणां समक्षम् औपनिषदिकशिक्षायाः अनुगुणं वातावरणम् उपस्थापयितुम् एषः एकः अभिनवः प्रयासः अस्ति। यश्च अवश्यमेव छात्रेभ्यः आनन्दस्य अनुभूतिं कारयेत्। पञ्चकोशम् आधृत्य निर्मितानि एतानि नूतनानि पाठ्य-पुस्तकानि कक्षायां पठने नितान्तमेव सहायकानि भविष्यन्ति। अनेन सहैव परिवारे समुदाये वा सार्थकैः अधिगमसंसाधनैः सह अधिगमस्य महत्त्वं वर्धयन्ति। अपि च छात्राणां व्यावहारिकजीवनेन सह संयोजनस्य प्रयत्नं विधास्यन्ति इति।

सहायक आचार्या, संस्कृत विभागः,
दौलतराममहाविद्यालयः,
दिल्लीविश्वविद्यालयः

सन्दर्भ सूची

1. National curriculum framework: Foundation Stage - 2023 by NCERT.
2. National Council for Educational Research and Training, New Delhi.
3. मनुस्मृतिः, 2.6.7.
4. राष्ट्रियशिक्षानीतिः (2020), परिचयः, पृ.सं. 4.
5. National curriculum framework: Foundation Stage - 2023 by NCERT.
6. National Council for Educational Research and Training, New Delhi.
7. तै.उ., ब्र.व. अनु. 1-5
8. जनसत्ता, 6 जुलाई 2023
9. एनसीएफ-एफएस 2023
10. कठोपनिषदि 1.3.14
11. तैत्तिरीयोपनिषदि, 2.2.2
12. राष्ट्रियशिक्षानीति (2020) पृ.सं. 31
13. ईशोपनिषद्, 11
14. राष्ट्रियशिक्षानीति (2020), परिचय, पृ.सं. 4

Research Paper

Dr. Nameirakpam Rohen Meetei*

Dr. Vibhakar Kumar Dixit**

Analysis of Status of Project-based Learning among Middle-School Student's Performance

Abstract

The purpose of this study was to investigate the impact of project-based learning on middle-levelstudents' performance. To fulfil the purpose of the study, a sample of 60 students was taken from a school in which the sample was distributed as 30 boys and 30 girls. All the samples were selected by using convenient sampling. This was descriptive research. The self-made questionnaire was used to carry out this study. The impact of project-based learning on middle-level students was seen by administering the project-based learning survey. The academic scores were taken directly from the school records. The collected data was analysed by using the mean, standard deviation, and t-test. The finding shows that the students are more encouraged by the inclusion of project-based learning in their curriculum. The learning outcomes of both boys and girls showed better learning outcomes, indicating the effectiveness of project-based learning in improving student performance.

Keywords:

Performance, knowledge, attitude, academic achievement, skills

Introduction

The primary focus project-based learning of is on practical learning and enhancing students' retention and application skills, while also equipping them with lifelong skills. Project-based learning is an effective tool for high school students to learn and improve their teaching strategies. Project-based learning (PBL) fosters student engagement, critical thinking, and collaboration. The combination of tangible obstacles fosters autonomy and interdisciplinary collaboration. This learning approach aims to determine its effectiveness in responding to evolving educational needs, emphasizing participation, student-cantered strategies, and technological integration to enhance postsecondary education.

The impact of PBL on middle-level students' learning outcomes, drawing on various studies to highlight its benefits and challenges. Several studies emphasize the positive impact of PBL on students' academic and personal development. Bell (2010) argues that PBL equips students with 21st-century skills, such as critical thinking, problem-solving, and collaboration, which are essential for their future success. This pedagogical approach encourages students to engage deeply with content, promoting a more meaningful learning experience. Abu Hussain and Tilchin (2016) note that teachers' accountability in adaptive PBL settings fosters a supportive learning environment where students can thrive. By adapting projects to meet students' needs, teachers can help students develop self-directed learning skills and increase their engagement. Bagheri (2013) supports this view, finding that PBL significantly enhances self-directed learning skills among educational technology students, which is crucial for lifelong learning.

Biazus and Mahtari (2022) highlight the positive

impact of PBL on secondary students' creative thinking skills. Their study indicates that PBL not only improves academic performance but also fosters creativity, a critical skill in today's innovative world. Similarly, Anazifa and Djukri (2017) show that PBL effectively improves students' thinking skills, including critical thinking and problem-solving abilities. Bravo et al. (2021) and Filippatou and Kaldi (2010) both demonstrate that PBL positively affects academic performance, group work, and motivation. Students participating in PBL are more motivated and engaged, leading to better academic outcomes. This increased engagement is also noted by Kaldi et al. (2011), who found that PBL positively influences pupils' learning attitudes in primary schools.

Despite its many advantages, PBL also presents challenges that educators must address. Aksela and Haatainen (2019) report that teachers find PBL demanding in terms of time and resources. The preparation and implementation of PBL require significant effort, which can be a barrier for some educators. However, these challenges can be mitigated with proper training and support. Botella Nicolás and Ramos Ramos (2022) discuss the dilemmas teachers face when implementing PBL, such as balancing the need for student autonomy with the requirement to cover the curriculum. This tension can impact the effectiveness of PBL if not managed carefully. Additionally, Cervantes et al. (2015) highlight the need for school redesign to support PBL, suggesting that traditional educational structures may not always be conducive to this innovative approach.

Some evidence observed of the effectiveness of PBL is well-documented across various educational contexts. Culclasure et al. (2019) provide evidence from three southeastern public schools, showing that PBL leads to improved academic, behavioural, and social-emotional outcomes. These findings are corroborated by Efstratia (2014), who emphasizes the experiential nature of PBL and its role in enhancing students' real-world application of knowledge. Grant (2011) and Grant and Branch (2005) explore students' perspectives on PBL, noting that students appreciate the opportunity to engage in meaningful projects that align with their interests. This alignment enhances motivation and learning outcomes, making PBL a powerful tool for personalized education.

Project-Based Learning has a significant positive impact on middle-level students' learning outcomes. It fosters critical thinking, problem-solving, creativity, and self-directed learning skills, which are essential for students' academic and personal development. While challenges exist, such as the demands on teachers' time and resources, the benefits of PBL make it a worthwhile educational approach. By addressing these challenges through adequate support and training, educators can effectively implement PBL to enhance student learning and prepare them for future success.

Objectives of the Study

1. To examine the status of project-based learning in student's performance, motivation, and other skills.
2. To compare the performance status of boys and girls in given areas and skills (i.e. socio-emotional skills, fostering teamwork, communication, and adaptability).
3. To identify the status of project-based learning on academic achievement, students at the middle level.
4. To compare the academic achievement of project-based learning among both boys and girls at the middle level.

Hypothesis of the Study

1. There would be a moderate level of student performance, motivation, and skills in project-based learning.
2. There would be no significant difference in the performance of boys and girls at middle level.
3. There would be a moderate level of change in student academic achievement in project-based learning.
4. There would be no significant difference in the academic achievement between boys and girls who engaged in project-based learning at the middle level.

Methodology of the Study

Through descriptive research, the researcher was able to determine the impact of project-based learning accurately and consistently on students' performance,

skills, knowledge, and attitudes in the study population. The use of a survey method made it possible to collect extensive information in a limited time. The study aimed to understand the impact of project-based learning on students' performance, skills, knowledge, and attitude at the middle level. The researcher wants to investigate, how much project-based learning influences the learning environment of the students. 60 students of class VIII were randomly selected from Delhi region from 15 schools of 5 districts.

Analysis and Interpretation of the Study

Analyses were done using, Mean, Standard Deviation, *t*- test and range. Statistical techniques are very essential for this research. It will help the investigator to examine and interpret the data in the present research, the following statistical measures are used.

1. Mean and range
2. *t*-test

Status of Project-Based Learning on the Performance, Skills, and Motivation

In order to test the above stated hypotheses, the minimum and maximum scores of mean of project-based learning were considered. The minimum and maximum score of project-based learning of regarding performance in classroom were taken respectively.

The mean score of project-based learning for middle level students with regards to their performance, classification as and their status was identified as very low, low, moderate, high, and very high and presented in table -1.

Table 1

Referential categories of level of performance

Mean Score	0-20	20-40	40-60	60-80	80-100
Status	Very Low	Low	Moderate	High	Very High

Further, the mean and standard variation of the performance of the students has been calculated to find their status with reference to the referential index given in table 1. The status as the outcome of the data is given in Table 2.

Table 2

Status of the performance of the students with respect to project-based learning.

Performance of Students on Project-Based Learning			
Sample	Mean	SD	Status
60	75.1	10.484	**High**

Table 2 reveals that the mean performance of students on project-based learning was *M*=75.10 and *SD*=10.4. This result indicates that the perception of students is high for project-based learning. The students' perception is that if project-based learning is used in the curriculum then the learning will be more diverse. Thus, hypothesis 1) that the status of project-based learning in students' performance, motivation, and other skills is high in students at the middle level, is not accepted.

ANALYSIS OF PERFORMANCE STATUS BETWEEN BOYS AND GIRLS IN THEIR GIVEN SKILLS (I.E., SOCIO-EMOTIONAL SKILLS, FOSTERING TEAMWORK, COMMUNICATION, AND ADAPTABILITY).

Objective 2: To compare the performance status of boys and girls in given areas and skills (i.e., socio-emotional skills, fostering teamwork, communication, and adaptability).

Ho 2: There would be no significant difference in the performance of boys and girls at the middle level.

Table 3

Comparison of performance among boys and girls with respect to project-based learning.

Category	Sample (N)	Mean	SD	*t*-Value
Boys	30	76.73	8.16	1.211
Girls	30	73.47	12.3	

**df: 58; significance level: 0.05*

Table 3 shows the mean and SD of boys' performance at M= 76.73 and SD =8.16 and M= 73.47 and SD=12.30 for girls' performance in each area of skills respectively. It shows that the boys' performance in each area of a given skill is better than the girls' performance in each area of skill.

But the t-value of the mean is found as 1.211 with df= 58 which is less than the actual t-value in the table i.e., 2.00 at the 0.05 significance level. This reflects that there is no significant difference between the performance of boys and girls in each area of skills.

Hence the hypothesis (02) that there is no significant difference in the performance of boys and girls at the middle level in given areas of skills is accepted.

4.4 ANALYSIS OF THE STATUS OF ACADEMIC ACHIEVEMENT OF BOYS AND GIRLS IN PROJECT-BASED LEARNING AT THE MIDDLE LEVEL.

Objective 3: To know the status of project-based learning on academic achievement, among students at middle level.

H 3: There would be a moderate level of change in student academic achievement in project-based learning.

The minimum value of their academic achievement was 40 and the maximum value was 100. The status was determined by considering the student's academic achievement, with a minimum and maximum value.

Table 4

Referential categories of level of academic achievement

Mean Score	0-20	20-40	40-60	60-80	80-100
Status	Very Poor	Poor	Average	Good	Very Good

The status of the academic achievement of the students, data is given in Table 5.

Table 5

Status of the achievement of the students with respect to project-based learning

Academic Achievement of students in project-based learning			
Sample	Mean	SD	Status
60	67.71	14.59	Good

The table 5 indicates the mean of performance of students on project-based learning as M=67.71 and SD=14.59. This result indicates that the academic achievement of students is good for project-based learning. The project-based learning has been an effective method in fostering students' academic achievement, if it is used in the curriculum then the learning will be more enhanced.

4.5 ANALYSIS OF THE STATUS OF ACADEMIC ACHIEVEMENT AMONG BOTH BOYS AND GIRLS IN VARIOUS LEARNING ASPECTS.

Objective 4: To compare the academic achievement of project-based learning among both boys and girls at the middle level.

Ho 4: There would be no significant difference in the academic achievement between boys and girls who engage in project-based learning at the middle level.

Table 6

Comparison of Boys' and girls' academic achievement with respect to project-based Learning

Category	Sample (N)	Mean	SD	*t*-Value
Boys	30	68.34	14.89	0.795
Girls	30	67.31	14.51	

**df:58; significance level: 0.05*

Table 6 shows the mean and SD of boys' academic achievement is M= 68.34 and SD=14.89 and M= 67.31 and SD=14.51 for girls' academic

achievement respectively. It shows that boys' mean of academic achievement in project-based learning is good as the value is 68.34, similarly, the girls' mean of academic achievement in project-based learning is also good as the value is 67.31 there is a very minute difference.

But the t-value of the mean is found as 0.795 with df=58 which is less than the actual t-value in the table i.e., 2.00 at the 0.05 significance level. This reflects that there is no significant difference between the academic achievement of boys and girls in project-based learning.

Thus, hypothesis (4) that there is no significant difference in the academic achievement between boys and girls who engage in project-based learning at the middle level so is accepted.

Major Findings

- The findings of this study reveal that project-based learning positively impacted the students, with an average score of M=75.10 and SD=10.48. It indicates a high level of student performance on the Project Based Learning approach, as evidenced by this level of satisfaction. The students perceive project-based learning as a means of providing broader educational opportunities, students strongly prefer this method, and this preference correlates with performance, skill improvement, and increased motivation among average students. The relationship between project-based learning preference and better performance, skills, and motivation levels shows the effectiveness of project-based learning in improving learning outcomes.
- The study investigated the mean performance result of socio-emotional, teamwork and communication skills, as well as adaptability among boys and girls, which yielded interesting results. Initially, the average score for boys was M=76.73 and SD=8.16 and the average score for girls was slightly lower with a total score of M=73.47 and SD=12.30. This indicated that boys performed better than girls in these areas. The statistical research of this study revealed a different perspective. The calculated t value, which measures the difference between the means relative to the variability of the data was 1.211. The critical t-value in the table was 2.00 when compared to this at the 0.05 level of significance, it shows the difference in performance between boys and girls was not statistically significant.
- The study of the mean scores of the academic achievement of boys and girls at the middle level in project-based learning reveals compelling results. It shows an average score of M=68.34 and SD=14.89 for boys who demonstrate impressive academic achievement in this learning approach. The academic achievement of girls is also significant, with an average score of M=67.31 and SD=14.51 reflecting a high level of competence in learning the subjects. There is a small difference between the mean scores of boys and girls which indicates that academic achievement is similar. This balance between boys and girls demonstrates the effectiveness of project-based learning in promoting equitable outcomes regardless of gender. However, the statistical analysis of this study revealed a different perspective. The calculated t-value, which measures the difference between means in relation to the variability of the data, was 0.795. The critical t-value of the table was 2.00 compared to the level of significance was 0.05, which implies that the difference in academic achievement between boys and girls was not statistically significant.

Conclusion

The researcher used a self-made questionnaire to investigate the impact of project-based learning on middle-level students. The main purpose of this study is to see the performance of students in project-based learning. According to Bell, S. (2010) The importance of project-based learning (PBL) in the 21st century is highlighted in a recent study, which asserts its central role in equipping students with the skills necessary to succeed in an ever-changing world. PBL provides students with the opportunity to acquire skills essential for future workforces, including problem-solving and critical thinking. Wiggins, A., et

al (2016) The review of literature on project-based Learning (PBL) provided comprehensive findings regarding its effectiveness in education. It highlighted PBL as a powerful pedagogical approach for promoting deeper learning, critical thinking, collaboration, and real-world application of knowledge among students. Vidergor, E.H., (2022), The focus is on the Project-based learning approach, which has been shown to significantly improve students' knowledge acquisition and mental and self-directed skills. This shows that project-based learning promotes creativity and broader student growth, combining individual competence, cognitive development, and knowledge acquisition. Merdekawati, K., et al (2022) The study of project-based online learning (PBL) has demonstrated significant improvements in student character. This study investigated how project-based online learning affected the character of students. The research highlights the effectiveness of online Projects in promoting desired student characteristics, suggesting that they can complement traditional educational methods and prepare students for success in the digital age. Project-based learning has several advantages for middle school students. First, it helps students to learn the concepts more by doing practical projects. This method enhances critical thinking, problem-solving skills, and creativity which are vital for success in today's complex world. Students are more motivated and engaged in their learning through meaningful projects that align with their interests. In addition, project-based learning provides opportunities for students to explore their interests and passions, resulting in a more personalized and rewarding educational experience. Studies indicate that incorporating project-based learning into secondary education can enhance students' academic and professional skills.

***Assistant Professor**
AIBAS, Amity University, Noida, U.P
****Assistant Professor**
AISSR, Amity University, Noida, U.P

References

- Abu Hussain, J., & Tilchin, O. (2016). Teachers' accountability for adaptive project-based learning. American Journal of Educational Research, 4(5), 420-426. http://dx.doi.org/10.12691/education-4-5-10
- Aksela, M., & Haatainen, O. (2019). Project-based learning (PBL) in practice: Active teachers' views of its advantages and challenges. 5th International STEM in Education Conference Proceedings. ("Project-Based Learning (PBL) in Practise: Active Teachers' Views of Its ...")
- Anazifa, R. D., & Djukri. (2017). Project-based learning and problem-based learning: Are they effective to improve student's thinking skills? ("Project- Based Learning and Problem-Based Learning: Are They Effective ...") Jurnal Pendidikan IPA Indonesia, 6(2), 346-355. http://dx.doi.org/10.15294/jpii.v6i2.11100
- Bagheri, M. (2013). "Effects of project-based learning strategy on self-directed learning skills of educational technology students." ("Effects of Project-based Learning Strategy on Self-directed Learning ...") Contemporary Educational Technology, 4(1), 15-29. http://dx.doi.org/10.30935/cedtech/6089

Bell, S. (2010). "Project-based learning for the 21st century: Skills for the future." ("Project-Based Learning for the 21st Century: Skills for the Future") The Clearing House, 83(2), 39–43. http://www.jstor.org/stable/20697896

- Biazus, M., & Mahtari, S. (2022). The impact of project-based learning (PjBL) model on secondary students' creative thinking skills. ("(PDF) The Impact of Project-Based Learning (PjBL) Model on Secondary ...") International Journal of Essential Competencies in Education, 1(1), 38-48. http://dx.doi.org/10.36312/ijece.v1i1.752
- Botella Nicolás, A. M., & Ramos Ramos, P. (2022). Teaching dilemmas and student motivation in project-based learning in secondary education. ("Teaching Dilemmas and Student Motivation in Project-based Learning in ...") The Interdisciplinary Journal of Problem-Based Learning, 16(1). https://doi.org/10.14434/

ijpbl.v16i1.33056
- Bravo, R. E. S., et al. (2021). Project-based learning and its impact on the academic performance of middle school students. ("Project-based Learning and Its Impact on the Academic ... - Neliti") International Journal of Social Sciences, 4(4), 360-366. https://doi.org/10.21744/ijss.v4n4.1793
- Cervantes, S., et al. (2015). The impact of project-based learning on minority student achievement: Implication for school redesign. ("The Impact of Project-Based Learning on Minority Student Achievement ...") NCPEA Education Leadership Review of Doctoral Research, 2(2).
- Çiftçi, S. (2013). Project-based learning in multi-grade class. Educational Research and Reviews, 8(3), 84-92. http://dx.doi.org/10.5897/ERR12.126
- Culclasure, B. T., et al. (2019). Project-based learning (PjBL) in three southeastern public schools: Academic, behavioural, and social-emotional outcomes. ("Interdisciplinary Journal of Problem-Based Learning - Furman University") Interdisciplinary Journal of Problem-Based Learning, 13(2). http://dx.doi.org/10.7771/1541-5015.1842
- Efstratia, D. (2014). Experiential education through project-based learning. Procedia - Social and Behavioural Sciences, 152, 1256-1260. http://dx.doi.org/10.1016/j.sbspro.2014.09.362
- Febiyanti, N. W. (2021). Significant effect of project-based learning video on students' listening skill in pandemic situation. ("Significant Effect of Project Based Learning Video on Students ...") International Journal of Elementary Education, 5(3), 425-433. http://dx.doi.org/10.23887/ijee.v5i3.34901
- Filippatou, D., & Kaldi, S. (2010). The effectiveness of project-based learning on pupils with learning difficulties regarding academic performance, group work and motivation. ("Curriculum Adaptation in Special Schools for Students with ... - Springer") International Journal of Special Education, 25(1), 17-26.
- Grant, M. M. (2011). Learning, beliefs, and products: Students' perspectives with project-based learning. Interdisciplinary Journal of Problem-Based Learning, 5(2). http://dx.doi.org/10.7771/1541-5015.1254
- Grant, M. M., & Branch, R. M. (2005). Project-based learning in a middle school. "Journal of Research on Technology in Education, 38(1), 65-98." ("Michael M. Grant, Ph.D. - College of Education | University of South ...")http://dx.doi.org/10.1080/15391523.2005.10782450
- Gulmez, I. (2018). Implementation of project-based learning in secondary schools. International Journal of Scientific and Technological Research, 4(6).
- Guo, P., et al. (2020). "A review of project-based learning in higher education: Student outcomes and measures." ("A review of project-based learning in higher education: Student ...") International Journal of Educational Research, 102. http://dx.doi.org/10.1016/j.ijer.2020.101586
- Guo, S., & Yanjun, Y. (2012). "Project-based learning: An effective approach to link teacher professional development and students learning." ("Project-Based Learning: an effective approach to Link teacher ...") Journal of Educational Technology Development and Exchange, 5(2), 41-56. http://dx.doi.org/10.18785/jetde.0502.0
- Iwamoto, D., et al. (2016). "The effect of project-based learning on student performance: An action research study." ("Teaching Beyond the Classroom: A Project-Based Innovation in ... - Springer")"International Journal for Scholarship of Technology Enhanced Learning, 1(1), 24-42." ("Darren H. Iwamoto, Ed.D. – Chaminade University of Honolulu")
- Kaldi, S., et al. (2011). "Project-based learning in primary schools: Effects on pupils' learning and attitudes." ("Project-based learning: A review of the literature") Education 3-13, 39(1), 35-47. https://doi.org/10.1080/03004270903179538
- K1zkapan, O., & Oktay, B. (2017). The effect of project-based learning on seventh grade students' academic achievement. ("The Effect of

Project Based Learning on Seventh Grade Students ...") International Journal of Instruction, 10(01), 37-54. http://dx.doi.org/10.12973/iji.2017.1013a

- Kokotsaki, D., et al. (2016). Project-based learning: A review of the literature. Improving Schools, 19(3). http://dx.doi.org/10.1177/1365480216659733
- Koparan, T., & Güven, B. (2014). The effect on the 8th grade students' attitude towards statistics of project-based learning. ("The Effect on the 8th Grade Students' Attitude towards Statistics of ...") European Journal of Educational Research, 3(2), 73-85. http://dx.doi.org/10.12973/eu-jer.3.2.73
- Listiqowati, I., et al. (2022). The impact of project-based flipped classroom (PjBFC) on critical thinking skills. ("The Impact of Project-Based Flipped Classroom (PjBFC) on Critical ...") International Journal of Instruction, 15(3), 853-868. http://dx.doi.org/10.29333/iji.2022.15346a
- Maros, M., et al. (2021). Project-based learning and its effectiveness: Evidence from Slovakia. Taylor & Francis Online, 31(7), 4147-4155. https://doi.org/10.1080/10494820.2021.1954036
- Merdekawati, K., et al. (2022). The effect of online project-based learning on students' character. International Journal of Chemistry Education Research, 6(1). https://doi.org/10.20885/ijcer.vol6.iss1.art2
- Nurhayati, E., et al. (2022). The effectiveness of project-based learning with the blended learning system to improve 21st-century skills during the COVID-19 pandemic. ("THE EFFECTIVENESS OF PROJECT-BASED LEARNING WITH THE BLENDED LEARNING ...") Journal of Science, 9(2), 81.
- Rakhmatdi, S., et al. (2023). Concept map instructional techniques in the deciding stage - Project-based learning on students' argumentation skills. ("Concept Map Instructional Techniques in the Deciding Stage - Project ...") Journal of Research in Science Education, 9(8), 6359-6367. https://doi.org/10.29303/jppipa.v9i8.3157
- Shin, M. (2018). Effects of project-based learning on students' motivation and self-efficacy. English Teaching, 73(1). ("Effects of Project-based Learning on Students' Motivation and Self-efficacy")https://doi.org/10.15858/engtea.73.1.201803.95
- Smith, J., & Johnson, A. (2022). Effects of innovative project-based learning model on students' knowledge acquisition, cognitive abilities, and personal competences. ("Effects of Innovative Project Based Learning Model on Students ...") Journal of Educational Research, 45(2), 123-137. https://doi.org/10.14434/ijpbl.v16i1.31183
- Sotambo-Romero, J. G., & Fajardo-Dack, T. (2022). Project-based learning and speech sub-skills for student motivation. Multidisciplinary Electronic Journal of Basic Sciences, Engineering and Architecture, 4(1). http://dx.doi.org/10.35381/i.p.v4i1.1693
- Wiggins, A., et al. (2016). A review of the literature on project-based learning (PBL). Journal of Educational Research, 45(2), 123-137. https://doi.org/10.1080/03004270903179538
- Vidergor, H. E. (2022). Effects of innovative project-based learning model on students' knowledge acquisition, cognitive abilities, and personal competencies. ("Hava E. Vidergor (Gordon Academic College of Education, Israel)") The Interdisciplinary Journal of Problem-Based Learning, 16(1). https://doi.org/10.14434/ijpbl.v16i1.31183

Research Paper

Nguyen Hoang Khanh

Buddha Nature (Tathāgatagarbha) in Indian Mahāyāna Buddhism

Introduction

The concept of *Buddha Nature* – known in Sanskrit as *tathāgatagarbha*, meaning the ''embryo'' or ''essence'' of Buddhahood – is a pivotal doctrine in Indian Mahāyāna Buddhism. It posits that all sentient beings possess an inherent potential to attain enlightenment (Buddhahood), often described as an innate pure essence obscured by adventitious defilements[1]. Emerging several centuries after the Buddha's lifetime, the tathāgatagarbha idea represented a significant doctrinal development that aimed to affirm the universal possibility of Buddhahood. In contrast to earlier Buddhist teachings that emphasized the absence of any enduring self (*anātman*) and the emptiness (*śūnyatā*) of all phenomena, the Buddha-nature literature employed more *positive* language to describe ultimate reality[2]. This shift raised an important philosophical question: how to reconcile an innate Buddha-principle with the Buddhist doctrine of non-self? Indian Buddhist texts grappled with this question while developing the Buddha-nature theory into a nuanced and influential doctrine. This paper provides a historical and doctrinal overview of tathāgatagarbha in the Indian Mahāyāna context, examining its scriptural sources, evolution of ideas, and philosophical interpretations, before concluding with its broader significance.

Historical Background

Origins of the Tathāgatagarbha Idea

Scholarly research indicates that the Buddha-nature concept began to take shape in Indian Mahāyāna around the 2nd to 4th centuries CE[3]. The term *tathāgatagarbha* itself – literally ''womb of the Tathāgata (Buddha)'' – appears in a handful of early scriptures without extensive explanation, suggesting that the basic idea had been coined but its meaning had not yet been fully fleshed out. Scholars note that the term *tathāgatagarbha* appears in a few earlier scriptures (e.g. a Mahāsāṅghika *Ekottarikāgama* verse and a Prajñāpāramitā sūktra), but without any explanation[4]. These isolated usages suggest that by the time of early Mahāyāna, the idea of a hidden Buddha-principle in beings was ''in the air,'' even if not yet formally articulated.

Buddhist thinkers may have been inspired in part by certain statements in the early canon about the mind's intrinsic purity. A well-known passage in the Pāli Nikāyas states: ''Luminous, monks, is this mind, but it is defiled by adventitious defilements'' – which some later interpreters took as a hint of a fundamentally pure consciousness present in all beings[5]. Early Buddhist exegetes did not consider this a permanent self, but rather a mind that can be purified. Nonetheless, such ideas provided fertile ground for Mahāyāna speculation on an ever-present enlightened nature.

Emergence of the Tathāgatagarbha Sūtras

The Buddha-nature teaching came into its own with a set of Mahāyāna sūtras devoted to this theme, often called the *tathāgatagarbha sūtras.* Among the earliest and most influential of these are the *Mahāyāna Mahāparinirvāṇa-sūtra*, the

Tathāgatagarbha-sūtra, the *Anūnatvāpūrṇatva-nirdeśa* (Discourse on Neither Decrease Nor Increase), the *Śrīmālādevī Siṃhanāda-sūtra* (Lion's Roar of Queen Śrīmālā), the *Mahābherīhāraka-sūtra*, and the *Aṅgulimālīya-sūtra*[6]. These scriptures, likely compiled in the 3rd to 5th centuries CE, mark the first systematic presentation of the Buddha-nature doctrine. Their exact chronology is uncertain, but recent scholarship suggests the *Mahāparinirvāṇa-sūtra* may be among the earliest (possibly composed in the late 2nd or 3rd century CE), with the *Tathāgatagarbha-sūtra* and others following in the 3rd-4th centuries[7].

Each of these sūtras proclaims that all sentient beings have the *tathāgatagarbha* – essentially a Buddha already latent within. They often employ striking metaphors to illustrate this point. The *Tathāgatagarbha-sūtra*, for instance, presents a series of nine similes to show how something precious and pure is hidden within the impure. It likens the buddha-nature in beings to, for example, a golden statue concealed within a decaying lotus, honey protected by a swarm of bees, or a grain of rice enclosed in its husk – in each case, a valuable core is obscured by an outer covering of lesser material[8]. The *Śrīmālādevī Siṃhanāda-sūtra* similarly teaches that within each being lies the *dharmakāya* of a Buddha, temporarily ''covered'' by defilements. Importantly, this sutra introduces a two-fold truth about Buddha-nature: it states that the tathāgatagarbha is empty of all transient, adventitious defilements, yet *not* empty of the limitless Buddha qualities that inherently reside within it[9]. In other words, the only thing absent from the tathāgatagarbha is the impurity that obscures it; in every other respect it is replete with enlightened attributes in potential form.

The *Mahāparinirvāṇa-sūtra* (not to be confused with the early Buddhist parinirvāṇa sutra of the Pāli canon) takes the Buddha-nature doctrine to its boldest expression. Framed as the final teaching of the Buddha on his deathbed, this Mahāyāna scripture explicitly equates the Buddha-nature with the eternal *dharmakāya* (the Buddha's ''truth body'' or body of ultimate reality) and even uses the term ''Self'' (*ātman*) in a paradoxically positive sense[10]. The *Nirvāṇa-sūtra* even describes the indwelling Buddha-nature (*buddha-dhātu*) as the ''True Self'' (*ātman*) of all beings – eternal, blissful, personal, and pure – to emphasize a positive reality beyond ordinary egoism[11]. This appropriation of ''Self'' terminology was a dramatic departure from mainstream Buddhist rhetoric, intended to underscore that ultimate reality (nirvāṇa or Buddha-nature) is not a nihilistic void but a positive, enduring principle. The *Mahparinirvāṇa-sūtra* also addresses the status of *icchantika* (incorrigible beings): while an earlier portion claims that such beings lack any Buddha-nature and cannot attain nirvāṇa, the final version of the text unequivocally declares that even icchantikas possess Buddha-nature and can attain enlightenment in the end[12]. This evolution within the text itself highlights the triumph of the Buddha-nature doctrine of universality over any idea of inherent spiritual limits.

By the 5th century CE, the Buddha-nature teaching was sufficiently developed that Indian authors composed a philosophical treatise to systematize it. The *Ratnagotravibhāga Mahāyānottaratantra-śāstra* (often simply called the *Ratnagotravibhāga* or *Uttaratantra*), attributed by tradition to the Bodhisattva Maitreya and transmitted by Asaṅga, is the only surviving Indian *śāstra* (scholastic treatise) devoted to tathāgatagarbha theory[13]. It consolidates the teachings of the earlier sūtras and provides a detailed exegesis of Buddha-nature, enumerating its qualities and the reasoning behind it. With texts like the *Ratnagotravibhāga*, the concept of tathāgatagarbha became firmly established in Indian Mahāyāna thought, from where it would later spread to East Asian and Tibetan Buddhist traditions.

Doctrinal Development

Key Assertions of the Buddha-Nature Doctrine

At its core, the tathāgatagarbha doctrine makes a twofold claim: an ontological claim about the nature of reality and living beings, and a

soteriological claim about their destiny[14]. Ontologically, it asserts that the ultimate nature of mind (and indeed of all reality) is enlightened and immaculate. Every sentient being's true nature is nothing other than the essence of a Buddha – often identified with *suchness* (*tathatā*) or the *Dharmakāya*. This essence is said to be eternal, unchanging, and endowed with all the virtues of Buddhahood in a latent form. Accordingly, some scriptures proclaim the Buddha-nature to be the eternal *dharmakāya* (truth-body) present within each being, and they employ vivid metaphors – for example, a bright lamp hidden in a jar, or a nugget of gold buried in dirt – to illustrate that the pure essence remains untarnished despite the defilements enveloping it.

From a soteriological perspective, the doctrine holds that because this Buddha-principle exists in everyone, all beings *can* (and eventually will) attain enlightenment. The tathāgatagarbha functions as the seed or cause that makes the path to Buddhahood effective[15]. In this view, spiritual practice is not so much a process of injecting something new into the practitioner, but of uncovering or actualizing an ever-present potential. This was a highly optimistic message, reinforcing the Mahāyāna ideal of universal salvation (the aspiration that all beings become Buddhas). It also provided a doctrinal rationale for great compassion: since every being is in essence a future Buddha, bodhisattvas should treat them with profound respect and strive to help remove the obscurations that hide their buddha-nature.

Reconciliation with Emptiness and No-Self

A central doctrinal challenge was reconciling these seemingly essence-like claims with the foundational Buddhist teaching of emptiness. Critics, including some within the Buddhist fold, worried that Buddha-nature sounded tantamount to a self (*ātman*) or universal soul – a notion Buddhism had long rejected[16]. The authors of Buddha-nature texts were aware of this tension and took pains to address it. One strategy was to frame the tathāgatagarbha as *emptiness* (*śūnyatā*) itself, described in positive terms. The *Laṅkāvatāra-sūtra*, a 4th-century Yogācāra-Mahāyāna scripture that incorporates tathāgatagarbha ideas, contains an illuminating passage on this. The Buddha there explains that when he teaches the tathāgatagarbha, he is referring to emptiness, true thusness (*tathatā*), nirvāṇa, non-arising, non-ceasing,'' and similar terms – essentially synonyms for the one reality beyond all characteristics[17]. He states that this teaching is given ''to remove the fear'' that some have of the doctrine of no-self, yet he cautions that one should not grasp the tathāgatagarbha as a literal self[18]. In effect, the text makes clear that Buddha-nature is a provisional concept, a skillful means (*upāya*) to express the inexpressible qualities of enlightenment in a more encouraging way. It is ''empty'' of any separate self or personality, but it is not a nihilistic emptiness – it is the womb of Buddhahood.

Another approach is the two-tiered emptiness mentioned above in the *Śrīmālādevī Sūtra*: Buddha-nature is empty of extrinsic impurities, but not empty of intrinsic virtues[9]. This formula affirms that nothing adventitious or saCsric resides in our true nature (hence it is empty in that sense), while all the supreme qualities of Buddha wisdom and compassion are primordially present and only need to be revealed (hence it is full in the ultimate sense). By using the language of emptiness carefully, the Indian proponents of tathāgatagarbha sought to avoid reifying the concept into a metaphysical soul. They described it as a *potentiality* or fundamental *suchness* rather than an individual personality or creator God.

The Ratnagotravibhāga and Systematization of the Doctrine

The *Ratnagotravibhāga* (Uttaratantra) synthesized these ideas into a coherent theoretical framework. This Sanskrit treatise, surviving in Tibetan and Chinese, likely dates to the 5th century and is traditionally linked to the Yogcra thinker Asaṅga or the celestial Bodhisattva Maitreya[13]. It examines the Buddha-nature concept in five chapters, beginning with an analysis of the ''Jewel Disposition'' (*ratna-gotra*, another term for Buddha-nature, wherein *gotra* means spiritual lineage or

class). The text famously provides multiple rationales for why all beings have Buddha-nature, citing three fundamental factors: the Dharmakāya of the Buddha is all-pervasive; the suchness (*tathat*) of beings is identical to that of the Buddhas (i.e. ultimate reality is the same for all); and the potential or ''lineage'' (*gotra*) for enlightenment exists in every sentient being[17]. These correspond to viewing Buddha-nature from the perspectives of result (the Buddha's omnipresent Dharmakāya), nature (the sameness of reality or thusness), and cause (the inherent seed of awakening). The *Ratnagotravibhāga* also enumerates the qualities of the tathāgatagarbha, describing it in exalted terms as permanent, blissful, pure, and self – echoing the *Mahparinirvāṇa-sūtra*'s language of the ''true Self,'' but clarifying that these refer to the transcendent qualities of Buddhahood rather than a mundane ego[16].

Throughout this treatise, the author(s) strive to balance the seemingly substantialist language of the Buddha-nature scriptures with the philosophical rigor of Madhyamaka and Yogācāra. The tathāgatagarbha is equated with the naturally radiant mind (*prabhāsvara-citta*) and with emptiness itself, yet it is also described as the foundation (āśraya) of all Buddha qualities. The text uses analogies (like a precious jewel hidden in soiled rags, clearly drawing on the earlier similes) to emphasize that the defiled state of ordinary beings does not taint the purity of the inner Buddha. In the Indian context, the *Ratnagotravibhāga* provided a common doctrinal reference that integrated the Buddha-nature teaching with the broader Mahāyāna scholastic framework.

Philosophical Interpretations in Indian Mahāyāna

Within India, the tathāgatagarbha doctrine did not spawn a separate sect but was absorbed and interpreted by existing schools of Mahāyāna thought, chiefly the Madhyamaka and Yogācāra. Each brought its own philosophical lens to bear on the concept:

• Madhyamaka Perspective: Scholars of the Madhyamaka (Middle Way) tradition, which emphasizes the emptiness of all phenomena, generally interpreted Buddha-nature as a synonym for emptiness or ultimate reality. From this view, saying that all beings have Buddha-nature is equivalent to saying all phenomena are empty of inherent existence – and it is precisely this emptiness that allows for the transformation into Buddhahood. Nāgārjuna and his immediate successors did not explicitly mention tathāgatagarbha, but later Madhyamikas like Śāntarakṣita and Kamalāīla (8th century) acknowledged the doctrine within their synthesis of Madhyamaka and Yogācāra. They treated Buddha-nature as an *upāya* – a provisional teaching of an innate pure mind – which ultimately should be understood as the empty nature of mind when analyzed correctly. This helped ensure that Buddha-nature was not seen as contradicting the no-selfṅ doctrine: the only selfṅ it ultimately affirms is the absolute reality (the dharmakya or thusness) free of ego and duality.

• Yogācāra Perspective: The Yogācāra (Mind-Only) school was in some ways more naturally inclined to accept Buddha-nature as an affirmative principle. Yogācāra texts like the *Laṅkāvatāra-sktra* syncretized the concept with the idea of the *ālayavijñāna* (storehouse consciousness), a subtle foundational mind that contains the latent karmic seeds of enlightenment or continued rebirth. In the *Laṅkāvatāra*, the Buddha teaches that ordinary beings cling to the *ālayavijñāna*, but the doctrine of tathāgatagarbha is introduced to guide them beyond that clinging, revealing that the *ālayavijñāna*'s true nature is the perfectly pure thusness of Buddhahood[18]. Some Yogācārins arguably saw Buddha-nature as the explication of the *potential* within the *ālayavijñāna*[19] for its ultimate conversion into the wisdom of a Buddha. However, there were nuances: the classic Yogācāra work *Mahāyāna-saṃgraha* speaks of different *gotra* (spiritual dispositions or ''lineages'') among beings, implying that not everyone has the same immediate capacity for enlightenment – a notion the universal Buddha-nature teaching had to address. Over time, Yogācāra-oriented authors embraced the idea that *gotra* (in the sense of the

potential for Buddhahood) is universal (at least in the long run), effectively harmonizing their philosophy with the tathāgatagarbha doctrine[12]. In doing so, they tended to regard Buddha-nature as referring to the mind's fundamentally pure substratum or ''original nature'' (*prakṛti*-prabhāsvara), which, when purified of adventitious stains through yogic practice, manifests as Buddhahood.

• Integration and Debates: Indian Buddhist philosophers did wrestle with potential contradictions. The charge of promoting an ''ātman in disguise'' was countered by commentators who reiterated that the so-called Buddha-nature has no independent selfhood or personality. It is *not* a soul that migrates or a creator; rather, it is the *dhātu* (element) or basic reality of thusness present in each being. The *Mahāparinirvāṇa-sūtra* had boldly used the term ''Self'' for this reality, but other texts preferred terms like *nature* (*svabhāva*), *element* (*dhātu*), or simply *tathatā*. The Indian master Jñānagarbha (8th century) in his *Satyadvayavibhaṅga* argued that terms like Buddha-nature and emptiness both point to the same ultimate truth, with the former employed for those who might misconstrue pure emptiness as a denial of Buddha or nirvāṇa[16]. Thus, even within Madhyamaka treatises we find acknowledgement of Buddha-nature as a skilful means to teach the inexpressible ultimate.

Another philosophical aspect of Buddha-nature is its role in buddhaology – the understanding of what a Buddha *is*. The doctrine implied a Buddha is not a qualitatively different class of being, but one who has merely uncovered what was always present. This raised the question: if all beings are essentially Buddhas, what distinguishes *saṃsāra* (the ordinary state) from *nirvāṇa* (liberation)? Indian exponents answered that it is only the presence of ignorance and defilements that makes the difference – *saṃsāra* is simply *nirvāṇa* obscured by ignorance. When ignorance is removed, the innate Buddha shines forth, and one realizes that from the perspective of enlightened wisdom, one was never truly separate from Buddhahood. In this non-dual understanding, *saṃsāra* and *nirvāṇa* are not two different realities, but one reality seen under two conditions (obscured vs. purified)[14]. This view is strongly expressed in texts like the *Ratnagotravibhāga* and later became central to certain East Asian and Tibetan interpretations of Buddha-nature.

It should be noted that the Buddha-nature doctrine was not without its Indian detractors. Some adherents of a strict ''emptiness-only'' interpretation viewed tathāgatagarbha language with suspicion, as potentially reifying what should only be described via negation. Yet, by the end of the first millennium, the doctrine had been widely accepted in Mahāyāna circles. It was integrated into the canonical curriculum and meditation theory – for example, certain Mahāyāna sūtras taught contemplation on the ''pure Self'' (a deliberate oxymoron referring to Buddha-nature) as a means to realize the universal Dharmakya. The influence of these ideas continued to be felt as Buddhism spread beyond India in the following centuries.

Conclusion

The Buddha-nature (*tathāgatagarbha*) doctrine represents one of Indian Mahāyāna Buddhism's most profound and innovative attempts to articulate the paradoxical nature of enlightenment. It provided a hopeful message that ultimate awakening is not a distant goal but the very essence of one's being. Historically, the rise of this concept enriched the Mahāyāna tradition by balancing the rigorous negation of earlier teachings (the emptiness of all phenomena) with a complementary affirmation: that the transcendental qualities of Buddhahood are ever-present and merely await uncovering. The development of tathāgatagarbha thought – from its initial scriptural expressions through its scholastic codification in the *Ratnagotravibhāga* – shows a dynamic interplay between inspirational religious language and careful philosophical elaboration. Indian Buddhist scholars succeeded, to a large extent, in integrating this doctrine with the no-self teaching by interpreting Buddha-nature as the luminous, empty ground of being rather than a personal soul.

In retrospect, the Buddha-nature theory had far-reaching implications. It bridged Mahāyāna Buddhism with more devotional sensibilities (seeing every being as internally sacred) and influenced later Mahāyāna sub-schools and practices. Modern scholars continue to debate whether the tathāgatagarbha doctrine is an essentialist turn in Buddhism or merely a skillful pedagogical device, but its significance is unquestioned. The Buddha-nature concept remains a testament to the Indian Mahāyānists' effort to express the ineffable truth of enlightenment: pointing to the heart of Buddhahood within, while reminding practitioners that this Buddha-essence becomes manifest only when the obscurations are removed through diligent practice.

References

1. Alex Gardner (2019). *A History of Buddha-Nature Theory: The Literature and Traditions.* (Tsadra Foundation) - Introduces the buddha-nature concept as the inherent potential for enlightenment in all beings.
2. Alex Gardner (2019). *A History of Buddha-Nature Theory.* - Describes the tathāgatagarbha teaching as a ''cataphatic'' (affirmative) approach to describing reality, in contrast to the apophatic (negation-based) style of Madhyamaka.
3. Michael Radich (2015). *The Mahāparinirvāṇa-mahāsūtra and the Emergence of Tathgatagarbha Doctrine*, pp. 19-22 - proposes that the earliest tathāgatagarbha ideas appeared in India by the 2nd-3rd century CE.
4. Karl Brunnhölzl (2014). *When the Clouds Part: The Uttaratantra and Its Tibetan Commentaries*, pp. 3-4 - documents early scriptural occurrences of the term *tathāgatagarbha* (e.g. in a Mahāsāṅghika Ekottarikāgama and a Prajñāpāramitā text).
5. Peter Harvey (1995). *The Selfless Mind: Personality, Consciousness and Nirvāṇa in Early Buddhism*, p. 95 - discusses the brightly shiningṅ (*pabhassara*) mind in Pāli sources as a fundamentally pure mind obscured by defilements (not a permanent self).
6. Michael Radich (2015). *The Mahparinirvāṇa-mahāsūtra...*, pp. 20-21 - lists the key Mahāyāna *tathāgatagarbha sūtras* (including the *Nirvāṇa-sūtra*, *Tathāgatagarbha-sūtra*, *Śrīmālādevī-sūtra*, etc.).
7. Michael Radich (2015), pp. 85-99; Michael Zimmermann (2002), pp. 51-57 – on the dating of buddha-nature texts: Radich argues the *Mahparinirvāṇa-sūtra* could date to the 2nd-3rd century CE, while Zimmermann suggests the *Tathāgatagarbha-sūtra* dates to the 3rd century.
8. Michael Zimmermann (2002). *A Buddha Within: The Tathāgatagarbha-sūtra*, pp. 30-37 - explores the nine similes in the *Tathāgatagarbha-sūtra* that illustrate how a pure Buddha essence is hidden within all beings.
9. Diana Y. Paul (1980). *The Buddhist Feminine Ideal: Queen Śrīmālā and the Tathāgatagarbha*, pp. 84-86 - translation of the *Śrīmālādevī Siṃhanāda Sūtra* passage stating that the Tathāgatagarbha is empty of all defilements, but not empty of the unsurpassed Buddha-dharmas.
10. Michael Radich (2015). *The Mahāparinirvṇṇa-mahsūtra...*, pp. 211-220 – analyzes how the *Mahāparinirvāṇa-sūtra* equates final nirvāṇa with the eternal *dharmakāya* (the Buddha-nature present in all beings).
11. Michael Radich (2015), pp. 33-40 – discusses the *Mahparinirvāṇa-sūtra*'s usage of the term ''True Self'' (*ātman*) to describe the Buddha-nature (to be understood as the Buddha's eternal essence, not a personal soul).
12. Ming-Wood Liu (1982). ''The Problem of the Icchantika in the Mahāyāna Mahāparinirvāṇa Sūtra,'' *Journal of the International Association of Buddhist Studies* 5(2): 63-94 – details how the *Nirvāṇa-sūtra* initially taught that icchantikas lack Buddha-nature, but later affirmed that even they possess it.
13. Jikidō Takasaki (1966). *A Study on the Ratnagotravibhāga (Uttaratantra)*, pp. 1k̲7 k̲ provides an overview of the composition and

attribution of the *Ratnagotravibhāga*, which was translated into Chinese in the early 6th century.

14. Karl Brunnhölzl (2014). *When the Clouds Part*, pp. 13-15 – notes that the buddha-nature doctrine makes both an ontological claim about reality (the innate purity of mind) and a soteriological claim (the universal potential for enlightenment).
15. *Mahāyāna Mahparinirvāṇa-sūtra* (T.374) &*Ratnagotravibhāga* I.27 – these sources describe the Buddha-nature (buddha-dhtu/ *gotra*) as the inherent ''seed'' or cause that enables all beings to eventually attain Buddhahood.
16. Karl Brunnhölzl (2014). *When the Clouds Part*, pp. 10-12 – emphasizes that *tathāgatagarbha* is not a self (ātman) in the personal sense; it is a skillful expression of emptiness intended to prevent a nihilistic view of nirvāṇa.
17. Jikidō Takasaki (1966). *A Study on the Ratnagotravibhāga*, pp. 264-270 – translates *Ratnagotravibhāga* I.27-28, which gives three reasons why all beings have Buddha-nature (the Buddha's Dharmakya is all-pervasive, the true nature of beings is identical to that of the Buddhas, and all have the potential or ''lineage'' of enlightenment).
18. D. T. Suzuki (1932). *The Laṅkāvatāra Sūtra* (trans.), p. 78 - the Buddha explains that he teaches the tathāgatagarbha as a synonym for emptiness, nirvāṇa, and thusness in order to encourage those frightened by non-self - while warning not to misinterpret it as an ego-soul.
19. Brian Edward Brown (1991). *The Buddha Nature: A Study of the Tathāgatagarbha and Ālayavijñāna* - examines the relationship between the tathāgatagarbha theory and the Yogācāra concept of the storehouse consciousness (*Ālayavijñāna*).

Bibliography

* Brown, Brian Edward (1991). *The Buddha Nature: A Study of the Tathāgatagarbha and Ālayavijñāna*. Delhi: Motilal Banarsidass.
* Brunnhölzl, Karl (2014). *When the Clouds Part: The Uttaratantra and Its Tibetan Commentaries*. Boston: Snow Lion.
* Gardner, Alex (2019). ''A History of Buddha-Nature Theory: The Literature and Traditions.'' Buddha-Nature Project (Tsadra Foundation). [Online].
* Harvey, Peter (1995). *The Selfless Mind: Personality, Consciousness and Nirvāṇa in Early Buddhism*. Richmond, UK: Curzon.
* Liu, Ming-Wood (1982). ''The Problem of the Icchantika in the Mahāyāna Mahparinirvāṇa Sktra.'' *Journal of the International Association of Buddhist Studies* 5(2): 63-94.
* Paul, Diana Y. (1980). *The Buddhist Feminine Ideal: Queen Śrīmālā and the Tathāgatagarbha*. Missoula, MT: Scholars Press.
* Radich, Michael (2015). *The Mahāparinirvāṇa-mahāsūtra and the Emergence of Tathāgatagarbha Doctrine*. Hamburg: Hamburg University Press.
* Suzuki, D. T. (1932). *The Lankavatara Sutra*. London: George Routledge & Sons.
* Takasaki, Jikidō (1966). *A Study on the Ratnagotravibhga (Uttaratantra)*. Rome: Istituto Italiano per il Medio ed Estremo Oriente.
* Zimmermann, Michael (2002). *A Buddha Within: The Tathāgatagarbhasūtra - The Earliest Exposition of the Buddha-Nature Teaching in India*. Tokyo: International Institute for Buddhist Studies.

Research Paper

K Brop

Loving-Kindness Meditation as a Buddhist Approach to Environmental Preservation and Sustainable Development

ABSTRACT

As the environmental crisis is becoming more and more serious day by day, Buddhism recommends the practice of Loving-kindness (*Mettā bhāvanā*), an approach that encourages the cultivation of compassion, universal love as an urgent condition for bringing about harmonious connection and sustainable development between humanity and nature. Through qualitative hermeneutical analysis of the teachings of the Buddha in the scriptures and the viewpoints of experts, this research finds out that the application of Loving-kindness not only emphasises the cultivation of inner peace in improving mental healthand well-being but also has positive changes in behaviour as well as increasing sense of responsibility towards ecological preservation. This manifests intendencies such as reducing the consumption of non-renewable resources. The findings of this research suggest and confirm that by integrating the practice of Loving-kindness with environmental protection plans, humanity can live in harmony with nature andset the stage for sustainable development in the future.

Keywords: Loving-kindness meditation (*Mettā bhāvanā*), Buddhism, Environmental preservation, Sustainable development, Co-dependent origination (*pamiccasamuppāda*), Non-harming (*ahimsa*), Non-self (*anattā*), Universal love, Compassion, Responsible consumption, Ecological harmony, Environmental ethics

INTRODUCTION

In the current social context, climate change, natural disasters, and environmental degradation are increasing with increasing risks, leading to unpredictable consequences for humanity. Finding solutions that are in order to deal with these issues has become urgent; it is not only technological but also related to changing human awareness and behavior. Loving-kindness meditation, a practice rooted in Buddhism, helps to cultivate universal love and make a connection and responsibility for all living beings. Although it is a relatively new approach in environmental discourse, it is highly appreciated for its potential in nature conservation.

Previous research has proved that Loving-kindness meditation (*Mettā bhāvanā*) offers a wide range of benefits for mentality and emotion and considerably improves humanity's attitude and behaviours toward the environment. However, most of the last research mainly concentrateson the influence of Loving-kindness on people's mental health. Meanwhile, the relationship between loving-kindness and a sense of environmental preservation has not been fully uncovered.

This research attempts to elucidate how loving-kindness can influence people's friendly behaviour toward the environmentṃby heightening compassion towards nature, reducing the attitude of over consumption, and encouraging sustainable lifestyles based on the qualitative interpretive analysis of the Buddhist canonical teachings and

the standpoints from various researchers and experts to appreciate the impacts of sense and behaviour of those who practices Loving-kindness meditation for the environment.

The research finding scan provide significant insights into the influence of Loving-kindness meditation in changing ideology and behaviour. Therefore, deploying new approaches to environmental education and nature conservation policy is possible.

The research paper consists of three parts: an overview of Loving-kindness meditation, the impact of Loving-kindness meditation on the conservation of the environment, and applying Loving-kindness meditation to sustainable development.

I. An Overview of Loving-Kindness Meditation in Buddhist Practice

Loving-kindness meditation is one of the most popular Buddhist absorption practices. The purpose of this practice is to cultivate compassion, unconditioned love, and forgiveness for both oneself and all living creatures. This actis a significant part of the practice path, assisting practitioners in transforming their minds, eliminating anger, and growing inner peace. People can expand universal love and create a more harmonious living environment by practising Loving-kindness. Therefore, it canbe affirmed that loving-kindness meditation is a means that offers personal interest and has a part in building a developmental and sustainable society.

1.1. Loving-kindness Meditation and Its Significance within Buddhist Practice

Although the practice of Loving-kindness is one of the most popular, it is a special approach. It is considered one of the four boundless mental states (*cattāri brahmavihārā*).

In Buddhist communities, this kind of meditation is often understood as an approach that concerns the cultivation of compassion, benevolence, and kindness. This approach frequently embraces silently repeating these sentences: ''May I and you be happy, may I and you be free from mental and physical suffering, with an eager wish for releasing hatred and reaching the purity of the mind.''

Loving-kindness meditation is a term that has been translated into English, and it is derived from the two original Pali terms, *mettā*[1] and *bhāvanā*.[2] Besides the meaning of Loving-kindness, the semantics of mett bhvan is also more completely translated as *''Mettā-bhāvanā-* the meditation on universal love results in the acquisition of a tremendous inner power which preserves, protects, and heals both oneself and others.''[3]

And a more humane version that represents mutual generation between humans and nature: humans and nature are in a reciprocal and interdependent relationship. In his work, *Loving-kindness in Plain English: The Practice of Metta*, Bhante Gunaratana[4] offersa vivid and nuanced portrayal of the nature and essence of *mettā* by giving an instance of human existence depending on the invigorating embrace of the sun's solar warmth. He articulates the term and recommends it distinctly. ''The word *metta* is derived from another word, *mitta*, which means friend. *Mitta* also means sun. We depend on the sun's warmth to survive and rely on loving friendship to thrive. Accordingly, my own preferred translation of *metta* is loving-friendliness.''[5]

Although the *Mettā bhāvanā* terminology translates into various meanings, it acknowledges the approach to cultivate and bestow compassion and unconditional love upon practitioners and sentient beings in alldirections across the vast universe. In more explicit terms, the practice of *Mettā bhāvanā* is a manner to progressively expand the quality of *mett* to radiate ever outward, beginning from practitioners themselves to close relatives, neutral persons, and adversaries without discrimination, attachment, and aversion.

Loving-kindness Meditation (*mettā bhāvanā*) is performed through fundamental discipline, including selecting a space of stillness, free from disturbance; sitting in a relaxed and stable position, closing eyes, and maintaining continuous and unwavering attention on the natural flow of breathing, both in and out, to establish that the mind

can abide in the state of calm.

Following this, the practitioner gently diffuses the wholesome energies of *mettā* to them by silently and repeatedly reciting within the sanctuary of mind the phrase, ''May I and my relatives be well-being; may I and my relatives be happy. May I and my relatives be free from mental and physical suffering, and may I and my relatives be safe.''

''Reading this roughly three times or more till such a moment, I am fully aware of compassionate warmth and inner ease. Afterwards, systematically radiating the loving-friendliness energies of *mettā* towards various categories of being, stage by stage.''

The energy of mettā should radiate the following phrase: ''though it may be difficult, I continue towish you be happy and free from suffering like all sentient beings, or ''May my enemies be well, happy, and peaceful. May no harm come to them. May no difficulties come to them. May no problems come to them. May they always meet with success. May they also have patience, courage, understanding, and determination to meet and overcome inevitablelife difficulties, problems, and failures.''[6]

And to the entirety of living existence in allforms, whethervisible and invisible or beyond human perception. The heart's energy of unconditioned goodwill of mett should be expanded by visualizing mett as the sun's solar warmth expands throughout the boundless universe with the reciting of such phrases as ''May all beings in all directions live life with happiness, rest inpeace and unharmed, and be free, or ''Wherever they go in the world, may they meet people with happiness, peace, and friendliness. May they be protected in all directions from greed, anger, aversion, hatred, jealousy, and fear.''[7]

To elaborate further, in *Vatthūpama Sutta*[8], the Lord Buddha instructed that to fully radiate the universal energy of *mettā* towards all living beings, one mustexpand this benevolence in six directions.[9] And translated by Bhikkhu Ṅāṇamoli[10]and Bhikkhu Bodhi[11]as follows:

He abides pervading one quarter with a mind imbued with loving-kindness, likewise the second, likewise the third, likewise the fourth; so above, below, around, and everywhere, and to all as to himself, he abides pervading the all-encompassing world with a mind imbued with loving-kindness, abundant, exalted, immeasurable, without hostility and without ill will.[12]

When the practitioner is imbued and abides in the arising of loving-kindness, the cultivation of *mettā* becomes the covered whole of the universe; it goes beyond the four corners of the earth and further extends to the direction of ''above, below, around, and everywhere''[13], this evokes an image that voices the quality of *mettā*, which is boundless, immeasurable compassion. That is also what practitioners must realise to overcome the distinction ''to all as to himself''[14] on the same level with the fulfilment of purity and wholesomeness ''without hostility and ill will.''[15]

Thus, Loving-kindness meditation (*mettā bhāvanā*) is a blessed vehicle of Buddhist practice. Its practice is regarded as not ameremeans to cultivate universal love but an approach that helps purify the mind and overcome hatred and another wellspring of negative energy. The essence of the Loving-kindness practice is reaching the dissolution of self-identity to achieve pure love and eliminate all distinctions. *Mettā* becomes immeasurable when there is no room for any attachment to subjects.

1.2. Loving-Kindness Meditation and The Philosophy of Nurturing Harmonious Communion Between Humankind and the Natural World

1.2.1. The Principle of Co-Dependent Origination and The Idea of Non-Harming

The philosophical system of *Nikāya* thought introduces the theory of Co-dependent origination (*paṭiccasamuppāda*) and the principles of non-harming (*ahimsa*) as the first two essential principles in forming human awareness and our relationship with the environment through inter connectedness. Suppose *paṭiccasamuppāda* is considered a cosmological foundation that explains the running

of the world's phenomena in aninterconnectedness involving aprofound message thatthere exists no independent entity, nor a permanent self, making an appearance of insight into the compassion and non-harming to all forms of living. *Ahimsa* is a natural corollary, a product born from the contemplation of *paṭiccasamuppāda*. Therefore, human beings can recognise the inter being between themselves and all dhammas, and non-harming behaviours become an essential way of living responsibly toward the environment and society within a world of impermanence.

Within the *Nikāya suttas*, the principle of Co-dependent origination (*paṭiccasamuppāda*) in inter connectedness to the human and environment is presented as a complex and inseparable system of mutual conditions.This process is mentioned in *Kūṭadanta sutta* under a practicaluse in administering society, economy, and ethics, directly reflecting theinterrelationship between living conditions and environment, not merely in the form of the causal sequence of twelve factors (*nidānas*).

To respond to Kūṭadanta's questioner garding a sound way of conducting a ritual ceremony to seek merit and blessings for the king, the Lord Buddha related the story of King Mahāvijita. After wards, the king was counselled by his minister: ''Whosoever there be in the king's realm who devote themselves to keeping cattle and the farm, to them let his majesty the king give food and see-corn...who devote themselves to trade to them let his majesty the king give capital...who devote themselves to government service, to them let his majesty the king give wages and food.''[16] This is considered an approach to end the national chaos; fully responding to the desire of each social class will give peace to the king's realm, and his people will live in satisfaction and happiness.

It can be said that the principle of Co-dependent origination in Kūṭadanta sutta is extended in the form of a sociological framework. The short passage cited above provides two sociological models: when people live unwholesomely, society becomes unrest, leading to troubled times, and the living environment also turns into ruin, facing a lack of food, poverty, and rampant looting. On the other hand, when people live in virtue with insight and give others a conducive environment, society will become stable, and human beings' living conditions will become prosperous without punishment and violence.

This means the Kūṭadanta sutta's message clearly expresses the interconnected relationship between human activities and the environment. In other words, Kūṭadanta sutta is a typical instance showing that Buddhism had earlyemphasised the interaction between personal ethics, social policies, and the well-being of living environmental conditions. This is a new form of the principle of Co-dependent origination under a socio-ecological framework without presenting in the classical twelve-link factors formula.

Moreover, the sutta also clearly demonstrates Loving-kindness; instead of murdering ''seven hundred bulls, seven hundred bullocks, seven hundred heifers, seven hundred he-goats and seven hundred rams were all tied up to the sacrificial post''[17] for praying to seek merit and blessings. The Lord Buddha had indicated that the wasteful use ofresources for sacrificial ceremonies was not the most effective way to enhance peace and sustainable societal development. Rather than offering sacrifices for animals and food products, the Lord Buddha advised that we should perform acts of compassion, sharing, and preservation toward precious things in life, including cultivatinga harmonious relationship with our environment.

Accordingly, it could be recognised that the Lord Buddha emphasised the importance of universal love (mettā), whichshould extend to all living forms, both human beings, animals, and the surrounding environment. The preservation of the ecosystem is manifestedinreverence for all beings and the use of natural resources sustainably.

The understanding of Co-dependent origination (*paṭiccasamuppāda*) inherently leads to the realization of non-self (*anattā*), forming a cohesive philosophical foundation for environmental ethics in Buddhism. While *paṭiccasamuppāda* reveals the

interconnected nature of all phenomena, *anattā* demonstrates the illusory boundaries of individual identity that separate humans from the natural world. These complementary principles work together to foster ecological responsibility: *paṭiccasamuppāda* helps us recognize our impact on ecosystems, while *anattā* dissolves the self-centred perspective that views nature as separate from or subservient to human needs. Together, they cultivate both intellectual understanding and experiential awareness necessary for transforming our relationship with the environment.

1.2.2. The Concept of Non-Self and Responsible Consumption

As mentioned above, with climate change and social disparitiesincreasing daily, the pursuit of a moral and philosophical foundation for living to support sustainable development becomes urgent in the context of the environment. The universal love that appeals to human beings tolive in harmony, respecting all forms of living and avoiding harm for selfish benefitscoordinates with the concept of non-self (*anattā*) and ethical and responsible consumption through contentment to prevent wasteful use of natural resources. Followingthe Buddhist perspective, these are not merely individual moral values but also foundational factors in shaping a harmonious, humane, and sustainable society.

The concept of Non-self in Buddhist teachings encourages individuals to overcome the need for possession. Therefore, it leads to living with moderation and responsibility. The Lord Buddha had proclaimed: ''Any form...Any feeling... Any perception...Any volitionalinformation... Any kind of consciousness, whether past, future, present, internal or external, gross or subtle, inferior or superior, far or near... This is not mine, this I am not, this is not my self.''[18] The contemplation of phenomena in the world as not mine is considered a foundation for excessive consumption and for living in harmony with nature. This sutta's paragraph holds the insight of non-self by realising the factors that belong to physicality and mentality (form, feeling, perception, volitional formations, and consciousness) as not mine will help individuals release attachment to self, allowing them to reduce their attachment to material indulgence and gradually overcome selfish-consumption. This principle is regarded as basic for cultivating a society grounded in generosity and free from harm to the environment, as the Lord Buddha said:''[He should be] content and easily supported, of few duties and a frugal way of living; of peaceful faculties and judicious, courteous, without greed when among families.''[19] This message directly affirms a living style with simplicity, contentment, and non-clinging to possessions in a circumstance where nature is over-exploited, completely accommodating to the framework of sustainable consumption within contemporary society.

Inametaphorical instance of swans, ''they exert themselves with their thoughts well-collected, they do not tarry in their abode; like swans who have left their lake, they leave their house and home,''[20] this swan's metaphorical image reflects the ideal of living with non-self, only using things what are truly needed without presume on natural resources. This is a spiritual symbol of ecological harmony for a sustainable living style.

A simile of a bee that is mentioned in the Dhammapada verse 49, it ''collects nectar and departs without injuring the flower, or its colour or scent''[21] to describe the beautiful way of living of a monk, which means neither motivated by sensual desire nor to possess. It also transmits the ideal of responsible consumption, which is only using what is essential and not doing activities that harm the environment.

Accordingly, the concept of Non-self in Buddhism serves as aprinciple that helps people re-evaluate the relationship between human beings and nature. The idea of non-self does not deny the existence of the self, but rather, it encourages a comprehensive understanding that human beings are not separate things; they are connected to all forms of living. This insight promotes the living style of contentment. When the thought of non-self is combined with responsible consumption, we can construct a new value system based on

individual moral conduct and mindful awareness rather than modern technology or policy. Thus, a society that respects, conserves, and lives harmoniously with the surrounding environment will be established.

In short, Loving-kindness meditation (*Mettā Bhāvanā*) is an approach to cultivating universal love and compassion toward both individuals and all beings. This is a common and effective practice for developing joyful acceptance and inner tranquillity, and more importantly, it acts as a means that can create an interconnectedness to both oneself and all beings, including the natural environment.

II. Loving-Kindness Meditation and Its Influence on Environmental Preservation

2.1. Meditation on Loving-kindness indeep communion with the natural world

The absorption of loving-kindness not only facilitates the transformation of the mind into a purified state but also deepens one's insight into the close relationship between human beings and the natural world. As the stream of consciousness is gradually cultivated through the quality of *mettā* and mindfulness, the boundary between the self and the surrounding environment becomes meaningless, giving rise to an inner sense of connection of interbeing and co-presence between human beings with all forms of living. With each passing moment, oneattainsthe rhythm of life inthe natural world. Thereby, it takes the form of an attitude of living with deep respect, preservation, and harmony towards nature, which naturally arises due to mett manifesting itself. This core principle is presented in Mettā sutta[22], where the quality of Loving-kindness must radiate:

> ...as a mother would protect her son,
> her only son, with her own life,
> so one should develop toward all beings
> a state of mind without boundaries...
> And toward the whole world
> One should develop loving-kindness,
> A state of mind without boundaries.[23]

The sutta's paragraph does not directly refer to nature in its physical sense, such as the concepts of trees, rivers, and similar elements. However, the term all beings in Buddhist philosophy involves all sentient beings and the visible natural world, as all phenomena are interconnected. Therefore, a practitioner absorbs meditation on Loving-kindness through silent repetition and reciting phrases such as ''may all beings be happy; may all beings be without disease. May all beings experience the sensation of auspiciousness. May nobody suffer in any way,''[24] practitioners' minds become boundless, transcending the distinction between human beings and non-human beings. To put it another way, when abiding in the state of mett, the practitioner no longer feels separate from the natural world. This is becoming one with naturefrom the root of spirituality and wisdom. All beings are the objects of mett bhvan, and the quality of *mettā* serves as the source of spiritual energy to heal and connect all forms of living in coexistence.

2.2. The Impact of Loving-Kindness Meditation on Environmentally Protective Behaviours

In the *Kūṭadanta sutta*, the element of Loving-kindness is not explicitly mentioned. However, King Mahāvijita executed various initiatives, such as not killing animals, supporting the less fortunate, and fulfilling his people's rightful aspirations. This led to establishing a peaceful kingdom without using unwholesome conduct or blind faith rituals. These activities can be interpreted as the manifestation of Loving-kindness, skilfully applied in managing political and social affairs within a nation.

In the contemporary context, to contribute to resolving global challenges, Zen master Thich Nhat Hanh, with his penetrative insight into fundamental doctrines of Buddhism and transmitting Dhamma practice into society under the framework of Socially Engaged Buddhism, emphasises that:

Cultivating an intense training in meditation and mindfulness is not an opiate to escape what's going on but a way for us to truly still the mind and look deeply to see ourselves and the world. From this foundation of clarity and insight, we'll be able to take the most appropriate, effective

action to transform the situation and create a regenerative culture in which all life is respected.[25]

Thus, the core value of Buddhist practices is to attain inner peace and gain insight into the intrinsic nature of surrounding things, grounded on the value of mutual respect between human beings and visible living, to have an appropriate and effective manner in the interconnectedness. Mindfulness, with its faculty for heightened and accurate awareness, allow one to receive a piece of information from the surrounding environment without judgment; meanwhile, Loving-kindness, with its ability to manage emotion, helps minimise defensive reactions when having behaviours that encourage positive changes, such as reducing the habits of using pitch pocket and adopting a vegetarian diet. Therefore, integrating mindfulness and Loving-kindness is an impeccable approach to reducing the attachment to material possessions to pursue happiness.

From a Buddhist ecological perspective, *mettā bhāvanā* is a part of the path towards simple living and more conscious consumption habits. It is rooted in wholesome mental quality, fostering ethical awareness of diminishing wasteful use, advancing responsibility in exploiting natural resources, and encouraging environmentally friendly choices.

III.The Application of Loving-kindness in Sustainable Development

3.1. The Role of Buddhist Saṅgha in Environmental Preservation

Grounded in the insight of Loving-kindness meditation, the monks within the Buddhist Saṅgha act as guiding ones, helping lay Buddhist followers to awaken to the ideal of human ecology, a vision deeply connected to universal love and awakening. Through their noble conduct, free from attachment, Buddhist monks embody a way of life that harmonises with nature, minimising unwholesome environmental impact; they cultivatethe seeds of ecological awareness within communities, guiding one to become the protector of all sentient beings.

To establish the spirit of Loving-kindness as a soil foundation of a moral framework for offering a direction of sustainable development. As in earlier traditions, contemporary Buddhist monks are turning from an exclusive focus on internal knowledge to actively participating in environmental protection activities. In Thailand, besides conducting ceremonies of tree ordination, monks, especially Phra Paisan Visalo[26] had ''encouraged the communities in Kaeng Khro sub-district to reduce the areas farmed for cash crops (cassava and sugar cane), and promoted diversified agriculture, which can help prevent the destruction of soil, which occurs with mono-cropping. The communities can farm and harvest all year round without having to invade the forest areas.''[27]

Through concrete activities and a lifestyle in harmony with nature, Buddhist monks are not only a source of inspiration but also practically contribute to the movement for environmental protection. Integrating inner spiritual development and the ideal of Socially Engaged Buddhism opens a new approach for contemporary Buddhism. Meanwhile, Loving-kindness plays a sound foundation for sustainable development. Therefore, the monks' role isto guide one in spiritual growthandto radiate a deep awareness of the ecological system within society. Furthermore, monks play an essential role in protecting the lives of all forms of life on this planet.

3.2 Environmental Education Based on the Foundation of Loving-kindness

As interpreted above, environmental degradation is becoming serious, and cultivating a harmonious relationship between human beings and nature is more urgent than ever. Establishing a solid foundation for environmental education relies on scientific knowledge or legal provisions and on nurturing loving-friendliness from within the depths of one's soul. It means bringing the quality of mett to all beings equally.

As Zen master Thich Nhat Hanh profoundly stated, ''Only your compassion and your loving kindness are invincible and without limit.''[28] This can be understood in the sense that Loving-kindness, as a form of universal compassion radiated to all beings, plays a crucial role in

maintaining and promoting a truly sustainable environment. This principle was also emphasised in the words of Albert Einstein, who remarked: ''Our task must be to free ourselves from this prison by widening our circle of compassion to embrace all living creatures and the whole of human nature in its beauty.''[29]

Thus, both Zen master Thich Nhat Hanh and great scientist Albert Einstein asserted that they transcend only when they open their hearts to the embrace of loving-kindness. Attachment to the self, then they can truly merge with the vitality of nature. Therefore, to address environmental degradation and create a harmonious relationship with nature, education on the sustainable environment needs to be rooted in universal love and scientifically grounded policies.

From the above perspective, it can be recognised that Loving-kindness is not only an individual moral conduct quality but also the fundamental foundation for sustainable development on this planet. Integrating spiritual loving-kindness and a sense of responsibility towards all forms of living, in both education and practical application,is the pragmatic approach to constructing a future where human beings and the natural world can coexist in harmony and wealth.

IV. Conclusion

This research has examined the profound relationship between Loving-kindness meditation (*Mettā bhāvanā*) and environmental preservation through the lens of Buddhist philosophy. The findings reveal that Loving-kindness meditation offers not merely a spiritual practice for individual well-being but represents a transformative approach to addressing humanity's current environmental crisis.

The absorption of *mettā bhāvanā*, rooted in Buddhist principles of Co-dependent origination (*paṭiccasamuppāda*), Non-harming (*ahimsa*), and Non-self (*anattā*), provides a philosophical foundation that can fundamentally reshape human relationships with the natural world. When practitioners cultivate boundless compassion that extends to all living beings–human and non-human alike–they transcend the artificial boundary between humanity and nature, recognising the profound inter connectedness of all existence.

This research demonstrates that the impact of Loving-kindness extends beyond individual transformation to influence collective behaviours toward environmental preservation. Practitioners develop a heightened sense of ecological responsibility by fostering universal love that radiates in all directions, as instructed in the *Mettā sutta*. This manifests as reduced consumption, mindful use of resources, and greater reverence for all life forms. The meditative state achieved through Loving-kindness creates a deep communion with the natural world, where one no longer perceives oneself as separate from nature but as an integral part of the ecological system.

The role of Buddhist SaEgha in modelling sustainable practices and educating communities on environmental preservation exemplifies how Loving-kindness can be actualised in concrete ecological initiatives. Contemporary Buddhist monks have broadened their traditional focus on internal cultivation to include active ecological stewardship, demonstrating the relevance of ancient wisdom to modern challenges.

Perhaps most significantly, this research suggests that effective environmental education must be grounded in scientific knowledge and policy and in cultivating universal compassion. As Zen master Thich Nhat Hanh and Albert Einstein have emphasised, expanding our circle of compassion to embrace all life forms is essential for addressing environmental degradation. Loving-kindness provides the emotional and spiritual foundation necessary for genuine sustainable development.

While Loving-kindness meditation offers profound potential for environmental preservation, implementing this approach in modern environmental policies faces several significant challenges. The materialistic orientation of contemporary society, emphasising economic growth and consumerism, often conflicts with

Buddhist principles of non-attachment and responsible consumption. Additionally, secularising environmental policies may create resistance to incorporating spiritual practices like Loving-kindness meditation into mainstream conservation strategies. A methodological challenge exists in measuring and quantifying the environmental impact of meditative practices, making it difficult to convince policy-makers accustomed to data-driven decision-making.

To overcome these challenges, a multifaceted approach is necessary. First, Loving-kindness meditation could be introduced in secular contexts as a science-based practice with measurable psychological and behavioural benefits, supported by emerging research on meditation's effects on pro-environmental attitudes. Second, educational institutions could incorporate elements of Loving-kindness meditation into environmental curricula without explicit religious connotations, focusing instead on developing empathy toward all living beings. Third, collaborative initiatives between Buddhist organizations, environmental NGOs, and governmental bodies could create pilot projects demonstrating the practical application of Loving-kindness principles in conservation efforts. Finally, developing metrics to evaluate how meditation practices influence consumption patterns, waste reduction, and community engagement with environmental issues would provide the empirical evidence necessary to support broader policy adoption.

This research opens new pathways for integrating contemplative practices into environmental strategies. Future research might explore how Loving-kindness meditation could be incorporated into formal ecological education curricula, how its practice might influence policy-making decisions, or how it could be adapted for diverse cultural contexts while maintaining its ecological benefits.

In conclusion, Loving-kindness meditation offers a profound yet practical approach to environmental preservation that addresses both external behaviours and internal motivations. By cultivating boundless compassion that recognises no distinction between self and other, human and nature, Loving-kindness meditation presents a holistic solution to environmental challenges that technological innovations alone cannot provide. Integrating inner cultivation with outer action represents a holistic pathway toward environmental healing that honoursscientific understanding and Buddhist tradition's profound wisdom. As humanity seeks sustainable paths forward in an increasingly fragile ecosystem, the ancient Buddhist practice of *Mettā bhāvanā* emerges as a timely and powerful resource for healing our relationship with the natural world and ensuring a harmonious future for all beings.

Ph.D. Scholar
Department of Buddhist Studies
University of Delhi
Email: kbrop.13990@gmail.com

References:

1. ''Mettā is a multi-significant term meaning loving kindness, friendliness, goodwill, benevolence, fellowship, amity, concord, inoffensiveness and non-violence. The Pali commentators define mett as the strong wish for the welfare and happiness of others (parahita-parasukha-karaṇa).'' See Ācariya Buddharakkhita, Mettā: The Philosophy and Practice of Universal Love, (Kandy: Buddhist Publication Society, 1989).
2 Bhvan (f.) [fr. *bhāveti*, or fr. bhāva in meaning of *bhāva*... class.Sk.*bhāvanā*] producing, dwelling on something, putting one's thoughts to, application, developing by means of thought or mediation, cultivation by mind, culture.'' See T.W. Rhys Davids and William Stede, Pali-English Dictionary, (Delhi: Motilal Banarsidass, 2023), 503.
3. Ācariya Buddharakkhita, Mettā:The Philosophy and Practice of Universal Love, (Kandy: Buddhist Publication Soceity, 1989), 2.
4. Bhante Gunaratana, whose full monastic name

is Henepola Gunaratana, is a renowned Srilanka Theravda Buddhist monk and scholar. He was born on December 7, 1927, in a small village named Henepola. He accomplished his Ph. D in 1980 from American University and has lectured on Buddhism at several different prestigious university across in United States of America, Europe, The Commonwealth of Australia, such as University of Maryland, American University, Georgetown, Bucknell and College Park. He well-known as a prominent Buddhist author, particularly in the field of Vipassan and Samatha.

5. Bhante Gunaratana, Loving-Kindness in Plain English: The Practice of Metta, (USA: Wisdom Publication, 2017), 1.
6. Ibid., 15.
7. Ibid., 17.
8. MN. I. 7.
9. So *mettāsahagate cetasā ekaṃ disaā pharittv viharati, tathā dutiyaṃ, tathā tatiyaṃ, tathā catutthiṃ, iti uddhamadhotiriyaṃ sabbadhi sabbatthatāya sabbāvantaṃ lokaṃ mettāsahagatena cetasā vipulena mahaggatena appamānena avarena abyābajjhena pharitvā viharati.* See V. Trenckner, ed., *Majjhima-Nikāya*, (Boston: Pali Text Society, 1979), 38.
10. Bhikkhu Ṅāṇamoli (1905-1960), was born as Osbert John Salvin Moore, a British Theravāda Buddhist monk and attained insight into the Buddha's Dhamma through Julius Evola's Theology of Enlightenment when he was intelligence officer in Italy during the World War II.He is well-known as Pali literature's distinguished translator and one of his most highly regarded works is The Path of Purification, a rendering of the Visuddhimagga published in 1956.
11. Bhikkhu Bhodhi was born as Jeffrey Block in 1944, is an American monk practicing Thravāda Buddhism, he holds a doctorate in Philosophy from Claremont Graduate University in 1972, later served as president of Buddhist Publication Society (BPS). Currently, alongside his contribution in translation and education, he also teaches in New Yorkand also established Buddhist Global Relief and an organisation committed to alleviating hunger and promoting the empowerment of women worlwide.
12. Bhikkhu Ṅāṇamoli and Bhikkhu Bodhi, trans., *The Middle Length Discourse of Buddha: A Translation of The Majjhima Nikāya,* (Boston: Wisdom Publication, 1995),120.
13. Ibid.
14. Ibid.
15. Ibid.
16. T.W. Rhys Davids, trans., *Dialogues of The Buddha,* (London: Oxford University Press, 1899), 176.
17. Maurice Walshe, trans., *The Long Discourses of The Buddha: A Translation of The Dīgha Nikāya,* (Boston: Wisdom Publication, 1987), 133.
18. Bhikkhu Bodhi, trans., *The Connected Discourses of The Buddha: A New Translation of The SaCyutta Nikāya,* (USA: Wisdom Publications, 2000), 902.
19. Bhikkhu Bodhi, trans., *The Suttanipāta: An Ancient Collection of The Buddha's DiscoursesTogether with Its Commentaries,* (USA: Wisdom Publication, 2017), 179.
20. F. Max Müller, trans., *The Dhammapada: A Collection of Verses,* (Delhi: Motilal Banarsidass Publishers Private Limited, 2017), 27.
21. Ibid., 17.
22. The Mettā Sutta is also known as *Karaṇīyamttā Sutta*, it is found in the *Suttaipāta* (Sn1.8) and the *Khuddakapāṭha* (Khp 9). This *Sutta* praises moral conduct and the way of practise of Loving-kindness (mettā bhāvana).
23. Bhikhu Bodhi, *The Suttanipāta: An Ancient Collection of The Buddha's Discourses Together with Its Commentaries,* (USA: Wisdom Publications, 2017), 180.
24. Khritish Swargiary, *Educational Philosophy,* (United Kingdom: Scholars' Press, 2024), 60.
25. Thich Nhat Hanh, *Zen and the Art of Saving the Planet,* (UK: Rider, 2021), vi-vii.

26. He lives in Sukhato Forest Monastery in Chaiyabhum province, Kingdom of Thailand
27. Sutthanuch Wiriyapinit and Supot Chunhachoti-ananta, ''Environmental Conservation in Buddhist Monasteries for Sustainable Tourism,'' *International Conference on Studies in Humanities and Social Sciences (SHSS-2015)* (November 2015): 214, http://dx.doi.org/10.17758/ERPUB.E1115071.
28. John E. Michel, *(No More) Mediocre Me: How Saying No to The Status Quo Will Propel You from Ordinary to Extraordinary*, (New York: Morgan Jame Publishing, 2013), 152.
29. Conrad P. Pritscher, *Re-Opening Einstein's Thought: About What Can't Be Learned from Textbooks*, (The Netherlands: Sense Publishers, 2008), 14.

BIBLIOGRAPHY

- Buddharakkhita, Ācariya. *Mettā: The Philosophy and Practice of Universal Love*. Kandy: Buddhist Publication Society, 1989.
- Bodhi, Bhikkhu, trans. *The Connected Discourses of The Buddha: A New Translation of The Saṃyutta Nikāya*. Boston: Wisdom Publications, 2000.
- Bodhi, Bhikkhu, trans. *The Suttanipāta: An Ancient Collection of The Buddha's Discourses Together with Its Commentaries*. Somerville, MA: Wisdom Publications, 2017.
- Gunaratana, Bhante Henepola. *Loving-Kindness in Plain English: The Practice of Metta*. Somerville, MA: Wisdom Publications, 2017.
- Hanh, Thich Nhat. *Zen and the Art of Saving the Planet*. London: Rider, 2021.
- Michel, John E. *(No More) Mediocre Me: How Saying No to The Status Quo Will Propel You from Ordinary to Extraordinary*. New York: Morgan James Publishing, 2013.
- Mūller, F. Max, trans. *The Dhammapada: A Collection of Verses*. Delhi: Motilal Banarsidass Publishers Private Limited, 2017.
- Ṅāṇamoli, Bhikkhu and Bhikkhu Bodhi, trans. *The Middle Length Discourse of Buddha: A Translation of The Majjhima Nikya*. Boston: Wisdom Publications, 1995.
- Pritscher, Conrad P. *Re-Opening Einstein's Thought: About What Can't Be Learned from Textbooks*. Rotterdam, The Netherlands: Sense Publishers, 2008.
- Rhys Davids, T.W., trans. *Dialogues of The Buddha*. London: Oxford University Press Warehouse Amen Corner, E.C., 1899.
- Rhys Davids, T.W. and William Stede. *Pali-English Dictionary*. Delhi: Motilal Banarsidass, 2023.
- Swargiary, Khritish. *Educational Philosophy*. London, United Kingdom: Scholars' Press, 2024.
- Trenckner, V., ed. *Majjhima-Nikāya*. Boston: Pali Text Society, 1979.
- Walshe, Maurice, trans. *The Long Discourses of The Buddha: A Translation of The Dīgha Nikāya*. Boston: Wisdom Publications, 1987.
- Wiriyapinit, Sutthanuch and Supot Chunhachoti-ananta. ''Environmental Conservation in Buddhist Monasteries for Sustainable Tourism.'' International Conference on Studies in Humanities and Social Sciences (SHSS-2015) (November 2015): 214. http://dx.doi.org/10.17758/ERPUB.E1115071.

अलंकारों की परम्परा में समासोक्ति अलंकार

डॉ. शंकर नाथ तिवारी

भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकारों का अपना विशिष्ट स्थान है। इनकी महत्ता इस बात से भी द्योतित होती है कि किसी समय काव्यशास्त्र अलंकारशास्त्र से ही अभिहित होता रहा है। राजशेखर तो अलंकारों से प्रभावित होकर इसे सातवाँ वेद ही बताते हैं। उनकी अवधारणा है कि अलंकार वेद के अर्थ का उपकारक होता है एवं अलंकाराभाव में वेदार्थ की अवगति नहीं हो सकती है–

''उपकारत्वात् अलंकारः सप्तभङ्गमिति यायावरीयः ऋते च तत्स्वरुपपरिज्ञानात् वेदार्थानवगतिः॥''

अलंकार का सर्वमान्य लक्षण ''काव्यशोभाकरान्धर्मान-लंकारान् प्रचक्षते''। काव्यादर्शकार आचार्य दण्डी ने दिया है। अलंकार वाणी के शृङ्गार काव्य-सौन्दर्य के साधन हैं। भारतीय काव्यशास्त्रियों ने इसे सौन्दर्य का पर्याय मानते हुए– ''सौन्दर्यमलंकारः अभिधान से अभिहित किया है।'' अलंकार काव्य की उत्कृष्टता के महनीय साधन हैं। जब वे रसाभिव्यक्ति के सहायक होते हैं तो उनका बहिरंगत्व समाप्त हो जाता है। अभिनवगुप्त ने भी स्वीकार किया कि–''न तेषां बहिरंगत्व रसाभिव्यक्तौ।''

महाकवि सुमित्रानन्द पंत की धारणा भी इस सम्बन्ध में कुछ इसी प्रकार की दिखाई देती है-''अलंकार केवल वाणी के सजावट के लिए नहीं वे भावभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं।'' वास्तव में अलंकार काव्य के बाह्य धर्ममात्र न होकर आन्तरिक उक्ति के साथ मन में आए हुए भाषा के रत्न हैं जिनमें कल्पना का नित्यविहार है। इसी क्रम में समासोक्ति अलंकार का अवलोकन किया जा सकता है।

समासोक्ति-अर्थालंकार का एक प्रकार है। जब प्रस्तुत वृत्तांत के द्वारा अप्रस्तुत वृत्तांत की प्रतीति हो तो समासोक्ति अलंकार होता है। समासोक्ति का अर्थ है संक्षिप्त (समास) कथन (उक्ति)। यहाँ संक्षिप्त उक्ति का अभिप्राय प्रस्तुत के वर्णन से अप्रस्तुत की प्रतीति से है, अतः संक्षेपतः प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत दोनों वृत्तांतों की व्यंजना होने के कारण इसे समासोक्ति कहते हैं। एक के वर्णन से दो का ज्ञान होना संक्षेप कथन है।

समासोक्तिः संक्षिप्तार्थतया।[1]

उक्ति संक्षेपरूपत्वात् समासोक्तिः।[2]

संक्षेपेण उपमानोपमेयलक्षणार्थद्वितीयाभिधानात् समासोक्तिः।[3]

समासेन संक्षेपणार्थद्वयकथनात् समासोक्तिः।[4]

इस अलंकार में सादृश्य या उपमा व्यंग्य होती है, अतः यह गम्यौपम्यमूलक लंकारों की कोटि में आता है; किन्तु विशेषण वैचित्र्य प्रदर्शित किए जाने के कारण इसे गम्यौपम्यविशेषण वैचित्र्यमूलक अलंकार माना गया है। इसमें प्रस्तुत वाच्य रूप से एवं अप्रस्तुत व्यंग्य रूप से रहता है, क्योंकि प्रस्तुत से ही अप्रस्तुत की व्यंजना होती है, जो (व्यंजना) लिंगसाम्य तथा विशेषणसाम्यं द्वारा संभव है। इसमें प्रस्तुत का विशेषण या तो श्लिष्ट होता है या साधारण और विशेष्य सदा अश्लिष्ट होता है। इस अलंकार का सौंदर्य विशेषण-वैचित्र्य में निहित है। पर इसमें मुख्यतः गोपन का भाव रहता है, अतः यह गोपनमूलक अलंकार भी माना जाता है।

इस अलंकार का विवेचन सभी अलंकारिकों ने किया है और इसका विवेचन-प्रवाह भामह से विश्वेश्वर पंडित तक अक्षुण्ण रहा है। भामह ने विशेषणसाम्य के कारण एक वस्तु (प्रस्तुत) के कथन से अन्य (अप्रस्तुत) की प्रतीति को, समास उक्ति के कारण, समासोक्ति कहा है।

यत्रोक्ते गम्यतेऽन्योर्थस्तत्समानविशेषणः।

सा समासोक्तिरुद्दिष्टा संक्षिप्तार्थतया यथा।[5]

दंडी ने एक वस्तु के कथन से तत्तुल्य अन्य वस्तु की प्रतीति को समासोक्ति अलंकार माना है। ये प्रकारांतर से भामह के ही विचार को व्यक्त करते हैं। प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत का स्पष्ट कथन न होने के कारण इस लक्षण की संगति अप्रस्तुतप्रशंसा में भी हो जाती है

वस्तु किंचिदभिप्रेत्य तत्तुल्यस्यान्यवस्तुनः।
उक्ति संक्षेपरूपत्वात् सा समासोक्तिरिष्यते॥[6]

उद्भट ने प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत का स्पष्ट कथन कर भामह तथा दंडी के दोषों का परिष्कार किया। इनका लक्षण भामह से प्रभावित होते हुए भी प्रकृत (प्रस्तुत) के कथन से अप्रकृत (अप्रस्तुत) की प्रतीति के निर्देश के कारण पूर्ण है और इस अलंकार का स्पष्ट रूप अंकित करता है।

प्रकृतार्थेन वाक्येन तत्समानैर्विशेषणैः।
अप्रस्तुतार्थकथनं समासोक्तिरुदाहृता॥[7]

वामन का लक्षण सर्वथा भिन्न एवं भ्रामक है। इनके अनुसार उपमेय का कथन न करने पर भी उपमान या तत्समान वस्तु के वर्णन को समासोक्ति कहते हैं।

अनुक्तौ समासोक्तिः 14, 3-2

उपमेयस्यानुक्तौ समानवस्तुन्यासः समासोक्तिः।
संक्षेपवचनात् समासोक्तिरित्याख्या।[8]

रुद्रट ने बताया कि सकल समान विशेषणों से युक्त उपमान के द्वारा उपमेय की प्रतीति में समासोक्ति होती है। यह लक्षण भ्रांत है—

सकलसमानविशेषणमेकं यत्राभिधीयमानं सत्।
उपमानमेवगमयेदुपमेयं सा समासोक्तिः॥[9]

भोज का लक्षण भी इसी प्रकार की भ्रांत धारणा से युक्त है, जो अप्रस्तुत-प्रशंसा का रूप प्रकट करता है। इनके अनुसार प्रसिद्ध उपमान के द्वारा उपमेय की प्रतीति ही समासोक्ति है।

यत्रोपमानादेवैदुपमेयं प्रतीयते।
अतिप्रसिद्धेस्तामाहुः समासोक्तिं मनीषिणः॥[10]

मम्मट ने अपने लक्षण में इस अलंकार का निर्दुष्ट एवं पूर्ण लक्षण प्रस्तुत किया। इनके अनुसार श्लिष्टं विशेषणों के द्वारा प्रस्तुत से अप्रस्तुत अर्थ की प्रतीति समासोक्ति है। इन्होंने श्लिष्ट विशेषण का सन्निवेश कर नया विचार दिया है। इनके मतानुसार इस अलंकार में विशेषण सदा श्लिष्ट होते हैं, विशेष्य नहींय क्योंकि श्लेषालंकार से अंतर स्थापित करने के लिए ही ऐसा कहा गया है। श्लेष में विशेष्य श्लिष्ट होता है।

परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः 110 / 97

प्रकृतार्थप्रतिपादकवाक्येन श्लिष्ट विशेषणमाहात्म्यात् न विशेषणस्य सामर्थ्यादपि यत् अप्रकृतार्थस्याभिधानं सा समासेन संक्षेपणार्थद्वय-कंथनात्समासोक्तिः॥[11]

रुय्यक ने बताया कि विशेषणसाम्य के कारण अप्रस्तुत का गम्य होना समासोक्ति है। इन्होंने इस अलंकार के निरूपण में विशेषण वैचित्र्य को अधिक महत्त्व दिया है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत के कहीं वाच्य और कहीं गम्य होने से इसके दो प्रकार होते हैं और वाच्यत्व श्लेष के प्रयोग एवं अप्रयोग के कारण दो प्रकार का होता है। विशेषणसाम्य श्लिष्ट शब्दों के कारण साधारण एवं औपम्यगर्भता से तीन प्रकार का होता है। इस प्रकार समासोक्ति पाँच प्रकार की हो जाती है। रुय्यक प्रस्तुत पदार्थ के व्यवहार में अप्रस्तुत पदार्थ के व्यवहार के समारोप का कथन कर नया तथ्य प्रकट करते हैं।

विशेषणानां साम्यादप्रस्तुतस्य गम्यत्वे समासोक्तिः। इह प्रस्तुताप्रस्तुतानां क्वचिद्वाच्यत्वं क्वचिद्गम्यत्वमिति द्वैविध्यम्। वाच्यांत्वं च श्लेषनिर्देशभंग्या पृथगुपादानेन वेत्यपि द्वैविध्यम्। एतद्विभेदमपि श्लेषालंकारस्य विषयः। अप्रस्तुतनिष्ठं तु समासोक्तिविषयः। तत्र निमित्तं विशेषणसाम्यम्। विशेष्यापि साम्ये श्लेषप्राप्तेः। विशेषण साम्याद्धि प्रतीयमानप्रस्तुतं प्रस्तुतावच्छेदकत्वेन प्रतीयते। अवच्छेदकत्वं च व्यवहारसमारोपो न तु रूपसमारोपः। रूपसमारोपेत्वच्छादित्येन प्रकृतस्य तद्रूपरूपित्वा-द्रूपकमेव। ततश्च विशेषणसाम्यं श्लिष्टयासाधारण्ये-नौपगर्भत्वेन त्रिधा भवति।[12]

अन्य आचार्यों में शोभाकर, विद्याधर तथा विद्यानाथ ने रुय्यक के आधार पर ही इस अलंकार का विवेचन किया है।

विशेषणानां साम्यादप्रस्तुतधर्मावच्छेदः समासोक्तिः॥43
ततश्चाप्रस्तुतव्यवहारसमारोपः।
न तु रूपसमारोपः।[13]
साधारणधर्मवशाद्गम्येनाप्रस्तुतेन चारुत्वम्।
प्रस्तुतमुपैतिवाच्यं परस्यामेषा समासोक्तिः॥[14]
विशेषणानां तौल्येन यत्रप्रस्तुतवर्तिनाम्।
अप्रस्तुतस्य गम्यत्वं सा समासोक्तिरिष्यते॥[15]

जयदेव प्रस्तुत वृत्तांत से अप्रस्तुत वृत्तांत के स्फुरित होने में समासोक्ति मानते हैं।

समासोक्तिः परिस्फूर्तिः प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य चेत्॥[16]

विश्वनाथ ने इस अलंकार के निरूपण में विशेषणसाम्य

के अतिरिक्त कार्य तथा लिंगसाम्य का भी समावेश कर नया विचार प्रस्तुत किया। इन्होंने बताया कि

''जिस वाक्य में प्रस्तुत और अप्रस्तुत में समान रूप से अन्वित कार्य, लिंग और विशेषण के द्वारा प्रस्तुत में अप्रस्तुत के व्यवहार का समारोप हो, वहाँ समासोक्ति होती है।'' इन्होंने रुय्यक की भाँति विशेषणसाम्य के तीन रूप माने प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत के विशेषण का श्लिष्ट होना, दोनों में ही विशेषण की साधारणता तथा औपम्यगर्भत्व।

समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिंगविशेषणैः।
व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्यवस्तुना॥[17]

दीक्षित जयदेव का ही लक्षण उद्धृत कर देते हैं।

समासोक्तिः परिस्फूर्तिः प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य चेत्॥[18]

पंडितराज प्रस्तुत वस्तु के व्यवहार पर अप्रस्तुतवस्तु के व्यवहार से प्रकृत पर अप्रकृत के आरोप का वर्णन करते हैं और वाच्यार्थ की प्रधानता स्वीकार करते हुए अप्रस्तुत व्यवहार को प्रधान न मानकर उपस्कारक मात्र मानते हैं।

यत्रप्रस्तुतधर्मिको व्यवहारः साधारणविशेषण-मात्रोपस्थापिताप्रस्तुतधर्मिक-व्यवहाराभेदेनभासते सा समासोक्तिः॥[19]

समासोक्तौ व्यज्यमानस्याप्रकृतव्यवहारोपस्कारक-त्वमेव, न प्राधान्यम्। तदुपस्कृत वाच्यस्यैव तु प्राधान्यमित्युक्तम्॥[20]

विश्वेश्वर पंडित मम्मट के ही मत का अनुवर्त्तन करते हुए समासोक्ति का निरूपण करते हैं।

तत्र प्रकारवाचकपदमात्रं व्यंग्यावाच्य सामान्यम्।
तच्छक्तेरप्रकृतार्थोक्तिः सोक्ता समासोक्तिः॥[21]

रीतिकालीन आचार्यों ने इस अलंकार के विवेचन में मम्मट, विद्यानाथ तथा अप्पय दीक्षित का अनुसरण किया है। चिंतामणि और कुलपति ने 'काव्यप्रकाश' के लक्षण को अनूदित किया। प्रथम (चिंतामणि) ने विद्यानाथ से भी प्रभाव ग्रहण किया है।

श्लेष विशेषन वल उकुत जो कछु और की होइ।
याहि समासोकति कहत पंडित मम्मट कोइ॥
प्रस्तुतवर्ग विशेषनन कहो जा थल होइ।
अप्रस्तुतिगमिता समासोक्ति कहै सब कोइ॥[22]
गुन श्लेष पद अर्थ द्वै, कहै मुख्य इक भाव।
समासोक्ति जानि यह, नहिं प्रधान प्रस्ताव॥[23]

जसवंत सिंह, मतिराम तथा पद्माकर आदि ने 'कुवलयानंद' के लक्षण का अनुवाद किया है।

समासोक्त्यप्रस्तुत फुरै प्रस्तुत बर्नन माँझ॥[24]
जहँ प्रस्तुत मैं होत है अप्रस्तुत को ज्ञान।
समासोक्ति तहँ कहत हैं कबिजन परमं सयान॥[25]
समासोक्ति प्रस्तुतबिषै अप्रस्तुत को ज्ञान।[26]

दास ने मम्मट एवं दीक्षित दोनों के विचार का समावेश किया है।

जहँ प्रस्तुत में पाइये, अप्रस्तुत को ज्ञान।
कहुँ वाचक कहूँ श्लेष तें समासोक्ति पहिचान॥[27]

प्रस्तुत से अप्रस्तुत की व्यंजना- समासोक्ति में प्रस्तुत से अप्रस्तुत की व्यंजना तीन प्रकार से संभव है।

(क) समान विशेषण से (विशेषणसाम्यत्व) अर्थात् प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत दोनों के ही विशेषण समान हों।

(ख) समान कार्य-प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत के कार्य समान हों।

(ग) लिंग साम्य-प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत में लिंग की समानता हो।

समान विशेषण का उदाहरण-

(क) लब्ध्वा तव बाहुस्पर्श यस्याः स कोऽप्युल्लासः।
जयलक्ष्मीस्तव विरहे न खलुज्ज्वला दुर्बला ननु सा॥

''हे वीर तुम्हारी बाहु के स्पर्श को प्राप्त कर जिसे विशेष प्रकार का आनंद मिलता है, वह जयलक्ष्मी तुम्हारे विरह में प्रसन्न न होकर दुर्बल हो गई है।'' यहाँ 'जयलक्ष्मी' केवल कांता का बोधक न होकर नायिका का भी द्योतक है।

(ख) पूरन चंद प्रकास प्रिय निरखि नैन सुख दैन।
प्रगट्यौ चारु चकोर के चित्त चौगुनो चैन॥

यहाँ पूर्ण चंद्र को देखकर चकोर का उल्लसित होना प्रस्तुत अर्थ है, इससे एक अप्रस्तुत अर्थ की भी प्रतीति होती है कि कोई नायिका नायक को देखकर प्रसन्न हुई।

श्लिष्ट विशेषण से-

(ग) तु ही साँच द्विजराज है, तेरी कला प्रमाण।
तो पै सिव किरपा करी, जानत सकल जहान॥

यह दोहा चंद्रमा तथा भूषण कवि दोनों पर लगता है। द्विजराज में श्लेष है- चंद्रमा तथा भूषण कवि, ब्राह्मण।

समासोक्ति तथा श्लेष—दोनों में ही श्लिष्ट या अनेकार्थक शब्दों का प्रयोग होता है, यही साम्य है। इनमें भेद यह है कि श्लेष में विशेषण तथा विशेष्य दोनों ही श्लिष्ट होते हैं; पर समासोक्ति में केवल विशेषण ही श्लिष्ट होता है। श्लेष में दोनों ही अर्थ (प्रायः) प्रस्तुत होते हैं; पर समासोक्ति में एक प्रस्तुत होता है और दूसरा अर्थ अप्रस्तुत। श्लेष के दोनों ही

अर्थ वाच्य होते हैं और समासोक्ति में प्रस्तुत अर्थ वाच्य होता है तथा अप्रस्तुत व्यंग्य।

समासोक्ति और रूपक-रूपक में प्रकृत पर अप्रकृत के स्वरूप का आरोप में होता है और समासोक्ति में प्रकृत के कार्य का आरोप किया जाता है। रूपक में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत दोनों ही वाच्य होते हैं; किन्तु समासोक्ति में प्रस्तुत वाच्य होता है और अप्रस्तुत व्यंग्य।

समासोक्ति और अप्रस्तुत प्रशंसा - दोनों में ही दो अर्थों की व्यंजना होती है और एक वाच्य होता है तथा दूसरा अर्थ व्यंग्य। यही दोनों में साम्य है। इनमें अंतर यह है कि समासोक्ति में प्रस्तुत अर्थ वाच्य होता है और अप्रस्तुत व्यंग्य तथा अप्रस्तुत प्रशंसा में अप्रस्तुत अर्थ वाच्य रहता है तथा प्रस्तुत व्यंग्य।

इस प्रकार समासोक्ति अंलकार का क्रमविकास एवं विभिन्न अलंकारों के साथ उसका सम्बन्ध प्रस्तुत शोध पत्र में देख जा सकता है।

सह-प्राध्यापक, संस्कृतविभाग,
त्रिपुरा विश्वविद्यालय

सन्दर्भ सूची

1. काव्यालंकार, 2/79
2. काव्यादर्श, 2/205
3. लघुवृत्ति, पृ. 39
4. काव्यप्रकाश, 10/97
5. काव्यालंकार, 2/79
6. काव्यादर्श, 2/205
7. काव्यालंकारसारसंग्रह, 2/10
8. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति
9. काव्यालंकार, 8/67
10. सरस्वतीकंठाभरण, 4/46
11. काव्यप्रकाश
12. अलंकारसर्वस्व, पृ. 107-9
13. अलंकाररत्नाकर, पृ. 71
14. एकावली, 8/23
15. प्रतापरुद्रीय, पृ. 291
16. चंद्रालोक, 5/62
17. साहित्यदर्पण, 10/56
18. कुवलयानंद, 61
19. रसगंगाधरं, पृ. 493
20. रसगंगाधरं, पृ. 508
21. अलंकारकौस्तुभ, पृ. 252
22. कविकुलकल्पतरु, 3/116-118
23. रसरहस्य, 8/64
24. भाषाभूषण, 93
25. ललितललाम, 162
26. पद्माभरण, 99
27. काव्यनिर्णय, 11/19

शोध-पत्र

प्रागैतिहासिक काल में मानव संस्कृति निर्माता के रूप में : एक अध्ययन

डॉ. स्वाती रंजन चौधरी

सारांश :

मानव का सांस्कृतिक इतिहास लिखने में पुरातात्विक साक्ष्य काफी सहायक है। पुरातात्विक दृष्टिकोण से मानव सभ्यता के तीन चरण माने जाते हैं- प्रागैतिहासिक, आद्य-इतिहास और इतिहास। कालक्रम की दृष्टि से प्रागैतिहासिक काल मानव इतिहास का सबसे बड़ा काल माना जाता है। प्रागैतिहास मानव इतिहास के उस चरण को दिखाता है जब पृथ्वी निर्माण की प्रक्रिया से गुजर रही थी और आदि-मानव आधुनिक मानव के रूप में विकसित हो रहा था। प्रागैतिहासिक काल में आदि-मानव विषम परिस्थितियों में जीवित रहने के लिए संघर्ष कर रहा था साथ ही मानव के नर-वानर जैसी विभिन्न प्रजातियों में जैविकीय विकास भी हो रहा था। मानव में जैविकीय विकास के उपरांत सांस्कृतिक विकास भी हुआ जिसके कारण जीवन यापन की प्रक्रिया में परिवर्तन आया। मानव ने अपने सांस्कृतिक विकास के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के उपकरणों का निर्माण किया। आरंभिक काल में आदि-मानव भोजन के लिए पशुओं का शिकार करता था, जंगली कंद-मूल इकट्ठा करता था और भोजन की तलाश में घुमक्कड़ जीवन बिताता था। मानव धीरे-धीरे अनाज उगाना और पशुओं को पालना सीख गया। इस प्रकार वह कृषक और पशुपालक के रूप में स्थाई जीवन जीना आरंभ कर दिया। सांस्कृतिक क्षेत्र में, उसके उपकरण निर्माण प्रक्रिया के साथ-साथ भी कई परिवर्तन आया। इस तरह प्रागैतिहासिक काल मानव की निरंतर विकास की प्रक्रिया को दर्शाता है।

मुख्य शब्द :

पुरातात्विक, जैविकीय विकास, सांस्कृतिक विकास, उपकरण, औजार, हस्त-कुठार, शवाधान, मृदभांड, पुरावेत्ता, आभूषण, पुरावशेष।

परिचय :

मानव संस्कृति का निर्माता है, फिर भी संस्कृति निर्माण की क्षमताएं मानव को प्रकृति से ही प्राप्त हुई है। मानव को प्रकृति से कुछ इस प्रकार की शारीरिक और मानसिक क्षमताएं मिली, जिसके सम्मिलित उपयोग से मनुष्य के लिए संस्कृति का निर्माण संभव हो पाया। श्री हॉबल का कहना है कि ''संस्कृति अनोखे रूप में एक मानव-घटना है और वह इस अर्थ में कि पशु जगत में अन्य सभी प्राणियों में मनुष्य ही अकेला एक ऐसा प्राणी है जो की संस्कृति को बनाने और उसे बनाए रखने की क्षमता रखता है।"[1] मानव समाज में रहकर जीवन यापन करता है और अपने ज्ञान और विचारों को आपस में आदान-प्रदान कर सकता है। पशुओं में इस प्रकार की क्षमता नहीं होती है। पुरातत्व में संस्कृति का विशेष महत्व होता है। पुरातात्विक संस्कृति के बारे में गॉर्डन चाइल्ड ने कहा है कि ''उत्खनन के बाद किसी पुरा स्थल से प्राप्त हुई पुरातात्विक सामग्रियां जैसे-उपकरण, मृदभांड, आभूषण, कलावशेष, शवाधान आदि पुरावेत्ता के लिए संस्कृति के रूप में महत्वपूर्ण होता है। किंतु मात्र एक उपकरण, एक मृदभांड या एक झोपड़ी किसी संस्कृति का स्वरूप नहीं हो सकती। जब एक प्रकार के पुरावशेष कई स्थलों से प्राप्त होते हैं, तब पुरावेत्ता के लिए ये संस्कृति का रूप धारण करते हैं क्योंकि ऐसे अवशेष एक प्रकार के मानव समूह से संबंधित समाज को प्रदर्शित करते हैं।"[2]

उद्देश्य : इस लेख का मुख्य उद्देश्य यह बताना है कि

मानव ने किस प्रकार से प्रकृति के सहयोग से एक उच्च स्तर के सांस्कृतिक उत्कर्ष पर पहुंचा जो उनकी अत्यंत उन्नत चिंतन प्रक्रिया को दिखाता है।

प्रागैतिहासिक संस्कृति :

संपूर्ण प्रागैतिहासिक काल को पुरापाषाण काल, मध्यपाषाण काल तथा नवपाषाण काल में विभाजित किया गया है। पुरापाषाण काल, मध्यपाषाण काल तथा नवपाषाण काल अपनी संपूर्ण अवधि में तथा सभी स्थानों पर एक समान नहीं रहा है। स्थान और काल के अनुसार पाषाण कालीन संस्कृति में अंतर भी दिखाई देता है।

1. पुरापाषाण काल- 6 लाख ईसा पूर्व से 10,000 ईसा पूर्व

2. मध्यपाषाण काल- 10,000 ईसा पूर्व से 4,000 ईसा पूर्व

3. नवपाषाण काल- 4,000 ईसा पूर्व के पश्चात

1. पुरापाषाण काल :

पुरापाषाण काल मानव की प्रागैतिहासिक संस्कृति का प्रथम भाग है। मानव संस्कृति के उद्‌भव को इसी काल से माना जाता है। मोटे तौर पर प्रागैतिहासकार संपूर्ण पुरापाषाण काल को तीन भागों में विभाजित करते हैं-

1. निम्न पुरापाषाण काल- 6 लाख ईसा पूर्व से डेढ़ लाख ईसा पूर्व

2. मध्यपुरा पाषाण काल- डेढ़ लाख ईसा पूर्व से 40,000 ईसा पूर्व

3. उच्च पुरापाषाण काल-40,000 ईसा पूर्व से 10,000 ईसा पूर्व

यह विभाजन आदि-मानव के औजारों में हो रहे लगातार सुधारों के आधार पर किया गया है।[3]

1.1 पाषाण उपकरण :

आदि-मानव लेखन कला से अनभिज्ञ थे, इसलिए उनके औजार ही उनके बारे में जानकारी प्राप्त करने के मुख्य स्रोत माने जाते हैं। आदि-मानव के औजार हर अगले चरण में पहले काल की तुलना में ज्यादा बेहतर, धारदार और चलाने में आसान पाए गए हैं। इस प्रकार निम्न पुरापाषाण काल में हस्त-कुठार जैसे भारी पत्थरों के औजारों का प्रचलन था। ऐसे औजारों को मांसादि काटने के खंडक कहा जाता है। मध्य पुरापाषाण कालीन उपकरण तकनीक की दृष्टि से निम्न पुरापाषाण कालीन उपकरणों से अधिक विकसित है। इस समय के औजार निम्न पुरापाषाण काल के औजारों की तुलना में अधिक पतले, नुकीले और छोटे थे। मध्य पुरापाषाण कालीन औजारों में खुरचनी और छेदक मुख्य है। उच्च पुरापाषाण काल के औजार तकनीक, हालाँकि मूल रूप से मध्य पुरापाषाण काल से भिन्न नहीं थी, लेकिन पत्थर के ब्लेड बनाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण नए तकनीक का इस्तेमाल किया गया था। इसके अलावा, औजारों के निर्माण के लिए उपयोग में लाये जाने वाले कच्चे माल में भी विस्तार हुआ। पत्थरों के अलावा, लकड़ी, हड्डी, हाथी दांत और हिरण सींग का उपयोग अब इस उद्देश्य के लिए तेजी से किया जाने लगा। इस काल में मानव ने चाकू, खुरचनी, ब्यूरिन, हार्पून आदि का निर्माण किया। ब्यूरिन का उपयोग नुकीली हड्डी, सींग और हाथी दांत के औजार जैसे की सुई, मछली के काँटे, हार्पून, मिश्रित औजारों के हैंडल और भाला बनाने के लिए किया जाता था। इन हथियारों ने उच्च पुरापाषाण कालीन मानव के शिकार करने की प्रभावशीलता को बहुत बढ़ा दिया। उच्च पुरापाषाण कालीन औजारों के आकार एवं भार में और अधिक कमी आ गई थी। इस काल में उपकरणों पर कलात्मक अभिव्यक्ति का प्रमाण भी मिलने लगा।

1.2 निवास एवं भोजन पद्धति :

निम्न पुरापाषाण काल के मानव खुली भूमि पर ही रहता था एवं अपने भोजन की तलाश में नदियों एवं झीलों के किनारे विचरण करता था। वे मुख्य रूप से कंदमूल खाते थे और थोड़ा बहुत मृत जानवरों के मांस का भी भक्षण करते थे या फिर छोटे-मोटे जानवरों का शिकार करते थे और संभवत: कच्चा मांस खाते थे। मध्य पुरापाषाण कालीन मानव गुफाओं में रहना आरंभ कर दिया था। इस काल में मानव भोजन के अनुरूप समूहों में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में प्रस्थान करते रहते थे। इस काल में मानव ने नियमित रूप से आग इस्तेमाल करना शुरू कर दिया था।आग का इस्तेमाल मांस पकाने में, पौधों से जहरीले पदार्थ हटाने में, खतरनाक जानवरों को डरा कर दूर रखने में और जाड़े के मौसम में गर्मी पानी के लिए करते थे। उच्च पुरापाषाण काल में मानव निवास के लिए जहां गुफाएं उपलब्ध नहीं था, वहां मानव ठंड से बचने के लिए खाल से तंबू बनाते थे। जहां तक उनके बसने के तरीके का सवाल है ''लगभग 90 प्रतिशत स्थलों से प्राप्त साक्ष्यों से पता चलता है कि उच्च पुरापाषाण काल के लोग अपने बसने के लिए ऐसे स्थानों को चुनते थे जहां प्रचुर मात्रा में पानी की

आपूर्ति हो और जहां जानवरों की मौजूदगी हो जैसे की नदी के संगम, जानवरों के रास्ते और पानी के स्थान।"[4] उच्च पुरापाषाण काल में मानव बड़े जानवरों जैसे गैंडे, विशालकाय हाथी का शिकार करना आरंभ कर दिया था। साथ ही उनके भोजन में मछलियां और अनेक किस्म की वनस्पतियां भी शामिल हो गई थीं। इस काल में मानव को यह ज्ञात हो गया था कि जब तक वह एक-दूसरे से मिल-जुलकर नहीं रहेगा, वह जिंदा नहीं रह सकता। इस प्रकार मनुष्यों में, समूहों में रहकर सहयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी।

1.3 वस्त्र एवं आभूषण :

उच्च पुरापाषाण काल में तन ढकने के लिए चमड़े इत्यादि से बेढव और अपरिष्कृत किस्म के लिबास भी बनाए जाते थे। साथ ही साथ साज-सज्जा के मकसद से लकड़ी, हड्डी, हाथी दांत और मृगश्रृंग से आभूषण भी बनाए जाते थे।

1.4 शवाधान :

मध्य पुरापाषाण काल एक मायने में निम्न पुरापाषाण काल से अलग थी। प्रथम बार हम एक ऐसी चीज देखते हैं जो मानव संस्कृति का एक बहुत ही महत्वपूर्ण भाग है वह है शवों की अंतिम क्रिया। निम्न पुरापाषाण काल की तरह शवों को इधर-उधर नहीं फेंका जाता था बल्कि मध्य पुरापाषाण काल में शवों का अंतिम संस्कार किया जाता था। यहां से शवों को दफन करने की परंपरा की शुरुआत हुई। शवों को दफन करने के लिए गड्ढा खोदा जाता था और कुछ औजारों, आभूषणों एवं अन्य चीजों के साथ शव को गड्ढे में दबा दिया जाता था। इससे पता चलता है कि शुरुआती मानव मृत्यु की परिघटना पर सोच-विचार करना शुरू कर दिया था। उच्च पुरापाषाण काल में भी शवों को उनके औजारों और आभूषणों के साथ दफनाया जाता था तथा शवों के ऊपर लाल रंग छिड़क दिया जाता था, जो मृत्यु के बाद जीवन में उनके विश्वास को इंगित करती है।

जहां तक उच्च पुरापाषाण काल के मनुष्यों के दफन और रीति रिवाज की बात है तो कुछ विद्वानों का यह मानना है कि केवल प्रमुख व्यक्तियों को ही अनुष्ठानिक तौर से दफन किया जाता था, जिससे समाज में पदानुक्रम की धारणा को बढ़ावा मिला। हालाँकि पूर्वी यूरोप में बड़ी संख्या में उच्च पुरापाषाण कालीन दफन स्थलों (30,000 से 25,000 साल पहले के) की खुदाई की गयी है। जिसने इस अवधि में विकसित सामाजिक पदानुक्रम की धारणा पर संदेह व्यक्त किया हैं।मोराविया और रूस में सामूहिक दफन में मानव कंकाल के साथ-साथ विशालकाय खोपड़ी, जानवरों की हड्डियां और ब्लेड के औजार जैसे दफन सामान दिखाई देते हैं। कई जगहों पर लाशें बड़ी मात्रा में लाल गेरू से ढकी हुई और लोमड़ी के दांतों के हार और छोटे हाथी दांत के पेंडेंट पहने हुए पाई गई है। वृद्ध पुरुषों और बच्चों दोनों के दफन के लिए हाथी दांत के कंगन और मोतियों जैसे कब्र के सामान के साक्ष्य सामाजिक भेदभाव की परिकल्पनाओं का खंडन करते हैं।[5]

1.5 कला एवं धार्मिक विश्वास :

उच्च पुरापाषाण काल में मानव ने कला के क्षेत्र में एक लंबी सांस्कृतिक छलांग लगाई। पुरापाषाण काल के अंतिम चरण में मनुष्य एक सफल कलाकार हो गया था। यह कला मानव इतिहास में विचार तथा कल्पना के विकास के एक नए चरण को दर्शाता है। स्पेन में अल्तमीरा की गुफा से प्राप्त चित्रकारी इतनी शानदार है कि लोगों के लिए ये विश्वास करना मुश्किल है कि ये पुरापाषाण कालीन चित्रकारी है। इन चित्रों में दौड़ते-भागते जानवरों की छवियां उकेरी गई है। ये चित्र शैली की दृष्टि से बेहद आधुनिक लगता है। दूसरी मशहूर उच्च पुरापाषाण कालीन गुफा फ्रांस के लास्काव में है। इस तरह अब हमारे पास उच्च पुरापाषाण काल के 200 गुफाओं की जानकारी है जिनकी दीवारों पर चित्र बने हैं और नक्काशी की हुई है।[6] इन गुफा चित्रों के अलावा वहां से हजारों अन्य कला वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। उनमें औजारों के मूठ, लघु प्रतिमाएं और मृदाकृतियां भी पाई गई हैं। उन पर जानवरों के चित्र या फिर ज्यामितीय आकृतियां भी बनाई गई हैं। अनेक मृदा आकृतियों में नारी शरीर भी दिखाए गए हैं। हाथी दांत के मनके भी प्राप्त हुए हैं जिनका इस्तेमाल सजावट के लिए किया जाता था। मानव ने इस काल में हाथी दांत और अस्थियों से जानवरों की छोटी आकृतियां भी बनाई। इस काल के चित्रों में विभिन्न प्राकृतिक रंजकों की मदद से अलग-अलग प्रकार के रंग भरे जाते थे। कुछ चित्र गुफाओं के अंदरूनी भाग में बनाए गए थे जहां प्राकृतिक रोशनी शायद ही पहुंचती होगी। जानवरों की चर्बी से बने दीपों का उपयोग कर चित्रकार गुफाओं के अंदरूनी हिस्सों में चित्र बनाते थे। कुछ चित्र तो ऐसे स्थानों पर बनाए गए हैं जहां चित्रकार को चित्र बनाते समय बड़ी कष्टप्रद मुद्रा में बैठना पड़ा होगा। इन चित्रों में मानवों को जानवरों का शिकार करते हुए दिखाया गया है। कुछ नृवैज्ञानिकों जैसे बुइन और रेनाक ने इस प्रकार की कला

का गहन अध्ययन किया है और बताया है कि ये चित्र शिकार की संभावना को बढ़ाने के उद्देश्य से किए गए एक अनुष्ठान थे।[7] कुछ इतिहासकारों का मानना है कि यहाँ से जादू-टोने की शुरुआत हो गयी थी। काउंट बंगा का कहना है कि ''चित्र बनाना भी उनके कर्मकांड का एक हिस्सा था। चित्रकार किसी चीज का खाका बनाकर अपना अनुष्ठान पूरा करता था।"[8] इस तरह के अनुष्ठानों के माध्यम से मानव ने प्रकृति में हस्तक्षेप अथवा उसको नियंत्रित करने का प्रयास किया साथ ही इस प्रकार के अनुष्ठान धार्मिक आस्थाओं को भी प्रदर्शित करता है। उच्च पुरापाषाण काल के मानवों के बीच भाषा का विकास हो गया था। जिससे विभिन्न समूहों के बीच संवाद एवं संपर्क की संभावना बढ़ी। इस संवाद प्रक्रिया ने मानव के विकसित संस्कृति को अगले पीढ़ी तक पहुंचाया।

2. मध्यपाषाण काल :

मध्यपाषाणकालीन जलवायु में परिवर्तन के कारण उनके जीवन निर्वाह के तरीकों पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा। तापमान बढ़ने से बर्फ पिघलने लगी और अनेक स्थान जलमग्न हो गए थे, जहाँ पहले घास के मैदान थे वहां अब बड़े घने जंगल उग आये। बड़े-बड़े पशु अब घने जंगलों में चले गए जहाँ उनका शिकार करना मुश्किल हो गया। इसलिए अब वे छोटे जानवरों का शिकार करने लगे तथा भोजन एकत्रीकरण पर ज्यादा ध्यान दिया। जमी हुई नदियों और जलधाराओं के पिघलने से उनका इस्तेमाल भोजन के स्रोत के रूप में होने लगा। मानव अब पहले की अपेक्षा कम भ्रमणशील हो गए थे और उनमें एक ही स्थान पर रहने की प्रवृत्ति पनपने लगी।

2.1 पाषाण उपकरण :

छोटे जानवरों का शिकार करने एवं मछली पकड़ने के लिए नए औजार बनाए गए। इस संस्कृति के मुख्य उपकरण लघुपाषाण और पत्थर की कुल्हाड़ियाँ हैं। ये कुल्हाड़ियाँ पुरापाषाण हस्तकुठारों से अलग है क्योंकि आकार में लघु होने के कारण छिद्रित बारहसिंघे की सींग, हड्डी या लकड़ी के मूठ में फिट किया जाता था। इस काल में उपकरणों में विविधता आ गई थी एवं उपकरण छोटे-छोटे फ्लेक चिप आदि पर बनने लगे थे। अत: इस काल की प्रमुख विशेषता इसके छोटे प्रस्तर औजार है। तीर या बरछी के सिरों पर लघुपाषाण औजार का प्रयोग होने लगा। इससे मध्यपाषाण कालीन मानव शिकार करने में ज्यादा कुशल हो गया।

2.2 निवास एवं भोजन पद्धति :

मध्यपाषाण कालीन मानव का जीवन अभी भी खानाबदोशों का ही था। इनको मौसम के साथ अपना निवास स्थान बदलना पड़ता था। मध्यपाषाण काल में मानव गुफाओं अथवा तम्बुओं में रहता था। खाद्य पदार्थों की उपलब्धता के अनुसार अपना निवास स्थान बनाते थे। ज्यादातर वे पानी के स्रोत यानी नदियों के आसपास अपना निवास स्थान बनाते थे। ताकि जलीय जीव के रूप में खाद्य पदार्थ आसानी से उपलब्ध हो सके। समुद्र और नदियों में यहां-वहां जाने के लिए छोटी नावों का निर्माण कर लिया था।नावें लकड़ी के कुन्दों को खोदकर बनाया जाता था। इस काल में मनुष्य ने कुत्ते को पालतू बना लिया था। वह शिकार करने में कुत्ते का सहयोग प्राप्त करता था। कुत्ता मनुष्य का सबसे पुराना पशु मित्र है। इस काल में भी मानव मुख्यत: शिकार एवं खाद्य संग्रह से जुड़े रहे। अब वे छोटे जानवरों का शिकार करते थे और बड़े पैमाने पर मछली और समुद्री खाद्य पदार्थों पर निर्भर रहने लगेथे।

2.3 कला एवं धार्मिक विश्वास :

मध्यपाषाण काल के लोग भी अपने हथियारों और उपकरणों पर कलाकृतियां बनाते थे। ये आकृतियां ज्यामितीय चिन्ह होते थे। निजी सजावट के लिए कौड़ियां, छेदे हुए दांत, नाखूनों, हड्डियों और रंगीन पत्थरों आदि से बनाए गए आभूषण का प्रयोग करते थे। उच्च पुरापाषाण काल के समान मध्यपाषाण काल में मानव अपने आवासों को चित्रों द्वारा सजाने में रुचि नहीं रखता था। इतना अवश्य है कि इस काल के मानवों को रंगों से प्रेम था, परंतु उसने इसकी अभिव्यक्ति गुफा, दीवारों अथवा छतों को पशुओं की आकृतियों द्वारा सज्जित करके नहीं की वरन् छोटे-छोटे गोल पाषाण खंडों पर सांकेतिक चित्र बनाकर की। ऐसा प्रतीत होता है कि मध्यपाषाण काल के मानवों को उदर-पोषण में व्यस्त रहने के कारण संभवत: कला के लिए सुअवसर ही नहीं मिल पाया परंतु उनके द्वारा निर्मित सांकेतिक चित्रों से बौद्धिक प्रगति की सूचना अवश्य प्राप्त होती है क्योंकि भविष्य में लिपि का आविष्कार इसी माध्यम से हुआ है।

मध्यपाषाण काल में भी शवों का अनुष्ठानिक रूप से अंत्येष्टि क्रिया की जाती थी। इस काल में भी मृतकों के साथ उनके निजी सामग्री भी दफन कर दी जाती थी। शवाधानों से इन वस्तुओं की प्राप्ति से मध्यपाषाण कालीन विश्वासों, रीतियों और शिल्प कला के बारे में हमें पर्याप्त जानकारी मिलती है।

3. नवपाषाण काल :

नवपाषाण काल के दौरान मानव भोजन संग्रहकर्ता से भोजन उत्पादनकर्ता बन गया। इस काल के दौरान मनुष्य ने कृषि कार्य एवं जानवरों को पालतू बनाने की प्रक्रिया को सीखा। नवपाषाणकालीन संस्कृतियाँ पाषाण काल के अंतिम चरण में विकसित हुई। इस काल की पहचान घिसे हुए एवं पॉलिश किए औजारों तथा मृदभांडों से की जाती है।

3.1 पाषाण उपकरण :

नव पाषाण काल के दौरान मानव अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक कार्यक्षम एवं प्रभावकारी पाषाण उपकरणों का निर्माण किया। इस काल में कुल्हाड़ी, बसुली छेनी, हथौड़ा और हँसिये की प्रधानता थी। हंसिया खेती का प्रधान औजार था। इस काल के औजारों की सतह चिकनी और गोल होती थी, जिससे औजारों में बेहतर धार बन जाती थी। ये औजार पहले के औजारों की तुलना में काफी उन्नत थे। इस काल का सबसे प्रमुख औजार कुठार को माना जाता है जो मूलत: एक कुल्हाड़ी या बसूला होता था। यह जंगल साफ करके जमीन को खेती योग्य बनाने के काम आता होगा। इस काल में मानव अपना शिकारी एवं संग्राहक जीवन पर पूर्ण निर्भरता त्यागने लगा था एवं उन्होंने एक स्थान पर बस कर खेती पशुपालन आदि प्रारंभ कर दिया था।गार्डन चाइल्ड ''नवपाषाण को एक आत्मनिर्भर खाद्योत्पादक अर्थव्यवस्था मानते हैं।"[9]

3.2 निवासस्थल, मृदभांड और वस्त्र निर्माण :

नवपाषाण क्रांति के समय निर्माण के नए विचारों का उदय हुआ। मानव इस काल में मिट्टी, प्रस्तर, लकड़ी आदि से निर्मित झोपड़ियों में निवास करने लगे, बाद में कच्ची मिटटी फिर सुखाई गयी कच्ची ईंटों से घर बनाने लगे थे और मानव अब गांवों में स्थाई जीवन व्यतीत करने लगा। प्राचीनतम स्थायी बस्ती का बहुचर्चित प्रमाण जेरिको के उत्खनित स्तरों से (8000-7000 ई. पू.) मिला है। इसी के समान्तर दक्षिण और पूर्वी एशिया में भी स्थायी बस्तियां अस्तित्व में आ चुकी थी।

इस युग के मानव की जिज्ञासा सिर्फ कृषि कार्य एवं पशुपालन तक ही सीमित नहीं था। इस काल के दौरान मानव ने कुछ ऐसी चीजों का निर्माण किया जो प्रकृति में मौजूद नहीं था। उन्होंने एक रासायनिक प्रक्रिया का आविष्कार किया जिसके अंतर्गत बर्तन बनाने योग्य मिट्टी को आग में पकाकर मृदभांड का निर्माण किया गया। मृदभांड का इस्तेमाल खाना पकाने के साथ-साथ अनाज जमा करने के लिए भी करते थे। बड़ी संख्या में पत्थर की चक्कियों, मूसल और गोल पत्थरों की खोज से पता चलता है कि मानव अनाज कूटने-पीसने के लिए इनका इस्तेमाल करता रहा होगा।[10] नवपाषाण काल में सूत कातने के लिए तकली, तकुआ, चरखा और बुनने के लिए करघे जैसे यंत्रों का आविष्कार करके वस्त्र-निर्माण करना आरभ कर दिया था। ऊन, सन और फ्लैक्स से सूत कातते थे।[11]

3.3 कला एवं धार्मिक विश्वास :

पुरापाषाणयुगीन धार्मिक विश्वासों का सातत्य बना रहा लेकिन उसमें कुछ संशोधन भी हुआ। आदिम कृषि व्यवस्था में प्रजनन और उर्वरता की प्रतीक मातृदेवी का महत्वपूर्ण स्थान रहा। नवपाषाण काल के लोगों के कुछ अपने धार्मिक विश्वास भी थे। कब्रगाहों की खोज से उनके धार्मिक जीवन के कुछ प्रमाण मिलते हैं। मृत व्यक्तियों को दफनाते समय भोजन सामग्री, मृदभांड, और उनके औजार भी साथ रखे जाते थे। धार्मिक आस्था और कर्मकांड पहले से ज्यादा परिष्कृत हो गए। आरंभिक नवपाषाणी बस्तियों से मिट्टी और पलस्तर की मूर्तियां प्राप्त हुई है। बहुत सारी मूर्तियों में महिलाएं दिखाई गई है। महिलाओं की लघु मूर्तियां जनन क्षमता बढ़ाने वाले अनुष्ठानों से जुड़ी थी। ये लघु मूर्तियां कृषक समाज में मातृदेवी की उपासना के रूप में विकसित हुई। जेरिको में निवास स्थलों पर रखे खोपड़ियां प्राप्त हुई है जिन पर मिट्टी का लेप चढ़ा है और नेत्र कोटरो में सीपी भरी हुई है। इन खोपड़ियों का इस्तेमाल कुछ कर्मकांडों के समय किया जाता था। केन्यन इसे 'कपालोपासना' का हिस्सा मानती थी।[12] यह कर्मकांड पूर्वजों की पूजा का कोई रूप हो सकती है। सांड की पूजा और उपासना की जाती थी तथा उसकी बलि भी दी जाती थी। कातल हुयुक, अनातोलिया और पूर्वी भूमध्यसागरीय क्षेत्रों से इसके प्रमाण प्राप्त हुए हैं। कुछ स्थलों पर समुद्री सीपी, शंख, लेपीस-लाजुली और अन्य कीमती पत्थरों से बने मनके और आभूषणों की मौजूदगी से यह ज्ञात होता है कि इन चीजों का आदान-प्रदान होता था।

नवपाषाण काल में कृषि और पशुपालन जैसी वास्तविकताओं ने तत्कालीन मानव समुदायों को गहराई तक प्रभावित किया। खाद्य-उत्पादन ने नए सामाजिक और आर्थिक संबंधों की बुनियाद रखी। इसी कारण स्थाई निवास स्थल की नींव पड़ी। कृषि के कारण जनसंख्या में वृद्धि हुई। जीवन

बेहतर और जटिल हुआ। गांव के स्थायित्व और सुरक्षा के लिए सामूहिक प्रयास किये जाने लगे। संचित ज्ञान और अनुभवों को अगली पीढ़ियों तक पहुंचाने के लिए भाषा का अधिक विकास हुआ। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि नवपाषाण काल में मानव जीवन में काफी गुणात्मक परिवर्तन आए। चाहे वह औजार बनाने की तकनीक हो या सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्र हो। हर क्षेत्र में इस दौरान अभूतपूर्व प्रगति हुई। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि एक बार जब मानव समाज ने कृषि को अपना लिया तब उन्होंने एक ज्यादा जटिल समाज के लिए स्थितियां पैदा कर दीं। वे अधिशेष पैदा कर सके जो अंततः मानव को सभ्यता के उद्भव की ओर ले गया। इस तरह कृषि ने मानवों की जीवन शैली तथा सांस्कृतिक स्थिति को पूरी तरह परिवर्तित कर दिया।

निष्कर्ष :

मानव संस्कृति का विकास एक सीधी सीढ़ी की तरह न होकर एक जटिल प्रक्रिया के फलस्वरूप हुई। मानव ने अपने विकास के हर चरण में अपने औजार निर्माण के माध्यम से संस्कृति को विकसित किया। इसी सतत प्रक्रियाओं का परिणाम था कि उच्च पुरापाषाण काल तक मानव का सांस्कृतिक पक्ष काफी सबल हो चुका था। धर्म व कला ने इनके जीवन प्रक्रियाओं सहित समाज को भी प्रभावित किया। इस काल में मानव की अपनी एक सुसंगत विश्व दृष्टि विकसित हो गई थी। इसी सांस्कृतिक विरासत ने मानवों को भविष्य में कृषि व पशुपालन की राह दिखलाई। मानव को संस्कृति-निर्माता के रूप में प्रतिष्ठित करने में, मानव की भाषा और प्रतीकों के माध्यम से विचारों के आदान-प्रदान की क्षमता का महत्वपूर्ण योगदान रहा। डार्विन ने लिखा है कि ''केवल मनुष्य ही है जो कि प्रतीकों को जन्म देता है और प्रतीकों को अर्थपूर्ण बनाकर भाषा के माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान करता है।''[13] इन भाषा व प्रतीकों के सहारे प्रत्येक समाज में बचपन से ही मनुष्य को अनुभव का पुंज मिलता है और नवीन सांस्कृतिक तत्वों का जन्म, सांस्कृतिक व्यवस्था की स्थिरता तथा निरंतरता संभव होती है।पशु अपने अनुभवों को दूसरों तक नहीं पहुंचा सकते, परंतु मनुष्य भाषा व प्रतीकों के सहारे अपने ज्ञान और अनुभव को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचा सकता है। अतः संस्कृति के निर्माण, विकास, परिवर्तन तथा विस्तार में भाषा और प्रतीकों का बहुत बड़ा योग है।

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
विवेकानंद कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सन्दर्भ सूची

1. मुकर्जी, रविंद्र नाथ. (1962). सामाजिक मानवशास्त्र की रूपरेखा. मसूरी : सरस्वती सदन, पृष्ठ संख्या-159
2. पांडेय, राकेश प्रकाश. (1989). भारतीय पुरातत्व. भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ठ संख्या-07
3. जैन, वी. के. (2008). भारत का प्रागैतिहास और आद्य-इतिहास -एक अवलोकन. नई दिल्ली : डी. के. प्रिंटवर्ल्ड (प्रा.) लि., पृष्ठ संख्या-39
4. कुमार, राकेश. (2018). एन्सिएंट एंड मिडिवल वर्ल्ड फ्रॉम एवोलुशन ऑफ ह्यूमन टू द क्राइसिस ऑफ फ्यूडलिस्म. नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड,पृष्ठ संख्या-26
5. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या-27
6. फारूकी, अमर. (2003). प्राचीन और मध्यकालीन सामाजिक संरचनाएं और संस्कृतियां. दिल्ली : ग्रन्थ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ संख्या-38
7. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या-40
8. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या-42
9. मजुमदार, धीरेन्द्रनाथ. एवं शरण, गोपाल. (1964). प्रागैतिहास. दिल्ली : हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ संख्या-112
10. जैन, वी. के. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या-72
11. तिवारी, गंगा सागर. (1994). विश्व सभ्यता का वैज्ञानिक इतिहास (प्रागैतिहासिक युग से 322 ईस्वी पूर्व तक ऋ. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-37
12. फारूकी, अमर. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या-66
13. मुकर्जी, रविंद्र नाथ. उपरोक्त, पृष्ठ संख्या-161

Research Paper

Seema Khadiya*

Eco-Tourism : Principals and Practices-A Case Study of Current Sitation (Some Lession for Jaipur District)

Introduction:

Whether developed or developing, having increasing opportunities to participate as hosts and guests, in this socio-economic phenomenon. Looking at the tremendous potential that tourism industry offers in the field of employment generation and foreign earning capacity, it has been identified by developing countries as their catalyst for economic development. Tourism represents a major economic activity in many places around the world, especially endowed with rich and attractive environment. Environment not only includes land, air, water, flora and fauna but also encompasses people, their creations and the social, economic and cultural conditions that affect their lives.

The natural and man-made. Environment of an area constitutes one of the basic 'ingredients' of the tourist product offered and naturally, the quality of the product depends critically on the quality of its basic constituent. Thus, the environment, be it predominantly natural or largely man-made, is one of the most basic resources for tourism. Tourism is a resource industry, one that is dependent on nature's endowment and society's heritage (Murphy 2016). Tourism sells these resources as part of it's with other users, including local residents. Tourism-related activities compete for the environmental resources of an area among themselves and with other economic activities (trade, industry, transportation etc.) and conflicts among them arise. These

conflicts result either in deterioration of the quality and quantity of the tourist product, because of undesirable spillover effects (externalities) from one activity to another and consequently, losses to tourism industry as well as the community.

A review of tourism literature reveals a range of impacts related to tourism development, the tourist-host interaction, and resulting influences. However, one must not forget that tourism is all but monolithic (Theuns 2010). To assess the role of tourism, as to its positive or negative effects against this benchmark of sustainable development, it is necessary to distinguish between the various types of tourism. There are many types of tourism based on special interest of tourists like cultural heritage tourism, beach and coastal tourism, cruise destination, village tourism, adventure tourism, eco-tourism, health tourism, business tourism and tourism based on traditional cuisines, crafts and festivals. Each type will have a different kind of impact on its resource base and consequently, also a different developmental impact.

The present paper confines its focus on cultural heritage tourism which is possibly the oldest of the new tourism phenomenon. Heritage tourism has historical precedents in the archaeological sites of the ancient world and the temples and places of bygone era. Heritage can be seen as offering something more or different to both the tourist and the community. Heritage is significant to different communities, groups and individuals depending upon their value and attitudes and the nature of the heritage resource and is also significant in the future of further tourism development in the region.

There is increasing evidence that costs and benefits from tourism do not accrue equally to residents. Basically, the core objective of the study was to consider the perception of host communities towards the presence of tourists and tourism development and thus, seek to gauge the residents' support for the industry as a part of wider issues of development. This paper investigates the residents' perceptions regarding tourism impact. It also concentrates on how various segments of the host community react to tourism impacts.

Methodology:

India offers manifold historical attractions to tourists. Every part of India offers the "four H's of Tourism (Smith 2016-Habitat, Heritage, History and Handicrafts. Its forts, places, architectural grandeur, art and artisans, wall, paintings, sculptures, melodious folk music and dances have been instilling an irresistible urge in tourists to experience them at least once in a lifetime. Of the immensely beautiful states of India, each unique in its ethnicity and traditions, Rajasthan is probably the most mystically intriguing of all. The dullness of the desert, in contrast to the rich and colorful heritage, proposes enigma to this land of kings and warriors. The city of Jaipur constituted the universe of the present study.

It is the capital of Rajasthan and is an inseparable part of Delhi-Jaipur-Agra 'golden triangle' to talk in tourist circuit terms. Pink City, Jaipur is one of the key destinations for heritage tourism as it attracts people from all over the world, therefore, it seemed the most apt place to base the study upon. Moreover, the city is continuously gearing up to present itself as a viable tourism product to cater to the varied needs of different types of tourists. The secondary data have been obtained from the government records, published reports, books, journals, periodicals, unpublished thesis and internet sites.

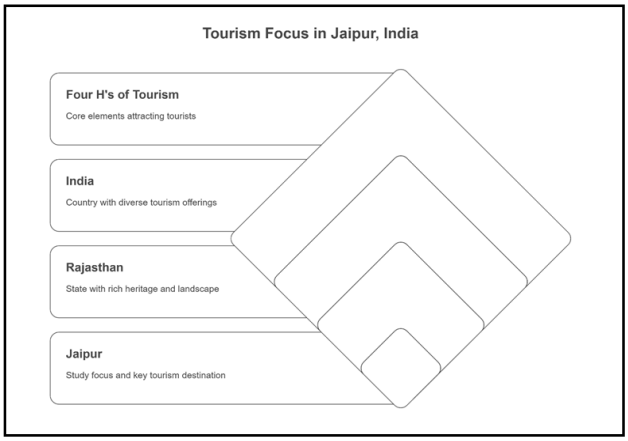

Economic Impacts:

Tourism alters the economic structure of a destination. There is no agreement as to how positive the alteration might be. The economic impact of tourism is the subject of analysis at two broader levels. One is generally positive about industry's prospects while other is negative. The primary economic benefits of tourism are generally regarded as: contribution to foreign exchange earnings and balance of payments, the generation of employment and of income, the improvement of economic structures and the encouragement of entrepreneurial activity.

The economic costs of tourism are considered to include: increased inflation and land values, increased pressure to import, seasonality of production, problems connected with over- dependence on one product, unfavorable impact on the balance of payments, heavy infrastructure costs and the effect on growth of having much of the labour force employed in a service industry with poor productivity prospects.

Tourism is considered generator of employment by 80.7% respondents. Hospitality activities like hotels, restaurants and lodges are more labour-intensive. Most of the residents stated that direct employment was through jobs in such services or as guides. People reported that persons with ability to converse in foreign languages become highly paid guides. Indirect employment arose in business affected by tourism in secondary ways like local transport, handicrafts and banks.

Many respondents especially merchants agreed that tourism encourages entrepreneurial activities. Ambiguity surrounds the quality of employment generated by tourism. Another disquieting feature is seasonality of the jobs generated by tourism and therefore, 14.7% respondents did not agree to the statement there. On the contrary, many respondents feel that Jaipur has an all-time tourist season which places it at an advantageous position. Besides foreign

exchange earnings, there accrues 'spin off results from tourist activities in other sectors of the economy which creates increased demand for local resources resulting in an increase in the income of locals.

Economic Impacts of Tourism

Characteristic	Positive Impacts	Negative Impacts
Living Standard	Visible improvement	Inflation impact
Infrastructure & Services	Stimulates improvements	Loss of amenities
Small Industries	Promotes handicrafts	Competition for resources
Employment	Provides jobs	Seasonal, menial jobs
Land Prices	Raises prices	Social tension
Other Sectors	Expands hotels	Profits to outsiders

As people engage in business activities and hospitality services, increase in their standard of living is visible to some extent according to 72% respondents. An improvement in infrastructure facilities and social services like public health, sanitation and housing are positively stimulated by tourism. Consequently, tourism induces development of the area. According to 84.7% respondents in Jaipur, there was much evidence of it and most likely services to be stimulated were entertainment, leisure facilities like swimming pools, parks, pubs, bars etc. Since handicrafts, artistic and traditional objects are liked by visitors especially foreigners, small scale industries are promoted by tourism stated 70.7% respondents.

According to 80.7% respondents in Jaipur number of hotels have come up gradually over time due to increased rush of visitors. The respondents who disagreed to the economic benefits substantiated their view with various factors. The host population is affected by inflation due to tourism. Most respondents thought that tourism development raises both the prices of land and the prices of other goods and services. Low income groups suffer due to inflationary trends particularly noticeable in food items and transportation.

The study reaffirmed that tourism leads to direct economic benefits which include provision of employment, increase in income of locals which leads to the improved living standards of local community and overall national and regional development. This employment and income provided by tourism may help to stem out migration from these areas. Tourism serves as a catalyst in expansion of other economic sectors such as hotels and handicrafts. However, ambiguity surrounds the quality of economic benefits generated by tourism. Respondents pointed out the seasonal nature of employment generated by tourism. Moreover, locals were engaged in menial jobs while the profits accrued to outsiders. Tourism development also entailed competition among hosts and guests for resource use that led to social tension. Inflation and loss of amenities for residents was listed as a major loss due to increased tourist influx.

Social Impacts:

Social impacts of tourism refer to the changes in the quality of life of residents of tourist destinations. Studies recognize that the social impacts of tourism change through time in response to the structural changes in the tourist industry and the extent and duration of the exposure of the host population to tourist development. In the review of social impacts, it was noted that 78.7% respondents professed that they were proud to have visitors admiring their culture and beauty of the region. Besides infusing pride in own culture (78.6%), tourism was seen as catalyst in encouraging social and cultural exchanges by 59.3% respondents.

A small interaction between hosts and guests sometimes developed into long time friendship. Respondents in Jaipur reported that they exchanged mails with some of the tourists. During contacts tourists and hosts influence each other asserted 71.3% respondents in Rajasthan. Some respondents (41.7%) noticed that exposure to various tourists helps in reduction of prejudices. There appears to be only limited communication between mass tourists and their hosts and hence, 31% respondents there believe that tourism in its present form, seldom promotes understanding between peoples of different cultures.

It is only the 'drifters' and 'explorers' who

establish an intense relationship with resident population and this form of informal tourist- host interaction is manifested in Jaipur where tourists experience spontaneous hospitality of locals. Contrary to the popular view, some respondents in Jaipur contested that tourists are more likely to borrow from them. It was avowed by respondents that the tastes of indigenous were adopted by foreigners and not vice-versa. Most examples illustrated that tourists adopttheir traditional dresses, habits and also learn their language to some extent. Another 57.7% respondents expressed fearful concern for the increased strains imposed on traditional customs and life-styles.

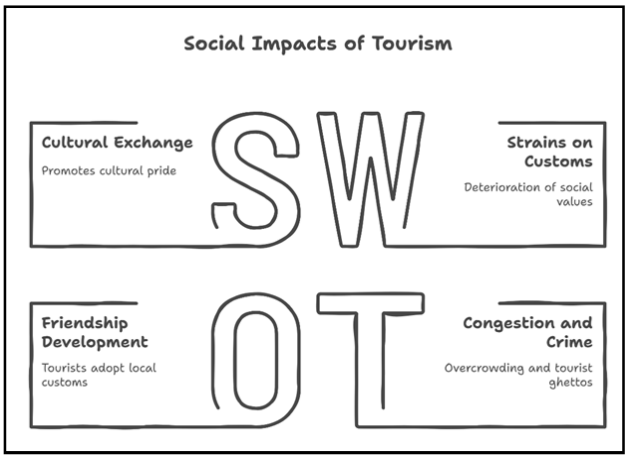

The deterioration of social values in society and evolution of unconventional values and life-styles in the locals was considered equally grave by 34.3% respondents. Attitudes of this kind vary in intensity and mode of expression from grieving statements expressed by hosts, such as 'many among youth are now trying to be like the foreign tourists that are swarming over us' to outbursts of hostilities at times. Tourism is seen as exporter of western life-styles and disseminating metropolitan values.

Large physical presence of tourists in the destination area provokes feelings of tourist resentment. Residents (80%) mentioned congestion and overcrowding of infrastructures, accommodation services and facilities as a major problem. It was reported by 66% respondents that tourist services are frequently concentrated into a small number of complexes which are commonly referred to as 'tourist ghettos'. The owners of tourism structures or their agents isolate the tourists and discourage them from reaching beyond the tourist facilities in order to secure a greater proportion of tourists' money. There are instances when quarrel between two ghettos leads to violent situations. It is very well exemplified by the operations of 'lapka' gangs in Jaipur, who go to the extent of kidnapping foreign tourists to extort money from them.

Tourism contributes to an increase in crime. The literature on crime as an externality of tourist development is not large, but most is empirically based. Studies indicate a positive relationship between increases in tourism and crime rates (Rothman 1978, Pizam 1988). A wide variety of questions concerning the contribution of tourism to crime included: Does tourism stimulate an increase in criminal activities? What types of crime, if any are particularly associated with tourism? And are the crimes committed by the tourists or are discussion. Most of the respondents found it difficult to relate crime to tourism.

However 66.7% respondents agreed that a relationship does exist between tourism and crime as the existence of large number of people with lots of money to spend attracts criminal elements. Material inequality between tourists and hosts generates friction and finds manifestation in economic crimes like robbery, pick-pocketing, looting and misguiding. Due to tourism, the target for criminals is expanded and situations are created where gains from crime may be high and the likelihood of detection small.

The brokers and guides earn commission from shopkeepers and hoteliers by deliberately taking tourists to such places which have exorbitantly high prices. Foreigners are most common prey, who fall victim to nefarious motives of such brokers. Crimes of passion against tourists like molestation, physical assault, rape and murder are also on an increase.

Many places are therefore, considered unsafe especially for females and lonely tourists. Misguiding and cheating are the mildest form of crime against tourists. In the study undertaken, 20.3% respondents noted that certain acts of tourists can also be covered under crime. The shopkeepers recounted their experiences where fake cheques and currency was

handed to them by tourists. In Jaipur some people displayed mistrust on tourists. They recounted few instances where mysterious murders have been committed by tourists in hotel rooms.

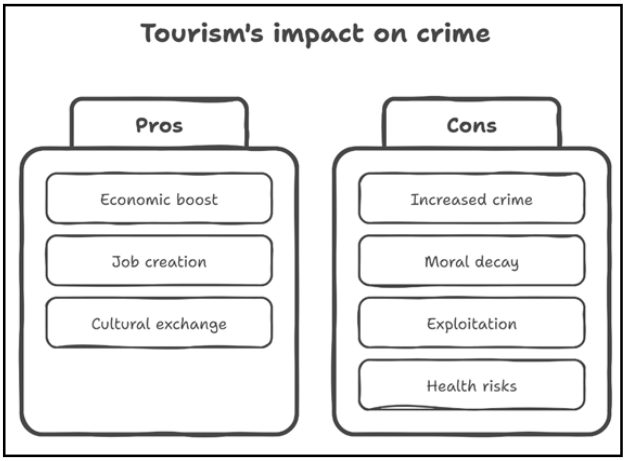

One of the most significant and least desirable by-products of tourism is its effects on the moral standards of the host population (Archer 2019). The growth of prostitution, drug- trafficking and gambling has been mentioned frequently as evils of tourism development. Although no demonstrated link seemed to exist between tourism and social evils like alcoholism, prostitution and gambling to 34.3% respondents, they admitted that a number of destinations sell sex, drugs and recreative pursuits like gambling.

It was noted that residents of certain villages on Jaipur-Ajmer highway professed prostitution and were considered havens for sexual enjoyment. Thus, the 'happily amoral' attitudes of inhabitants coupled with the aspirations for western economic status, formed a foundation for the proliferation of prostitution. It was felt that tourists are people away from the puritanical bonds of normal living, anonymity is assured away from home and money is available to spend hedonistically. These circumstances are conducive to the survival and expansion of the above-mentioned social evils. Since tourists are not homogeneous, only a certain section of tourists with typical profile are involved in such evils. It was suggested by residents of Jaipur that tourists in general and foreigners in particular are instrumental in promoting drug-trafficking, gambling, alcoholism, prostitution and diseases associated with it like AIDS. Foreigners are seen as transmitters of AIDS to local folks like guides, auto drivers etc.

Cultural Impacts:

Cultural effects of tourism refer to changes in the elements of culture resulting from the presence and activities of tourism. The dominant perspective regarding cultural impacts is that it is harmful. Turner and Ash (2020) discussed tourism's role in obliterating cultures. According to them, the tourists' superior economic wealth rapidly erodes the sensuous and aesthetic wealth of cultures that have developed in isolation from the western world. On the other hand, Dogen's (2016) comment that tourism and conservation are interdependent and both stand to gain from close and effective collaboration typified a positive perspective. In the present study empirical analysis of both the perspectives has been done.

The idea that 'tourism kill's tourism' by a heavy physical impact at a popular site is well known in the literature. Degeneration of historical and cultural sites due to heavy tourist influx was reported by 33.7% respondents. It was noted that many Indian tourists scratched walls and inscribed their names on them. Although difficult to measure, these respondents agreed there is relationship between tourism density and vulnerability of tourist sites.

Commercialization of cultural traditions is the most comprehensive statement which covers all impacts of tourism on culture. Few respondents subscribe to the extreme viewpoint that tourism has led to deterioration of traditional forms. Most of the respondents accepted that tourism has encouraged the production of 'pseudo-traditional' art forms like fake paintings, manuscripts, pottery and other art objects. But at the same time, the respondents maintained that such airport art' consisted of stylized work presented in traditional garb and catered to the tourists, thus, providing economic benefits to the region.

Most of the respondents (79.7%) favored 'airport art' in spite of the changes that have taken place in form and functions of art objects, in the methods of making them, in the materials used and in the quality of production. Irrespective of all changes, respondents

recognize that tourism has given new lease of life to the already dying traditional workmanship and the artifacts. Erosion of traditional know-how has occurred according to 11.3% respondents but tourism is less to blame for it.

Many residents of Jaipur emphasized that fake and spurious antiquity possibly, fulfils the demands of tourists for cheap, exotic, portable and durable souvenirs. They agreed that although contemporary forms are often degeneration of traditional styles but what is important is that art is not dying by any means. Few respondents among elites regretfully opined that markets are flooded with tourist art which is of cultural insignificance and has aesthetic inadequacies while original art objects of historic and artistic value are illegally traded. Some elite respondents rationalized that much of the deterioration in art forms is the result of the severance of the link between art and its traditional functions in society, be they religious or secular. Many business class people reflected that many non-traditional craftsmen are attracted to the industry. Market forces have not only contributed to changes in art forms and their quality, they have often created a new manufacturing class which is not always of host origin. Many arts are no longer a specialty occupation lamented one sculptor in Jaipur.

Many respondents (60%) supported the view expressed by Bosselman (1978) that, 'In so far as the tourist seeks the beautiful, the exciting or the authentic, the economic benefit he brings may provide the incentive to create and maintain these qualities'. Respondents (76.7%) noted that that tourists have a strengthening effect in the upkeep of heritage sites as government showed concern towards the conservation and preservation of historical and religious sites because of deep interest shown by tourists in the cultural heritage.

Tourism has given impetus to safeguarding of old havelis, which were earlier neglected. In order to give a new lease of life to many old havelis, they have been converted into heritage hotels or restructured keeping their original features intact. Conscious attempts have been done by authorities to restore many monuments and many new areas of cultural significance are identified and are being promoted as tourist sites. 'Operation Pink' was undertaken by concerned authorities as a restoration project to blend the past glory of the city with the modern features.

Tourism's important role in patronage of folk artists (74.7%), promotion of ethnic dance forms (29%), ethnic fabric and dresses (29%) and revival of traditional fairs and festivals (49.3%) was acknowledged by many respondents. In order to promote the culture of the region, various exhibitions and festivals are organized where folk arts and crafts are displayed and folk performances are staged. Tourists reawaken interest in a society for its own culture by supporting the dance forms, theatres or museum by their presence and entrance fees.

It was noticed that renaissance of material forms of culture has been brought by tourism. Tourism has also spurred preservation of traditional artifacts like jewellery, pottery and paintings etc. according to 63.3% respondents. Tourism sells culture and its various facets as a product. The great paradox of tourism, as it is often alleged, is that it destroys the authenticity it seeks. Every culture has a number of festivals or events that might have a meaning that is historic or religious. In the context of tourism, authenticity' can be defined as property of native behaviour, sites, dress, cuisine, theatre, dance, music, artifacts and so on, of being unaffected by the presence of tourists. Since tourism inevitably involves 'presentation of self' to use Goffman's concept, promoters of tourism consciously project a picture of their culture to prospective customers. When the event is changed for the sake of the tourist the meaning behind it is lost. The conscious attempt by host to modify their behaviour, artifacts, dress and so on, so as to appear 'real' to tourists is termed 'staged authenticity' by Mac Cannel (2016).

The result is that part of culture is lost. Majority of the respondents could not understand the connectedness between tourism and loss of authenticity in cultural elements and therefore, chose to remain quiet on this issue. There were 23.7% respondents who vociferously said that rather than robbing authenticity from culture, tourism has given a fillip to various cultural events. The respondents gave illustrations of various fairs and festivals like Teej,

Gangaur which were especially staged for tourists because of keen interest shown by tourists. Since staged authenticity of this nature draws mixed audience of tourists and locals, it was discerned from the responses that such creations or recreations became the basis of cultural revival and acquire secondary authenticity over time. Such events might just be spectacle to the tourists but they hold traditional significance for the locals. However, few respondents complained that in such events, celebration and its inherent meaning is substituted by commercialization and entertainment respectively.

Interestingly, majority of resident's exuded confidence that their traditions were so unique, diverse and strongly rooted that "tourist's gaze' is not likely to erode them. It was argued that in times, when indigenous traditions are being eroded by westernization, urbanization and industrialization, 'staged/events' actually contribute a lot in their revival. Ethnic restaurants, like Choki Dhani, Apno Gaon, Kesariya showcasing 'native villages' with people donning ceremonial attires, traditions, cuisine, and sometimes create pseudo traditional items were strongly supported by respondents.

They act as 'culture capsules', displaying rural life with all its features and vibrancy within an area in such an innovative way that tourists not only gain a live experience but also participate joyfully as one of the rural folks. However, a small percentage of 9.3% respondents expressed that in order to meet tourists' expectations which are often based on stereotypes, the naturality and originality of culture is lost. Since culture is dynamic and so many changes have occurred but Rajasthan is presented as a land of kings even today argued some respondents. The traditions of erstwhile princely states are staged in front of tourists who are insulated within the 'royal hotel bubble' and are distanced from the real contemporary culture.

Thus, tourism in this way confirms the stereotypical image of the region, which has undergone so many changes. The overall perception of residents in Jaipur was that tourism revives and reinvigorates traditions that are languishing under the assault of other modernizing forces such as industrialization and urbanization. Far from destroying local cultures, tourism more commonly transforms and revives them. Of all forms of outside contact and modernization that affects isolated local cultures, tourism is probably the least destructive, opined several urbanites, precisely because it imparts a marketable value to cultural diversity.

Conclusion

The findings revealed that impact assessment of tourism is a complex matter and contains both positive and negative elements. Different types of tourism have different effects on different societies. In Jaipur, all the alterations are directed towards projecting it as a 'heritage city' with a treasure of royal experiences to offer to the domestic as well as international travelers. The findings reinforce that the residents of Jaipur had a more optimistic perspective regarding the economic impacts of tourism. It was found that not only does the community benefit economically from an active tourism industry, but community pride is also enhanced. The influence of tourism on consumption patterns and traditional values is also viewed from positive as well as negative perspectives. Tourism also serves as a major stimulus for conservation of important elements of the cultural heritage of an area that might otherwise be allowed to deteriorate or disappear. Revitalization of traditional arts, handicrafts, dance, music, fairs and festivals and various aspects of traditional life-styles were considered a positive impact of tourism by many respondents. Although tourism was recognized as instrumental in encouraging cultural exchange and reduction of prejudices, host population showed resentment when all activities became tourist-oriented.

***Research Scholar**
Govind Guru Tribal University, Banswara
Email- khadiyaseema1996@gmail.com

Dr. Sanjay Parihar
Assistant Professor
Government College, Sirohi

Dr. Laxman Lal Parmar
Principal
Mama Baleshwar Dayal Govt. PG College,
Kushalgarh, Banswara

References:

1. Archer, B.H. (2021): Tourism Multipliers: The State of the Art. Occasional Papers in Economics. Bangor: University of Wales Press.
2. Bosselman, Fred P. (ed.) (2018): In the Wake of Tourism: Managing Special Places in Eight Countries. Washington De: The Conservation Foundation. Pp 19-35.
3. Bryden, J.M. (2017): Tourism and Development: A Case Study of the Commonwealth Carribean. Cambridge: Cambridge University, Press. 2016
4. Cohen, Erik (2016): Who is Tourist? - A Conceptual Clarification. Sociological Review 22(4):527-555. Dogen, H.Z. (2016): Forms of Adjustment: Socio Cultural Impacts of Tourism. Annals of Tourism Research 16: 216-236.
5. Doxey, G. (2015): A Causation theory of Visitor-Resident Irritants, Methodology and Research Inferences. The Impact of Tourism. 6th Annual Conference Proceedings of the Travel Research Association. San Diego: California, pp 195-198
6. Krippendorf, Jost (2015): The Holiday Makers - Understanding the Impact of Leisure and Travel, Oxford, Butterworth-Heinemann.
7. MacCannell, D. (2014). Staged Authenticity: Arrangements of Social Space in Tourist Settings. American Journal of Sociology. 79(3). 2014
8. Matheison, A. and G. Wall (2014): Tourism: Economic, Physical and Social Impacts. London: Longman. 2013
9. Murphy, P. (2013): Tourism: A Community Approach. London: Methuen.

अज्ञेय की कविता में प्रतीक, परंपरा से हटकर

डॉ. सुनीता दुरंगल

नयी कविता के पुरोधा अज्ञेय अपनी कविता के जरिए कुछ ऐसा रच रहे थे, जो परंपरा लोक से हटकर नयी कविता को अपने अलग अंदाज में स्वर दे रहा था। जहाँ 'अनुभूति की सत्यता' और 'जीया गया सच व भोगा गया यथार्थ' स्वर पा रहा था। अब तक जो विषय कविता के हिस्से नहीं थे, वे अब कविता का विषय बन रहे थे। अज्ञेय की कविता बरबस उस ओर खींच लिए जाती है जिसे ओर हम देखने से बच रहे थे। अब जो वे कविता रच रहे थे, वह जमीनी यथार्थ से जा जुड़ी – 'जो है जैसा है वैसा ही' को सच करती अज्ञेय की कविता नयी कविता, प्रयोगवादी प्रगतिवादी दौर में एक अलग प्रतिमान को गढ़ रही थी। जहाँ सोचने समझने महसूसने की परंपरागत प्रणालियों में तब्दीलियाँ नजर आने लगी, जहाँ वह कविता की भावभूमि थी या शिल्प की जमीन। अज्ञेय का कवि रच रहा है कुछ ऐसा जो न सिर्फ नया है, अपितु परंपरा से हट कर वे महसूस करते हैं। परंपरा का विरोध अज्ञेय नहीं करते, किंतु जो स्थापनाएँ वे करते हैं वह आलोचकों में बहस, विमर्श का विषय बन रहे थे हर आरोप को नजरअंदाज करता हुआ अज्ञेय का कवि, नयी कविता में प्रतीकों की नयी परिभाषा रच रहे थे। वे कहते हैं- 'ये उपमान मैले हो गए हैं, देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच' अब से पहले ये बेखौफ कहने का साहस शायद ही कोई कवि कर पाया था। निराला ने यह प्रयास किया जरूर पर अपने आखिरी काव्य रचना के दौर में वे पुन: विषाद, अवसाद, टूटने बिखरने की कविताएँ रचने लगे। पर अज्ञेय ने जिस अंदाज में नयी कविता के दौर में कविताओं में प्रतीकों को नए अंदाज मं गढ़ा, वह विचारणीय हैं- सिर्फ यहाँ प्रतीक नए नहीं थे अपितु रोजमर्रा की जिंदगी से जुड़ी अनेक वस्तुएँ अज्ञेय की कविता नजर आने लगी। वे रच रहे थे- मेज, कुर्सी, पेन, पेंसिल, घड़ी, खिड़की, दरवाजा, बल्व, तस्वीर, दीवार, रबड़, सुई, धागा, कैंची जैसी अनेकानेक वस्तुएँ पर कविताएँ, जो अपने संग जिंदगी के विविध नए अर्थ बयां कर रही थीं, जिनका होना शामिल तो था हर इंसान की जिंदगी में, लेकिन महत्व न मिलने की वजह से दरकिनार सी रही है ये हर वस्तु कविता से।

अज्ञेय का कवि अचानक ही उस ओर ध्यान खींच ले जाता है जिस ओर हम देखने से बचना चाह रहे थे, यहाँ कविता को नया अंदाज मिला और प्रतीकों के नए अर्थ खुलने लगे। कुछ ऐसा ही 'कलगी बाजरे' की कविता में नजर आता है। अब तक जो सौन्दर्य की परंपरागत परिभाषा थी, वह अचानक इस कविता के प्रतीक 'बाजरे' से एकदम नए एहसास को रच देती है। जो अब प्यार का प्रतीक बनकर कविता में जगह पाता है, वह अब सौन्दर्य, प्यार, ऐश्वर्य, औदार्य, समग्रता व सृष्टि के विस्तार का प्रतीक बनकर अज्ञेय की कविता में चुपचाप अपनी जगह बना लेता है। रोजमर्रा की जिंदगी में इस्तेमाल होने वाला बाजरा प्रेमिका के सौन्दर्य, शृंगार को एक नए प्रतीक से जोड़ देता है- 'हरी घास से', वह गा उठता है- 'किस प्यार से मैं कह रहा हूँ। अगर मैं यह कहूँ- बिछली घास हो तुम / लहलहाती हवा में छरहरी कलगी बाजरे की?'

यहाँ प्यार की परिभाषा भी बदली नजर आती है अब कवि परंपरा की राह छोड़कर नए को अपना रहा है वह अपनी प्रिया को ललाती सांझ के नभ की अकेली तारिका नहीं कहता, न ही शरद के भोर की नीहार नहायी कुँई या टटकी चंपे की

कली किसी भी पुराने प्रतीक को वह प्यार के इजहार या सौन्दर्य की व्याख्या करने के लिए इस्तेमाल नहीं करता है- वह सृष्टि के विस्तार व जीवन से जुड़े नए प्रतीकों को प्यार की व्याख्या से बांध देता है। जहाँ घास-हरीतिमा, जीवन, प्यार, बिछलन, कोमलता, मासूमियत, शृंगार, सौन्दर्य का प्रतीक बनकर आई है वहीं कलगी बाजरे में सिमटा हुआ प्रेमिका का सौन्दर्य परंपरागत मापदंडों से अलग एक नई भूमिका व परिभाषा गढ़ रहा है सौन्दर्य व प्यार की।

सोचने समझने महसूस ने गढ़ने के इस क्रम में अज्ञेय बेहद खूबी के साथ नये को स्थापित कर रहे हैं। जहाँ कविता महज पढ़ने-समझने की वस्तु नहीं रही। वह अब देखने की वस्तु व महसूस का विषय बनी - अज्ञेय ने 'हरी घास पर क्षण भर' कविता में कुछ इसी भावबोध को अभिव्यक्त किया है जहाँ न सिर्फ अनुभूति की सत्यता में नयापन है अपितु जिस प्रतीक का वे आलोच्य कविता में इस्तेमाल करते हैं वह भी बेहद नया व परंपरा से हटकर है- 'हरी घास'। जहाँ ढलती हुई सांझ में दो प्रेमी एक घास के बड़े से मैदान में आ बैठे हैं और आपसी बातों के दौरान प्रेमी अचानक ही कह देता है- 'चलो चले, और रहे बैठे / तो लोग कहेंगे / घुंघले में दुबके दो प्रेमी बैठे हैं / वे हम हो भी / तो यह हरी घास ही जाने।' (हरी घास पर क्षण भर, सदानीरा भाग-1, पृष्ठ 90)

यहाँ प्यार की परिभाषा को एक नए सच के साथ रचा गया वहीं दूसरी ओर अज्ञेय का ध्यान घास की ओर बरबस जाने व उसे ही अपने प्रणय संबंध का साक्ष्य बनने की स्थिति को बेहद महत्व का बना देता है। घास जो कभी सूखती नहीं है चाहे जितना भी सूखा क्यों न पड़े, जितनी भी तपन धरती पर हो- घास अपने वजूद को हर हाल में बचाए रहती है। इस नए प्रतीक में अज्ञेय ने हरियाली, जीवन, सत्यता, पावनता के अर्थों में घास के प्रतीक को रचा है। समाज अब प्रेम संबंधों की परिभाषा में दखल नहीं देगा यह यहाँ नजर आता है पर गवाही देती घास अपने होने के सच को बयां करती है। घास पर्याय है प्यार, का एक पवित्र रिश्ते का, विश्वास का और सृष्टि सौन्दर्य विस्तार का।

अज्ञेय की कविताओं में नदी, द्वीप, दीप, पंक्ति आहुति, दूर्वांचल, कतकी पूर्ना, वसंत, ऋतुराज, बदली, पपीहे की पुकार, क्वाँर की बयार, उनींदी, चाँदनी, सवेरा, शरद, झोंप, नदियाँ, दौंगरा, तारे, पावस, बगुलों की डार, शेफालिका के आँसू, इतराया हुआ ज्वारा, गगन में घिरते मेघ, बिखरी हवा, सोंधी मुग्ध मिट्टी, हंसती हुई भोर, गाती सांझ, उड़ते नन्हे परिंदे, फुटकती नन्हीं चिड़ियाँ, टिमटिमाते जुगनू जैसे अनेक प्रतीक नजर आते हैं बुगुले कभी जीवन का तो कभी गति का प्रतीक बने हैं, कहीं शेफालिका का हौले-हौले मुस्कुराना उसके दर्द को स्वर देता है तो कहीं जीवन की क्षणिकता का एहसास करवाता है। कहीं पपीहा मन के दर्द को बयां करता है तो कहीं दर्द में भी एक सीख दे जाता है कवि गा उठता है- 'जब पपीहे ने पुकारा- मुझे दीखा दो पंखुडियाँ झरी गुलाब की, तकती पिपासी।... हँस दिया मन दर्द से। 'ओ मूढ ! तूने अब तलक कुछ नहीं सीखा' (जब पपीहे ने पुकारा, सदानीरा भाग-1, पृष्ठ 455)

कहीं जुगनू-सांझ के ढलते ही अपनी रोशनी के जरिए जीवन का अर्थ बन जाते हैं। वे प्रेरक है उज्जवलता व जीवन का, जब सांझ ढलती है तो प्रकृति शृंगार करती है और उस शृंगार को दिप्त करते जुगनू प्यार का प्रतीक बन चमकते नजर आते हैं 'कहीं दीए की लौ' प्रतीक बनी हैं जो झील में अपने होने के अक्स को बयाँ करती है। अचानक बहती हवा से जब आस-पास के पेड़ों की डालियों की परछाई, झील में ढोलने लगती हैं वहीं दीए की लौ भी अज्ञेय की कविता में झील में जब प्रतिबिम्बित होने लगती है तो नजर आती है जीवन की हलचलें, उतार चढ़ाव जो निरंतरता के अर्थ में नए प्रतीक को गढ़ाते नजर आते हैं।

अज्ञेय के कविता में हर शब्द का प्रतीकार्थ ढूंढा जा सकता है चाहे वह नन्हीं परछाई हो, चाहे पहाड़ों के नीचे झाँकती पगडंडियाँ हों, या फिर अनगिन पक्षियों की चहचहाटें। सभी में जीवन, उमंगे गूँजें, थिरकन व गति नजर आती है- प्रतीकों के इन अर्थों को अज्ञेय ने बेहद बारिकी में रचा है। जीवन के सच को ज्यों का त्यों बयाँ करती अज्ञेय की कविता प्रतीकों के उस संसार को गढ़ रही थी जो अब तक नयी कविता में अनगढ़ रहा है। रात का फैला अंधकार जीवन के उतार-चढ़ाव, परिवर्तन का प्रतीक बनता है, वहीं बरखा में पत्तियों पर बारिश की पट-पट स्वर करती मौन को तोड़ती है, बूंदें जीवन की तरलता, पारदर्शिता व नश्वरता का प्रतीक बनकर आई है। कहीं घनी रात में महुए का चुपचाप टपकना - अज्ञेय की कविता में एक नए प्रतीक को गढ़ता है, ग्राम जीवन में जिस महुए का महत्त्व आज भी नजर आता है वही महुआ नयी कविता में अज्ञेय के पहले किसी कवि की कविता का हिस्सा नहीं बना। महुआ- जो कई किवदंतियों से जुड़ा है जिसे बीनने

रात के अंधेरे में प्रेमी युगल बहाने से जाते हैं और वही महुआ उनके मिलन पलों की गवाही देता है। कहीं कठफोड़े-कर्मठता का प्रतीक बने हैं तो कहीं फुलसुंघनी की फुरकन - जीवन की व्यग्रता, आतुरता, लय, आवेग का प्रतीक बन कर अज्ञेय की कविता का हिस्सा हुई है। कहीं ओस की बूंदें जब दरकने लगती हैं- तो वे अपने रूप में मासूमियत, कोमलता, पावनता व आर्द्रता का प्रतीकों समेट कर प्रतीक की नए अर्थ छवियाँ गढ़ती हैं। हरसिंगार के झरते फूल - जीवन की क्षणिकता का प्रतीक बने हैं तो कहीं उज्जवलता व सौन्दर्य गंध का। जहाँ यह प्रतीक सौन्दर्य का पर्याय है, वहीं जीवन के ठहराव की क्षणिकता को भी बयां करता नजर आता है। कुछ ऐसा ही 'असाध्य वीणा' कविता में भी नजर आता है जो जीवन के ठहराव, क्षण की महत्ता की प्रतीकों की भाषा में अभिव्यक्त कर रही है- कवि गा उठता है- किरण भोर की पहली जब / जब तकती है ओस बूंद को / उस क्षण की सहसा चौंकी-सी सिहरन। / और दुपहरी में जब / घास-फूल अनदेखे खिल जाते हैं। मौमाखियाँ असंख्य झूमती करती हैं। गंजार। (उस लंबे विलमें क्षण का तंद्रालस ठहराव, असाध्य वीणा, सदानीरा - भाग-2, पृष्ठ 117)

यहाँ ओस की बूंदें, घास-फूल, दुपहरी मोमाखियाँ की गुंजार, सभी प्रतीकों के नए अर्थ खोलते हैं। ओस की बूंदें जीवन की क्षण भंगुरता, पावनता का प्रतीक बनी है, वही घास फूल अपने होने की क्षणिकता की कहानी कहते हैं जो दुपहरी में उसी घास में छिप कर विलय हो जाते हैं। इसी तरह मधुमखियों की गुंजार भी मंद होने लगती है जैसे-जैसे सूर्य अपने पूर्णाकार में आकाश में दमकने लगता है।

'असाध्य वीणा' में जब वीणा स्वरित होती है तो हर किसी के लिए वे स्वर विविध अर्थों में खुलने लगते हैं- जहाँ नई वधू की सहमी-सी पायल ध्वनि, वीणा के स्वर को व्याख्यायित करती है। यह एक नए प्रतीक को गढ़ता है कवि नई वधू व पायल की ध्वनि प्रतीक बनकर अज्ञेय की कविता में आए है। यही वीणा का स्वर नन्हें शिशु की किलकारी बन - जीवन सौन्दर्य का प्रतीक बन जाता है। कहीं नजर आ ठहरी है- जाल फँसी मछली की तड़पन पर 'अज्ञेय' से पहले शायद ही किसी कवि की निगाह नन्हीं सी जाल में फँसी मछली की तड़पन की ओर गई हों मछली जिजीविषा का प्रतीक बन यहाँ जगह पाती है। वहीं दूसरी ओर 'असाध्य वीणा' की स्वर लहरियाँ - किसी के लिए मुक्त विस्तृत नभ में स्वच्छंद उड़ती नन्हीं सी चिड़िया की मदमस्त चहक का प्रतीक बन जाती हैं तो कहीं ये स्वर लहरियों में आ जुड़ती है-जीवन के बाजारों से जहाँ मंड़ियों की ढेलमढेल के बीच अज्ञेय के कवि को नजर आती है- आस्पर्धा भरी बोलियाँ जो ग्राहकों के मोल-भाव को स्वर दे रही या ग्राहक भी प्रतीक अर्थ रखता है और उनकी आस्पर्धा भरी बोलियाँ भी, जीवन के हर रंग को ये बाजार बयाँ करते हैं और ग्राहक जो कभी कविता का विषय नहीं रहा, अचानक अज्ञेय की कविता में एक अलग पहचान बना लेता है।

वीणा के स्वरों में गूंज उठती हैं- मंदिरों की घंटियाँ - जो पावनता, श्रद्धा आस्था भक्ति की गूंज बनकर प्रतीक के नए अर्थ खोलने लगती है। ये नजर यहीं नहीं रूकती अज्ञेय इस कविता में एक और प्रतीक को रूप सौंपते हैं लँगर में कस-मसाती नौका, जो समुद्र की लहरों पर होने की गवाही आँक देती है। लहरें, नौका प्रतीक के अर्थ में गति, लय, ध्वनि, क्रमबद्धता, कर्मशीलता का प्रतीक बनकर आए है।

किसी के लिए ये ध्वनि - नट्टिन की एड़ी के घुंघरूओं की ओर इशारा करती नजर आती है अज्ञेय ने ये जो नए प्रतीक गढ़े वे अपने भाव-सौंदर्य में भी परंपरा से हटकर अर्थ रच रहे हैं। ये स्वर ध्वनियाँ - युद्ध ढोल की सुनाई पडती है।

तो किसी को - सांझ की गोधूलि की सी। यहाँ पुडु नाद, सांझ की गोधूली एक नए अर्थ में प्रतीक की अर्थ छवियाँ उकेर रही है। नाद-जीवन के संघर्ष, विरोध, आक्रोश व परिवर्तन का प्रतीक है तो सांझ की गोधूलि-मिलन पलों का प्रतीक बन इस कविता में नजर आती है। कहीं-कहीं वीणा का स्वर प्रलय के डमरू नाद के रूप में कोई महसूस करता है- डमरू नाद जीवन के उत्कर्ष के साथ जीवन विध्वंस का भी प्रतीक कही जा सकती है। वहीं कोई जीवन की पहली अंगडाई के तरह वीणा के स्वरों में खुद को समा लेता है। यहाँ अंगडाई भी जीवन के सुखमय उतार-चढ़ाव के अनुभवों का प्रतीक बन कर रच दी गई है। वहीं वीणा की चुप्पी में प्रियंवद केश कंबली को महसूस होता है- एक समर्पण, एक आत्मत्याग, एक उत्सर्ग - जिसका अनुभव खुद प्रियंवद को वीणा की झंकारों में महसूस होता है- वे समर्पण त्याग व उत्सर्ग जीवन का विविध स्थितियों, विडंबनाओं, उलझावों, आशाओं का प्रतीक कहे जा सकते हैं- कवि गा उठता है - श्रेय नहीं कुछ मेरा / मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में / वीणा के माध्यम से अपने को मैंने / सब कुछ ही सौंप दिया था / सुना आपने जो वह मेरा नहीं, / न वीणा का था : / वह तो सब कुछ की तथता

थी / महाशून्य। वह महामौन.... जो शब्दहीन / सब में गाता है- (असाध्य वीणा, सदानीरा, भाग-2, पृष्ठ)

यहाँ शब्द है - जो सब में गाता है वह स्थिति भी प्रतीकार्थ से जुड़ी है- जो निशब्द है वह जीवन का सार बनकर प्रतीक को गढ़ रहा है। ऐसे में कहा जा सकता है अज्ञेय का कवि प्रतीकों के जरिए नयी कविता में जो प्रतिमान स्थापित कर रहे थे वे न सिर्फ नए थे अपितु परंपरा लीक से हट कर अपने सच को बयाँ करते हैं।

एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग,
दौलत राम कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

सन्दर्भ सूची

1. कवि के नए प्रतिमान - नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, 1990
2. सदानीरा - भाग-1, (अज्ञेय की संपूर्ण कविताएँ)
3. सदानीरा - भाग-2 (अज्ञेय की संपूर्ण कविताएँ), प्रकाशन नेशनल - पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण - 1986
4. तार सप्तक- संपादक - अज्ञेय, प्रकाशन भारतीय ज्ञान पीठ, 1995
5. 'मेरे समय के शब्द' केदारनाथ सिंह, राधा कृष्ण प्रकाशन, 1995
6. कवि ने कहा, केदारनाथ सिंह, किताब घर प्रकाशन, संस्करण - 1995
7. कवि दृष्टि अज्ञेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण - 1983
8. अज्ञेय : सर्जना और संदर्भ नेशनल पब्लिशिंग हाउस, संस्करण - 1985
9. सन्नाटे का छंद, संपादक-अशोक वाजपेयी, प्रकाशन- वाग्देवी प्रकाशन संस्करण - 1997
10. 'अज्ञेय: एक अध्ययन' भोला भाई पटेल, गुजरात यूनिवर्सिटी प्रथम संस्करण - 1983
11. छायावाद- नामवर सिंह, प्रकाशन - राजकमल, संस्करण - 1993
12. 'अज्ञेय', रमेशचंद्र शाह, साहित्य अकादमी, प्रथम संस्करण - 1990
13. रामविलास शर्मा, नयी कविता और अस्तित्ववाद, राजकमल प्रकाशन, 1987
14. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, राम स्वरूप चतुर्वेदी, भारतीय ज्ञान पीठ, तृतीय संस्करण - 1990

शोध-पत्र

अंडाल और मीरा का जीवन एवं तुलनात्मक अध्ययन

श्रद्धा त्रिपाठी

भारतीय भक्ति साहित्य की परंपरा में स्त्री-संतों का योगदान उतना ही महत्वपूर्ण रहा है जितना पुरुष संतों का, यद्यपि इतिहास और आलोचना की मुख्यधारा में स्त्रियों को वह स्थान अपेक्षाकृत कम मिला है जिसकी वे अधिकारी हैं।[1] दक्षिण भारत की अंडाल और उत्तर भारत की मीरा, भक्ति आंदोलन की दो ऐसी स्त्रियाँ हैं जिन्होंने अपने युग की सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्थाओं को भक्ति के माध्यम से चुनौती दी।[2] ये दोनों स्त्रियाँ, जिनकी उपासना पद्धति, भाषिक क्षेत्र और काव्य परंपराएँ अलग थीं, उन्होंने अपने-अपने संदर्भों में स्त्री-स्वर की नई परिभाषा रची और ईश्वर के प्रति प्रेम को सामाजिक बंधनों से ऊपर रखा।[3]

अंडाल आठवीं शताब्दी की तमिल संत कवयित्री थीं, जो 'आलवार' परंपरा की एकमात्र महिला संत मानी जाती हैं। वे वैष्णव भक्त थीं जिन्होंने श्रीरंगम मंदिर में विष्णु को पति मानकर जीवन पर्यंत वैवाहिक समर्पण की भावना से भक्ति की। उनकी प्रमुख रचनाएँ तिरुप्पावै और नाचियार तिरुमोळी तमिल भक्ति साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं।[4] अंडाल की भक्ति में श्रृंगार, वात्सल्य और आत्मसमर्पण की त्रिवेणी प्रवाहित होती है, जो एक युवती की दिव्य आकांक्षा को सामाजिक यथार्थ से जोड़ती है। वे केवल एक भक्त नहीं थीं, बल्कि अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने स्त्री की धार्मिक चेतना को प्रतिष्ठित किया।

दूसरी ओर, सोलहवीं शताब्दी की मीरा बाई, राजस्थान की राजकुमारी होते हुए भी सांसारिक बंधनों को त्याग कर कृष्ण-भक्ति में रम गईं। मीरा की भक्ति विद्रोह का स्वर लिए हुए है वे पति, कुल, समाज और राज्य सत्ता से टकराईं, केवल इसलिए कि उन्होंने अपने आराध्य के प्रति प्रेम और निष्ठा में कोई समझौता स्वीकार नहीं किया। उनके भजन आज भी भारत के कोने-कोने में गाए जाते हैं, जिनमें प्रेम की तन्मयता, समर्पण की पराकाष्ठा और सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रति विरोध का स्वर स्पष्ट सुनाई देता है। मीरा की भक्ति में वह आत्मबल है जो पितृसत्तात्मक ढाँचे को हिला देता है।

अंडाल और मीरा के जीवन का तुलनात्मक अध्ययन केवल धार्मिक विमर्श नहीं है, बल्कि यह स्त्रीवादी विमर्श, सामाजिक इतिहास और सांस्कृतिक अध्ययन के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। जहाँ अंडाल की भक्ति एक मंदिर-केंद्रित अनुशासित आध्यात्मिकता है, वहीं मीरा की भक्ति एक मुक्त चेतना का अनंत विस्तार है। दोनों की रचनाएँ केवल आध्यात्मिक साधना नहीं हैं, बल्कि वे समय, सत्ता और समाज से संवाद करती हुई स्त्री के आत्मविकास की दास्तान हैं।

इस शोधपत्र में अंडाल और मीरा के जीवन, काव्य, भक्ति-पद्धति, सामाजिक भूमिका, और स्त्रीवादी दृष्टिकोण से उनके योगदान का तुलनात्मक विश्लेषण किया जाएगा। इस विश्लेषण के माध्यम से हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि किस प्रकार इन दोनों संत कवयित्रियों ने भारतीय भक्ति परंपरा को न केवल समृद्ध किया, बल्कि उसमें एक नया दृष्टिकोण भी जोड़ा एक ऐसा दृष्टिकोण जहाँ भक्ति केवल आत्मा और परमात्मा के बीच नहीं, बल्कि व्यक्ति और समाज के मध्य संवाद का सशक्त माध्यम बनती है।

अंडाल की जीवनी, काव्य और भक्ति

अंडाल, जिन्हें गोदाई अथवा कोंडाई के नाम से भी जाना जाता है, तमिल भक्ति आंदोलन की सबसे प्रतिष्ठित महिला

संतों में से एक थीं। वे आलवार संत परंपरा की एकमात्र महिला प्रतिनिधि थीं, जिन्होंने विष्णु भगवान के प्रति अपार प्रेम और आत्मसमर्पण को अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया। ऐसा माना जाता है कि अंडाल की उत्पत्ति एक चमत्कार स्वरूप हुई थी—वे श्रीपेरुंबुदूर के विष्णु मंदिर के पुजारी विष्णुचित्त (पेरियालवार) को एक तुलसी के बाग में मिली थीं। उन्होंने अंडाल को अपनी पुत्री के रूप में पाला।

अंडाल की भक्ति बचपन से ही प्रकट होने लगी थी। वे प्रतिदिन श्रीरंगम के श्रीरंगनाथ भगवान के प्रति प्रेम से ओतप्रोत होकर व्रत करतीं, पुष्पों से श्रृंगार करतीं और उन्हें स्वयं धारण कर भगवान को अर्पित करतीं। इस परंपरा को ''शुद्ध भक्ति'' नहीं माना जाता था, किंतु अंडाल की भावनात्मक भक्ति ने उन रूढ़ मान्यताओं को तोड़ दिया।[5] उनका जीवन स्वयं में स्त्री-अस्मिता, आत्म-अधिकार और धार्मिक समर्पण का अद्वितीय उदाहरण बन गया।

उनकी प्रमुख रचनाएँ दो हैं ''तिरुप्पावै'' और ''नाचियार तिरुमोळी''। ''तिरुप्पावै'' में 30 पद हैं जो मार्गशीर्ष मास में भगवान नारायण को जगाने, सेवा अर्पित करने और दिव्य आनंद प्राप्त करने की स्त्री-सुलभ लालसा को व्यक्त करते हैं। ये रचनाएँ न केवल भक्तिभाव का प्रमाण हैं, बल्कि सामाजिक रूप से स्त्री की आवाज को भी दृढ़ता से प्रस्तुत करती हैं। ''नाचियार तिरुमोळी'' में प्रेमिका और ईश्वर के मध्य संवाद के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम की गहराई प्रकट होती है, जो परंपरागत भक्ति साहित्य से कहीं अधिक निजी, उदात्त और भावपूर्ण है।

अंडाल की भक्ति पारंपरिक वैष्णव मत को पुनर्परिभाषित करती है। उनके पदों में विद्रोह की आभा है वे एक स्त्री होते हुए भी विष्णु से विवाह की कामना करती हैं, जो उस समय की सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध था। अंडाल की भक्ति वल्लभ (प्रेमासक्त) और माधुर्य भाव से युक्त थी, जिसमें भक्त और भगवान के मध्य प्रेम, मिलन और आत्म-निवेदन के भाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं।[6]

उनका अंतकाल भी अत्यंत अलौकिक बताया जाता है। जनश्रुति है कि विवाह के समय वे श्रीरंगनाथ मंदिर में प्रविष्ट हुई और साक्षात भगवान में विलीन हो गईं। यह भक्ति का चरमोत्कर्ष था सगुण से निर्गुण की ओर पूर्ण समर्पण।

मीरा की जीवनी, रचनाएँ और आध्यात्मिक योगदान

मीरा बाई, जिन्हें भक्त मीरा के नाम से भी जाना जाता है, उत्तर भारत की सबसे प्रसिद्ध महिला संतों में से एक हैं। वे 16वीं शताब्दी की राजपूताना भूमि (वर्तमान राजस्थान) से थीं, जहाँ जन्म के समय से ही उनका व्यक्तित्व पारंपरिक स्त्री आदर्शों से भिन्न था। उनका जन्म मेड़ता (जिला नागौर) में राठौड़ वंश के एक क्षत्रिय कुल में हुआ था।[7] बचपन से ही वे श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेमभाव से ओतप्रोत थीं। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने एक साधु से श्रीकृष्ण की मूर्ति प्राप्त की थी और उसी समय से उन्होंने श्रीकृष्ण को अपना पति मान लिया।

मीरा का विवाह उदयपुर के महाराणा भोजराज से हुआ था, किंतु उनका मन सांसारिक जीवन में कभी नहीं रमा। वे निरंतर ठाकुरजी (कृष्ण) के प्रेम में लीन रहीं। विवाह के उपरांत भी मीरा का ईश्वर-प्रेम बढ़ता गया, जो उस समय के कुलीन स्त्री जीवन की मर्यादाओं और राजसी प्रतिष्ठा के विपरीत था। यह बात तत्कालीन समाज और शाही परिवार को स्वीकार्य नहीं थी, और मीरा को अनेक यातनाओं का सामना करना पड़ा। किंवदंतियों के अनुसार उन्हें विष दिया गया, काँटों का बिस्तर दिया गया, परंतु हर बार श्रीकृष्ण की कृपा से वे सुरक्षित रहीं।

मीरा की भक्ति संत-परंपरा की सगुण मार्ग की अनुयायी थी, विशेषत: वल्लभाचार्य की पुष्टि मार्गीय परंपरा से प्रभावित। वे कृष्ण को अपना प्रियतम, आराध्य और आत्मा का परम साथी मानती थीं। उनका काव्य-लोक इस भावना का सजीव प्रमाण है। उन्होंने अपने भजनों के माध्यम से स्त्री के अंतर्मन की पीड़ा, समाज की बंदिशों के प्रति विद्रोह और कृष्ण के प्रति अद्वितीय अनुराग को सहज, गेय और लोकभाषा में व्यक्त किया।

उनकी रचनाएँ मुख्यत: ब्रज भाषा में हैं और उनमें राजस्थानी और गुजराती प्रभाव भी दिखाई देता है। उनके काव्य में माधुर्य भाव प्रमुख है, जहाँ ईश्वर को प्रेमी, सखा, पति, और रक्षक के रूप में देखा गया है। उनकी भक्ति नायिका भाव पर आधारित है, जहाँ वे स्वयं को विरहिणी, प्रेमिका या दासी मानकर प्रभु से मिलन की आकांक्षा करती हैं। मीरा की कविताएँ जितनी मार्मिक हैं, उतनी ही तीव्र हैं वे बार-बार समाज से प्रश्न करती हैं कि एक स्त्री क्यों नहीं अपने आराध्य के प्रति प्रेम प्रकट कर सकती।

उनके भजनों की शैली अत्यंत सहज, भावप्रवण और गेय है। कुछ प्रसिद्ध भजनों में ''पायो जी मैंने राम रतन धन पायो'',

''मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'', ''मैँ तो सांवरे के रंग राची'' आदि शामिल हैं। इन भजनों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये जन-जन के हृदय से सहज संवाद करते हैं और उनमें शास्त्रीयता का बोझ नहीं होता, वरन् लोक-भाषा और भावना की सादगी से युक्त होते हैं।

मीरा का जीवन सामाजिक मर्यादाओं के विरुद्ध स्त्री चेतना का प्रतीक बन गया। उन्होंने घर, कुल, पद, प्रतिष्ठा सभी का त्याग कर भक्तिपथ को चुना और एक यात्री बनकर तीर्थस्थलों की यात्रा की। वे वृंदावन, द्वारका, और गोवर्धन जैसी पवित्र भूमियों पर भ्रमण करती रहीं। एक कथा के अनुसार वृंदावन में जब वे एक प्रमुख वैष्णव संत से मिलने गईं, तो उन्हें यह कहकर मना कर दिया गया कि वे स्त्री हैं। इस पर मीरा ने कहा, ''मैं तो केवल कृष्ण की दासी हूँ, नारी-पुरुष का भेद तो केवल इस संसार में है, प्रभु के चरणों में नहीं।'' इस उत्तर ने संत को झकझोर दिया और उन्हें मीरा की भक्ति के आगे झुकना पड़ा।[7]

उनका अंत अत्यंत रहस्यमय और आध्यात्मिक रूप से समृद्ध बताया गया है। जनश्रुतियों के अनुसार द्वारका के रणछोड़ मंदिर में भजन गाते-गाते वे श्रीकृष्ण की मूर्ति में विलीन हो गईं, जैसे अंडाल श्रीरंगनाथ में। यह समापन भक्ति का चरमोत्कर्ष था प्रेम में पूर्ण लय।

मीरा बाई की भक्ति में अद्‌भुत साहस, विरह की वेदना, आत्मसमर्पण और आध्यात्मिक उन्मुक्ति की झलक मिलती है। उन्होंने स्त्री होकर न केवल ईश्वर से सीधा संवाद स्थापित किया, बल्कि अपने समय की पितृसत्तात्मक व्यवस्था को भी चुनौती दी।

तुलनात्मक विश्लेषण : भाषा, भाव, समर्पण, सामाजिक प्रतिक्रिया

अंडाल और मीरा, दो भिन्न भौगोलिक और सांस्कृतिक संदर्भों में जन्मी महिला संत कवयित्रियाँ, अपनी-अपनी भाषा, काव्यशैली और भक्ति सौंदर्य के माध्यम से ईश्वर के प्रति समर्पण की उत्तम अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती हैं। अंडाल तमिल परंपरा की प्रतिभाशाली कवयित्री थीं, जिन्होंने 'तिरुप्पावै' और 'नाचियार तिरुमोळी' में विलक्षण चिंतन और भावनात्मक गहराई स्थापित की। उनकी कविताओं में तमिल संगमयुग की काव्यशैली स्पष्ट दिखती है जहाँ गहराई, सौंदर्य और आध्यात्मिक-भौगोलिक संदर्भों का मिश्रण होता है। मीरा विरासत में पारंपरिक राजस्थानी और ब्रज भाषाओं की प्यासी लोक-भक्ति शैली लेकर आईं, जो सीधे हृदय को स्पर्श करती है, और जिसमें अलंकृत संरचना की अपेक्षा सहजता और लोकाभिव्यक्ति प्रमुख है। इस भाषा की विविधता उनके सामाजिक संदेशों में सहजता लाती है और वे विद्रोह-भीतपूर्वक समाज के हृदय तक पहुँचने में समर्थ होती हैं।

भावनात्मक पक्ष में अंडाल का स्वर संयमपूर्ण और माधुर्य प्रधान है। उनके काव्य में श्रृंगार और माधुर्य रस की विजय स्पष्ट दिखाई देती है, किन्तु यह व्यर्थता में डूबा नहीं होता; उसके भीतर आध्यात्मिक अर्थ भी अग्रणी होता है। वे विष्णु को पति मानकर एक आध्यात्मिक विवाह की अनुभूति प्रस्तुत करती हैं, जिसमें आत्मा की गहराई होती है और वह परंपरागत सामाजिक रूपांकनों से परे ऊँचा संदेश देती है। इसके विपरीत, मीरा की आकांक्षाएँ विद्रोह और आत्मीय पीड़ा के माध्यम से इर्द गिर्द घूमती हैं। उनके भजनों में विरह-पीड़ा का टूटता स्वर, समाज की बंदिशों से टकराव और आत्मिक उत्कंठा की तीव्रता स्पष्ट सुनाई देती है।[8] विशेषकर उनकी पंक्तियाँ जैसे ''सांवरिया मोसे बोले न जइयो, मैं तो तन-मन दियो रे'' दर्शाती हैं कि मीरा ने समस्त तन-मन से अपनी आत्मा को कृष्ण को अर्पित कर दिया। यह भक्ति केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि पितृसत्तात्मक ढाँचे को अस्वीकार करने वाला संघर्ष भी है।

समर्पण की सीमा को देखें तो अंडाल ने मंदिर में स्वयं को भगवान के साथ लीन कर देने का प्रत्यक्ष कदम उठाया। यह आत्मसमर्पण उनकी कविताओं की श्रृंगारभरी श्रद्धा को सार्वजनिक प्रतीक में रूपांतरित करता है, जहाँ एक स्त्री मंदिर की प्राचीन परंपरा को नारेबाजी की जगह आध्यात्मिक ढाल बनाकर सामना करती है। दूसरी ओर, मीरा ने सांसारिक वैभव, राजसी प्रतिष्ठा और पारिवारिक सम्बंधों को त्याग कर संन्यस्त जीवन अपनाया। उनके पश्चगमन ने स्पष्ट रूप से पितृसत्तात्मक सांस्कृतिक ढाँचे को चुनौती दी, जब उन्होंने विष और षड्यंत्र का सामना किया और फिर भी कृष्ण की भक्ति से नहीं मुड़ीं।

सामाजिक प्रतिक्रिया के संदर्भ में, अंडाल को उनके परिवार से संरक्षण प्राप्त था, जिससे उन्हें धार्मिक पहचान और समाजिक स्वीकृति में सहूलियत हुई।[9] उनके पिता पेरियालवार की प्रतिष्ठा भी भक्ति मार्ग को एकाग्रता से पूरा करने का माध्यम बन गई। हालांकि अंडाल के द्वारा ईश्वर को पति मानने वाली अवधारणा उस समय की सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप

नहीं थी, फिर भी मंदिर-समूहों में उन्हें व्यापक आदर और स्वीकृति मिली। इसके विपरीत मीरा को सामाजिक बहिष्कार, राजकीय सजा और विषदान जैसी प्रताड़नाएँ झेलनी पड़ीं।[10] उन्होंने सामाजिक विरोध को अपनी कविता और जीवन-प्रवाह के माध्यम से आकर्षित किया, जब उन्होंने स्त्री स्वतंत्रता और ईश्वर-प्रेम को पितृसत्तात्मक मर्यादाओं से ऊपर स्थापित किया।[11]

इनमे इस तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अंडाल और मीरा दोनों ने स्त्री भक्ति की दो भिन्न-स्वरूप दिशाओं की स्थापना की जहाँ अंडाल की भक्ति मंदिर और धार्मिक परंपरा से जकड़ी हुई थी, वहीं मीरा की भक्ति सड़कों पर और सामाजिक विरोध में जड़ जमाने वाली बनी। किंतु दोनों में अभिमान की एक ही अभिव्यक्ति थीरू ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण समर्पण, स्त्री आत्म-निर्णय और सामाजिक-आध्यात्मिक आजादी का उद्घोष।

इतिहासगत रूप से देखें तो अंडाल का स्वर 'सम्भावना' की सीढ़ियाँ चढ़ता प्रतीत होता है, जो भक्ति के माध्यम से स्त्री की पारंपरिक सीमाओं में मंगलाभिषेक का संकेत देता है। वहीं मीरा की शास्त्र-विरोधी, विद्रोहात्मक भक्ति क्रमशः आधुनिक स्त्रीवाद के विकास का पूर्वाभास प्रस्तुत करती है।

इसी प्रकार, भाषा, भाव, समर्पण और सामाजिक प्रतिक्रिया के स्तरों पर यह तुलनात्मक विश्लेषण स्पष्ट करता है कि अंडाल और मीरा दोनों ने भारतीय भक्ति कविता में स्त्री के आध्यात्मिक अधिकारों को मान्यता प्रदान की, परंतु दोनों ने इसे विविध सामाजिक-भौगोलिक संदर्भों में भिन्न-अलग शैली से प्रस्तुत किया, जो आज के लिंग-चर्चा और स्त्री विमर्श के लिए महत्वपूर्ण प्रेरणास्रोत हैं।

निष्कर्ष

अंडाल और मीरा भारतीय भक्ति साहित्य की ऐसी दो दिव्य विभूतियाँ हैं, जिनके व्यक्तित्व और काव्य ने न केवल धार्मिक चेतना को, बल्कि सामाजिक और स्त्रीवादी विमर्श को भी एक नई दिशा दी। यद्यपि वे भौगोलिक, भाषिक और सांस्कृतिक दृष्टियों से भिन्न थीं—अंडाल तमिल क्षेत्र की मंदिर-परंपरा से जुड़ी थीं, जबकि मीरा राजस्थानी राजपरिवार की पृष्ठभूमि से थीं फिर भी उनके भीतर एक गहन साम्यता थीरू ईश्वर के प्रति निष्कलंक प्रेम, आत्मा की पुकार और स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व की उद्घोषणा।

अंडाल की भक्ति जीवन के प्रारंभ से ही श्रीरंगम के विष्णु मंदिर से जुड़ी रही। उन्होंने अपने काव्य में धार्मिक अनुशासन, श्रृंगारिक भाव और आत्मिक मिलन को एक गूढ़ संतुलन में प्रस्तुत किया। उनकी वाणी में वात्सल्य और वैराग्य का अद्भुत संगम है, जो दक्षिण भारतीय मंदिर संस्कृति में आज भी जीवित है।[12] दूसरी ओर, मीरा ने सामाजिक प्रतिरोध के माध्यम से ईश्वर से संबंध स्थापित किया। उन्होंने पति, कुल, परिवार और राज्य की सीमाओं को त्याग कर कृष्ण को ही अपना सब कुछ स्वीकार किया। यह त्याग ही उनका स्त्री-स्वतंत्रता का उद्घोष बन गया।

इन दोनों संत कवयित्रियों का जीवन यह दर्शाता है कि भक्ति केवल आध्यात्मिक साधना नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का भी साधन बन सकती है। इन्होंने भक्ति को केवल पंथ या मत तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे एक सार्वभौमिक, मानवीय और स्त्री-अधिकारपरक दृष्टिकोण प्रदान किया। अंडाल और मीरा का तुलनात्मक अध्ययन हमें यह सिखाता है कि सच्ची भक्ति सामाजिक बंधनों को चुनौती देती है, आत्मा की स्वतंत्रता को प्राथमिकता देती है, और प्रेम को सर्वोच्च मार्ग मानती है। यही उनके जीवन और रचनाओं की शाश्वत प्रेरणा है।

शोधार्थी, हिन्दी

सन्दर्भ सूची

1. शर्मा, अरविन्द -विमेन इन इंडियन रिलीजनस. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2002, पृष्ठ 137
2. देहेजिया, विद्या -अंतल एण्ड हर पाथ ऑफ लव : पोएम्स ऑफ अ वुमन सेंट फ्रॉम साउथ इंडिया. स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क प्रेस, 1990, पृष्ठ 46
3. पाण्डेय, सुधाकर -मीराबाई एंड हर कॉन्ट्रिब्यूशन्स टू द भक्ति मूवमेंट. ज्ञान गंगा प्रकाशन, वाराणसी, 2004, पृष्ठ 81
4. पिंचमैन, ट्रेसी -द राइज ऑफ द गॉडेस इन द हिन्दू ट्रेडिशन. स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क प्रेस, 1994, पृष्ठ 109
5. हॉले, जॉन स्ट्रैटन -सॉन्ग्स ऑफ द सेंट्स ऑफ इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1988, पृष्ठ 156
6. शुलमैन, डेविड -तमिल टेम्पल माइथ्स : सैक्रिफाइस एंड डिवाइन मैरिज इन साउथ इंडियन सैव ट्रडिशन.

प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1980, पृष्ठ 221
7. कुमार, काजली –मीरा : एक सामाजिक अध्ययन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 67
8. देशिकाचार, वी. के. –भक्ति चार्या और संगीत पर्यतना. दिल्ली यूनिवर्सिटी प्रकाशन, 2012, पृष्ठ 34
9. झा, योगिनान्द –अंडाल : द ऑटोबायोग्राफी ऑफ अ गॉडेस, पेंगुइन इंडिया, 2016, पृष्ठ 90।
10. शास्त्री, रमेशचन्द्र –भारतीय भक्ति परंपरा में स्त्री संतों का योगदान, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 2001, पृष्ठ 144
11. मिश्रा, अशोक कुमार –उत्तर भारतीय भक्ति आंदोलन और स्त्री दृष्टि, भारतीय विद्या संस्थान, 2015, पृष्ठ 128
12. श्रीवास्तव, उषा – भक्ति युग की कवयित्रियाँ, प्रभात प्रकाशन, 1999, पृष्ठ 75

Research Paper

Confidentiality in Arbitration: Myth or Reality?

Vivek Kumar Sharma
(Advocate)

Abstract

Arbitration is deemed a private and efficient numeraire over traditional litigation, a land of confidentiality upon whose gates parties may resolve disputes, or so it seems. Traditionally, confidentiality prides itself as the chief rationale and concealment of vital trade secrets from the world at large or perhaps away from defamatory publicity to forge precious business relations. However, the strength and enforceability of confidentiality provisions in arbitration are not only inconsistent but also commonly misunderstood.

There is no universal principle that grants confidentiality in all arbitral proceedings; rather, it depends on an interplay between contractual terms, institutional rules, national legislation, and judicial interpretations. This paper tries to critically look at whether confidentiality in arbitration is a forum for legal sanctity or whether it remains but an accepted assumption. It undertakes an analysis of the statutory provisions in Indian arbitration law, mainly Section 42A of the Arbitration and Conciliation Act, 1996, and juxtaposes it against international arrangements and institutional rules like those of ICC, SIAC, and UNCITRAL.

Case law and the practices of arbitrators have been examined in this study to bring to the fore the gaps between theory and practice. The paper finally questions whether confidentiality in arbitration is an attribute or a legal myth and earnestly suggests some reforms to prescription to give clarity and consistence to the enforcement.

Keywords- Arbitration, Confidentiality, Section 42A, Arbitral proceedings, Institutional rules, Indian Arbitration Law, Comparative Analysis of Law, Legal Framework, Enforcement, Privacy vs Transparency, etc.

1. Introduction

Recently, the arbitration has become one of the most preferred modes of commercial and civil dispute resolution worldwide. Its attraction involves numerous factors: celerity, economy, flexible procedure, and last but not least, the divergent views on confidentiality accorded compared to litigation. While litigation takes place before open courts and is thus subject to public scrutiny, arbitration has remained strictly a private mode wherein the parties can protect themselves from external disclosure of sensitive business issues, reputation concerns, and trade secrets.

Confidentiality is thus often said to be the key. Parties are generally believed to maintain the entire arbitral process, including pleadings, evidence, hearings, and the final award, confidentially and never for public disclosure. This perception is a major roadblock for the largest multinational companies, high-net-worth individuals, and even states from undergoing litigation and choosing arbitration instead.

However, the legal basis of confidentiality in arbitration is far from uniform and absolute. While some jurisdictions and arbitral institutions may so provide for confidentiality, others remain silent or ambiguous, thereby leaving to party agreement or to

the courts to determine. Even where confidentiality is recognized, its enforcement may be limited, especially if disputes arise in courts over the enforcement or challenge of arbitral awards. The issue of secrecy has also been gainfully challenged by modern notions of transparency and accountability, particularly in investor-state arbitration.

On this backdrop, one serious question remains to be answered in this paper: Is confidentiality in arbitration a legally recognized and enforceable right, or is it just an assumption followed by everyone, which is more of a myth than a reality? A dive into relevant legislation, callings, and institutional rules acutely focusing on India while also including international comparisons shall try to answer this question. The objective is to analyse whether the present legal regime supports confidentiality or whether the concept requires an alternative legal framework with better enforcement mechanisms and clearer?

2. Concept and Importance of Confidentiality in Arbitration

2.1. Definition and Scope

Resolution of a dispute through arbitration normally goes hand in hand with a duty to maintain confidentiality regarding the arbitral proceedings and related information from being disclosed to third parties. The underlying concept holds true for other complementary facets that include: First, the notion of confidentiality governing hearings, which entails that only the parties, their counsel, and the arbitral tribunal may be allowed to attend the hearings, in contrast to trials before the open court. Secondly, the term implies that there is some protection afforded to arbitration documents so that submissions and evidence related thereto are not disclosed to parties outside the proceeding, thus shielding sensitive commercial information, trade secrets, and internal documents. Thirdly, confidentiality shall also keep the arbitral award secret from the public unless it is necessitated by rules or laws during enforcement or challenge proceeding in courts. The avowed purpose of this confidentiality is to establish a secure and discreet forum to resolve disputes, thereby prompting parties to make use of arbitration without concerns about damage to their reputations or leakage of information.

2.2. Importance of Confidentiality

Confidentiality in arbitration performs several vital functions, especially in the context of commercial and business disputes. A primary reason why parties opt for arbitration is that it involves commercial sensitivity. Usually, companies prefer to circumvent any unwanted publicity that going to public courts may create. Publicizing the existence of a legal conflict, more so if enormous sums of money are involved or there are reports of alleged wrongdoing, could tarnish the brand image of a company, shake investor confidence, or place business relationships in jeopardy. Confidential arbitrations assist companies in keeping their good name and conducting normal business operations without undue external attention.

Hydrolysed is another reason-for-protection-for-trade secrets-and-sensitive-technical-and-financial-information. Commercial disputes can touch on proprietary technologies, financial arrangements, pricing schemes, customer data, and so on. If the custodian-and-arbiters-witness-takings-proceeding-type-of-information-in-public, then it may disenfranchise the competing parties from such knowledge or cause them to breach confidentiality contracts with third parties. An arbitral arena is created where such matters may be tendered or described and maintained confidentially from the parties.

Lastly, confidentiality provides for greater finality and privacy for the dispute resolution process. In contrast to litigation, which may take years before finality is reached subject to several appeals or otherwise, arbitration usually offers final and binding decisions. The private-and-informal nature of the process promotes parties to resolve issues more discreetly, exert greater control over the procedure, and avoid interference from the public or news media. This is particularly pleasing for international corporations and high-stakes commercial ventures that highly value efficiency and discretion.

3. Legal Framework: Indian and International Perspectives

3.1. Indian Legal Position

In India, confidentiality in arbitration received formal treatment through the Arbitration and

Conciliation (Amendment) Act, 2019, which introduced Section 42A into the principal Act of 1996. The section provides that the arbitrator, the arbitral institution, and the parties to the arbitration shall maintain confidentiality of all arbitral proceedings. It extends to all matters relating to the arbitration, including the pleadings, evidence, and proceedings, and tries to give statutory status to a principle that previously were implied or based on contract.

However, one notable exception is Section 42A itself: confidentiality shall not apply to the disclosure of the arbitral award where it is necessary for implementation and enforcement of such award. What this practically means is that once a party applies for enforcement of the award under Section 36 or for its challenge under Section 34, certain aspects of the arbitral proceedings may become matters of public record by virtue of the proceedings before the courts. The statute speaks of the importance of confidentiality; however, the lack of enforcement thins out the blanket this importance should have been given to suggest its inconsistent application in some scenarios.

3.2. International Practices

Security of information in arbitration is governed by different laws and institutional frameworks worldwide.

English courts have held that the parties will usually be deemed to have agreed to that confidentiality in arbitration unless they expressly provide otherwise. This position was developed by case law, with the English legal system having effectively recognised that arbitrations are expected to be conducted privately. Yet, that scope of confidentiality may still be determined considering the facts of each case and based on the nature of the information sought to be protected.

For example, Australian law is more restrictive. The Australian courts held that there is no general duty of confidentiality, unless it has been expressly included in the arbitration agreement or arises under the applicable institutional rules. This appears to highlight the legal culture which placed a greater emphasis on contractual autonomy than to presume confidentiality to be an inherent feature of arbitration.

Being the most widely accepted rules in international commercial arbitration, the UNCITRAL Rules simply do not provide a strong framework for confidentiality. They somewhat encourage confidentiality but never make it a necessity. In other words, this is a balanced consideration allowing parties to carve their own terms.

The prominent arbitral institutions have, on the other occasion, looked at incorporating strict provisions on confidentiality in their respective sets of rules. For instance, the SIAC Rules require the parties and the tribunal to maintain confidentiality, and the ICC disallows the publication of awards without the parties' consent. These institutions have thus featured more structured and enforceable safeguards, hence being preferable to parties for whom confidentiality is paramount.

4. Challenges to Confidentiality in Practice

Even if confidentiality is said to be a core feature in arbitration, it is sometimes restricted by practical considerations. There are many factors that may cause the confidentiality to become impaired.

4.1. Court Proceedings

One common scenario arises when arbitral awards come before courts either to enforce, under Section 36, or to set aside, under Section 34, of the Indian Arbitration and Conciliation Act, 1996. Once documents and proceedings pertaining to arbitration enter the court system, this process increases the chances of said materials becoming part of the public record that could be accessed by third parties and by the media. Courts across the world, and also in India, simply do not have either the mandatory or the procedural mechanism to treat the said record as sealed, except if so requested and duly justified. So, confidentiality may be maintained in arbitration, but once in the courts, sensitive information tends to become public knowledge due to judicial scrutiny.

4.2. Third-Party Involvement

Confidentiality can be jeopardized when third parties become involved in the arbitration, including experts, forensic auditors, interpreters, or third-party funders. Even when parties in the proceedings and arbitrators have confidentiality duties, such third parties may not explicitly be obliged under law or by contract to keep the matters secret unless specific

NDAs have been entered. When these disputes go beyond borders, the question of enforcing such duties across jurisdictions stands in a complex manner, thus increasing the possibility of leakage of information.

4.3. Differing Institutional Rules

Another major challenge that arises is the absence of uniformity in institutional arbitration rules with respect to confidentiality. There are institutions, such as SIAC, LCIA, and ICC, that contain explicit confidentiality provisions in their rules, while others do not have such provisions or may allow options. When they do exist, the extent of such provisions and their enforceability differ widely. Parties to an international arbitration may in turn have experiences that differ with respect to confidentiality, depending on whether the arbitration is governed by one institution or by another or by certain national laws. This lack of standardization breeds uncertainty, especially in those cases where parties simply assume confidentiality as a given without really considering or knowing what rules are applicable.

4.4. Public Interest and Regulatory Disclosures

There are instances where information from an arbitrational process must be disclosed for legal or ethical reasons. This usually occurs when public interest is at stake, with government contracts or regulatory oversight determining the outcome. For example, listed companies may be obliged to disclose the awards of arbitration to securities regulators or stock exchanges. Likewise, if the dispute unearths evidence of criminal conduct, corruption, anti-competitive practices, or such, public agencies or enforcement authorities may demand access to the proceedings. Public interest must thereby prevail upon confidentiality and be convertible into transparency and accountability, reducing the latter's absolutism.

5. Confidentiality vs Transparency Debate

Arbitration confidentiality is traditionally extolled as a value, primarily in commercial cases, though it really has received a lot of backlash in certain matters relating to public interest or state accountability. The critics argue that over-secret tribunals can create walls behind which immoral deeds such as bribery, fraud, and political manipulation of procedural rights by mighty corporations can be swept. In other words, the lack of public supervision might be preventing justice by foreclosing avenues through which parties may be exposed and held accountable at a common level.

Here lies the acute concern, especially in ISDS cases, where private investors sue sovereign states for actions in breach of BITs or multilateral agreements. Since such disputes almost always touch upon public resources and concerns on national laws, environmental regulations, or public health measures, stakeholders, including citizens and civil society organizations, demanded a more transparent process. Some critics believe that permitting private arbitrators to rule on high-stakes matters in secrecy is considered to be against the spirit of democratic accountability and public trust.

In response to the increasing vacuum of trust, global initiatives were held to maintain that balance between confidentiality and transparency. The main developments include the introduction of UNCITRAL's Rules on Transparency in Treaty-Based Investor-State Arbitration (2014), which permit the publication of documents, open hearings, and third-party submissions in ISDS proceedings unless the parties agree otherwise. Likewise, ICSID undertook important procedural reforms to increase public access to information and require the disclosure of awards and other materials related to investor-state cases to enhance transparency.

Therefore, the prominence of privacy must remain in civil or commercial disputes; however, transparency is increasingly being considered integral in matters that consider the public interest, marking the growing global inclination toward open arbitration when the stakes touch issues of higher magnitude than those concerning the parties themselves.

6. Case Studies and Judicial Trends

Judicial interpretation is the key factor that decides the intricacies of confidentiality in arbitration. Courts in different jurisdictions concerning the enforceability of confidentiality have taken divergent approaches; some see confidentiality as an inherent principle, while others consider it not so unless it is agreed upon contractually. This section analyses a selected set of case laws from Indian and international contexts as a

method of understanding the evolution of the judicial trend.

6.1 Indian Case Law

Presidential Fabrics v. S. Devraj (2022)- In this case, the Supreme Court of India reaffirmed the mandatory nature of confidentiality under Section 42A of the Arbitration and Conciliation Act, 1996 (inserted via the 2019 amendment). The Court emphasized that arbitrators and parties are legally obligated to maintain confidentiality of all arbitral proceedings, subject to exceptions like enforcement. This judgment helped clarify the statutory intent behind Section 42A and reinforced the view that confidentiality is no longer just a contractual or implied principle, but a legal obligation in Indian arbitration law.

Bharat Aluminium Co. v. Kaiser Aluminium (2012)- Although this landmark judgment is more popularly known for settling the issue of seat vs. venue in arbitration, the Court also touched upon the importance of confidentiality in arbitral proceedings. The judgment emphasized that arbitration, being a private dispute resolution mechanism, should ideally be conducted in a confidential environment to preserve the integrity and effectiveness of the process. The Court acknowledged that while Indian law had not, at the time, explicitly provided for confidentiality, it was an inherent aspect of arbitration which deserved protection.

6.2 International Cases

Esso Australia Resources Ltd v. Plowman (1995) – *Australia*- This is a landmark case in which the High Court of Australia held that confidentiality is not an implied term of arbitration agreements. The Court ruled that arbitration, though private in nature, does not automatically carry with it an obligation of secrecy unless such a duty is expressly agreed upon by the parties or stipulated by the applicable institutional rules. The decision marked a clear departure from the widely held assumption that arbitration is inherently confidential, and emphasized the need for parties to explicitly agree to confidentiality if they wish to preserve it.

Emmott v. Michael Wilson & Partners Ltd (2008) – *United Kingdom*- In this case, the English Court of Appeal allowed the disclosure of confidential arbitral documents in ongoing litigation between the same parties, reasoning that it was necessary in the interest of justice. The court balanced the need for confidentiality against the right to a fair trial and access to evidence. This case highlighted that confidentiality in arbitration is not absolute and may be overridden where broader judicial or public interests are involved. It reflects the English approach that recognizes confidentiality as implied, but subject to exceptions when justice demands disclosure.

These cases collectively demonstrate that while confidentiality is valued in arbitration, its application is not uniform nor absolute. Courts in India have taken steps to codify and enforce confidentiality, while jurisdictions like Australia and the UK have placed greater emphasis on transparency and fairness in specific contexts. The overall trend suggests a move toward balancing confidentiality with competing legal and public interests.

7. Conclusion

An ordinarily cited and geographically accepted reason of confidentiality to prefer arbitration for a multitude of commercial and international disputes is said L. The reality, however, is that there is no panacea of confidential treatment, and it is not universally enforced. In reflection of the Indian landscape, with the insertion of Section 42A into the Arbitration and Conciliation Act, 1996, confidentiality is attempted to be formalised into a legal duty. Yet, the provision does not sketch out any detailed procedure or any enforcement mechanism, thereby leaving the matter to a great extent to the discretion of the courts and therefore to some interpretational ambiguity.

And so, at the international level, again, the picture is inconsiderably haphazard. Some jurisdictions and certain arbitral institutions provide strong confidentiality protection; others consider it as a presumptive principle rather than a legal right. This global lack of uniformity often causes confusion and frustration of expectations in cross-border arbitrations. The interest of transparency in public interest cases, especially investor-state arbitrations, is gaining demand and signifies a trend change in global arbitration norms.

It is essentially true that confidentiality remains

very much exposed, unless it is explicitly agreed upon, carefully organized under rules, and backed by enforceable legal remedies. It therefore remains in most cases more of an ideal in national and international arbitration rather than a real guarantee, the result of which becomes more of a mythology and less of reality in many practical cases.

8. Recommendations

In view of the inconsistencies and lacunas in the enforcement of confidentiality in arbitration, the following reforms and best practices are recommended:

• Clear Contractual Clauses

Parties cannot and should never rely merely upon institutional rules or statutory presumptions, and arbitration agreements must therefore include an explicit confidentiality clause specifying the information to be kept confidential, persons to be bound by it, and exceptions thereto. If carefully drafted and tailored to the nature of the dispute itself, such clauses can practically eliminate any form of ambiguity.

• Standardization of Institutional Rules

Standard-setting arbitral institutions should coordinate among themselves to harmonize their provisions on confidentiality to ensure that the arbitrary legal standards be clear, consistent, and enforceable. This would greatly help in matters of international arbitration wherein various legal systems and procedural rules come into play.

• Legislative Clarity and Enforcement Mechanisms

Governments should update arbitration laws to clearly define the scope, limitations, and enforcement of confidentiality obligations. Statutes must also outline penalties for breaches, and provide mechanisms for requesting sealing of court records when arbitration-related matters reach judicial forums.

• Balancing Confidentiality and Transparency

In cases involving public interest, government action, or environmental and regulatory concerns, transparency may need to override confidentiality. Legislators and arbitral bodies should create exceptions for such scenarios, ensuring that arbitration does not become a shield for unethical or illegal conduct.

(B. Tech, MA, LL. B, PGDCJ, PGDIPR, PGDADR, LL.M)

References:

1. Arbitration and Conciliation Act, 1996 (India) – Section 42A.
2. UNCITRAL Model Law and Rules.
3. ICC Arbitration Rules, 2021.
4. *Esso v. Plowman* [1995] HCA 19.
5. *Presidential Fabrics v. S. Devraj*, Supreme Court of India, 2022.
6. Redfern and Hunter on International Arbitration, 6th Edition.
7. UNCITRAL Transparency Rules (2014).

Research Paper

Balancing Judicial Creativity with Constitutional Restraint: A Modern Indian Dilemma

Ms. Shivani Dandvate

Abstract

The Indian judiciary has played a pivotal role in shaping the country's constitutional and legal landscape. As the final interpreter of the Constitution, it has frequently adopted a creative and expansive approach to legal interpretation, especially in matters relating to fundamental rights and social justice. This phenomenon commonly referred to as judicial creativity has led to several landmark judgments that have strengthened democracy, empowered marginalized communities, and expanded civil liberties.

However, this assertive role of the judiciary has also sparked an ongoing debate around judicial overreach, where courts are perceived to be encroaching upon the functions of the legislature and the executive. Critics argue that such judicial interventions, even if well-intentioned, can disrupt the delicate separation of powers enshrined in the Constitution and weaken democratic accountability.

This research paper delves into this complex dilemma by critically examining the boundaries between judicial innovation and constitutional restraint. Through analysis of key Supreme Court decisions, the study explores instances where the judiciary has struck a commendable balance and where it may have overstepped its jurisdiction. The paper also compares Indian jurisprudence with global practices and proposes recommendations to ensure that judicial activism remains within constitutional limits while continuing to serve as a catalyst for justice.

Keywords- Judicial Activism, Judicial Overreach**,** Constitutional Restraint**,** Separation of Powers**,** Indian Judiciary**,** Public Interest Litigation (PIL)**,** Judicial Review, etc.

1. Introduction

The Indian Constitution, adopted in 1950, establishes a democratic framework based on the separation of powers among the legislature, the executive, and the judiciary. Within this structure, the judiciary is entrusted with the crucial role of being the guardian of the Constitution and the protector of fundamental rights. Its primary responsibility is to ensure that the rule of law prevails and that the rights of individuals are not trampled by arbitrary state action.

Over the decades, the judiciary has transformed from being a cautious, textual interpreter of laws to a proactive institution that seeks to adapt legal principles to meet contemporary challenges. This transition is especially visible in areas such as environmental protection, gender justice, privacy rights, and social welfare, where courts have intervened decisively—often filling voids left by inaction or delay on the part of the legislature and executive.

For instance, in cases like **Vishaka v. State of Rajasthan and K.S. Puttaswamy v. Union of India,** the judiciary demonstrated judicial creativity by interpreting constitutional provisions in ways that ensured justice, even in the absence of concrete legislation. Such interventions are often praised as necessary evolutions of constitutional jurisprudence in response to changing societal values and pressing needs.

However, this activist approach has not been without controversy. Critics argue that, at times, the judiciary has crossed into the realms of policy-making and governance, areas constitutionally reserved for the elected branches of government. This has led to accusations of judicial overreach, where courts are said to impose their own moral or ideological views rather than adhering strictly to legal texts or legislative intent.

The resulting tension poses a critical constitutional dilemma: How can the judiciary creatively interpret the law to deliver justice without violating the principles of separation of powers or undermining democratic governance?

2. Judicial Creativity: Meaning and Scope

Judicial creativity is the capacity of the judiciary particularly constitutional courts like the Supreme Court and High Courts to interpret laws, statutes, and constitutional provisions dynamically and progressively, especially in light of emerging societal challenges and changing public values. It is not limited to applying laws mechanically but involves shaping the law in a manner that promotes justice, fairness, and equity within the constitutional framework.

Understanding Judicial Creativity

In the Indian context, judicial creativity manifests in various forms:

Expanding the Scope of Fundamental Rights: Courts have broadened the meaning of rights guaranteed under Part III of the Constitution to include modern interpretations like the right to privacy, a clean environment, education, and even dignity.

Filling Legislative Voids: In situations where the legislature has failed to act, courts have stepped in to lay down legal norms, often issuing guidelines that remain in force until a formal law is enacted.

Adopting Progressive Jurisprudence: The judiciary has consistently responded to social injustices by crafting doctrines and principles that reflect evolving notions of human rights and constitutional morality.

Landmark Examples of Judicial Creativity

1. Maneka Gandhi v. Union of India (1978)

This case revolutionized the interpretation of Article 21 which guarantees the right to life and personal liberty. The Court held that any law affecting personal liberty must be "just, fair and reasonable", thus injecting the principles of due process into Indian jurisprudence. This moved away from the earlier narrow interpretation and laid the foundation for a wider, more humane conception of rights under the Constitution.

2. Vishaka v. State of Rajasthan (1997)

In the absence of a specific law to address sexual harassment at the workplace, the Supreme Court used international conventions and constitutional rights to frame the *Vishaka Guidelines*. These guidelines remained binding on all workplaces until Parliament enacted the Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Prohibition and Redressal) Act, 2013. This judgment is a textbook example of how judicial creativity can bridge legislative gaps.

3. Navtej Singh Johar v. Union of India (2018)

In this case, the Supreme Court decriminalized homosexuality by reading down Section 377 of the IPC, using a rich interpretation of Articles 14, 15, and 21. The Court creatively invoked the principles of constitutional morality, dignity, and the evolving standards of equality.

4. K.S. Puttaswamy v. Union of India (2017)

A nine-judge bench of the Supreme Court held that the right to privacy is a fundamental right, deeply embedded in Article 21. The judgment set a precedent for digital rights and data protection in India, areas still lacking robust legislation.

Philosophical and Legal Basis

Judicial creativity is justified through doctrines like:

Living Constitution: The idea that the Constitution must be interpreted in a manner that evolves with time.

Transformative Constitutionalism: A concept recognizing the Constitution as a tool for social transformation, particularly relevant in a diverse and unequal society like India.

3. Constitutional Restraint: Doctrine and Necessity

While judicial creativity plays a vital role in adapting the law to changing circumstances, it must be balanced by a strong sense of constitutional restraint. Constitutional restraint refers to the judiciary's conscious decision to act within the limits of its constitutionally defined authority, recognizing and

respecting the roles and responsibilities of the legislature and the executive. This restraint is essential to preserve the doctrine of separation of powers, a foundational principle of constitutional governance. According to this doctrine, the three branches of government—legislature, executive, and judiciary—must function independently within their assigned domains to prevent the concentration of power and to maintain institutional checks and balances.

Closely linked to this is the principle of constitutionalism, which implies that all actions of the state, including those of the judiciary, must be grounded in the Constitution and be accountable to it. The Constitution is not just a legal document but a living charter that sets boundaries for every institution, including the courts. When judges interpret laws, they are expected to uphold the spirit of the Constitution without overstepping into legislative policymaking or executive administration.

Moreover, in a democratic framework, the legitimacy of governance flows from popular sovereignty the will of the people be expressed through elected representatives. Since judges are unelected officials, their decisions however progressive must not substitute or override the collective wisdom of the legislature or the executive unless there is a clear constitutional violation. Unrestrained judicial activism, especially when it ventures into matters of governance or policy formulation, can lead to a legitimacy crisis, where the public begins to view the judiciary as an unelected super-legislature.

Therefore, constitutional restraint is not a limitation on the power of the judiciary, but a vital component of maintaining its credibility, neutrality, and respect for democratic institutions. It ensures that judicial intervention is measured, principled, and rooted in constitutional mandate, thereby strengthening rather than weakening the rule of law.

4. Case Studies: Creativity vs. Overreach

To understand the delicate balance between judicial creativity and judicial overreach, it is important to examine key Supreme Court rulings that have shaped Indian constitutional jurisprudence. These decisions offer insight into how courts have interpreted their role sometimes as agents of social transformation, and at other times, as actors venturing into the domain of governance and policy-making.

4.1 Judicial Creativity in Action

A prime example of judicial creativity can be found in the landmark judgment of **Navtej Singh Johar v. Union of India (2018)**. In this case, the Supreme Court read down Section 377 of the Indian Penal Code, thereby decriminalizing consensual homosexual relationships between adults. The Court emphasized that constitutional morality must prevail over popular morality and that individual dignity and identity are central to the fundamental rights guaranteed under Articles 14, 15, and 21. By interpreting the Constitution through the lens of equality, privacy, and human dignity, the Court demonstrated how judicial creativity can expand the ambit of rights in tune with evolving societal values.

Another landmark ruling that showcases creative judicial reasoning is **Justice K.S. Puttaswamy v. Union of India (2017)**, where a nine-judge bench of the Supreme Court unanimously declared that the right to privacy is a fundamental right under Article 21. The Court did not merely reaffirm an existing right but interpreted the concept of life and liberty to include personal autonomy, bodily integrity, and informational privacy components previously unrecognized under the constitutional framework. This judgment laid the foundation for future legal reforms in data protection, surveillance regulation, and individual freedom, clearly illustrating the judiciary's capacity to innovate within constitutional boundaries.

4.2 Alleged Judicial Overreach

While judicial activism has often served as a force for good, there have also been instances where courts have been criticized for exceeding their constitutional mandate. One such case is the Supreme Court's 2016 order mandating the compulsory playing of the national anthem in cinema halls before every movie screening. While the order was issued in the name of promoting patriotism, it was widely criticized as judicial overreach into matters of cultural policy and personal liberty. Many legal scholars and citizens argued that such a directive fell outside the judicial domain and risked imposing a uniform sense of nationalism in a diverse and pluralistic society. The Court later modified its order, making the anthem optional, which highlighted

the controversy surrounding its initial intervention.

Another example often cited is the Supreme Court's ban on the sale and use of firecrackers (2018) during Diwali. While the intention behind the order curbing air pollution was noble, critics argued that the Court was stepping into the domain of environmental policy-making, which is better handled by legislative and executive bodies with access to technical expertise and broader stakeholder consultation. The sweeping nature of the ban, without a comprehensive framework or legislative backing, raised questions about judicial competence in implementing and enforcing such wide-ranging policy decisions.

5. The Constitutional Debate: Who Guards the Guardian?

One of the most pressing and enduring constitutional dilemmas in a democracy like India is the question: "Who will guard the guardian?" As the ultimate interpreter of the Constitution and the protector of fundamental rights, the judiciary wields immense power including the power to strike down laws, review executive actions, and even lay down binding policy guidelines. This power is rooted in the doctrine of judicial review, which gives courts the authority to determine the constitutionality of legislative and executive actions. However, what happens when the judiciary itself is seen to be acting beyond its legitimate authority? Can, or should, there be mechanisms to check or guide judicial behaviour, especially when it veers into areas beyond its core functions?

While the Indian legal system provides mechanisms like judicial precedents (stare decisis) to promote consistency and predictability in decision-making, these are self-regulatory tools. Courts may choose to deviate from precedent if they believe that justice demands it. Similarly, Parliamentary criticism, media scrutiny, and even constitutional amendments can serve as indirect checks, but they are often too slow, politically difficult, or ineffective in curbing active judicial interventions. In effect, when the judiciary ignores its own self-imposed limits, there is little that other institutions can do without creating a constitutional crisis.

This leads to a broader normative and legal debate: Should courts exercise deference to Parliament in matters of public policy, or is it their duty to intervene whenever there is a perceived failure to protect constitutional rights? Advocates of judicial restraint argue that policy-making is the domain of the legislature, which represents the will of the people. According to this view, judicial intervention in governance dilutes democratic accountability and undermines the separation of powers.

On the other hand, proponents of judicial activism argue that in a country like India plagued by poverty, inequality, and institutional inefficiency the judiciary must act as a counter-majoritarian institution that protects the rights of minorities and marginalized communities, especially when the legislature fails to do so. In this model, the judiciary is not merely a referee, but a proactive guardian of constitutional values.

Thus, the question of "who guards the guardian" reflects the tension between judicial supremacy and democratic legitimacy. It underscores the need for a delicate institutional balance, where courts are empowered to uphold justice and constitutional morality but are also mindful of the boundaries set by the democratic framework. The resolution of this debate is not straightforward; rather, it requires a consistent culture of constitutional dialogue, institutional humility, and public accountability within all branches of government.

6. Comparative Jurisprudence

The debate over judicial creativity and restraint is not unique to India. Across the world, constitutional democracies wrestle with similar questions regarding the proper role of the judiciary in relation to the legislature and executive. By examining legal systems in countries like the United States and the United Kingdom, we can gain a broader perspective on how different constitutional structures influence the scope and limits of judicial power and how India's unique framework places its judiciary in a comparatively more influential position.

In the United States, the judiciary has long played a powerful role in shaping social and political outcomes through the exercise of judicial review. Landmark cases like ***Roe v. Wade*** **(1973),** which recognized the constitutional right to abortion, and its

reversal in ***Dobbs v. Jackson Women's Health Organization* (2022),** demonstrate the ideological shifts and deep societal impacts that judicial decisions can have. The U.S. Supreme Court often interprets the Constitution considering evolving principles, but there is also a strong tradition especially among conservative justices of advocating judicial restraint, where courts avoid deciding contentious policy issues unless necessary. This reflects an ongoing tension between a living Constitution approach and originalism, much like India's struggle between judicial innovation and constitutional discipline.

In contrast, the United Kingdom follows the principle of Parliamentary sovereignty, under which Parliament is the supreme legal authority. This significantly curtails the scope of judicial activism. The judiciary in the UK, particularly before the Human Rights Act of 1998, traditionally exercised a more restrained role, avoiding challenges to legislative authority. Even now, courts in the UK can interpret legislation to comply with human rights norms but cannot strike down Acts of Parliament. This structural limitation ensures that judicial creativity remains largely interpretative rather than transformative.

India occupies a middle path between these two systems but tends closer to the American model in terms of judicial authority. The written Constitution of India, with its explicit enumeration of fundamental rights, directive principles, and judicial review powers under Articles 13, 32, and 226, provides the judiciary with an extensive mandate to uphold justice and constitutional morality. Moreover, given the historical context of social inequality, executive overreach, and legislative inaction, Indian courts have been more willing to intervene in matters of governance, leading to what is often described as "transformative constitutionalism."

However, this expansive role also creates space for judicial overreach, especially when courts begin to legislate through judgments or assume administrative functions. Unlike in the UK, Indian courts can invalidate laws; and unlike in the U.S., they often pass detailed guidelines or direct policy implementation, which blurs the line between adjudication and governance.

In sum, while the U.S. and U.K. judicial systems offer important models, India's unique constitutional structure with its emphasis on social justice, a rights-based approach, and expansive judicial powers positions its courts as exceptionally powerful institutions. This makes the question of balancing judicial creativity with constitutional restraint more critical in the Indian context.

7. Recommendations: Toward a Balanced Jurisprudence

To strike the right balance between judicial creativity and constitutional restraint, the Indian judiciary must adopt a more structured and principled approach to its role within the democratic framework. While judicial activism has, in many cases, filled vital legal and moral gaps, it cannot come at the cost of institutional overreach or erosion of democratic accountability. The following recommendations aim to build a sustainable model of balanced jurisprudence.

Firstly, there is a need for internal judicial discipline, where judges consciously limit their interventions to matters that fall squarely within their constitutional mandate. This includes embracing the concept of the 'Lakshman Rekha,' a metaphor often used to describe the invisible line that the judiciary should not cross when it comes to executive or legislative functions. Courts must practice self-restraint, especially in areas involving economic policy, administrative discretion, or religious and cultural norms, unless there is a clear violation of constitutional rights.

Secondly, the judiciary should strive to develop and adhere to clearer doctrinal standards for when judicial intervention is justified. Currently, there is no uniform threshold guiding courts on when to act and when to defer to the legislature or executive. By laying down consistent principlessuch as the doctrine of proportionality, necessity, or least intrusioncourts can create predictable standards for future decisions. This will not only improve legal clarity but also strengthen judicial credibility.

Third, there should be greater dialogue between the judiciary and the legislature. Courts must recognize that their interpretive judgments should stimulate policy reform rather than replace the legislative process altogether. For instance, when courts identify legal

voids, they can recommend legislative action instead of formulating detailed policy guidelines themselves. A collaborative approach would reinforce respect for institutional boundaries while still enabling meaningful legal reform.

Lastly, the judiciary must adopt a practice of Judicial Impact Assessment (JIA)a method of evaluating the long-term legal, social, economic, and administrative consequences of landmark rulings. Currently, many decisions are rendered without fully considering their downstream impact on governance or society. A structured assessment mechanism would help courts anticipate unintended consequences, identify enforcement challenges, and ensure that judicial activism does not compromise policy stability or institutional integrity.

Incorporating these recommendations would help build a judiciary that remains assertive in defending rights, yet humble in its scope, thus preserving the delicate constitutional balance envisioned by the framers of the Indian Constitution.

8. Conclusion

The role of the judiciary in a constitutional democracy like India is both dynamic and delicate. Over the years, judicial creativity has played a crucial role in ensuring that the Constitution remains a living document capable of responding to emerging social, moral, and political realities. Through bold and visionary interpretations, the Indian judiciary has safeguarded civil liberties, advanced social justice, and reinforced constitutional values even in the absence of clear legislative action. Without such creativity, the law would risk becoming stagnant, disconnected from the needs and aspirations of the people it is meant to serve.

However, the same creativity, when exercised without self-imposed limits, can easily slip into judicial overreach, threatening the very foundation of democratic governance. The principle of separation of powers is not a mere theoretical ideal but a functional necessity. It ensures that governance remains balanced, accountable, and legitimate. When courts begin to perform functions that properly belong to the legislature or executive—such as policymaking, administration, or enforcement they not only dilute their own institutional credibility but also risk undermining public trust in democratic processes.

Therefore, the challenge before the Indian judiciary today is to walk the fine line between judicial innovation and constitutional restraint. This balance is not merely a matter of institutional courtesy, but a fundamental constitutional necessity. In an era marked by complex governance issues, political polarization, and societal transformation, the judiciary must act with both courage and caution fearlessly upholding rights and liberties, while also respecting the domain and expertise of the other branches.

For India to mature as a democracy, it must develop institutional mechanisms, ethical norms, and judicial philosophies that reinforce the dignity, independence, and complementary roles of all three branches of government. Only then can justice remain accessible, balanced, and firmly rooted in constitutional principles. The future of constitutional governance in India depends not just on bold judgments, but on wise restraint a quality as important to judicial greatness as the power to interpret and innovate.

Research Scholar
Singhania University
***Dr. S.M. Rajan**
Professor
Department of Law
Singhania University

References:

1. Indian Constitution, Articles 13, 32, 141
2. *Maneka Gandhi v. Union of India*, AIR 1978 SC 597
3. *Vishaka v. State of Rajasthan*, AIR 1997 SC 3011
4. *Navtej Singh Johar v. Union of India*, (2018) 10 SCC 1
5. *Justice K.S. Puttaswamy v. Union of India*, (2017) 10 SCC 1
6. Baxi, Upendra. *The Indian Supreme Court and Politics* (1980)
7. Austin, Granville. *The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation* (1966)

Research Paper

Mr. Sunil Kumar

"Environmental Ethics and Constitutional Morality: Reimagining the Right to Life in the 21st Century"

Abstract

The abstract outlines the core focus of the research paper, which is situated in the context of the 21st century's growing environmental crisis. It begins by highlighting the severity and complexity of current environmental challengessuch as climate change, air and water pollution, and biodiversity loss. These are not just ecological concerns; they directly affect human life, health, and dignity, making them central to discussions on fundamental rights.

In India, this connection is made possible through Article 21 of the Constitution, which guarantees the right to life and personal liberty. Over the years, the Indian judiciary has interpreted this right expansively, stating that life under Article 21 is not just about mere survival but also about living with dignity and in a clean, safe environment. This judicial creativity has allowed the environment to be included within the scope of fundamental rights.

The abstract then introduces the main thrust of the paper: exploring how two key ideasenvironmental ethics and constitutional moralitycan reshape how we understand and apply Article 21 in the modern era. Environmental ethics refers to our moral responsibilities toward nature, urging us to move from a human-centred (anthropocentric) perspective to one that respects the intrinsic value of all life. Constitutional morality, on the other hand, emphasizes upholding the spirit and values of the Constitution, such as justice, dignity, and equity.

By combining these two concepts, the paper argues that we can reinterpret Article 21 not only as a legal provision but as a living, evolving moral standardone that includes duties toward the environment and future generations (intergenerational justice). The paper proposes that ethical reasoning should inform environmental law and that sustainability should be built into both legal interpretation and policy-making.

Finally, the abstract notes that the paper concludes with practical recommendationssuggestions for legal reforms and policy changes that would help make the Indian legal framework more effective in addressing environmental degradation and promoting sustainable development.

Keywords:

Environmental ethics, constitutional morality, right to life, Article 21, sustainable development, intergenerational justice, environmental rights.

1. Introduction

This introduction sets the tone for the research by stressing that in today's world, a safe and healthy environment is not just desirableit is essential, and it must be treated as a constitutional right, not a privilege. The statement "no longer a luxuryit is a constitutional necessity" emphasizes the urgency and critical importance of environmental protection in legal and governance frameworks.

In the face of rising environmental degradation, what were once considered local or regional ecological problemslike pollution, deforestation, and water scarcityhave now evolved into global existential

threats. These include climate change, biodiversity collapse, and the contamination of natural resources, all of which threaten not just the environment but also the very survival and dignity of human life.

Recognizing this reality, the Indian judiciary has played a pioneering role in broadening the scope of Article 21 of the Constitution, which guarantees the right to life. Through various landmark judgments, courts have interpreted Article 21 to include access to clean air, safe drinking water, sanitation, and an ecologically balanced environment as essential components of the right to life. This judicial activism has laid the foundation for environmental protection as a fundamental right.

However, the introduction also makes a critical observation: while legal interpretations have been progressive and necessary, they are no longer enough. The scale and complexity of today's environmental crises demand deeper and more principled approaches. It is not just about applying lawsit is about changing how we think about our duties to nature, future generations, and the Constitution itself.

This is where the paper introduces its central thesisthe need to integrate environmental ethics and constitutional morality into legal and judicial thinking. Environmental ethics provides a moral philosophy that encourages respect for nature, while constitutional morality emphasizes loyalty to the values and spirit of the Constitution, such as justice, equality, and dignity.

Together, these frameworks allow the Constitution to become not just a legal document, but a transformative tool for achieving environmental justiceone that balances development with sustainability, rights with responsibilities, and the present with the future.

2. Environmental Ethics: Foundations and Relevance

This section introduces environmental ethics as a vital philosophical framework that helps us understand the moral relationship between human beings and the natural environment. It asks essential questions like:

- Do we have ethical duties to nature?
- Should we protect the environment only for human benefit, or does nature have value in itself?

Traditionally, much of moral philosophy has been anthropocentricthat is, human-centred. This view assumes that humans are superior to all other forms of life, and that the natural world exists primarily to serve human needs. As a result, nature has often been exploited as a resource without considering its own right to exist or the long-term consequences of human actions.

However, modern environmental ethics challenges this narrow approach. It introduces concepts like:

- **Ecocentrism**- the belief that ecosystems and all living beings have inherent value, not just value based on their usefulness to humans.
- **Deep ecology**- a radical philosophy that calls for profound changes in how humans relate to nature, emphasizing inter-connectedness, non-interference, and ecological balance.

These philosophies argue that nature should be respected for its own sake, and that human actions must be judged not only by their impact on people, but also on animals, plants, ecosystems, and future generations. This marks a significant shift from use-based ethics to rights-based or duty-based ecological thinking.

In the Indian context, environmental ethics is deeply rooted in cultural, religious, and philosophical traditions. For example:

- Gandhian philosophy promotes simple living, sustainability, and non-violencenot only toward other humans but also toward nature.
- Buddhism teaches compassion for all living beings and the importance of harmony with the natural world.
- Hinduism reveres rivers, trees, mountains, and animals as sacred and interconnected with human life, reflecting a spiritual ecology.

These traditions provide a rich ethical foundation for environmental protection and can be integrated into modern constitutional interpretation. By drawing upon these cultural values, Indian environmental law can go beyond technical regulations and embody a moral and spiritual commitment to ecological balance.

In the legal and constitutional context, this means

that judges and lawmakers should not treat environmental issues as purely administrative or scientific, but should also consider the ethical dimensionssuch as duty to nature, intergenerational justice, and respect for life in all its forms. This integration of ethics makes environmental protection more meaningful, sustainable, and culturally resonant.

3. Constitutional Morality: Concept and Application

Constitutional morality refers to the commitment to not just the literal provisions of the Constitution but also to the deeper values and ethical principles that guide its spiritsuch as justice, liberty, equality, fraternity, and human dignity. It serves as a moral compass for both the state and its institutions, urging them to uphold the transformative ideals embedded in the Constitution. The Supreme Court of India has invoked the principle of constitutional morality in landmark judgments like ***Navtej Singh Johar v. Union of India*** **(2018),** which decriminalized homosexuality, and ***Justice K.S. Puttaswamy v. Union of India*** **(2017),** which recognized the right to privacy as a fundamental right. In both cases, the Court used constitutional morality to protect individual dignity, promote inclusiveness, and reinterpret constitutional rights considering evolving societal values.

When applied to environmental contexts, constitutional morality expands the scope of responsibility beyond human-centric rights to include a duty of care toward nature, non-human species, and future generations. It recognizes that environmental harm often disproportionately affects the poor, marginalized, and rural populations, making environmental protection not just a scientific or administrative issue, but a matter of social and moral justice. Accordingly, both the state and citizens are ethically obligated to protect and preserve the environment as part of their constitutional duty. Recognizing environmental protection as a moral obligation rather than merely a policy directive enhances the legitimacy and seriousness of environmental governance. It encourages decision-makers to integrate ecological sustainability into the interpretation and implementation of laws, thus aligning governance with the foundational values of the Constitution.

4. Article 21 and the Right to a Safe Environment

Article 21 of the Indian Constitution guarantees that "no person shall be deprived of his life or personal liberty except according to procedure established by law." Over time, this seemingly simple provision has been interpreted expansively by the Indian judiciary to encompass not only the physical act of living but also the right to live with dignity and in a healthy, pollution-free environment. This progressive interpretation marks a significant shift in Indian constitutional jurisprudence, where the right to a clean and safe environment is now viewed as an essential component of the right to life. A landmark example of this evolution is found in ***Subhash Kumar v. State of Bihar*** **(1991),** where the Supreme Court affirmed that the right to life includes the right to enjoy pollution-free water and air, thereby linking environmental health directly to human survival and well-being.

Another significant development came through the series of environmental public interest litigations initiated by environmental activist M.C. Mehta, which culminated in a range of rulings between 1986 and 2002. These cases addressed key issues such as vehicular pollution, river pollution (especially the Ganga), industrial emissions, and the safety of hazardous materials. The Court's interventions in these matters not only provided immediate remedies but also laid down long-term regulatory frameworks, thus contributing to the foundation of environmental jurisprudence in India.

While these landmark judgments demonstrate a clear judicial willingness to protect environmental rights under Article 21, a critical gap still existsthe underlying ethical and moral justifications for these rights are often not fully developed in legal reasoning. The focus remains largely on statutory violations and regulatory enforcement, rather than on the broader moral obligations that human beings and the state owe to nature, other species, and future generations. As a result, environmental protection risks being treated

as a technical or procedural requirement rather than a fundamental, morally grounded duty. Therefore, for environmental rights under Article 21 to be truly effective and transformative, there is a need to embed ethical consciousness and constitutional morality into their interpretation and implementation. This would not only strengthen legal accountability but also cultivate a culture of environmental responsibility in society at large.

5. Intergenerational Justice and Sustainable Development

One of the most pressing ethical dimensions in environmental discourse today is the concept of intergenerational justicethe idea that the current generation has a moral and legal responsibility to preserve the planet not just for itself but for future generations. This principle underscores the notion that natural resources, biodiversity, and ecological balance are not owned solely by the present, but are held in trust for those yet to come. The Brundtland Report (1987), formally titled *Our Common Future*, was instrumental in shaping this idea on a global scale. It introduced the concept of sustainable development, which it defined as development that meets the needs of the present without compromising the ability of future generations to meet their own needs. This concept has since become a guiding framework for global and national environmental policymaking.

In India, the judiciary has recognized and endorsed this principle in several landmark judgments, most notably in ***Vellore Citizens Welfare Forum v. Union of India*** **(1996).** In this case, the Supreme Court declared that sustainable development is not only a guiding principle but an integral part of Indian environmental law. The Court also emphasized related doctrines such as the precautionary principle and the polluter pays principle, both of which reflect a shift towards responsible and forward-looking environmental governance.

However, despite judicial recognition, the implementation of intergenerational justice remains weak. Legal enforcement mechanisms often focus on short-term compliance rather than long-term ecological health. Developmental policies frequently prioritize immediate economic gains at the expense of environmental sustainability, and the rights of future generations are rarely considered explicitly in environmental impact assessments or regulatory decisions.

To address this gap, there is a growing need to embed intergenerational ethics directly into constitutional interpretation and policy frameworks. This means viewing environmental rights not only as present-day entitlements but also as trust-based duties owed to future citizens. When courts interpret Article 21 or any other constitutional provision related to the environment, they should do so through a lens that acknowledges the long-term consequences of environmental degradation. By doing this, the legal system can promote a more holistic and enduring form of environmental protectionone that is not only about managing damage, but also about preserving life, dignity, and natural heritage for generations to come.

6. Gaps in Law and Policy

Despite India's judiciary taking a notably progressive stance in interpreting constitutional provisions to protect the environment, significant challenges persist within the country's environmental governance framework. One major issue is the weak enforcement of key environmental laws, such as the Environment Protection Act of 1986, and the Air and Water Prevention and Control Acts. While these statutes provide a legal foundation for environmental protection, their implementation often falls short due to insufficient regulatory oversight, resource constraints, and administrative inefficiencies. Another critical gap is the limited involvement of citizens and civil society in environmental decision-making processes. Public participation is essential for transparency, accountability, and ensuring that diverse voicesespecially those of vulnerable communities most affected by environmental degradationare heard and considered. Additionally, the complex overlapping jurisdictions among the judiciary, the National Green Tribunal (NGT), and various executive bodies frequently result in procedural confusion and jurisdictional conflicts, undermining the effective resolution of environmental disputes.

Beyond institutional and procedural issues, India currently lacks a comprehensive rights-based environmental policy framework that integrates the ethical and moral dimensions of environmental protection. Most environmental laws focus on regulatory compliance and pollution control but rarely embed principles of constitutional morality, environmental ethics, or intergenerational justice as core guiding values. This absence diminishes the capacity of the legal system to foster a broader cultural and ethical commitment to sustainability. Together, these gaps underscore the urgent need for systemic reformsthat are not only grounded in constitutional mandates but also informed by a deep sense of ethical responsibility toward nature and future generations. Only through such a holistic approach can India's environmental governance become more effective, just, and sustainable.

7. Conclusion

In the context of the 21st century, the constitutional right to life under Article 21 of the Indian Constitution must be understood as inherently inclusive of the right to a clean, safe, and sustainable environment. Environmental degradation is no longer a distant or abstract threatit is an immediate crisis with direct implications for public health, food and water security, climate stability, and the dignity of human life. Given the scale and urgency of the challenges, traditional legal remedies and fragmented policy responses are no longer adequate. What is needed is a fundamental shift in how we interpret and implement constitutional rights—an approach that is ethically grounded and morally conscious.

This paper argues that the future of environmental protection in India depends on recognizing that human dignity, ecological sustainability, and intergenerational equity are not separate concerns, but interlinked imperatives. By anchoring environmental governance in environmental ethicswhich urges respect for all forms of lifeand constitutional moralitywhich promotes justice, responsibility, and respect for the spirit of the Constitutionthe judiciary and the state can transform Article 21 into more than just a legal safeguard. It becomes a moral covenant between the state, its citizens, and the natural world, committing all stakeholders to the long-term protection of life in all its forms.

Such a vision calls for a reimagining of constitutional interpretation and public policy—where environmental rights are treated not as optional add-ons, but as central to human survival, dignity, and democratic justice. Only then can India ensure that the right to life remains meaningfulnot just for those living today, but for the generations yet to come.

8. Recommendations

To reinforce the ethical and constitutional foundations of environmental protection in India, this paper offers a set of practical and normative recommendations. First, there is an urgent need to codify environmental rights explicitly, either by clearly stating them under Article 21 or through the introduction of a dedicated constitutional amendment. While the judiciary has interpreted the right to a healthy environment under Article 21, an explicit textual inclusion would strengthen legal enforceability and eliminate ambiguity, ensuring that environmental protection is seen as a fundamental and inviolable right.

Second, environmental ethics should be integrated into legal education and judicial training. Lawyers and judges must be equipped not only with legal knowledge but also with an understanding of the moral and ecological implications of environmental harm. This would foster more principled and future-oriented judgments, rooted in sustainability and justice.

Third, the government should develop a Citizens' Environmental Charter that outlines the duties and responsibilities of individuals toward the environment. Such a charter would complement existing legal rights by promoting civic awareness and moral responsibility, encouraging citizens to actively participate in environmental conservation and hold authorities accountable.

Fourth, there is a pressing need to strengthen the National Green Tribunal (NGT), which plays a critical role in adjudicating environmental cases. This includes improving its institutional independence, expanding its technical expertise, and enhancing its enforcement powers. A more robust NGT can function as a

dedicated environmental court system capable of delivering timely and impactful justice.

Finally, the process of Environmental Impact Assessments (EIA) must be reformed to go beyond technical assessments and include ethical, ecological, and intergenerational considerations. EIAs should measure not just the immediate effects of projects, but also their long-term implications on ecosystems, marginalized communities, and future generations, aligning them with the principles of intergenerational justice and sustainable development.

Together, these recommendations aim to build a more holistic, ethically informed, and constitutionally grounded environmental governance framework, capable of addressing both the present and future ecological challenges India faces.

Research Scholar,
Singhania University

***Dr. Karan Singh Yadav**
Associate Professor
Department of Law,
Singhania University

References:

1. The Constitution of India – Government of India, Ministry of Law and Justice (latest edition).
2. Subhash Kumar v. State of Bihar, AIR 1991 SC 420 – Supreme Court of India.
3. M.C. Mehta v. Union of India, AIR 1987 SC 965; 2002 – A series of landmark judgments relating to environmental pollution and public interest litigation.
4. Vellore Citizens Welfare Forum v. Union of India, AIR 1996 SC 2715 – Introduced the principles of sustainable development, polluter pays, and precautionary principle into Indian law.
5. Navtej Singh Johar v. Union of India, (2018) 10 SCC 1 – Discussed constitutional morality and decriminalized homosexuality.
6. Justice K.S. Puttaswamy (Retd.) v. Union of India, (2017) 10 SCC 1 – Declared the right to privacy as a part of the right to life and liberty under Article 21.
7. The Environment (Protection) Act, 1986 – Key legislation on environmental governance in India.
8. Air (Prevention and Control of Pollution) Act, 1981 and Water (Prevention and Control of Pollution) Act, 1974 – Indian environmental laws regulating air and water pollution.
9. Brundtland Commission Report (1987) – *Our Common Future*, United Nations World Commission on Environment and Development.
10. National Green Tribunal Act, 2010 – Established the National Green Tribunal for effective and expeditious disposal of causes related to environmental protection.

Research Paper

- **Pradeep***
- **Dr. Vivek Kumar Mishra****

China-Pakistan Economic Corridor in Pakistan-Occupied Jammu and Kashmir (POJK) Security Threat for India

Abstract

Growing strategic and military collaboration in the POJK between China and Pakistan is a complex and evolving threat to India's national security and regional stability. This paper investigates how China's infrastructural expansion and growing military presence under CPEC in POJK challenge India's territorial sovereignty and alter the regional balance of power. Joint militarization of POJK by China and Pakistan increases the chances of a two-front conflict for India and provides operational depth and logistic support to anti-India activities. The paper also deals with Pakistan, making continued use of terrorism as one of its instruments of state policy. It also brings to light the Balochistan insurgency in exacerbating the problems confronting China's regional designs and highlighting Pakistan's contradictions on the domestic front. The paper concludes by calling for a calibrated Indian response through diplomatic assertiveness, enhanced border infrastructure, and counter-terrorism coordination to protect its national interests in a rapidly changing regional landscape.

Keywords:

Pakistan-Occupied Jammu and Kashmir (POJK), China-Pakistan Economic Corridor (CPEC), Cross-border terrorism, Balochistan, People's Liberation Army (PLA), Line of Actual Control (LAC)

Introduction

The region under Pakistan-occupied Jammu and Kashmir (POJK) has been a source of contention for India and Pakistan and has led to intermittent war, however, that conflict has progressed to a more bilateral military approach and engagement owing to the increasing role and vested interests of China in the region. China's premier project of the Belt and Road Initiative, the China-Pakistan Economic Corridor (CPEC), directly passes through Gilgit-Baltistan which is Indian territory. Within the context of India's decades-old military conflict with Pakistan, the CPEC created by China in the region has become not only an economic venture but also a heavily militarized and logistical challenge to India's sovereignty. With the projected increased military and logistical commitment of China in (POJK), we now have a third party engaged in what was primarily a bilateral war. The step has the possibility of altering the regional power balance and must be watched closely from the national security point of view.[1] Pakistan used POJK as a strategic buffer and operational springboard for conventional and asymmetrical operations against India for decades. The increase in the military presence in the region by China in the form of infrastructure, satellite tracking stations, and dual-use facilities has militarized the region to an unprecedented level. It is reported that the deployment of People's Liberation Army (PLA) personnel, advanced surveillance devices, and road infrastructures that facilitate rapid military mobilization are being observed in POJK.[2] Not only does this make India's security arithmetic more complicated,

but it also boosts the capability of Pakistan to wage hybrid warfare with the aid of Chinese geopolitics.[3] These steps need to be seen in the context of Pakistan's history of state terrorism. The deaths of 40 Central Reserve Police Force members in the February 2019 Pulwama terror attack were a painful reminder of the fact that terror groups like Jaish-e-Mohammed based out of Pakistan remain a serious threat. The attack became a turning point in India's counter-terror policy, which eventually led to the Balakot airstrikes and a re-tuned strategic response. Subsequently, on April 22, 2025, the Pahalgam massacre of 26 Indian civilians brutally killed has also become India's worst terror attack since the 26/11 Mumbai attacks.[4] The scale and the fact that the attack was mounted in an area militarized and politically sensitive as much as it is—highlights how terror groups continue to reap benefits from the infrastructure and impunity offered in POJK. The Indian probe found that the assailants were indoctrinated and accommodated in POJK camps, possibly under patronage from the Pakistani Army and capable of deploying Chinese surveillance systems.[5] The geopolitics-terrorism complex in this case illustrates how POJK increasingly serves as a crucible for hybrid war with state and non-state actors operating in parallel. In addition to direct conflict, India also has to contend with greater regional implications. The unstable situation in Balochistan, where ethnically Baloch nationalist movements are pitting one side against Pakistani military rule and Chinese investment in CPEC, is one of the key internal contradictions of the China-Pakistan axis. Both the states are charged with resource plunder and human rights violations by the native Baloch people.[6] Although India is officially committed to a policy of non-interference, it has taken an interest in the violation of human rights in Balochistan, diplomatically nudging against Pakistan's moral high ground and revealing frailties in the implementation of CPEC.[7] The interface of these factors—China's strategic incursion into POJK, Pakistan's continued enablement of terrorism, and unrest in Balochistan—leaves India with a multi-faceted security challenge.

India must now prepare itself for a two-front war from regular and irregular forces. The PLA presence on India's northern border, along with westward proxy warfare, pushes India's strategic and operational capabilities to the limit. These are demands that call for a new national security strategy in terms of building infrastructure along the Line of Control, diplomatic counter-balancing, and intelligence-led counter-terror operations.

Strategic Importance of POJK and China's Evolving Military Footprint

POJK is an integral part of India and its sovereign territory illegally occupied by Pakistan since 1947. For Pakistan, it is a buffer and a theatre of asymmetric warfare. The recent engagement from China in this contested territory relates to the China-Pakistan Economic Corridor (CPEC) project, making POJK unprecedentedly a trilateral triangular area, a confluence of contested military ambitions involving economic development. The area is of strategic significance because of its geographical location. The northern area of the POJK, Gilgit-Baltistan, borders China in its Xinjiang province, Afghanistan in the Wakhan Corridor, and India in its Ladakh province. Control of this region gives both Pakistan and China strategic depth as well as a gaze outward over the greater Himalayan border.[8] China has effectively constructed roads, tunnels, and military bases in the name of economic development to establish a forward operating presence to be used not just for support logistics but also for expedient troop mobilization.[9] CPEC, which both China and Pakistan are touting as a game-changer, is more than a business transit route - it is a geopolitical mechanism. The corridor cuts through Gilgit-Baltistan and connects Xinjiang with Gwadar Port in Balochistan, opening China direct access to the Arabian Sea and bypassing the Malacca Strait chokepoint. While the Pakistani government heralds this as a "project of prosperity," India views it as an outrageous assault on its sovereignty. Additionally, satellite imagery and intelligence reveal that the majority of CPEC-related projects in Gilgit-Baltistan have dual-use potential, civilian and military.[10] China has also constructed various military posts and observation towers in the area. These are reported to house PLA troops and Chinese engineers,

allegedly for defending infrastructures but providing monitoring of Indian soldier deployments along the Line of Control (LoC).[11] Development of the road infrastructure, including the Karakoram Highway, gives China a greater capability to rapidly mobilize troops and equipment forward.[12] This upgrade on the strategic dimension is especially concerning given recent Chinese aggressions at the Line of Actual Control (LAC), particularly after the 2020 Galwan clash. This proved that Beijing was willing to resist India militarily.[13] China's interest in POJK also stems from its requirement to stabilize Xinjiang by pushing influence into neighbouring regions and managing Uyghur separatist sentiments. By capturing its western border through economic leverage and military presence, China aims to remove perceived dangers from within its border states.[14] PLA's engagement in infrastructure projects in Gilgit-Baltistan accomplishes both security and strategic outreach ambitions. Pakistan has welcomed China's involvement as a counterpoint to Indian power. Pakistan's military continues to strengthen its institutional relationship with the PLA, through joint exercises, arms purchases, and intelligence sharing. This has established a form of strategic dependency where Chinese interests are protected and pursued even as Pakistan cedes a degree of sovereignty in strategic spaces.[15] The growing proximity is concerning regarding its longer-term implications for South Asian security and de facto China-Pakistan military bloc building. For India, China's militarization of POJK has created a two-front threat scenario, complicating an already unfavourable security environment. Indian policymakers now need to account not only for Pakistan-backed cross-border terrorism but also for the likelihood of collective military pressure from China. This compounding necessitates a strategic re-evaluation of India's force positioning, surveillance deployment, and diplomatic engagement at regional and global levels.

Cross-Border Terrorism and Use of POJK as a Launchpad

Cross-border terrorism is still one of the most enduring threats to the national security of India, with POJK acting as its operational hub. For decades, Pakistan's military establishment and intelligence machinery—especially the ISI—have exploited the geography of POJK and the governing darkness of the region to offer shelter, training, and logistics to terrorist organizations for attacks against India.[16] This deliberate utilization of POJK has turned the territory into a hybrid war theatre, with state-sponsored non-state actors as force multipliers in Pakistan's proxy war against India. Territorial militant outfits such as Lashkar-e-Taiba (LeT), Jaish-e-Mohammed (JeM), and Hizbul Mujahideen have historically operated from POJK and received tacit support from the security establishment of Pakistan.[17] Places like Muzaffarabad and Kotli feature routinely in Indian intelligence reports as training destinations for infiltration attempts to cross the Line of Control (LoC). These outfits have not only been guilty of constant ceasefire violations but also of high-profile strikes that shook India's internal security apparatus. The February 14, 2019, Pulwama suicide bombing is a case in point. A 22-year-old Kashmiri militant, indoctrinated and indoctrinated by JeM handlers, drove an explosives-packed vehicle into a CRPF convoy, killing 40 troops.[18] The attack was mapped and orchestrated from POJK, utilizing end-to-end encrypted communications and intelligence gathering with Pakistani support. India's response—a balloon burst at a JeM training camp in Balakot—constituted a watershed moment for proactive to reactive counter-terrorism policy. It further brought global focus to POJK's terror infrastructure lurking within its borders. The most recent and most egregious incident occurred on 22 April 2025 with the Pahalgam massacre which took the lives of 26 Indian civilians in a coordinated terror attack. This incident represents the worst terrorist attack on Indian civilians since the 26/11 Mumbai attacks and has highlighted the fatal triangulation of ideological extremism, territorial violation across borders, and subsequent international protection. Intelligence findings showed that the perpetrators initially entered the Indian territory through South Kashmir after receiving tactical training in POJK with the assistance of LeT handlers who are based in Muzaffarabad.[19] Intercepts from surveillance also suggested technical and logistical assistance from

Chinese-monitored facilities inside Gilgit-Baltistan, which has raised issues about China's indirect involvement in increasing India's internal security threats.[20]

The China-Pakistan Economic Corridor (CPEC) umbrella adds another level of complexity to POJK militarization. Although China officially keeps itself at arm's length from Pakistan's patronage of terror outfits, investment by China in infrastructure like roads, tunnels, and monitoring systems de facto enhances the operational terrain of these outfits.[21] Indian defense analysts caution that such infrastructure can help enable faster mobilization of state and non-state actors, improving Pakistan's ability to orchestrate attacks while keeping deniability plausible.[22] Moreover, Pakistan's dual policy of public diplomatic bluff and secret terrorist sponsorship enables it to take advantage of the uncertain international status of POJK. By presenting POJK as a "disputed territory," Pakistan avoids accountability while employing the same geography to facilitate cross-border aggression. India has consistently presented dossiers to the United Nations and Financial Action Task Force (FATF), outlining POJK as the logistical as well as financial hub of several United Nations-listed terrorist organizations.[23] While FATF has put Pakistan on the grey list several times, the sanctions have had minimal deterrent impact because of China's diplomatic cover.[24] The implications for India are ominous. Apart from the loss of lives, cross-border terrorism stresses military resources, hampers regional development, and undermines democratic processes in Jammu and Kashmir. Further, it compels India to keep on perpetual high alert, detracting from long-term strategic efforts to short-term crisis management. The integration of terrorism with state and quasi-state support networks in POJK turns each episode of infiltration or sabotage into a geopolitical hot spot, escalating the risks of escalation.

Balochistan Factor: China's Economic Interests and Pakistan's Internal Unrest

Whereas the Pakistan-Occupied Jammu and Kashmir (POJK) directly confronts India's strategic interests, the Balochistan province is a key domestic contradiction along the China-Pakistan axis that indirectly affects India's security interests. Resource-abundant and located on the Arabian Sea, Balochistan is the China-Pakistan Economic Corridor (CPEC) anchor. The Gwadar Port, constructed at great Chinese expense, is located in this volatile province. But behind the veil of prosperity lies a deep and unresolved crisis of insurgency, human rights abuses, and increased militarization—all of which serve to erode the stability and legitimacy of the CPEC project.[25] The Balochs have a long history of being resistant both to Pakistani state control and Chinese economic intrusion, viewing CPEC initiatives as extractive and exploitative. Rather than bringing in regional development, the infrastructure has largely served Chinese strategic ends at the expense of local populations.[26] This has given rise to an armed insurgency, with attacks by outfits like the Balochistan Liberation Army (BLA) on Chinese labourers, CPEC facilities, and Pakistani military convoys. To China, Balochistan is at once an economic lifeline and a security burden—hence the growing presence of Chinese security contractors and calls for direct PLA protection of assets within it.[27] The vaunted Gwadar Port, touted as China's "pearl" within the Indian Ocean, remains underutilized by persistent unrest. Despite significant investment, little port activity exists, and the region continues to suffer from poverty, disenfranchisement, and state oppression. In response to the Baloch insurgency, the Pakistani military has gone through full-scale counterinsurgency, abductions enforced by the state, and extrajudicial killings, all criticized by international rights organizations.[28] Internationally, India has repeatedly brought this issue up in different forums, arguing that the state of Balochistan questions the moral cause of Pakistan on human rights in Kashmir.[29] Plausibly, from a strategic point of view, unrest in Balochistan diminishes the credibility of CPEC as a safe corridor for China to expand westward. The Baloch rebellion may well be able to destroy China's aspiration of developing an overland trade route that circumvents the Strait of Malacca. Additionally, Beijing's security concerns with Xinjiang have made China increasingly intolerant of instability along bordering Muslim-majority provinces like Balochistan.

China's interest in transnational ethnic solidarity, especially among Uyghurs and Baloch, has fueled calls for greater cooperation with Pakistan's security establishment, further militarizing the region.[30] India has not been a mere observer. Although it formally pursues a policy of non-interference, Indian think tanks and policymakers have repeatedly called for greater international observation of Balochistan. The mention of Balochistan by the Indian Prime Minister in his Independence Day speech of 2016 was considered to be a bold geopolitical action.[31] The India-China-Pakistan triangle thus finds an unusual turn in Balochistan. India is exposing vulnerabilities in Balochistan. The more Pakistan relies on Chinese security and investment to quell unrest, the more it sacrifices strategic freedom to Beijing. On the contrary, growing Chinese influence in Balochistan can make it a potential target of domestic militants as well as regional players worried about Chinese expansionism.[32] India sees Balochistan as a strategic opportunity as well as a lesson. It is an opportunity to undermine Pakistan's Kashmir narrative through its domestic repression. Simultaneously, it demonstrates how economic corridors built on authoritarianism and exclusion result in instability rather than growth. India may not be directly intervening, but it will continue to use diplomatic, informational, and legal tools to draw global attention to the ferment brewing at the western edge of the CPEC dream.

Implications for India's National Security and Strategic Response

The deepening Chinese-Pakistani defense and infrastructural partnership in Pakistan-Occupied Jammu and Kashmir (POJK) is a formidable national security issue for India. Not only does it consolidate the strategic encirclement of India more forcibly, but it also holds open the risk of a two-front war scenario, a threat that has gained an uncomfortably familiar niche in Indian defense policy discourse.[33] China's military footprint in Gilgit-Baltistan through roads, airstrips, and surveillance stations has drastically changed the strategic balance for India on its north-facing borders.[34] This militarization, coupled with increased Chinese belligerence along the Line of Actual Control (LAC) in Ladakh, forces India to redeploy troops and enhance surveillance facilities in weak border sectors.[35] In addition, Pakistan's continued use of POJK as a terrorist hub contributes to the issue, and therefore India must keep a balance between conventional deterrence and counter-terrorism.

The Pulwama attack in 2019 and the Pahalgam massacre in 2025 demonstrate the deadly result of unregulated terror activity from POJK. The attacks on security personnel and civilians, respectively, have served to demonstrate India's vulnerability to asymmetric conflict.[36] This has been balanced by India's increasing use of proactive defense in the form of surgical strikes and targeted airstrikes to take out terror networks across the LoC.[37] Such measures, however, invite escalation, particularly with China's entry into the equation complicating the calculus of deterrence. On the diplomatic front, India has attempted to take the POJK matter to the international stage and to assert its legal and historical rights while countering Pakistan's state terrorism. In its promotion of the intersection between state terrorism and China-funded infrastructure in POJK, India has continued to use platforms like the United Nations and the FATF (Financial Action Task Force) to effect change.[38] In addition, India's growing coalition with the USA, France, and Japan both bilaterally and in Quads-such as strategic coalitions in the Quad with Japan, USA, and Australia a move towards working together to counter Chinese regional footholds.[39] At the policy level, India's recent actions such as reorganizing Jammu and Kashmir in 2019 and building border infrastructure are preparations to reassert India's sovereign powers while growing logistical readiness. Remember that in the longer-term period, India's reforms such as setting up integrated theatre commands, and improving strategic defense manufacturing indigenization initiatives prompt India's need for a rebalancing of defense strategy.[40] Lastly, the entrenchment of the China-Pak partnership concerning POJK is not just a border issue but an omnipresent challenge to India's sovereignty, internal security and regional security perspective. Accordingly, India's strategy must be flexible, integrated, and proactive, involving military preparedness, diplomacy negotiations, and strategic

partnerships, in protecting its national interests.

Conclusion

The strategic entwinement of China and Pakistan in Pakistan-Occupied Jammu and Kashmir (POJK) is a complex threat to India's national security. Increased numbers of Chinese personnel and infrastructure in POJK, in the shadow of the China-Pakistan Economic Corridor (CPEC), have militarized POJK and invited proxy warfare by Pakistan against India. The intertwining has made it easy for terror and strategic expansionism to feed each other at the expense of regional stability. For India, the situation demands not just a bolstering of the military presence along the border but also more accurate intelligence and rapid-response measures. Meanwhile, Balochistan instability introduces another layer of complexity. Chinese economic interests in the region are being increasingly tested by internal insurgency, revealing the vulnerability of the China-Pakistan alliance and providing India with a strategic narrative to highlight human rights violations and regional inconsistency. India will have to follow a multi-faceted approach - enhancing defense preparedness, strengthening global partners, and diplomatically rejecting the China-Pakistan axis. Long-term peace and security in the region will depend upon whether India can continue being resilient, proactive, and diplomatically forward-looking in the face of a changing geopolitical threat.

***PhD Scholar,**
Department of Political Science and IR,
Gautam Buddha University,
Greater Noida, UP.

****Assistant Professor**
Department of Political Science and IR,
Gautam Buddha University,
Greater Noida, Gautam Buddh Nagar, UP.

EndNotes :

1. Pant, H. V., & Joshi, Y. (2020). The US Pivot and Indian Foreign Policy: Asia's Evolving Balance of Power. Palgrave Macmillan.
2. Singh, S. (2021). Chinese military presence in Gilgit-Baltistan: Implications for India. *Observer Research Foundation*. https://www.orfonline.org/research/chinese-military-presence-in-gilgit-baltistan/
3. Tellis, A. J. (2020). Balancing without containment: A U.S. strategy for confronting China's rise. Carnegie Endowment.
4. Times of India. (2025, April 23). *Pahalgam massacre: 26 civilians killed in worst terror attack since 26/11*. https://timesofindia.indiatimes.com
5. Indian Express. (2025, April 25). *NIA traces Pahalgam attackers to LeT camp in POJK*. https://indianexpress.com
6. Harrison, S. S. (1981). In Afghanistan's shadow: Baluch nationalism and Soviet temptations. Carnegie Endowment.
7. The Hindu. (2022, August 14). *India raises Balochistan issue at UN Human Rights Council*. https://thehindu.com
8. Joshi, M. (2020). Understanding the strategic terrain of Gilgit-Baltistan. Institute for Defence Studies and Analyses.
9. Pant, H. V., & Saha, P. (2018). China's military logistics in the Himalayas: Infrastructure as strategy. Journal of Strategic Studies, 41(7), 958–975.
10. Observer Research Foundation. (2021). *CPEC and dual-use infrastructure in POJK*. https://www.orfonline.org
11. Sharma, R. (2022). Satellite imagery suggests PLA outposts in Gilgit-Baltistan. Indian Defence Review.
12. Singh, A. (2021). Karakoram Highway and its strategic implications for India. Centre for Policy Research.
13. Ministry of Defence. (2021). Annual report: 2020–2021. Government of India.
14. Zhao, S. (2017). China's Western strategy and the role of Xinjiang. Asian Survey, 57(3), 453–474.
15. Small, A. (2015). The China-Pakistan Axis: Asia's New Geopolitics. Oxford University Press.

16. Riedel, B. (2012). Deadly Embrace: Pakistan, America, and the Future of the Global Jihad. Brookings Institution Press.
17. Sahni, A. (2016). The Pakistani state and jihad: Terror as strategy. South Asia Intelligence Review, 14(22).
18. Ministry of Home Affairs. (2019). Annual report: 2018–2019. Government of India.
19. Indian Express. (2025, April 25). *NIA traces Pahalgam attackers to LeT camp in POJK*. https://indianexpress.com
20. Sharma, R. (2025). Chinese surveillance systems in POJK: A silent threat. Indian Defence Review.
21. Pant, H. V., & Saha, P. (2018). China's military logistics in the Himalayas: Infrastructure as strategy. Journal of Strategic Studies, 41(7), 958–975.
22. Singh, A. (2021). CPEC and dual-use infrastructure in POJK. Centre for Policy Research.
23. Ministry of External Affairs. (2021). India's dossier to FATF on Pakistan's terror financing. Government of India.
24. The Hindu. (2022, October 15). *FATF keeps Pakistan on grey list amid global concerns*. https://thehindu.com
25. Wirsing, R. G., & Jasparro, C. (2007). Baloch nationalism and the geopolitics of energy resources. Strategic Studies Institute.
26. Yusuf, H. (2021). The CPEC paradox: Promise vs. disenfranchisement in Balochistan. South Asian Voices.
27. Small, A. (2015). The China-Pakistan Axis: Asia's New Geopolitics. Oxford University Press.
28. Human Rights Watch. (2023). *Pakistan: End abuses in Balochistan*. https://www.hrw.org
29. The Hindu. (2022, September 13). *India slams Pakistan's hypocrisy on Kashmir and Balochistan*. https://thehindu.com
30. Zhao, S. (2017). Strategic concerns of China in Balochistan. Asian Survey, 57(3), 490–505.
31. Ministry of External Affairs. (2016). *Text of PM's Independence Day speech*. https://mea.gov.in
32. Pant, H. V., & Joshi, Y. (2020). India's foreign policy in a multipolar world. Cambridge University Press.
33. Menon, S. (2021). India and Asian geopolitics: The past, present. Brookings Institution Press.
34. Singh, A. (2020). Strategic infrastructure in Gilgit-Baltistan and implications for India. Centre for Policy Research.
35. Ministry of Defence. (2021). Annual Report 2020–2021. Government of India.
36. Indian Express. (2025, April 25). *NIA links Pahalgam massacre to LeT camp in POJK*. https://indianexpress.com
37. Ministry of External Affairs. (2019). *Statement on Balakot air strikes*. https://mea.gov.in
38. The Hindu. (2022, October 15). *India presents dossier to FATF on Pakistan's terror support*. https://thehindu.com
39. Pant, H. V., & Joshi, Y. (2020). India's foreign policy in a multipolar world. Cambridge University Press.
40. Subramanian, N. (2022). Defence reforms in India: Towards jointness and modernisation. Observer Research Foundation.

References

- Human Rights Watch. (2023). Pakistan: End abuses in Balochistan. https://www.hrw.org
- Indian Express. (2025, April 25). NIA links Pahalgam massacre to LeT camp in POJK. https://indianexpress.com
- Menon, S. (2021). *India and Asian geopolitics: The past, present*. Brookings Institution Press.
- Ministry of Defence. (2021). Annual report 2020–2021. Government of India. https://mod.gov.in
- Ministry of External Affairs. (2016, August 15). Text of Prime Minister's Independence Day speech. https://mea.gov.in
- Ministry of External Affairs. (2019, February 26). Statement on Balakot air strikes. https://mea.gov.in
- Pant, H. V., & Joshi, Y. (2020). *India's foreign policy in a multipolar world*. Cambridge University Press.
- Singh, A. (2020). Strategic infrastructure in Gilgit-Baltistan and implications for India. Centre for Policy Research. https://cprindia.org

- Small, A. (2015). *The China-Pakistan axis: Asia's new geopolitics*. Oxford University Press.
- Subramanian, N. (2022). Defence reforms in India: Towards jointness and modernisation. Observer Research Foundation. https://orfonline.org
- The Hindu. (2022, October 15). India presents dossier to FATF on Pakistan's terror support. https://thehindu.com
- The Hindu. (2022, September 13). India slams Pakistan's hypocrisy on Kashmir and Balochistan. https://thehindu.com
- Times of India. (2025, April 23). *Pahalgam massacre: 26 civilians killed in worst terror attack since 26/11*. https://timesofindia.indiatimes.com
- Wirsing, R. G., & Jasparro, C. (2007). *Baloch nationalism and the geopolitics of energy resources*. Strategic Studies Institute. https://ssi.armywarcollege.edu
- Yusuf, H. (2021). The CPEC paradox: Promise vs. disenfranchisement in Balochistan. South Asian Voices. https://southasianvoices.org
- Zhao, S. (2017). Strategic concerns of China in Balochistan. *Asian Survey, 57*(3), 490–505. https://doi.org/10.1525/as.2017.57.3.490

Research Paper

The Role of organizational culture in driving productivity and engagement during remotework transitions

Priya Singh* **Dr. Aakansha Maru****

Abstract

The rapid transition to remote work has prompted organizations to reconsider traditional management strategies, particularly in the context of organizational culture. This paper explores the role of organizational culture in driving productivity and employee engagement during remote work transitions. Drawing on existing research and case studies, the study highlights how core cultural elements such as communication, trust, collaboration, and leadership influence employee performance and satisfaction in a remote work environment. It further examines the challenges organizations face in maintaining a cohesive culture in virtual settings and the strategies that can be employed to foster engagement, motivation, and productivity. By investigating the intersection of organizational culture and remote work dynamics, this research provides insights into how companies can adapt their cultural frameworks to thrive in an increasingly digital and dispersed work landscape.

Keywords:

Organizational culture, remote work transitions, employee engagement, productivity

Introduction

The global shift toward remote work, accelerated by technological advancements and unforeseen circumstances such as the COVID-19 pandemic, has fundamentally transformed how organizations operate. As companies increasingly adopt flexible work models, one of the most significant challenges they face is ensuring sustained productivity, engagement, and collaboration among their remote workforce. While technology has enabled seamless communication and project management tools, the deeper, often overlooked factor influencing remote work success lies in organizational culture.

Organizational culture—the shared values, beliefs, and practices within a company—plays a crucial role in shaping employee behaviors, fostering engagement, and driving overall productivity. In traditional office settings, culture is easily cultivated through in-person interactions, social activities, and direct management. However, remote work environments require companies to rethink how they nurture and maintain this culture across virtual spaces. As remote work eliminates the physical office space that often serves as a cultural hub, organizations must intentionally adapt their cultural frameworks to ensure employees remain connected, motivated, and aligned with the company's goals.

This paper explores the role of organizational culture in facilitating productivity and employee engagement during remote work transitions. By examining the key elements of culture—such as communication, leadership, trust, and collaboration—this study aims to provide insights into how organizations can foster a thriving, engaged remote workforce. Additionally, it will address the challenges and opportunities that arise when maintaining and adapting organizational culture in a virtual landscape, offering strategies for successfully navigating this shift in the workplace.

Theoretical framework

The examination of organizational culture's role in driving productivity and engagement during remote work transitions can be anchored in several key theoretical perspectives that provide insights into how culture influences employee behaviour, performance, and satisfaction. These frameworks include **Edgar Schein's Organizational Culture Model**, **Social Exchange Theory**, **Self-Determination Theory (SDT)**, and **Job Demands-Resources (JD-R) Model**. Together, these theories offer a robust foundation for understanding the mechanisms through which organizational culture shapes outcomes in remote work settings.

Edgar Schein's Organizational Culture Model

Edgar Schein's (1985) foundational work on organizational culture suggests that culture consists of three primary levels: **artifacts**, **espoused values**, and **underlying assumptions**. Artifacts are the visible structures and processes within an organization (e.g., virtual meetings, communication platforms), espoused values are the stated beliefs and philosophies (e.g., teamwork, flexibility), and underlying assumptions are the deeply ingrained beliefs and behaviours (e.g., trust, autonomy). In the context of remote work, this model helps in understanding how companies must deliberately align these three levels to create a cohesive culture that promotes engagement and productivity, even when employees are physically separated. The model also emphasizes that cultural shifts need to occur at the foundational level, requiring a change in underlying assumptions to support remote work successfully (Schein, 1985).

Social Exchange Theory (SET)

Social Exchange Theory (Blau, 1964) posits that workplace relationships are based on reciprocal exchanges of resources, including emotional support, trust, and tangible rewards. In a remote work environment, the nature of these exchanges may shift due to the lack of face-to-face interactions. However, a strong organizational culture built on trust, open communication, and shared values can facilitate the exchange of these intangible resources, thus enhancing employee engagement and productivity. Employees who feel that their contributions are valued and that there is a mutual exchange of trust and support are more likely to remain committed and perform effectively in remote settings (Blau, 1964; Cropanzano & Mitchell, 2005).

Self-Determination Theory (SDT)

Self-Determination Theory (Deci & Ryan, 1985) emphasizes the importance of intrinsic motivation, focusing on three fundamental psychological needs: **autonomy**, **competence**, and **relatedness**. Organizational culture plays a pivotal role in fulfilling these needs in a remote work environment. A culture that supports autonomy (e.g., flexible work hours, independent task management), competence (e.g., skill development opportunities, recognition), and relatedness (e.g., virtual team bonding activities, communication channels) can boost employee engagement and intrinsic motivation. SDT suggests that when remote employees' psychological needs are met, they are more likely to be productive, engaged, and satisfied with their work, despite the physical separation (Deci & Ryan, 1985; Gagné & Deci, 2005).

Job Demands-Resources (JD-R) Model

The Job Demands-Resources (JD-R) model (Bakker & Demerouti, 2007) provides a framework for understanding how job characteristics and organizational culture influence employee well-being, performance, and motivation. According to the JD-R model, organizations must balance job demands (e.g., workload, deadlines) with job resources (e.g., social support, autonomy, feedback). In remote work environments, culture plays a central role in providing these resources, such as facilitating communication, offering feedback, and ensuring employees feel supported by their peers and leaders. A strong organizational culture that fosters these resources can buffer the negative effects of job demands, leading to increased productivity and engagement among remote workers (Bakker & Demerouti, 2007; Demerouti et al., 2001).

Literature review

Organizational culture refers to the shared values, beliefs, assumptions, and norms that influence the behaviour of people within an organization. It is often seen as the personality of an organization, guiding how

employees interact, make decisions, and achieve goals.

Concept of Organizational Culture

The concept of organizational culture emerged prominently in management literature during the 1980s. Edgar Schein (2010) defined organizational culture as "a pattern of shared basic assumptions learned by a group as it solved its problems of external adaptation and internal integration." Schein emphasized that these assumptions are taught to new members as the correct way to perceive, think, and feel about organizational problems.

Hofstede et al. (1990) differentiated between practices and values, arguing that while values are learned early in life, organizational cultures are more concerned with practices shaped by shared experiences at work. Organizational culture is thus both a dynamic and stabilizing force that binds an organization together.

Types of Organizational Culture

Several typologies have been proposed to categorize organizational culture:

1. Deal and Kennedy's (1982) Typology: This model classifies culture based on the level of risk and the speed of feedback. It identifies four types:
   - Tough-Guy, Macho Culture (high risk, quick feedback)
   - Work Hard/Play Hard Culture (low risk, quick feedback)
   - Bet-Your-Company Culture (high risk, slow feedback)
   - Process Culture (low risk, slow feedback)
2. Handy's (1993) Four Culture Types:
   - Power Culture: Centralized power, control by a few individuals.
   - Role Culture: Defined roles and responsibilities; bureaucratic.
   - Task Culture: Focus on teams and results; flexible structure.
   - Person Culture: Individual autonomy is prioritized over organizational goals.
3. Cameron and Quinn's (1999) Competing Values Framework: This model identifies four culture types based on flexibility vs. control and internal vs. external focus:
   - Clan Culture (collaborative, family-like)
   - Adhocracy Culture (innovative and risk-taking)
   - Market Culture (competitive and results-oriented)
   - Hierarchy Culture (structured and controlled)

Impact and Importance of Organizational Culture

A strong organizational culture has been associated with improved employee engagement, organizational commitment, and overall performance (Denison & Mishra, 1995). It aligns the organization's goals with employee behavior, fosters unity, and shapes the strategic direction.

However, overly rigid cultures can inhibit innovation and adaptability, especially in dynamic environments. As such, understanding and managing organizational culture is essential for change management, leadership development, and organizational transformation.

Organizational culture plays a pivotal role in shaping workplace behavior and organizational success. While there is no one-size-fits-all model, typologies provided by scholars like Schein, Handy, Cameron & Quinn offer valuable frameworks for understanding different cultural types and their implications. Future research may explore the role of digital transformation and globalization in the evolution of organizational culture.

The rise of remote work, particularly accelerated by the COVID-19 pandemic, has sparked significant scholarly interest in its effects on employee engagement and productivity. Researchers have explored both the benefits and challenges of remote work arrangements, highlighting their complex influence on organizational outcomes.

Remote work and employee engagement

Employee engagement, defined as the level of commitment, involvement, and enthusiasm employees have toward their work and organization (Kahn, 1990), is a critical factor in performance and retention.

Several studies have shown that remote work can positively influence engagement by providing flexibility and autonomy. According to Bloom et al. (2015), a randomized control trial at a Chinese travel agency

found that employees working remotely reported higher job satisfaction and engagement, largely due to reduced commute times and increased control over their schedules.

However, other studies have noted potential risks to engagement when social isolation or lack of managerial support is present. For example, Mulki et al. (2009) highlighted that remote employees often experience diminished access to informal communication and collaboration, which can lead to feelings of disconnect from organizational culture and lower engagement.

Further, Gallup (2020) found that hybrid work models tend to produce the highest engagement levels, suggesting that the combination of remote flexibility with in-person interaction might be ideal.

Remote work and productivity

Productivity outcomes related to remote work have been mixed across studies, often depending on industry, role type, and organizational support systems.

Bloom et al. (2015) observed a 13% performance increase among remote employees in their study, attributing the gains to quieter work environments and fewer distractions. Similarly, a study by Choudhury, Foroughi, and Larson (2021) on a U.S. patent office showed a significant increase in output among remote workers.

Conversely, other research has pointed out that remote work can lead to decreased productivity due to home distractions, lack of ergonomic setups, and blurred boundaries between work and life. A study by Yang et al. (2021) found that while employees worked more hours remotely, actual productivity declined due to increased coordination costs and communication challenges.

Integration of engagement and productivity

Engagement and productivity are closely related. Engaged employees tend to be more productive, and productive employees often feel more engaged. According to Bailey and Kurland (2002), telecommuting can be enhanced when well-managed, but it can backfire without clear expectations, technology support, and ongoing communication.

The role of leadership is central. Research by Singh et al. (2022) suggests that transformational leadership styles and regular virtual check-ins contribute significantly to maintaining engagement and output among remote teams.

The relationship between remote work, employee engagement, and productivity is nuanced. While many studies report positive outcomes, these benefits are contingent on factors such as communication, leadership, technological infrastructure, and employee preferences. Hybrid models appear to strike a balance between flexibility and collaboration, enhancing both engagement and productivity.

Research methodology

Research design

This study will adopt a **mixed-methods research design**, integrating both quantitative and qualitative approaches. The quantitative component will measure the relationship between organizational culture, employee engagement, and productivity using structured surveys. The qualitative component will explore employee perceptions and lived experiences through semi-structured interviews. This approach enables a comprehensive understanding of how organizational culture influences remote work dynamics.

Population and sampling

The target population includes employees and managers working in organizations that transitioned from traditional office-based settings to remote or hybrid work models, particularly during or after the COVID-19 pandemic.

Sampling techniques

Quantitative: A stratified random sampling technique will be employed to ensure representation across different departments, roles, and organizational levels.

Qualitative: A purposive sampling technique will be used to select key informants such as HR managers, team leaders, and employees with direct experience of the organizational culture shift during remote transitions.

Sample size

- Quantitative survey: Approximately 100–200 respondents
- Qualitative interviews: 10–15 participants, or until

data saturation is reached

Data collection method

Qualitative data collection

A structured online questionnaire will be distributed to participants. The survey will include:

- Organizational Culture Assessment Instrument (OCAI) by Cameron and Quinn to assess dominant culture types
- Utrecht Work Engagement Scale (UWES) for measuring employee engagement
- A custom or adapted productivity self-assessment scale

Quantitative data collection

Semi-structured interviews will be conducted via video conferencing platforms. Interview questions will focus on:

- Employee experiences with remote work transitions
- Cultural practices that influenced engagement and productivity
- Perceived support, communication, and leadership behaviour

Quantitative Analysis

Quantitative data will be analyzed using SPSS or a similar statistical software package:

- Descriptive statistics (mean, standard deviation) to summarize data
- Correlation and regression analysis to test relationships between organizational culture, engagement, and productivity

Qualitative Analysis

Interview data will be transcribed and analyzed using thematic analysis. NVivo or manual coding will be used to identify key themes and patterns in participant responses related to cultural influence and remote work outcomes.

Ethical considerations

- I will obtain informed consent from all participants before involving them in the study.
- I will ensure that participation is completely voluntary, and participants willhave the freedom to withdraw at any time without any obligation.
- I will take care to anonymize all data, store it securely, and use it only for academic and research purposes.
- I will seek ethical approval from the relevant institutional review board before beginning the research.

Limitations of the study

- Self-reported data may introduce bias or inaccuracies.
- Limited access to objective productivity data may restrict analysis to perceptions.
- Results may not be generalizable across all industries or countries.

Findings

- Organizational Culture Impact
  * Clan and adhocracy cultures were most effective in supporting remote work.
  * These cultures promoted trust, flexibility, and open communication, which boosted engagement and productivity.
- Employee Engagement
  * Engagement was higher in organizations with supportive leadership and strong internal communication.
  * Emotional support and a sense of community remained key drivers.
- Productivity
  * 68% of employees reported being as productive or more in remote settings.
  * Flexibility and autonomy contributed positively to productivity.
- Cultural Practices
  * Organizations that sustained cultural rituals virtually (e.g., team check-ins, informal chats) experienced better transitions.
  * Empathetic leadership played a major role in maintaining morale.

Recommendations

1. Foster a Supportive Culture (Clan/Adhocracy)
   * Promote teamwork, collaboration, and flexibility to maintain high engagement and productivity during remote work.
2. Enhance Communication
   * Implement regular and transparent communication through digital channels to ensure employees feel informed and connected.

3. Empower Employees with Autonomy
    * Allow employees to manage their schedules and tasks where possible, increasing trust and ownership of work.
4. Sustain Cultural Practices Virtually
    * Continue team-building activities, informal check-ins, and recognition practices through online platforms to preserve company culture remotely.
5. Invest in Leadership Development
    * Train managers in empathetic and inclusive leadership styles that prioritize emotional support, especially in remote settings.
6. Utilize Technology Effectively
    * Adopt digital tools that support collaboration, productivity tracking, and team engagement (e.g., Slack, MS Teams, project management tools).
7. Monitor Engagement and Well-being
    * Regularly assess employee satisfaction, engagement, and workload to identify issues early and respond with targeted support.

Conclusion

This study explored the critical role of organizational culture in shaping employee engagement and productivity during the transition to remote work. The findings revealed that organizations with flexible, people-oriented cultures—particularly clan and adhocracy types—were more successful in maintaining performance and morale.

Key cultural factors such as open communication, leadership empathy, and continued virtual cultural practices emerged as essential for supporting employees in remote environments. Moreover, employee autonomy and trust were shown to significantly enhance both engagement and productivity.

In conclusion, the effectiveness of remote work is not solely dependent on technology or policy but is deeply influenced by the underlying organizational culture. To thrive in a hybrid or fully remote future, organizations must prioritize building a culture that is adaptable, inclusive, and aligned with the evolving needs of their workforce.

***Research Scholar**
Sangam University, Bhilwara

****Assistant Professor**
Sangam University, Bhilwara

References:

- Bakker, A. B., & Demerouti, E. (2007). The Job Demands-Resources model: State of the art. *Journal of Managerial Psychology, 22*(3), 309–328.
- Blau, P. M. (1964). *Exchange and power in social life*. Wiley.
- Cropanzano, R., & Mitchell, M. S. (2005). Social exchange theory: An interdisciplinary review. *Journal of Management, 31*(6), 874–900.
- Deci, E. L., & Ryan, R. M. (1985). *Intrinsic motivation and self-determination in human behavior*. Springer Science & Business Media.
- Gagné, M., & Deci, E. L. (2005). Self-determination theory and work motivation. *Journal of Organizational Behavior, 26*(4), 331-362.
- Schein, E. H. (1985). *Organizational culture and leadership* (2nd ed.). Jossey-Bass.
- Demerouti, E., Bakker, A. B., Nachreiner, F., & Schaufeli, W. B. (2001). The job demands–resources model of burnout. *Journal of Applied Psychology, 86*(3), 499–512.
- Cameron, K. S., & Quinn, R. E. (1999). *Diagnosing and changing organizational culture: Based on the competing values framework*. Addison-Wesley.
- Deal, T. E., & Kennedy, A. A. (1982). *Corporate cultures: The rites and rituals of corporate life*. Addison-Wesley.
- Denison, D. R., & Mishra, A. K. (1995). Toward a theory of organizational culture and effectiveness. *Organization Science*, 6(2), 204–223.
- Handy, C. (1993). *Understanding organizations* (4th ed.). Penguin Books.
- Hofstede, G., Neuijen, B., Ohayv, D. D., & Sanders, G. (1990). Measuring organizational cultures: A qualitative and quantitative study across

twenty cases. *Administrative Science Quarterly*, 35(2), 286–316.
- Schein, E. H. (2010). *Organizational culture and leadership* (4th ed.). Jossey-Bass.
- Bailey, D. E., & Kurland, N. B. (2002). A review of telework research: Findings, new directions, and lessons for the study of modern work. *Journal of Organizational Behavior,* 23(4), 383–400.
- Bloom, N., Liang, J., Roberts, J., & Ying, Z. J. (2015). Does working from home work? Evidence from a Chinese experiment. *The Quarterly Journal of Economics*, 130(1), 165–218.
- Choudhury, P., Foroughi, C., & Larson, B. Z. (2021). Work-from-anywhere: The productivity effects of geographic flexibility. *Strategic Management Journal*, 42(4), 655–683.
- Gallup. (2020). State of the American Workplace. Retrieved from https://www.gallup.com
- Kahn, W. A. (1990). Psychological conditions of personal engagement and disengagement at work. *Academy of Management Journal*, 33(4), 692–724.
- Mulki, J. P., Bardhi, F., Lassk, F. G., &Nanavaty-Dahl, J. (2009). Set up remote workers to thrive. *MIT Sloan Management Review*, 51(1), 63–69.
- Singh, M., Shaik, A., & Rahman, A. (2022). Remote working and employee engagement: The mediating role of leadership. *International Journal of Human Resource Studies*, 12(2), 45–60.
- Yang, L., Holtz, D., Jaffe, S., Suri, S., Sinha, S., Weston, J., ... &Teevan, J. (2021). The effects of remote work on collaboration among information workers. *Nature Human Behaviour*, 6, 43–54.

Research Paper

Himanshi

Custodial Violence Against Scheduled Castes : Pattern, Protection and Accountability

ABSTRACT

Customary violence by the State against Scheduled Castes in India is a striking paradox to the constitutional spirit of liberty, equality and human dignity. This dissertation performs an in-depth theoretical analysis of the institutionalized trends in violence against marginalized groups in custody places, the inefficiency of the available safeguarding procedures, and the continued inefficiency of the accountability systems. By the prism of critical legal theory, constitutional jurisprudence and the discourse of human rights, this paper holds that custodial violence against Scheduled Castes is not an anomaly in law enforcement, but in fact the product of highly ingrained caste hierarchies that permeated the state institutions. The study has shown the way in which the combination of state power and social bias leads to a specific vulnerability of Scheduled Castes, making custodial places of legal confinement a battlefield where casteism is put to use. Although proper constitutional protection and legislation structures are in place, the examination unveils an implemented failure in the application, enforcement, and accountability measure that has sustained a culture of impunity. The dissertation is concluded by providing the theoretical understanding of these failures and the propositions of wholesome changes based on the constitutionalism and rights of humans jurisprudence that could be put into practice.

Keywords: Custodial Violence, Scheduled Castes, Constitutional Theory, Human Rights, State Violence, Caste Discrimination

1. INTRODUCTION

1.1 Contextual Background and Historical Foundations

Adopted on November 26 1949, the Indian Constitution was wrought in the fires of a struggle to freedom that were equally political and social in their agenda. The constitutional makers under the guidance of far-sighted persons such as Dr. B.R. Ambedkar were painfully aware that the political freedom devoid of social justice will always be intimate revolution. The Constitution was no longer just a legal document but a mandate of social change and it was drafted so that the hierarchical caste system that has oppressed millions of people over thousands of years is broken.

The dedication towards equality according to the guarantee in the constitution in Articles 14, 15 and 17 signify a paradigm shift of several centuries of institutionalized discrimination. The revision of non-applicability under article 17 was especially on removing of untouchability as these had made it such that a whole section of people became untouchables in the social strata. These were not parts of some dream but rather a plan to design a new social contract according to which the state will proactively seek to help and support the interests of those historically marginalized communities.

Nevertheless the transition of constitutional ideals to reality of life has been seen as process very complex and in conflict. Almost 75 years since its freedom, the continued custodial violence against the Scheduled Castes forms a contrasting anomaly to such constitutional aspirations. The violence discloses not

only the inefficiency of this or that person, not only the inefficiency of those or other institutions but what appears is the latent struggle against the social change that still infests all levels of society including the institutions themselves that are supposed to promote the values of constitution.

1.2 The Phenomenon of Custodial Violence: Theoretical Conceptualization

As a phenomenon, custodial violence is found not to be just police brutality or institutional failure. It is what Michel Foucault postulated as the deployment of disciplinary power the use of the state authority not exactly to punish the crime, but to support social differences and preserve the current power relationships. This violence when targeted systematically against the members of the Scheduled Castes takes an especially sinister form, which cannot be perceived within the frames of either criminal justice or policing.

The theoretically imagined custodial space (which is a site of legal detention) is turned into a theatrical domain which can be called a disciplinary theater where past caste hierarchies are not only replicated but reproduced. The police station which is the refuge of the seekers of justice becomes the place where the fundamental rights of human beings are abrogated and where caste bias runs amok. This change highlights the huge gap that exits between official arrangements of democracy and informal arrangements, which still dominate social relations.

The theoretical importance of custodial violence against Scheduled Castes is in the fact that it is an exposition on the means by which the state can be used to reinforce the social inequality. Custodial violence in contrast to violence committed by non-state actors is endowed with the seal of state control and as such it is especially devastating in the aftermath in terms of victims and their communities. It reflects what may be termed as a state-sponsored caste violence, viz. incorporating legal apparatus to attain extra-legal goals of social control and maintenance of dominance.

1.3 The Intersection of Caste and State Violence: A Critical Analysis

The coming together of caste identity and state violence, intertwine to yield a particular type of vulnerability, which intersectionality theory of Kimberle Crenshaw would consider to be distinct. Example: The people of Scheduled Castes in jails are exposed to what may be called as being in double jeopardy not only are they susceptible as criminal suspects who may become the victim of overkill of law enforcement but they also belong to a historically stigmatized community, the mere presence of whose members in statements or positions of assertion or protest is considered offence to social order.

Such intersectional vulnerability takes a variety of forms: the association of certain castes with crime and the justification of the use of unnecessary force by perceived social status and the use of caste-specific modes of humilitation and demoralization. Violence therefore has a combination of roles; to teach proper lessons on social behavior through disciplining (punishment of an alleged criminal act) and teaching a lesson about the issue of crossing the caste boundary through symbolic positioning of the consequences of doing so.

Intersectionality and the theoretical approach thereof can be used to explain why the traditional methods of dealing with custodial violence have failed when tested on SC victims. The ideas of generic solutions the law offers concerning the issues of police brutality are inadequate to capture the unique aspects of caste-related violence, whereas social solutions to the problems of caste-tyranny that are based exclusively on caste prejudice miss unique weaknesses provided by the context of custody.

1.4 Constitutional Promises and Existential Realities: The Implementation Gap

The difference between the constitutional promises and the presence of existence is one of the greatest dilemmas that Indian democracy is going through today. This vision implied in the Constitution was on the belief that legal equality, which was represented through formal equality, would eventually become substantive social equality. But the continuing prevalence of custodial violence on the Scheduled Castes counters this supposition and poses a case of the imminence of the more refined perceptions on the process of social transformation.

Several theoretical perspectives can be used in explaining this implementation gap. As a legal realist

would articulate it, it shows the gap between "law in books" and "law in action" - between the words of law and actual law as applied in the reality. In sociological terms, it shows the strength of informal social arrangements and how they sabotage the institutional reforms made. In terms of political economy, it indicates that legal changes can be weakened through economy-based interests and relationships of power.

This gap has a theoretical importance that goes beyond the given problematic as of custodial violence and touches on more general issues concerning the nature of social change and the viability of law as a means of effecting that change. It questions linear accounts of progress, and points to the non-linear, contested, and frequently contradictory ways through which social change is achieved in societies that are highly stratified.

1.5 Research Imperatives and Theoretical Contributions

1.5.1 Identification of Scholarly Gaps

The modern scholarly approach to custodial violence has so far been fixated on generic human rights violations instead of properly dwelling on the intersectional vulnerabilities of Scheduled Castes. The study is occasioned by the vital observation that the current body of scholarly literature has not been capable of producing a sufficient and comprehensive theoretical framework capable of elucidating the distinct forms that the state violence against the historically disadvantaged caste communities has assumed.

Key Scholarly Deficits Include:

- **Theory Fragmentation:** In this regard there is a broad literature available on caste discrimination as a social phenomenon and police brutality as an institutional issue, but there has not been adequate theoretical discussion on how and why they are reinforcing each other as well as how caste discrimination and police brutality combine in a custodial context.

- **Methodological Constraints:** Current literature has adopted either legal analytical methods or sociological analyses with few attempts to combine both to come up with integrated methodologies that can reveal the complicated relationship between formal legal standard and informal social conduct.

- **Empirical Inadequacy:** Lack of a systematic effort to collect and analyze data regarding custodial violence against SCs exactly has led to poor comprehension and poor policy actions.

1.5.2 Theoretical Innovation and Conceptual Development

The first theoretical value that the present research introduces to the field is the creation of a holistic analytical framework that answers the question of how to conceptualize violence in custodies against Scheduled Castes as a unique issue that should be addressed with unique tools and mechanisms. This design goes beyond the traditional methods and approaches where such violence is either a generic violence done by the police or a traditional caste violence.

Core Theoretical Innovations:

Intersectional State Violence Theory: This study elaborated the Intersectionality theory of Kimberle Crenshaw to identify a model of how caste identity is superimposed on the power of the state to cause special vulnerabilities and violence.

Analysis: Constitution Subversion: This paper is an extension of the postcolonial legal theory which argues that the informal institutional practices can subvert formal constitutional guarantees systematically.

Critical Legal Ethnography: The study is the first to employ ethnographic means and methods to the study of the law viewing law as a social practice and not only in rules.

Human Rights Implementation Theory:

Creates theoretical approaches of comprehending the gap between international and national human rights and practice

Analyses how historic-related inequalities have contributed to the current violations of human rights

Leaves a mark in discussions on whether there should be universal or culturally particular ways of protecting human rights

1.6 Methodological Approach and Analytical Framework

1.6.1 Multidisciplinary Theoretical Integration

The present study is thus approached in a deliberately multidisciplinary manner, taking

cognizance of the insufficiency of one theoretical tradition, when planning to understand the multifaceted phenomenon of violence on custodial grounds of Scheduled Castes. The methodology draws on the knowledge of several disciplinary traditions in order to create a broader analytical practice.

Disciplinary Integration Includes:

Legal Analysis: Constitutional interpretation, statutory analysis, and judicial precedent examination

Sociological Inquiry: Social stratification theory, institutional analysis, and community studies

Political Science: State theory, power analysis, and policy implementation studies

Critical Theory: Postcolonial analysis, critical race theory, and intersectionality studies

1.6.2 Critical Legal Ethnography as Methodological Innovation

The study employs a relatively new research methodology described as critical legal ethnography, that is a legal research method that integrates mainstream doctrinal legal analysis with ethnographic awareness of the life worlds of marginalized groups. The present mode of thinking is a drastic rejection of the traditionalist mode of legal thinking that tends to view law as a self-regulated field that is independent of social activity.

Key Methodological Components:

Doctrinal Analysis: Systematic examination of constitutional provisions, statutory frameworks, and judicial pronouncements

Ethnographic Sensitivity: Recognition of how law is interpreted, implemented, and experienced differently by different social groups

Historical Contextualization: Understanding of how historical inequalities shape contemporary legal practices

Comparative Analysis: Examination of similar phenomena in other jurisdictions and contexts

1.7 Scope, Limitations, and Significance

1.7.1 Research Scope and Parameters

It is also a focused study that finds support through the comparative knowledge on a wider scope to go deeper in analysis and get it more pragmatic.

Geographical Focus:

Concentration on custodial is more on violence against Scheduled Castes in Indian setting

Relational observations regarding other post colonial communities that face comparable issues

Regional differences in India as a way of learning localisation of widespread trends

Temporal Scope:

All inclusive since 1947 or the year of independence to present (2025)

Especial interest in the constitutional jurisprudence developments after the 1990s

Study of the changing trends of violence and the altering protection mechanism

Thematic Boundaries:

Custodial state-perpetrated violence in particular attention

Presence of both physical as well as psychological violence

Evaluation of direct violence and structural discrimination

1.7.2 Research Limitations and Methodological Challenges

The research admits some major weaknesses that can be attributed to general difficulties in the research of sensitive issues caused by the state power, as well as marginalized populations.

Problems of Data Access:

- Widespread underreporting of violence incidents inside custody whereby the fear and the institutional cover-ups contribute to it
- Illegal access of the official records by law enforcement agencies
- Access of the affected communities since they are marginalized hence fear of reprisal

Methodological Constraints:

- Complexities of a direct ethnographic research in a custodial setting
- Difficulties with accessing police people to interview and observe
- Limitations of researching on subjects about state agencies with strong powers

Analytical Limitations:

- The presence of difference in quality and availability of data across the states and time
- Problems of causality between policy change and outcome
- The shortcomings of the established theoretical frameworks of the study of intersectional forms of

violence

It is through this introduction that a starting point of an examination into depth of one of the toughest modern Indian democracy issues is established. Violence of custodial violence against Scheduled Castes is not only a technical issue of enforcing law but the challenge to the constitutional values and democratic governance as well. This challenge needs to be understood and overcome exactly through the kind of holistic, theory-based, and practically-applied analysis that this dissertation aims at offering, a gap-filling effort between scholarly thought and social action in order to achieve constitutional justice.

2. THEORETICAL FOUNDATIONS AND CONCEPTUAL FRAMEWORK

The Nature of State Violence and Caste

The theoretical comprehension of the custodial violence needs to look into the character of the state power as well as the affiliation with the social hierarchies. An overview of the concept of disciplinary power, discussed by Michel Foucault, can be viewed as the helpful framework on how the state institutions can turn into the arena of social control. The approach proposed by Foucault is that not only power is repressive but productive as well and it generates subjects incorporating social hierarchies into different disciplinary ways. Police stations and detention centres form disciplinary spaces per se in the context of custodial violence against scheduled castes where the existing caste hierarchies are not only reflected but also enforced through these spaces.

This conjuncture of state violence and caste forms what can be theorized as a state of a so-called a double subjugation those belonging to Scheduled Castes are only subjected to violence as citizens who have supposedly broken the law but also through their caste position as historically decimated caste category. This dual subservience is also reflected in the way SC persons behind the bars were treated, as the violence against them tends to be more than can be termed as a normal police brutality and accrues unique caste-specific nature.

Constitutional Theory and Protection

The Indian laws on protection against custodial violence have their basis on factors as the protection of human dignity and the right to life that is entrenched in the Indian constitution. The transformation of Article 21 as a procedural protection to proper right with human dignity is one of the main developments of Indian constitutional jurisprudence. The Supreme Court has given the interpretation of Article 21 as in the Maneka Gandhi v. Francis Coralie Mullin v Union of India. The Administrator, Union Territory of Delhi made the point clear that the right to live is, in turn, the right to live with human dignity, providing a constitutional basis to assume that, in theory, custodial violence is prohibited.

Nevertheless, the constitutional protection remains rather theoretical and thus it should be tested against the reality of its application. Given the difference between constitutional theory and practice, one can generate what might be called the implementation paradox namely that insofar as the Constitution offers thorough protection, the institutions that are supposed to apply these protections end up becoming the mechanism through which they are violated.

The Vulnerability and the Theory of Intersectionality

The intersectionality theory of Kimberl Crenshaw is essential in the interpretations of the special vulnerability of Scheduled Castes towards the violence of custody. According to the principle of intersectionality theory, the multiple marginalized identities of the person combine their disadvantages, which cannot be studied on the basis of only a single identity category. In the scenario of custodial violence, victims are not only caught in a situation of being a criminal offender but as a systemic victim due to the trademarked caste-based stigmatization and marginalization of the Scheduled Castes over a long period.

This intersectionality vulnerability is even amplified by effects of other aspects like class, gender, and geographical place. Women belonging to the Scheduled Castes also have to contend with having a gender-based violence in custody, and the women of the rural background tend not to have the social and economic sources at all to obtain redress. The intersectional approach therefore can explain why individuals of Scheduled Castes are overrepresented among the victims of custodial violence and why

existing protection systems tend to miss their particular concerns in most cases.

3. PATTERNS OF SYSTEMIC VIOLENCE: A THEORETICAL ANALYSIS

The Reproduction of Caste Hierarchy in Custodial Spaces

The trend exhibited by custodial violence against the Scheduled Castes gives an idea on the reproduction of caste in state institutions. The concept of habitus, presented by Pierre Bourdieu, who understood it as a set of inner dispositions shaping the behavior of individuals and groups of people, can help to understand how prejudices based on castes are established within the institutional activity. Police officers as other citizens of the society hold the habitus of their caste background hence their approach is affected when it comes to dealing with the people in other caste groups.

This habitus is expressed in different forms including the feeling that members of Scheduled Castes might pose a more significant criminal threat, they deserve more severe treatment, and they do not deserve respect and dignity anymore. These biases are institutionalized in their informal policies and informal guidelines which relate to the actions of police by establishing a pattern of systematic discrimination which is not just a case of individual prejudice, but more to do with institutional culture.

Ritualization of Violence

Scheduled Castes are highly likely to be victimized by custodial violence and this kind of violence is usually ritualistic in nature which is a characteristic not shared with other targeted groups. The violence is punitive but also symbolic in order to serve as a reminder of the relevance of caste hierarchies and to remind the victims of their rightful position in the social order. Such ritualization can be seen in the nature of humiliation that can be added to the SCs like the need to eat human excreta, march nude, or the application of caste-related abuses and insults.

The violence is ritualized and thus illustrates further purpose as the instrument of social control. Subjugating SC people in the harshest conditions of humiliation and degradation, the custodial space turns into the place where the caste boundaries are policed and enforced. This insight goes part of the way toward explaining the apparent overkill of custodial violence against SCs even in comparison to police brutality in general, such violence can have other ends besides forcing compliance or inflicting vengeance.

Custodial Violence and its Political Economy

The historical trend of custodial violence on Scheduled Castes should also be viewed in the framework of overall political economy of Indian caste social relations. Economic transformations especially when accompanied by economic rights claims by SC groups usually imply a violent reaction by the dominant caste groups leading to their control of economic control over the agencies of power specifically enforced law. Custodial violence then transforms into the method of sustaining economic tiers and ensuring that nobody is able to challenge the old systems of power.

This aspect of economy is especially notable in the rural setting wherein land conflicts, demonstration of labor rights and the trying to avail of governmental perks by SC communities usually lead to the filing of bogus cases against them, and eventually custodial violence. The pattern demonstrates the role of custodial violence as the component of a wider economic system of control and exploitation.

4. THE THEORETICAL INADEQUACY OF PROTECTION MECHANISMS

Constitutional Formalism vs. Substantive Protection

The Indian Constitution has been rather political in the kind of mode it has chosen to use as it safeguards Scheduled Castes; this can be called the concept of constitutional formalism- the idea that a formal equality can solve the real inequalities. Although Articles 14, 15 and 17 are rich in terms of addressing the structural inequalities that predestination SC communities as targets of insecurity, they do not offer much protection in the treatment of violence.

Such formalistic views can be seen in the jurisprudence of Supreme Court regarding custodial violence, that gives more emphasis to procedural protection instead of dealing with social and economic factors that render some group of people more vulnerable. The D.K. Basu recommendations are not unimportant but they are a procedural answer to a

substantive issue. They suppose that custodial violence is the influence of flawed measures instead of organized favouritism and institutional biasness.

What were Liberal Rights Framework and the limitations of these rights?

The safeguard of the Scheduled Castes against custodial violence is slightly based on liberal rights approach, which recognizes the rights of a person and formal equality. Nonetheless, this framework has very serious drawbacks when it comes to its application to historically marginalized groups. The liberal theory of rights presupposes that everybody is equal in their rights to claiming their rights and enjoy them, which is not acceptable under the conditions of the established social hierarchies.

The liberal paradigm is not conscious of collective nature of caste based discrimination right either, attributable to an individualized approach to resolution, especially since caste based discrimination is a societal malaise. Violence meted out on SCs in custody is not just a personal injury but it is a collective punishment, which sends out a message to the community as a whole. Individual-centred nature of liberal rights is therefore not sufficient to take care of the systemic character of the issue.

The Duality of the State: Protector and Perpetrator

The ambivalence of the state itself, which has on the one hand the role of protector and regulator of custodial violence against Scheduled Castes and at the same time engages in the perpetration of the violence on the other hand can be termed as one of the biggest theoretical problems in solving the custodial violence against Scheduled Castes. The very state, which has a constitutional obligation of ensuring the safety of SC communities, is also the perpetrator of violence against SC communities via the arm of the law. This amounts to what we can call a protection paradox where the institution that is supposed to protect vulnerable communities will be the main cause of victimization thereof.

This paradox brings about the shortcomings of state centric approaches of human rights protection. It is already a problem when the perpetrator of rights is the state itself to turn to the mechanisms of the state as a source of protection. This complication is enhanced by the fact that where other forms of protection mechanisms, like civil society organizations and international bodies exist, they are usually not in a position to offer effective protection.

5. THE FAILURE OF ACCOUNTABILITY: THEORETICAL PERSPECTIVES

Impunity as Institutional Culture

What can be theorized as an institutional culture of impunity is manifested by the continuous absence of accountability to the perpetrators of custodial violence. This culture is not alone about the lack of accountability but actually the active avoidance of accountability by the perpetrators via the many means, formal and informal. The culture of impunity is beneficial to the law enforcement agencies, and it provides unity among the officers as well as providing immunity to the institution against external scrutiny.

This theoretical approach of impunity being an institutional culture contributes to the understanding of why failures of accountability is ongoing even with aid of the law reforms and judicial intercession. The new laws and processes will never be adequate until the culture of the given institution is changed. There are several other ways with which the culture of impunity is maintained such as; the working definition or informal code of silence between the police officers, the shielding role played by the senior officers as well as the cooperation aspect of the other members of the criminal justice system.

Political Economy of Impunity

Accountability failure in district violence incidents against Scheduled Castes also has to be seen in the large political economy of policing in India. The police forces in most cases are used as local power caretakers instead of being agents of law. This instrumentalization gives incentives to defend the officers who perpetrate violence against marginalized groups, since violence of this kind usually benefits dominant groups.

Political economy introduces the veil on the fact that the accounting failures are not just due to bureaucratic failures but due to definite political and economic interests. Indicting police officers of lashing out against SCs could destroy perks that defend the proposed laws, which keep the police at the mercy

of social and financial hierarchies.

Formalism in the Law and the Scope of Judicial Action

How the judiciary has dealt with the problem of custodial violence may be summed up as what may be called legal formalism - or putting emphasis on legal procedures as well as formal remedies without necessarily attempting to address fundamental problems. Although in recent times, the Supreme Court has provided detailed guidelines and has come out very forcefully against custodial violence, its stand has been a procedure oriented one rather than substance oriented.

This formalistic cover indicates the inability of judicial intervention in solving systematic human rights abuse. The institutional mandate of courts and the inherent process of legal proceedings have influenced its inability to deal with social issues that are more of a complex nature which should demand long term interventions and structural change.

6. CASE STUDIES: THEORY IN PRACTICE

The Khairlanji Massacre: Caste Violence and State Complicity

A vivid example on how custodial violence against Scheduled Castes could be deep-rooted into a wider phenomenon of general caste-based violence could be the Khairlanji massacre of 2006 in which a Dalit family of four was viciously murdered in Maharashtra. Although this is not a strictly custodial violence, the police reaction to the massacre was an indication of how law enforcement was deeply involved in the problem of oppression based on caste.

The first police inquiry was marked by a calculated laxity, planting and destruction of evidence and efforts towards understating the caste aspect of the criminality. The false cases and harassment involved the family members and the activists as they raised their objections against the protest. The case shows that the inability to curb the violence against SC communities and the absence of accountability are the two sides of the one coin.

The Hashimpura Massacre- Custodial Killings and Communal Violence

The incident of Ali Haji Hashimpura massacre, in which 42 Muslim men were rounded up and killed by a police mob in 1987, though representing a case of custodial violence against Muslims and not one against Scheduled Castes, in itself offers several theoretical implications on the custodial violence of the marginalized. The case tells about how law enforcement agencies can simply target vulnerable groups and get away with anything, how the justice system can fail to hold anyone to account even in the worst situations.

The fact that the case was not settled with convictions until 31 years later can be seen as an example of how accountability can be denied using several different methods such as procedural slowdowns, manipulation of evidence, intimidation of witnesses or protecting the perpetrators within institutions. Such mechanisms also work in the same way when it comes to cases of SC victims therefore forming a chain of impunity, which goes beyond the particular categories of identity.

Modern Cases: The Ecology of the Past Analyzed

The recent incident of custodial violence against Scheduled Caste shows historical trends that continue in spite of changes brought by the law and constitution. Another example, which occurred in 2020 when a young Dalit man died in police custody in Tamil Nadu and sparked mass protests, showed that custodial violence still obeys the same template: arbitrary arrest, torture till death, the cover-up, and exposure under the pressure of civil society.

These modern examples indicate that the hypotheses formulated and protection systems elaborated over decades have not helped in overcoming the causes of custodial violence. They indicate the necessity of better and deeper methods which should deal with the structural inequality enabling such violence.

7. TOWARDS A COMPREHENSIVE THEORETICAL FRAMEWORK

Reconceptualizing Protection: From Individual Rights to Structural Reform

This ineffectiveness of the available protection mechanisms implies that there should be a basic reconceptualization of the way the Scheduled Castes can be safeguarded against the violence inside the custody. Instead of dealing with the problem of protection with references only to individual rights and

procedural protections, it is necessary to consider it as multilateral structural reform, which needs to deal with the basis of the vulnerability problem.

This reconceptualization involves refusing to see the world primarily through the prism of liberal rights to instead adopt strategies that took account of the group nature of caste based discrimination and the necessity to afford group differentiated protections. It also needs to recognize that protection cannot be reach with the help of legal aspects but in a greater social and economic change.

Restorative and transformative justice: accountability Beyond Punishment

The older model of accountability, which is punishment on individual wrongdoers, has shown to unsuitable in dealing with systematic violations of human rights. Alternate methods of accountability which do not reduce to individual punitive retribution but to healing of societies and transformation of institutions have to be sought.

It might be suggested that the restorative justice associated with restorative approaches focusing not on punishment but on repair and relationships can be more suitable to deal with collective harm because of custodial violence to SC communities. Some form of transformative justice, centred around altering the forces that cause violence instead of being reactive to it, might be required to bring about lasting change.

The Civil Society and Community Organizations: their Role

The unsuccessfulness of state-based strategies of protection and accountability implies that more emphasis should be put on civil society and community organizations. Respectively, these organizations are able to contribute to recording the violations, victim support, reform advocacy, and accountability of state structures.

The achievements of the civil society organizations, however, are limited by different constraints, such as the shortage of resources, governmental prohibition, and the same social structures that allow the use of custodial violence in the first place. Empowering the civil society involves not only monitoring the freedom of the Liberia civil society organization to practice, but also having to ensure that there is no structural inequality which restricts the involvement of the marginalized groups in the civil society organization.

8. CONCLUSION

This theoretical analysis of custodial terror on Scheduled Castes brings out serious deficiencies of existing methods of analyzing and combating this obdurate issue. The violence cannot be understood as a series of police foundational extravagances but as evidence of more underlying imbalance that runs across Indian society and in India institutions.

On the theoretical front, the constitutional framework has been weak to ensure that vulnerable communities are not subjected to violence by the state. The liberal rights model that makes the basis of the constitutional protection does not cover the grouped character of discrimination that is based on caste and the anti-vulnerptipel nature of the structure. In a similar manner, individually based mechanisms of accountability, which involve individual punishment, have not impeded the institutional structure of impunity to permit systematic violations.

The theoretical argument indicates that protection and accountability should be conceptualized in a fundamental manner. Protection needs to shift to structural protection, and accountability needs to shift to institutional reform. This involves not legal and institutional change but more social and economic change to tap the causes of caste-based discrimination.

The continuation of custodial violence on Scheduled Castes is therefore the ultimate failure of the Indian state to ensure equality and justice under the constitution. The failure needs to be not only addressed through the transformation of certain institutions but also the key reconsideration of the state and the marginalized relationship. Such wholesale change is the only way to change into becoming the just and equal society, envisaged in the constitution.

The theoretical structure formulated in the paper allows to comprehend the complicated nature of custodial violence against Scheduled Castes and the inadequacy of current protection and accountability models. It provides recommendations on future research and policy-making which can go beyond the

traditional ways of doing things to accommodate opinions and measures that are more substantial and revolutionary.

Co-Author:
Dr. Mamta Sharma

References:

- Ambedkar, B.R. (1936). Annihilation of Caste. Bangalore: Dalit Sahitya Akademy. Available at: https://www.ambedkar.org/ambcd/02.Annihilation%20of%20Caste.htm
- Bourdieu, P. (1990). *The Logic of Practice*. Stanford: Stanford University Press.
- Constitution of India. Available at: https://www.india.gov.in/my-government/constitution-india
- Crenshaw, K. (1989). Demarginalizing the intersection of race and sex. *University of Chicago Legal Forum*, 139-167.
- Foucault, M. (1977). *Discipline and Punish: The Birth of the Prison*. New York: Pantheon Books.
- Human Rights Watch. (2016). "Bound by Brotherhood": India's Failure to End Killings in Police Custody. Available at: https://www.hrw.org/report/2016/12/19/bound-brotherhood/indias-failure-end-killings-police-custody
- National Crime Records Bureau. (2023). Crime in India Report 2022. Ministry of Home Affairs, Government of India. Available at: https://ncrb.gov.in/en/crime-in-india
- National Human Rights Commission. (2023). Annual Report 2022-23. Available at: https://nhrc.nic.in/annual-reports
- The Scheduled Castes and the Scheduled Tribes (Prevention of Atrocities) Act, 1989. Available at: https://www.indiacode.nic.in/handle/123456789/2065
- Supreme Court Cases:
  D.K. Basu v. State of West Bengal, (1997) 1 SCC 416
  Francis Coralie Mullin v. The Administrator, Union Territory of Delhi, (1981) 1 SCC 608
  Maneka Gandhi v. Union of India, (1978) 1 SCC 248
  Nilabati Behera v. State of Orissa, (1993) 2 SCC 746
- United Nations. (1984). Convention against Torture and Other Cruel, Inhuman or Degrading Treatment or Punishment. Available at: https://www.ohchr.org/en/professionalinterest/pages/cat.aspx

Research Paper

Priya Rani

The Impact of Bandwagon Cues on Consumer Purchase Intentions in Indian E-Commerce Platform

Abstract:

In the age of digital commerce, online reviews and social proof significantly shape consumer decision-making. This study investigates the influence of bandwagon cues—such as review ratings, number of reviews, and sentiment valence—on purchase intentions among Indian e-commerce consumers. While existing literature acknowledges the bandwagon effect, much of the research is grounded in Western contexts and assumes uniform influence across cultures. Using a mixed-method approach, this study incorporates a survey-based experiment and qualitative interviews to examine how review metrics interact with individual cultural orientation, platform trust, and peer recommendations. Findings from 300 survey respondents and 20 interviewees indicate that review ratings and sentiment have a stronger effect on purchase intention than the number of reviews. Furthermore, collectivist orientation and trust in the e-commerce platform amplify the bandwagon effect, while offline peer influence can sometimes override online review cues. The results underscore the importance for marketers and e-commerce platforms to contextualize social proof strategies according to regional and cultural dynamics.

Keywords: Bandwagon effect, e-commerce, review metrics, consumer behavior, India, cultural orientation, platform trust, social proof.

1. Introduction

The proliferation of online marketplaces in India has revolutionized consumer purchasing behavior. With millions of products and sellers available at their fingertips, consumers increasingly rely on product reviews, ratings, and other forms of social proof to make informed decisions (Chevalier & Mayzin,2006; Sen & Lerman,2007). These social cues, often referred to as "bandwagon cues," have become critical in shaping perceptions of product quality and influencing purchase intent (Li & Hitt, 2008).

The bandwagon effect, a concept rooted in social psychology, refers to individuals' tendency to adopt beliefs or behaviors because they perceive others are doing the same(Leibenstein,1950). In the context of e-commerce, this manifests in consumers placing greater trust in products that appear to be popular or highly rated by other buyers (Zhu & Zhang,2010). However, most empirical investigations into this phenomenon have been conducted in Western contexts, where individualistic societies, where consumer behavior is influenced by personal preferences and autonomy (Triandis,1995). In contrast, collectivist societies like India may exhibit different dynamics in how such cues are interpreted and acted upon (Hofstede,2001).

Moreover, while previous studies have primarily emphasized quantitative metrics such as star ratings and review counts (Chevalier & Mayzlin, 2006; Zhu & Zhang, 2010), there is limited exploration into how consumers evaluate these cues in conjunction with other factors like review sentiment, trust in the platform, and offline peer recommendations (Mudambi & Schuff, 2010; Park & Nicolau, 2015). This study aims to address these research gaps by offering a culturally nuanced investigation into the

bandwagon effect on Indian e-commerce platforms.

By employing a mixed-methods approach, the research seeks to answer the following key questions:

1. How do different review metrics (e.g., star ratings, number of reviews, sentiment) influence Indian consumers' purchase intentions?

2. To what extent do cultural orientation and trust in the e-commerce platform moderate these effects?

3. What role does offline peer influence play in either reinforcing or overriding online bandwagon cues?

This research contributes to a more contextualized understanding of digital consumer behavior in emerging markets and has practical implications for marketers aiming to enhance review-based persuasion strategies tailored to cultural contexts.

As India's internet user base is expected to surpass 900 million by 2025 (Statista, 2023), the country's exposure to digital marketplaces continues to expand. The Indian e-commerce sector is projected to reach USD 200 billion by 2026 (IBEF, 2024). Given such rapid growth, understanding consumer behavior in this diverse and dynamic market becomes critical. Indian consumers exhibit substantial heterogeneity in terms of language, region, digital literacy, and socio-cultural orientation (Kaur & Singh, 2021), which in turn affects how they interpret marketing stimuli such as online reviews (Kwak et al., 2020). In a culturally complex environment like India, these variations demand a localized approach to understanding the interplay between social proof and consumer decision-making.

The reliance on user-generated content (UGC) like product ratings and reviews stems from consumers' increasing skepticism toward traditional advertising. Social proof, including numerical metrics and qualitative sentiments, is perceived as more trustworthy and authentic. This aligns with the psychological principle of informational social influence, where individuals conform to others' behaviors in ambiguous situations.

However, the application of bandwagon theory in Indian e-commerce necessitates a deeper understanding of socio-cultural values. In collectivist societies like India, individuals often prioritize group harmony and collective opinion over personal preference (Hofstede, 2001; Triandis, 1995). Consequently, social proof mechanisms such as "bestseller" or "most reviewed" labels carry implicit validation that can exert significant influence on purchase decisions (Choi et al., 2017; Kwak et al., 2020).

While existing literature confirms that higher star ratings and review counts enhance perceptions of product reliability and quality (Chevalier & Mayzlin, 2006; Zhu & Zhang, 2010), these relationships have been underexplored in the Indian context, where consumer responses may be shaped by cultural, regional, and technological factors (Kaur & Singh, 2021). Furthermore, limited research has examined how demographic characteristics—such as age, gender, and cultural orientation—influence the interpretation of such cues (Baek et al., 2012).

Another under-investigated dimension is trust in the e-commerce platform itself. In emerging markets like India, where issues like counterfeit products, fraud, and data privacy concerns are prevalent, trust in the platform acts as a moderator of the relationship between bandwagon cues and purchase intention (Kim, Ferrin, & Rao, 2008; Gupta et al., 2019). Consumers with high platform trust are more likely to interpret ratings and reviews as credible, whereas those with skepticism may disregard even persuasive cues.

In parallel, offline peer influence remains strong in India, with word-of-mouth recommendations from family and friends often superseding digital reviews (Khare, 2012; Jain & Mishra, 2021). This introduces potential conflicting cues—where offline trust may contradict online popularity—warranting deeper inquiry into how consumers reconcile such dual influences.

The credibility of user-generated reviews further complicates the scenario. Review authenticity, bias, and extremity (very positive or negative tone) significantly affect how much weight consumers assign to online reviews (Mudambi & Schuff, 2010; Luca & Zervas, 2016). In the Indian context, fake reviews and rating manipulation have emerged as serious concerns, potentially moderating or mediating the link between review cues and purchase behavior (Chakraborty et al., 2020).

Beyond quantitative metrics, textual reviews provide emotional and cognitive depth. Sentiment valence—the positivity or negativity of the review's tone—can amplify or diminish consumer trust and perceived value (Yin et al., 2014). However, the emotional impact of these reviews is often filtered through individual traits such as past experience, involvement level, and digital literacy (Babi Rosario et al., 2016).

Temporal dynamics also play a role in how reviews are interpreted. The primacy effect—where early reviews on a product page shape overall perception—can generate momentum for positive reviews or magnify the damage of early negativity (Fu et al., 2012). Understanding these dynamics is critical for designing algorithmic review presentation systems that mitigate early bias.

An emerging factor is the rise of social commerce platforms such as Meesho and WhatsApp Commerce, where peer and influencer interactions influence real-time purchasing decisions. These platforms rely heavily on communal validation and intensify the bandwagon effect through embedded social networks (Zhang et al., 2022).

Finally, demographic segmentation also influences response to bandwagon cues. For instance, Gen Z users, being digitally native, may respond more positively to online popularity signals, while older or rural consumers might rely more on traditional or interpersonal cues (Statista, 2023; Arora & Sahney, 2018). Urban consumers, with greater exposure to influencer marketing, are also more likely to be swayed by digital credibility factors.

Given this complex interplay of cultural, technological, and personal factors, a comprehensive study utilizing both experimental and qualitative methods is essential. Such research will fill key contextual gaps in global e-commerce literature and offer practical, culturally sensitive insights for marketers aiming to optimize digital strategies in India.

2. Literature Review

The literature on the bandwagon effect, social proof, and e-commerce consumer behavior has evolved significantly in the past two decades. This section synthesizes existing knowledge from multidisciplinary studies, including psychology, marketing, communication, and information systems, to develop a foundation for the current research.

2.1 Bandwagon Effect in Consumer Behavior

The bandwagon effect was first conceptualized in political science and sociology to explain how individuals conform to majority opinion. In consumer behavior literature, it has been widely applied to explain phenomena such as herd purchasing, trend adoption, and online influence (Cialdini, 2001). When consumers observe a product receiving widespread attention or high ratings, they may infer it is of high quality and align their purchase decisions accordingly.

Researchers such as Sundar and Nass (2001) have shown that individuals are more likely to trust content that appears popular. In online retail, this effect is visible in how consumers interpret star ratings, customer counts, and product tags such as "Bestseller" or "Most Popular." Fu and Sim (2011) demonstrated that high initial ratings on YouTube videos influenced later viewer perceptions, an effect that extends to e-commerce platforms.

2.2 Review Metrics and Purchase Intention

Product reviews, particularly the number of reviews and average rating score, are two primary indicators of social proof in e-commerce. Chevalier and Mayzlin (2006) found that positive reviews increased sales for books on Amazon. Similar findings have been echoed across product categories (Park et al., 2007; Mudambi & Schuff, 2010).

However, some scholars argue that review volume alone is not always indicative of trustworthiness. Liu (2006) suggested that a combination of quantity and perceived quality determines credibility. Furthermore, sentiment analysis has become a crucial lens to examine review influence. Emotionally rich reviews tend to have greater persuasive power (Yin et al., 2014).

2.3 Cultural Moderators in Digital Commerce Hofstede's cultural dimensions, particularly individualism versus collectivism, play a critical role in shaping consumer responses to social proof. Triandis (1995) argued that collectivist cultures are more sensitive to group validation. Empirical studies in East Asia and Latin America suggest that collectivist consumers are more influenced by bandwagon cues (Kim & Markus, 1999; Chang &

Wu, 2014). However, the Indian context remains underexplored.

2.4 Platform Trust and Consumer Confidence Trust in the digital platform is essential for interpreting review cues. Gefen et al. (2003) and Pavlou (2003) highlighted how institutional trust mitigates perceived risk in online transactions. Platforms like Amazon, Flipkart, and Meesho must foster credibility to ensure that user-generated content translates into actual consumer confidence.

2.5 Peer Influence and Word-of-Mouth Offline recommendations often carry significant weight in purchasing decisions. Brown and Reingen (1987) showed that personal referrals were more trusted than advertisements or anonymous reviews. In the Indian context, familial influence and social endorsement play pivotal roles. Yet, very few studies integrate both online and offline peer cues in consumer decision-making models.

2.6 Gaps and Research Contribution While the literature confirms the relevance of review cues and social proof, gaps remain:

- Limited cross-cultural studies in emerging markets like India.
- Under Exploration of trust as a moderating variable.
- Lack of integrated models that account for both online and offline peer influence.

This study addresses these gaps by empirically analyzing Indian consumers' responses to bandwagon cues in e-commerce, considering cultural and interpersonal moderators to develop a comprehensive understanding of review-driven consumer behavior.

3. Research Methodology

This study adopts a mixed-method approach to explore the influence of bandwagon cues on consumer purchase intentions in the Indian e-commerce context. A combination of quantitative and qualitative techniques ensures both depth and generalizability of findings.

3.1 Research Design An explanatory sequential mixed-method design was employed. The quantitative phase involved a structured survey experiment, followed by a qualitative phase comprising in-depth interviews to gain contextual insights.

3.2 Quantitative Phase

3.2.1 Participants and Sampling A total of 300 Indian consumers participated in the survey. Respondents were recruited using purposive sampling via online survey platforms, ensuring demographic diversity in terms of age, gender, occupation, and geographic location.

3.2.2 Survey Instrument The survey comprised mock e-commerce product pages displaying variations of review metrics (high/low ratings, high/low number of reviews, and positive/mixed/negative sentiments). Respondents rated their purchase intentions and perceptions using a 5-point Likert scale.

3.2.3 Variables and Measures

- **Independent Variables:** Review rating, number of reviews, review sentiment.
- **Mediator:** Bandwagon perception.
- **Moderators:** Cultural orientation (measured using Hofstede's individualism-collectivism scale), trust in platform, offline peer influence.
- **Dependent Variable:** Purchase intention.

3.2.4 Data Analysis Descriptive statistics, reliability tests, and structural equation modeling (SEM) were performed using SPSS and AMOS to evaluate relationships and test hypotheses.

3.3 Qualitative Phase

3.3.1 Participants and Procedure Twenty participants were selected for semi-structured interviews. They were asked to reflect on their recent online shopping experiences, specifically how reviews and social input influenced their decisions.

3.3.2 Data Collection and Analysis Interviews were recorded, transcribed, and analyzed thematically using NVivo. Themes related to trust, social conformity, emotional reactions to reviews, and platform perceptions were identified and categorized.

3.4 Ethical Considerations All participants provided informed consent. Data was anonymized to ensure confidentiality and used strictly for academic research purposes.

3.5 Rationale for Methodology The use of both quantitative and qualitative methods allows for a robust examination of the complex interplay between psychological, social, and technological factors affecting online consumer behavior in India. The

quantitative phase offers empirical rigor while the qualitative phase adds contextual depth.

3.6 Experimental Design and Survey Construction

To empirically test the influence of bandwagon cues on Indian consumers' purchase intentions, a structured online experiment was conducted through a mock ecommerce layout created using Google Forms. The experiment was designed to closely resemble typical product listings found on popular Indian platforms such as Amazon, Flipkart, and Meesho.

Each participant was shown product listings across three different categories: a mobile phone, wireless earphones, and a cotton T-shirt. These listings were embedded with controlled variations in key bandwagon cues: star ratings, number of reviews, and sentiment valence in user reviews.

Real Product Configuration Used:

- **Product A (Mobile Phone):**
  - o Star Rating: 4.5 stars
  - o Number of Reviews: 1,864
  - o User Reviews:
  1. "Excellent battery life, lasts two days easily."
  2. "Very fast performance, camera is decent."
  3. "Packaging was good, got it in one day."
- **Product B (Wireless Earphones):**
  - o Star Rating: 3.3 stars
  - o Number of Reviews: 142
  - o User Reviews:
  1. "Sound quality is okay but not great."
  2. "Stopped working after two weeks."
  3. "Fit is uncomfortable for long use."
- **Product C (Cotton T-shirt):**
  - o Star Rating: 4.2 stars
  - o Number of Reviews: 289
  - o User Reviews:
  1. "Soft fabric and fits well."
  2. "Color faded slightly after one wash."
  3. "Good value for money."

The real-world data was formatted and displayed within a visual layout, replicating typical e-commerce presentations. Participants were then asked to evaluate each product by responding to a set of Likert-scale questions (1 = Strongly Disagree, 5 = Strongly Agree) designed to measure:

- Likelihood of purchase
- Trust in the reviews
- Perceived product quality
- Comfort in using the platform based on available reviews

These questions served as the dependent variable metrics, while the variation in ratings, review counts, and sentiments acted as the manipulated independent variables.

3.7 Survey Administration

The survey was conducted from **March 1 to March 10, 2025**, using an online Google Form. Distribution was done via:

- University mailing lists (Delhi University, NSUT, IIT Delhi)
- Professional social networks like LinkedIn
- WhatsApp academic and alumni groups
- Facebook communities centered around consumer behavior and marketing research

Participants were informed that the study was for academic research and participation was anonymous, with responses used strictly for research purposes.

3.8 Sample Demographics

A total of **300 valid responses** were collected. The sample was diverse and balanced across several demographic variables:

Demographic Variable	Categories	Percentage
Age	18–24, 25–34, 35–44, 45+	25% each
Gender	Male, Female, Non-binary	48%, 50%, 2%
Region	North, South, East, West	Balanced across zones
Education	UG, PG, PhD, Others	40%, 45%, 10%, 5%
E-commerce Frequency	Rarely, Monthly, Weekly	15%, 40%, 45%

This thorough and structured data collection provides a robust foundation for the subsequent analysis of the bandwagon effect on consumer decision-making.

4. Results

This section presents the results derived from the

survey experiment and qualitative interviews. The analysis confirms the presence of bandwagon effects among Indian e-commerce consumers and highlights how specific review attributes influence purchase decisions.

4.1 Quantitative Results

4.1.1 Descriptive Statistics

Out of the 300 respondents, 84% had purchased a product online in the past month. The average Likert score for likelihood of purchase ranged from 2.1 (Product B) to 4.6 (Product A), demonstrating strong influence of review quality and volume.

4.1.2 Reliability and Validity

All measurement constructs showed high internal reliability with Cronbach's alpha > 0.75. Factor analysis confirmed convergent validity (AVE > 0.50 for all constructs).

4.1.3 Structural Equation Modeling (SEM)

SEM was conducted using AMOS 26. The model fit was acceptable (CFI = 0.926, RMSEA = 0.052). Key path coefficients include:

• Review Rating → Bandwagon Perception: $\beta = 0.41$, $p < 0.001$

• Review Sentiment → Bandwagon Perception: $\beta = 0.37$, $p < 0.001$

• Bandwagon Perception → Purchase Intention: $\beta = 0.46$, $p < 0.001$

• Number of Reviews → Bandwagon Perception: $\beta = 0.14$, $p = 0.07$ (marginal)

4.1.4 Moderation Effects

• **Cultural Orientation (Collectivism)** amplified the relationship between Bandwagon Perception and Purchase Intention ($\beta = 0.23$, $p < 0.05$).

• **Platform Trust** enhanced the impact of Review Rating on Bandwagon Perception ($\beta = 0.29$, $p < 0.01$).

• **Offline Peer Influence** had a mixed moderating effect; in some cases, it diluted online review impact.

4.2 Qualitative Results

Twenty in-depth interviews revealed rich themes:

• **Trust in High-Volume Products:** Products with more than 500 reviews were perceived as "safer bets."

• **Authenticity Detection:** Consumers assessed authenticity through review length, grammar, and emotional tone.

• **Influence of Friends and Family:** Many respondents checked with peers before relying on reviews.

• **Over-saturation of Reviews:** Some users were skeptical when too many 5-star reviews appeared repetitive.

Sample Quotes:

• "I don't trust 5-star reviews if they look copy-pasted."

• "One or two critical reviews make me believe the rest are real."

• "My friend's advice trumps all online reviews."

4.3 Integration of Results

Both quantitative and qualitative findings reinforce the hypothesis that review sentiment and star rating significantly drive purchase intent. Number of reviews plays a weaker but still relevant role. Cultural norms and trust in the platform further shape the intensity of the bandwagon effect. Offline peer influence remains a competing source of trust, often overriding online cues when conflict arises.

5. Discussion and Implications

This study's findings contribute to a nuanced understanding of how bandwagon cues influence purchase intentions in Indian e-commerce environments. Both the quantitative and qualitative analyses affirm the hypothesis that consumers are significantly swayed by the quality and tone of product reviews, with star ratings and sentiment exerting a stronger influence than the sheer number of reviews.

The significant effect of Review Sentiment and Star Ratings on Bandwagon Perception aligns with prior literature in Western markets but highlights new cultural dimensions in the Indian context. The presence of collectivist cultural orientation as a moderating factor implies that Indian consumers often rely on consensus and community validation before forming individual opinions. This supports Hofstede's cultural theory and reaffirms that consumer behavior cannot be decontextualized from societal norms.

Moreover, the mixed impact of Offline Peer Influence is particularly insightful. While online reviews were considered useful, many participants deferred to friends, family, or colleagues, especially for

expensive or high-stakes purchases. This underscores the hybrid nature of decision-making in Indian markets, where traditional word-of-mouth still holds considerable power.

Trust in the platform also emerged as a critical determinant. When users trusted the platform's integrity—believing it moderated fake reviews and ensured authentic customer experiences—they were more likely to follow bandwagon cues. This finding is important for platform designers, marketers, and policy makers aiming to enhance credibility and consumer confidence.

The qualitative insights added further depth. Interviewees displayed heightened review literacy—detecting fake patterns, emotional manipulation, or lack of authenticity in overly polished 5-star reviews. These behaviors point to an increasingly discerning digital consumer base.

Collectively, the findings suggest that while bandwagon cues are powerful, their effectiveness depends on social, psychological, and contextual filters that marketers must carefully navigate.

Managerial Implications

• **Personalized Review Display:** Platforms can use algorithms to highlight reviews that resonate with users' demographic and cultural profiles (e.g., language, location), thus enhancing perceived authenticity.

• **Balanced Review Summarization:** Displaying a mix of positive and critical reviews boosts credibility. Over-polished review displays may raise suspicion.

• **Enhancing Platform Trust:** Ensuring transparency in the review system—such as verified purchases, AI-flagging of fake reviews, and allowing response to reviews—can strengthen consumer trust and encourage engagement with bandwagon cues.

• **Incorporating Peer Influence Mechanisms:** Integrating referral-based systems, social shopping features (e.g., "What your friends bought"), and community validation tools can enhance the natural peer influence dynamic observed in Indian consumer behavior.

Theoretical Contributions

• **Extension of Bandwagon Theory:** This study contextualizes the bandwagon effect within collectivist societies, adding to the limited non-Western literature on the subject.

• **Hybrid Trust Mechanisms:** The coexistence of online social proof and offline peer influence adds a new dimension to the trust formation process in digital commerce environments.

• **Platform-Centric Moderation:** By highlighting the role of trust in the platform as a moderator, this study calls for an expanded understanding of the socio-technical environment in which e-commerce decisions are made.

These implications not only advance theoretical frameworks but also offer actionable insights to practitioners seeking to design effective and culturally attuned consumer engagement strategies.

6. Limitations and Future Research Directions

While this study offers meaningful insights into the influence of bandwagon cues on consumer decision-making in Indian e-commerce, it is not without limitations.

6.1 Limitations

• **Sample Representation:** Although efforts were made to ensure demographic diversity, the sample primarily included urban, educated internet users. Rural and lower-literacy populations were underrepresented.

• **Product Categories:** The study focused on three specific product types—mobile phones, earphones, and T-shirts. Results may not generalize to high-involvement or service-oriented categories such as appliances, insurance, or online education.

• **Self-Reported Measures:** The survey relied on self-reported intentions rather than actual behavior, which may be subject to social desirability bias or hypothetical bias.

• **Controlled Environment:** The use of a Google Form, though practical, cannot fully replicate the complexity and engagement levels of actual e-commerce platforms.

6.2 Future Research Directions

• **Behavioral Tracking Studies:** Future work can incorporate behavioral data from actual purchase histories or clickstream analysis to validate findings.

• **Cross-Cultural Comparisons:** Comparative studies involving other emerging economies (e.g., Brazil, Indonesia, Nigeria) could highlight cultural nuances in bandwagon effects.

• **Longitudinal Studies:** Exploring how the effect of review metrics changes over time or post-purchase could add temporal depth to the findings.

• **Role of Influencers and Multimedia:** As consumers increasingly rely on video reviews and influencer opinions, future research should examine how these evolving review formats shape trust and decision-making.

• **AI and Fake Review Detection:** Further investigation is needed into how consumers respond to flagged or AI-detected fake reviews and whether this enhances or diminishes overall trust.

Addressing these limitations in future work will help strengthen the theoretical and practical understanding of social proof dynamics in digital consumer behavior.

7. Conclusion

This study set out to investigate the impact of bandwagon heuristics—such as the number of reviews, review sentiment, and star ratings—on consumer behavior in Indian e-commerce settings. The insights generated from both quantitative and qualitative data underscore the complex nature of consumer trust formation, shaped not only by visible online metrics but also by cultural expectations, peer influence, and the perceived credibility of platforms.

The research confirms that review sentiment and quality are the most significant determinants of a consumer's likelihood to follow the crowd. While the number of reviews plays a role, its impact is overshadowed by consumers' interpretation of tone and trustworthiness. This aligns with evolving global trends but adds culturally specific layers unique to India, such as the collectivist mindset and strong reliance on offline word-of-mouth, even in digital contexts.

One of the standout contributions of this research is the demonstration of hybrid trust pathways. Consumers often balance online cues with offline advice, suggesting that digital strategies should not be designed in isolation but rather integrated with social and cultural factors. Trust in the platform itself also emerged as a pivotal moderator, reinforcing the need for transparent, well-governed review systems.

Practically, this study offers e-commerce platforms valuable directions—emphasizing the importance of personalized review algorithms, mechanisms to detect and flag manipulative reviews, and tools to surface peer-based validation. Platforms that adopt these measures can foster more authentic engagement and enhance conversion rates.

From a theoretical perspective, the research extends the bandwagon effect theory into non-Western, collectivist consumer cultures and proposes a contextual trust framework that blends digital indicators with social dynamics. It challenges the assumption that all consumers react uniformly to social proof and introduces demographic and psychological factors into the discourse.

Looking forward, the study calls for future research that leverages behavioral data, explores platform design through UX experiments, and examines longitudinal responses to review manipulation. With artificial intelligence, influencer marketing, and short-form video content increasingly shaping e-commerce behavior, ongoing research must adapt to these rapidly shifting dynamics.

In sum, understanding how and why consumers "follow the herd" in online marketplaces is not merely a psychological curiosity—it is a foundational element in designing ethical, efficient, and inclusive digital commerce systems. The implications of this study are therefore both timely and enduring, with relevance for marketers, platform designers, scholars, and policymakers.

Research Scholar
Department of Commerce
University of Delhi, Delhi- 110007
Email: ***priyarani7399@gmail.com***
ORCID Id- 0009-0008-7292-0697

References:

• Hamburg, W. (2024). *Peer effects and e-commerce behavior during China's Double 11 festival*. Journal of Asian Marketing Studies, 11(2), 102–118.

• Knyazev, N. (2023). *Is the bandwagon effect just a bias in recommendation systems?* International Conference on Artificial Intelligence

and Society, 211–224.
- Myers, P., & Xiao, M. (2025). *Following the herd: The influence of the bandwagon heuristic on e-commerce shoppers*. Journal of Interactive Marketing, 68(1), 34–51.
- Wang, S. (2023). *Meta-analysis of bandwagon cues and perceived credibility: The role of culture and message source*. Communication Research, 50(4), 589–612.
- Xiao, M. (2024). *The impact of source credibility, bandwagon support, and message framing on environmental communication on Twitter*. Social Media & Society, 10(1), 1–14.
- Hofstede, G. (2001). *Culture's consequences: Comparing values, behaviors, institutions and organizations across nations* (2nd ed.). Sage Publications.
- Cialdini, R. B. (2009). *Influence: Science and practice* (5th ed.). Pearson Education.
- Chevalier, J. A., & Mayzlin, D. (2006). *The effect of word of mouth on sales: Online book reviews*. Journal of Marketing Research, 43(3), 345–354.
- Forman, C., Ghose, A., & Wiesenfeld, B. (2008). *Examining the relationship between reviews and product sales: The role of reviewer identity disclosure*. Information Systems Research, 19(3), 291–313.
- Sun, M. (2012). *How does the variance of product ratings matter?* Management Science, 58(4), 696–707.
- Leibenstein, H. (1950). *Bandwagon, snob, and Veblen effects in the theory of consumers' demand*. The Quarterly Journal of Economics, 64(2), 183–207.
- Li, X., & Hitt, L. M. (2008). *Self-selection and information role of online product reviews*. Information Systems Research, 19(4), 456–474.
Sen, S., & Lerman, D. (2007). *Why are you telling me this? An examination into negative consumer reviews on the web*. Journal of Interactive Marketing, 21(4), 76–94.
- Triandis, H. C. (1995). *Individualism and collectivism*. Westview Press.
- Zhu, F., & Zhang, X. M. (2010). *Impact of online consumer reviews on sales: The moderating role of product and consumer characteristics*. Journal of Marketing, 74(2), 133–148.

शोध-पत्र

भोटिया जनजाति में शैक्षिक गतिशीलता

नरेश सिंह ग्वाल*

प्रस्तावना :

शिक्षा की अवधारणा अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत है जिसके द्वारा मनुष्य की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास होता है। व्यक्ति में सामाजिक-रचनात्मक, सामाजिक-सृजनात्मक, सामाजिक गुण विकसित होते हैं तथा नये ज्ञान, कुशलताओं, मूल्यों एवं आदर्शों का आगमन जीवन में होता है। शिक्षा सशक्तिकरण का प्रमुख आधार है, जिसके माध्यम से महिलाएँ अपनी सशक्तता को प्रमाणित कर सकती हैं। वर्तमान में महिलाओं हेतु राजनीतिक सहभागिता के लिए शिक्षा एक महत्वपूर्ण चर है, जब तक हम नारी को शिक्षित नहीं करते तब तक समाज एवं राष्ट्र को शिक्षित नहीं कर सकते (बिहारी, 2009) यह कथन स्वामी विवेकानन्द ने नारी के लिए शिक्षा की अनिवार्यता के सम्बन्ध में लिखा था, चाहें वह नारी किसी भी जाति, क्षेत्र या धर्म से सम्बन्ध रखती हो।

शिक्षा राष्ट्र की मेरूदण्ड होती है। यह भूतकाल की उपलब्धियों एवं वर्तमान परिस्थितियों का सन्धि स्थल ही नहीं, एक ऐसा आलोक भी है, जिसमें भविष्य की रूपरेखा तैयार होती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है और सरकार भी महिला शिक्षा के प्रति सजग दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि सदियों से हाशिये पर खड़े हुए स्त्री और दलित ये दो वर्ग अब चर्चा के केन्द्र में आने लगे हैं। आजादी के बाद हमारी सरकारों ने शिक्षा के नाम पर और इसके साथ इतने अधिक प्रयोग किये हैं कि कहना पड़ेगा कि 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की।' 70 वर्षों और अरबों रूपये खर्च करने के बाद भी हम केवल 70 प्रतिशत लोगों को साक्षर कर पाये हैं।

अनुसूचित जनजातियों के बीच शिक्षा को बढ़ावा देने की दिशा में आजादी के बाद भारत में राज्यों द्वारा नियोजित नीति के द्वारा कुछ मात्रा तक सफलता प्राप्त की है। हालांकि, सार्वभौमिक और न्यायसंगत प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य का फिर भी भ्रांतिपूर्ण रहना जारी है। यह अध्याय अनुसूचित जनजातियों के वर्तमान साक्षरता और शैक्षिक परिदृश्य को पेश करने का प्रयास करता है। आधुनिक समाजों में शैक्षिक गतिशीलता सामाजिक बदलाव का मुख्य निर्धारक बनती जा रही है। शिक्षा से ही व्यावसायिक उपलब्धियों में वृद्धि की जा सकती है।

शिक्षा एक सामाजिक औजार है जो सामाजिक-सांस्कृतिक बदलाव लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह एक ऐसी महत्वपूर्ण संस्था है जिसमें सुयोग्य व्यक्ति, चाहे उसके संसाधन कुछ भी हो सामाजिक पदक्रम में एक जाति से दूसरी जाति, एक वर्ग से दूसरे वर्ग और एक पद से दूसरे पद तक ऊपर उठ सकता है। आज जब दुनिया में सामाजिक-आर्थिक विकास ज्ञान पर और अधिक केन्द्रित होता जा रहा है। शिक्षा की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो गयी है। शिक्षा सामाजिक विकास का महत्वपूर्ण कारक है।

आधुनिक समाज शिक्षा को एक अहम् सामाजिक संसाधन और समता के लक्ष्य को पाने का साधन मानता है। शिक्षा को विभिन्न प्रकार से किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति उपर उठाने का साधन माना जाता है। इसे उस ज्ञान, कौशल, जीवन मूल्यों और दृष्टिकोण को पाने का उपाय समझा जाता है, जो किसी व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक वातावरण में उसके सचमुच मानवीय जीवन जीने के लिए आवश्यक है। दूसरे शब्दों में शिक्षा को एक वांछित कोटि के जीवन हेतु एक बुनियादी इंसानी जरूरत समझा जाता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020) के अनुसार मनुष्य एक बेशकीमती संपदा है, अमूल्य संसाधन है। जरूरत इस बात की है कि उसकी परवरिश गतिशील एवं संवेदनशील हो और

सावधानी से की जाए। शिक्षा की भूमिका पर चर्चा करते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति में ही निम्न बातों को स्पष्ट किया गया है। हमारे राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में सबके लिए शिक्षा हमारे भौतिक और आध्यात्मिक विकास की बुनियादी आवश्यकता है। शिक्षा सुसंस्कृत बनाने का माध्यम है। यह हमारी संवेदनशीलता और दृष्टि को प्रखर करती है, जिससे राष्ट्रीय एकता पनपती है। वैज्ञानिक तरीके के अमल की सभावना बढ़ती है और चिन्तन से स्वतंत्रता आती है। शिक्षा के द्वारा ही आर्थिक व्यवस्था के विभिन्न स्तरों के लिए जरूरत के अनुसार जनशक्ति का विकास होता है। कुल मिलाकर यह कहना होगा कि शिक्षा वर्तमान तथा भविष्य के निर्माण का अनुपम साधन है।

मानव पूँजी के सिद्धान्त के अनुसार शिक्षा उपभोग वस्तु नहीं प्रतिफल देने वाली निवेश है। किसी व्यवसाय या ऊँचे व्यवसाय में लगने का मतलब विभिन्न स्तरों वाली सामाजिक स्थिति पाना है। इस तरह शिक्षा सामाजिक गतिशीलता और उस हद तक समता की स्थापना का साधन बन जाती है। शैक्षिक अवसरों की समानता के सन्दर्भ में शिक्षा से समताकारी बनने की आशा की जाती है। शैक्षिक अवसरों की समानता का मतलब है कि व्यक्तियों को शिक्षा एक समान सुलभ है।

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन हेतु उत्प्रेरक की तरह काम करती है इस तथ्य की पुष्टि भारत के विभिन्न राज्यों में विकास के अन्तर से होती है। उदाहरण के लिए केरल का ऐतिहासिक अनुभव सामाजिक परिवर्तन तथा शिक्षा में प्रगति के द्विमुखी सम्बन्ध को सामने लाता है। शिक्षा में प्रसार ने परम्परागत जातिगत वर्गीय तथा लैंगिक असमानताओं को कम करने में मदद की है, तो वहीं दूसरी ओर इन असमानताओं के दूर होने से शिक्षा को बढ़ावा मिला है।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अंग्रेजों ने शिक्षा पर बल दिया, साथ ही यह मानना पड़ेगा अंग्रेजी शिक्षा प्रगतिशील थी क्योंकि प्रथमत: यह धर्म निरपेक्ष और उदार थी तथा सब जातियों व धर्मों के लिए समान थी और द्वितीय यह शिक्षा तार्किक, वैज्ञानिक और प्रजातांत्रिक विचारधाराओं से ओत-प्रोत थी, जिसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय रूढ़िवादी विचारधाओं में परिवर्तन हुआ सभी जातियों व धर्मों के लोग शिक्षित होने लगे वर्तमान में तो समाज के प्रत्येक क्षेत्र में जनजाति समाज भी कंधे से कंधा मिलाकर चल रहा है।

शोध प्रारूप

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक शोध प्ररचना पर केन्द्रित है। इसमें जनपद पिथौरागढ़ के धारचूला ब्लॉक के दारमा घाटी में निवासित 303 जनजाति परिवार मुखियाओं से शिक्षा की गतिशीलता की स्थिति का अध्ययन किया गया।

स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची एवं वैयक्तिक संपर्क के आधार पर प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों हेतु उपलब्ध साहित्य, सम्बंधित आलेख एवं शोध ग्रंथों का प्रयोग किया गया।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भोटिया जनजाति में शिक्षा के सभी आयामों पर मूल्यांकन करना है। शैक्षिक गतिशीलता द्वारा हुए परिवर्तनों का संज्ञान लिया जाना हैं। जिसे निम्न सरणियों द्वारा स्पष्ट किया गया है -

तालिका क्रमांक-1

शिक्षा के प्रति जागरूकता होने सम्बन्धी प्रत्युत्तर

क्र.सं.	प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
1	कम	124	40.78
2	थोड़ा बहुत	129	46.90
3	बहुत अधिक	50	12.32
4	योग	303	100

उपर्युक्त सारणी के विश्लेषण से यह तथ्य परिलक्षित होता है 46.90 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि भोटिया जनजाति के लोगों में शिक्षा के प्रति जागरूकता थोड़ी बहुत बढ़ी है। शिक्षा मानव जीवन को सशक्त करने वाला एक आधारभूत ईकाई है। शिक्षा एक समाज को सभ्य समाज की ओर, आगे ले चलती है। इसलिये भोटिया जनजाति समाज में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है।

तालिका क्रमांक-2

उत्तरदाताओं के शिक्षा प्राप्ति सम्बन्धी प्रत्युत्तर

क्र.सं.	प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
1	स्व-जनपद से	201	66.29
2	अन्य जनपद से	72	23.67
3	अन्य राज्य से	30	10.04
4	योग	303	100

उपर्युक्त सारणी शिक्षा प्राप्त की है, से संबंधित है। सारणी के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि 66.29 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपनी शिक्षा स्व-जनपद से की है। अत: उत्तरदाताओं का जनपदीय क्षेत्र से शिक्षा प्राप्त करना उनके लिए सुगम व्यवस्था के कारण हुआ है।

तालिका क्रमांक-3
बच्चों की छात्रवृत्ति सम्बन्धी प्रत्युत्तर

क्र.सं.	प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हाँ	234	77.34
2	नहीं	69	22.66
3	योग	303	100

उपरोक्त प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 77.34% उत्तरदाताओं के बच्चों के पढ़ाई के लिए छात्रवृत्ति दी जाती है और शिक्षा ग्रहण करने वालों बच्चों को छात्रवृत्ति के द्वारा शिक्षा सम्बन्धी सामग्री हेतु प्रोत्साहन दिया जाता है ताकि बेहतर शिक्षा प्राप्त कर सके यह शैक्षिक गतिशीलता से सम्भव हो पाया है।

तालिका क्रमांक-4
बच्चों की शिक्षा प्राप्ति सम्बन्धी प्रत्युत्तर

क्र.सं.	प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
1	दसवीं	182	60.00
2	बारहवीं	61	20.13
3	स्नातक	45	14.85
4	स्नातकोत्तर	12	03.96
5	अन्य	3	01.00
6	योग	303	100

उपर्युक्त प्राप्त तथ्यों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 60.00% उत्तरदाताओं के बच्चो की शिक्षा दसवीं तक हुई है जबकि 20.13, 14.85, 03.96, 01.00 % उत्तरदाताओं ने क्रमशः बारहवीं, स्नातक, स्नातकोत्तर तथा अन्य स्तर तक शिक्षा हुई है, सम्बन्धी विचार व्यक्त किये हैं। अतः स्पष्ट है कि इस जनजाति के बच्चे धीरे-धीरे उच्च शिक्षा की ओर बढ़ रहे हैं परन्तु अधिकांशतया निजी कारणों से आगे की पढ़ाई नहीं कर पाते हैं। भोटिया जनजाति में शिक्षा का प्रचार-प्रसार कितना हुआ है। वहाँ के बच्चों की शैक्षिक स्थिति कैसी है। सम्बन्धी तथ्य शैक्षिक गतिशीलता द्वारा ही दिखाई पड़ता है।

तालिका क्रमांक-5
शिक्षित होना सम्बन्धी प्रत्युत्तर

क्र.सं.	प्रत्युत्तर का स्वरूप	आवृत्ति	प्रतिशत
1	सम्मान के लिए	70	23.10
2	आत्मनिर्भरता के लिए	108	35.34
3	ज्ञान में वृद्धि के लिए	101	33.33
4	अन्य	24	07.92
5	योग	303	100

उपर्युक्त सारणी के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि 35.34% उत्तरदाता आत्मनिर्भरता के लिए शिक्षित होना आवश्यक समझते है तथा 33.33% उत्तरदाता ज्ञान में वृद्धि के लिए, देखा गया है क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति विभिन्न कार्यों को कर सकता है। शिक्षित होना, व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ सम्पूर्ण सामाजीकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि समाज में शैक्षिक गतिशीलता के कारण विभिन्न परिवर्तन दृष्टिगोचर हुये हैं। शिक्षा में जागरूकता आने से जनजाति लोग शिक्षा प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ कर जनपदीय क्षेत्र में शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। शिक्षा ग्रहण करने वालों बच्चों को छात्रवृत्ति के द्वारा शिक्षा सम्बन्धी सामग्री हेतु प्रोत्साहन मिल रहा है ताकि बेहतर शिक्षा प्राप्त कर सके। यह सब शैक्षिक गतिशीलता से सम्भव हो पाया है। यह भी स्पष्ट है कि इस जनजाति के बच्चे धीरे-धीरे उच्च शिक्षा की ओर बढ़ रहे हैं अतः शिक्षित व्यक्ति होना, व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ सम्पूर्ण सामाजीकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

★शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग,
पं. बद्री दत्त पांडे परिसर (बागेश्वर)
ईमेल : nsgwal@gmail.com
★★ डॉ. अनीता बिष्ट
शोध निर्देशिका, समाजशास्त्र विभाग,
राजकीय महाविद्यालय दोषापानी (नैनीताल)

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. उपाध्याय, विजय शंकर एवं शर्मा, विजय प्रकाश (2002), भारत की जनजातीय संस्कृति, सप्तम संस्करण, हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृ.सं.- 50-51।
2. विद्यार्थी, एल.पी. और राज, बी.के. (1977), भारत में जनजातीय संस्कृति, पृ.सं.-29 ।
3. उपाध्याय, विजय शंकर एवं शर्मा, विजय प्रकाश (1993), भारत की जनजातीय संस्कृति, द्वितीय संस्करण, हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृ.सं.- 88-89।
4. आहूजा, राम एवं मुकेश आहूजा, (2013), 'समाजशास्त्र : विवेचना एवं परिप्रेक्ष्य', रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृ.सं.-247।
5. वही, पृ.सं.- 248-49

Research Paper

Entrepreneurial Ecosystem in the Indian Mutual Fund Industry

Priya Rani*

Abstract

This paper aims to illustrate the entrepreneurial ecosystem in the context of Indian Mutual Fund industries. The objective of the paper is to present a descriptive analysis of Indian entrepreneurs in mutual fund industries. Also, it studies the performance of the startup ecosystem in India; evaluates the initiative and regulatory framework to support entrepreneurs, the role of fintech startups, and challenges faced by entrepreneurs in the mutual fund industry. To meet the objective an intensive literature survey has been done based on articles published in quality journals, websites, reports published, and other sources. This study is fully based on descriptive data based on the author's selective judgments. After reviewing various documents and monitoring existing start-up management practices, researchers show that there is success in the mutual fund industries; many new entrepreneurs and fintech companies entering the mutual fund space; also, India has a sizable market and robust startup culture. Despite that, it elaborates on various challenges faced by entrepreneurs in the mutual fund space and provides some recommendations on it.

Keywords: *Entrepreneurial Ecosystem; Mutual Fund; Entrepreneur; Startups; Fintech Companies.*

1. Introduction

Ecosystem coveys the meaning of interconnected and interdependence of a living organism with the surroundings; a healthy ecosystem is necessary for the development and flourishing of an organism. A similar meaning is echoed in the context of the entrepreneur ecosystem which is dependent on a complex interaction of social, political, economic, and cultural aspects that influence its growth and development in a particular area.

In the above context, Shwetzer et al. (2019) have defined an entrepreneurial ecosystem as a complex and interconnected network of entrepreneurial actors, organizations, institutions, and systems that collaborate to promote entrepreneurship in a certain area. The interactions between several components- such as social norms, economic situations, governmental regulations, cultural values, and more, define the entrepreneurial ecosystem. Thus, the entrepreneurial ecosystem provides not just a comprehensive, but a dynamic and systemic platform for entrepreneurs to launch and expand their firms and businesses. Therefore, for the purpose of fostering innovation and promoting economic development; it is fundamental to comprehend and support these ecosystems. In addition, other crucial aspects of an entrepreneurial ecosystem are the availability of start-ups and finance, big companies, institutions, and service providers (Mason & Brown, 2013).

As in any other business start-up; a similar entrepreneurial ecosystem is needed crucially in the mutual fund industry too, where the fund is pooled from multiple investors and invested in diversified instruments like stocks, bonds, and other instruments

(AMFI). In the present context, the mutual fund industry has emerged as a leading option for aspiring entrepreneurs that provide potential returns on investment over time. Investing in mutual funds can help to avoid taking out loans from the market and keep full control over the company operations, if entrepreneurs want to launch a freelancing or small business (Aditya Birla Capital, 2019).

In the context of India too, entrepreneurial ecosystems are essential for the success of newly launched businesses in the mutual funds sector. The participation and contributions of each stakeholder are crucial to fostering an environment. In India, the mutual fund industry is well known for its intense competition and regulations, which are predominantly driven by large and established players. However, the wave of new and innovative fund houses disrupted this market through their technology, innovation, and digitization. These new entrants bring new concepts and strategies to invest in the mutual fund industry. In the recent time, the author has found that many new Assets Management companies are entering the market, such as Bajaj FinServ Mutual Funds, Shriram Mutual Fund, Helios Mutual Fund, Zerodha Assets Management Ltd., White Oak Capital Mutual Fund, and Grow Mutual Fund.

The remainder of this paper has been organized in the subsequent sections as follows: Section 2 presents the literature review; Section 3 provides the objective of the study; Section 4 provides a description of the methodology; Section 5 provides a comprehensive overview of the entrepreneurial ecosystem of India; Section 6 describes the dimension or elements; Section 7 provides prestigious entrepreneurs; Section 8 mentions roadblocks and at last in section 9 provides the conclusion and recommendations of this study.

2. Literature Review

There are some of the definitions of entrepreneurship ecosystems that have highlighted interconnectedness and interdependence among the group of persons and organizations, such as entrepreneurs, organizational stakeholders, and other individuals, that may either encourage or hinder the growth of entrepreneurs in specific regions. Some of the definitions given by the scholars are shown in the following table:

Table: 1

Authors	Definition
Cohen (2006)	"Sustainable Entrepreneurial Ecosystems are defined as an interconnected group of actors in a local geographic community committed to sustainable development through the support of facilitation of new sustainable ventures."
Mason & Brown (2014)	"Entrepreneurial Ecosystems are a set of interconnected entrepreneurial actors (both potential and existing), entrepreneurial organizations, institutions, and entrepreneurial processes that formally and informally coalesce to connect, mediate, and govern the performance within the local entrepreneurial environment."
Ács et al. (2014)	"Entrepreneurship is the dynamic, institutionally embedded interaction between entrepreneurial attitudes, ability, and aspirations, by individuals, which drives the allocation of resources through the creation and operation of new ventures."
Mack & Mayer (2015)	"Entrepreneurial ecosystems consist of interacting components, which foster new firm formation and associated regional entrepreneurial activities."
Audretsch & Belitski (2017)	"Entrepreneurial ecosystems as institutional and organizational actors, as well as other systemic factors that interact and influence the identification and

	commercialization of entrepreneurial opportunities."
Spigel (2017)	"Entrepreneurial ecosystems are combinations of social, political, economic, and cultural elements within a region that support the development and growth of innovative startups and encourage nascent entrepreneurs and other actors to take the risks of starting, funding, and otherwise assisting high-risk ventures."
Van Rijnsoever, (2020)	"An entrepreneurial ecosystem is a set of actors that interact and exchange resources in a network under an institutional regime and an infrastructure."

Isenberg (2010b) stated that the entrepreneurial ecosystem as a network of interconnected factors that promote entrepreneurial ecosystem as a network of interconnected factors that promote entrepreneurial development including conducive culture, availability of finance, leadership, capital markets, human skills, and a wide range of infrastructure and institutional supports. These factors contain various components that interact in extremely complicated and idiosyncratic ways (Mason & Brown, 2014). However, the World Economic Forum (2014) report mentions the eight pillars of an entrepreneurial ecosystem are: - accessible markets, human capital, funding and finance, Governments and regulatory structure, support systems, education and training, major universities as catalysts and culture support (Figure1). The reports reveal that accessible markets, human workforce, and funding & funding are considered by entrepreneurs to be the three ecosystem pillars most crucial to the growth of their business (World Economic Forum, 2014)

Entrepreneurs have played a significant role in advancing society and the economy. India promoted digital innovations for startups, and entrepreneurship has increased tremendously. Entrepreneurs frequently discover novel technology, new goods and services, and new market opportunities (Audretsch, 2002). Over the last 20 years, the startup ecosystem in India has expanded rapidly. India now becomes an epicenter for entrepreneurs in a variety of industries, including technology, e-commerce, healthcare, and more (Tyagi, 2022). Agarwal (2023) stated that start-ups are centers for cutting-edge technologies, they generate more employment opportunities that lead to a stronger economy, and have a direct influence on the development of the places where startups are situated.

The government's support, the availability of financing, the expansion of the talent pool, and the supportive culture for entrepreneurs are the keystones for the foundation of an Indian startup ecosystem. Out of all of them, the most important element, the government's support, is the essential factor for influencing the rise of startups in India. The government's emphasis on fostering entrepreneurship has led to the implementation of several programs and initiatives, such as the Startup India campaign, which was started in 2016 (Gupta, 2023)

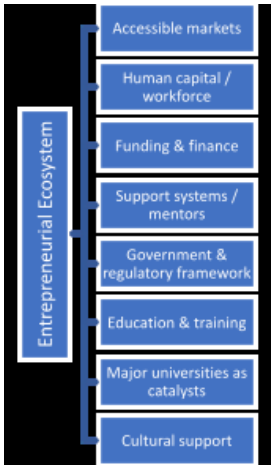

Figure 1 : Major Pillars of the Entrepreneurial Ecosystem
Source: World Economic Forum (2014)

3. Objectives

1. to study the performance of the startup ecosystem in India.

2. to evaluate the initiative and regulatory framework to support entrepreneurs in the mutual fund industry.

3. to study the role of fintech startups in the mutual

fund industry.

4. to study the challenges faced by entrepreneurs in the mutual fund industry.

4. Methodology

This study is based on the analysis of secondary data that was collected from books, journals, reports, websites, and other sources and compiled as per the need of the study. After reviewing various documents and monitoring existing start-up management practices, researchers critically elaborate on various challenges faced by entrepreneurs in the mutual fund space and provide some recommendations on it. This study is fully based on descriptive data based on the author's selective judgments.

5. Scenario of the Startup and Entrepreneurial Ecosystem in India

Over the last 20 years, the startup ecosystem in India has expanded rapidly. India has now become an epicenter for entrepreneurs in a variety of industries, including technology, e-commerce, healthcare, and more (Tyagi, 2022). Also, the researcher critically analyzed that the number of companies registered or incorporated grew from 9481 in 1981 to almost 90000 in 2010 as shown in **Figure. 2**

Currently, India has emerged as a hub of the "Start-up" ecosystem in the world. As per the recent report, India has ranked third with almost 99000 start-ups spread across 670 distinct industries and more than 100 unicorn companies (Invest India, n.d.). India has become the third-largest and fastest-growing entrepreneurial ecosystem in the world (World Economic Forum 2014), since 2016, India's startup ecosystem has expanded, and enterprises are springing up everywhere as shown in Table 2. The Indian government initiative Startup India launched in 2016, fuelling entrepreneurs to expand their creativity and innovation; further, in 2018, India set a milestone for the global startup ecosystem with the addition of 8 unicorns and more than 400 cross-border startups (NASSCOM, 2018).

In addition to the above, according to the Global Entrepreneurship Monitor (GEM) National Entrepreneurship Context Index (NECI) report, India has been ranked in the fourth position among the 51 countries for the quality of its entrepreneurship ecosystem (Shukla et al., 2023).

According to Startup India (2022) , the top five states with the most recognized startups are: Maharashtra, Karnataka, Delhi, Uttar Pradesh, and Gujarat. In the Global Startup Ecosystem (2023) published by research firm Startup Genome, the Bengaluru startup ecosystem ranked 20th spot on the global list.

Table 2. Number of Government recognized Startups from Financial Year 2016 to 2022

Year	2016	2017	2018	2019	2020	2021	2022
Number of startups	471	5233	8635	11279	14498	20046	26542

Source: Compiled by author

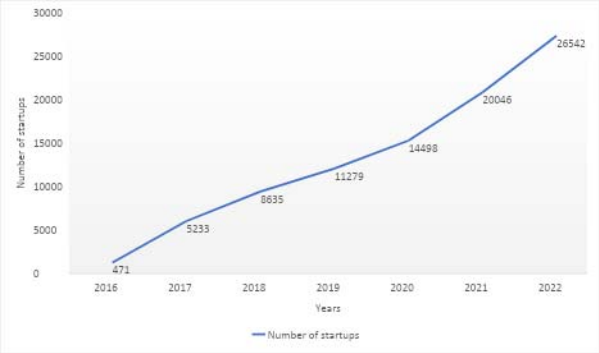

Figure 1. Number of Startups recognized by the Government from 2016-2022
Source: Compiled by author

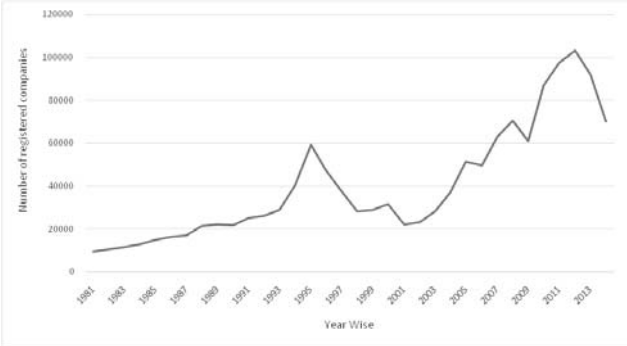

***Figure 2**. Number of registered companies in year wise.*
Source: Compiled by author from MCA Database[1]

6. Elements of Entrepreneurial Ecosystem in the Mutual Fund Industry

a) New Entrants in the Mutual Fund Industry

According to the SEBI data, there are several companies such as Zerodha Broking, PhonePe,

Helios Capital Management, Emkay Global Financial Services, Angel One Alchemy Capital Management, Capitalmind (Wize Markets Analytics), and Bajaj Finserv have submitted applications to establish their mutual fund companies. Additionally, in recent times, Navi Mutual Fund, Samco Mutual Fund, NJ Mutual Fund, and WhiteOak Capital Mutual Fund had launched their mutual fund schemes (Bazaz, 2022; Iyengar, 2022).

Here are some entrants in the mutual fund industry:

Zerodha Asset Management Ltd.

Zerodha Asset Management Ltd., India's newest fund house, introduced mutual fund schemes in collaboration (partnership) with fintech platform SmallCase. In 2021, SEBI gave final approval for Zerodha brokerage firm to set up an AMC. Nithin Kamath, founder and CEO of Zerodha Brokerage Firm appointed Vishal Jain as the CEO.

Helios Capital

In September 2022, SEBI granted approval to Helios Capital to float a mutual fund business. Samir Arora, the main founder of the company. Helios Capital Management Pte Ltd, an asset management company, was incorporated in Singapore in 2005. In February 2021, it submitted an application to SEBI for a license to operate a mutual fund.

Bajaj FinServ

Bajaj FinServ, a prominent player in the Indian Financial Services firm (non-banking financial services), started its asset management operation in India. In 2023, SEBI gave final approval to commence its mutual fund business.

Old Bridge Capital Management Pvt. Ltd.

Old Bridge Capital Management (OBCM), a portfolio management services firm, was founded by Kenneth Andrade in December 2015. In September 2023, it received the final nod from SEBI to begin its mutual fund operations. Its asset management business has been named Old Bridge Mutual Fund.

In 2022, **Samco Securities** and **White Oak Capital** launched their mutual businesses. However, there are some companies that are waiting for SEBI approval to enter the mutual fund space. Some of them are- Unifi Capital Private Ltd., Abira Securities Ltd., Alpha Alternative Fund Advisors LLP, and Wizemarkets Analytics Private Ltd. (Bazaz, 2022)

b) Fintech Startups benefitting the Mutual fund investment

Fintechs can play a part in mutual funds, but ideally just in the areas of distribution, selling, and, to a lesser extent, the level of financial advisory. There are opportunities for the digital franchise to attract and influence long-term investment objectives. The real issue in mutual funds is the quality of reach, particularly among retail customers. Recently, the Securities and Exchange of India made relation rules to allow start-ups in the fintech industry and associated companies to operate mutual funds. Fintech companies, including Paytm and Phone Pe, have been aggressively marketing financial products like gold bonds, digital gold, and mutual funds to their captive digital client base. It will enable them to leverage their digital franchise and grow their consumer base. Some of the fintech companies in India that offer mutual fund products on their platform: Zerodha, Paytm Money, Groww and Kuvera.

c) Regulatory Support which facilitates Entrepreneur to enter into Mutual Fund Space

In order to promote entrepreneurship in the mutual fund sector, regulatory organizations like SEBI play a crucial role in fostering and promoting entrepreneurship in the mutual fund industry. SEBI has implemented various rules and procedures to increase transparency, safeguard investors, and foster innovation.

Recently, the **Securities and Exchange Board of India (SEBI)** updated the norms governing the mutual fund industry. The SEBI has eased the norms for fintech startups to enter into the mutual fund industry. Sponsors who don't meet the profitability requirements at the time of application will also be allowed to sponsor a mutual fund. Thus, this relaxation would create an ecosystem for entrepreneurs to enter into the mutual fund industry.

Presently, there are some top fintech companies in India, that act as distribution or intermediaries for mutual fund schemes. Through the fintech platform, investors invest in mutual funds, due to the fully technological platform, better customer experience, and low or zero charges (Palepu, 2020).

SEBI provided green signals to Zerodha, which is India's biggest brokerage company, to set up an assets management company. This approval enables Zerodha to sell its Mutual Funds to both existing customers and non-customers. It had given final approval to Bajaj FinServ, to launch its mutual fund as Bajaj FinServ Mutual Fund. Additionally, other

entities like Old Bridge Capital Management (2021) and Helios Capital Management (2022) get final registration approval from SEBI.

d) Initiatives to promote Entrepreneur in AMCs

The Motilal Oswal Group launched MOSE, the '**Motilal Oswal School of Entrepreneurship'** which was founded with the vision to create successful entrepreneurs. It is an effective initiative for current and aspiring entrepreneurs in the financial intermediation sector.

'Employee to Entrepreneur' program of Motilal Oswal, which encourages employees to become entrepreneurs.

ExpertMFD is a pan-Indian collaborative program that aims to develop financial entrepreneurs for the mutual fund industry. In India, the mutual fund industry has seen tremendous growth, making it a profitable field for entrepreneurs to engage with. Prominent Mutual Fund Companies such as Aditya Birla Sun Life Mutual Fund, AXIS Mutual Fund, ICICI Prudential Mutual Fund, L&T Mutual Fund, Nippon India Mutual Fund, SBI Mutual Fund, Sundaram Mutual Fund, HDFC Mutual Fund as well as important organization like NSE and CIEl make a collaborative approach to support and develop new entrants in this industry.

Entrepreneur First is a UK-based early-stage investing company that assists entrepreneurs in establishing startups from scratch. It was formed in 2011 by Matt Clifford and Alice Bentinck. Recently, it increased the initial investment level from $75000 to $100000 for each Indian startup. In March 2023, it unveiled its first '**Graduate Program**' in India, targeting recent graduate students in India. Its main focus is to encourage young entrepreneurs among the young Indians to start their own businesses by supporting them by providing them with the necessary resources, such as funding, mentorship, and networking until it becomes an early-stage company. It will intensify its efforts to influence the nation.

7. Some Entrepreneurs in Assets Management Companies

1. Anurag Garg, CEO and Founder of Nivesh, **a** mutual fund's investment platform that was founded in 2016. This platform was designed to help the marginal investors from Tier 2 and Tier 3 cities who had little or no access to the public financial market. It focuses primarily on the highly potential markets in India's Tier 2 and 3 cities. Currently, this fintech platform (startup) offers various investment products like Mutual funds, Corporate fixed deposits, P2P loans, and bonds. In the near future, it intends to expand its product to include insurance and digital gold. It has reached its milestone and currently manages an AUM of over INR 100 crore.

2. Manish Kothari, Founder of ZFunds, **a** Mutual fund distribution platform, is a distribution entrepreneur and a marathon runner. In 2019, Manish Kothari launched ZFunds. Previously, he worked for Paisabazaar, which distributes mutual funds under the direct plan. At that time, he came to understand that many people, particularly from small towns and villages, had enough money to invest but all they needed was support from someone whom they could trust with their money. However, the majority of people require the assistance of distributors in order to invest in mutual funds and assist them in overcoming their behavioural biases. Recently, they announced the launch of a Rs. 100 daily Mutual fund SIP that is specifically designed for daily wage earners and small business owners, which will enable them to begin their investment from their daily income. Thus, the Fintech startup ZFunds is bringing Mutual funds to small towns and rural India.

3. Nithin Kamath, Founder and CEO of Zerodha, India's largest stock brokerage company: He is an entrepreneur, and works as a stockbroker and journalist for the Financial Express. For his innovative work in discount broking, Nithin has credibility in the financial sector, which contributed to Zerodha's success. Zerodha has gained numerous achievements since its founding in 2010, The company claims to be a unicorn in June 2020, without even seeking investment from any investors and solely depending on bootstrapping.

4. Raamdeo Agrawal, Chairman and Co-founder of Motilal Oswal Financial Service Limited-He began his career as a sub-broker in 1987 and eventually became a stockbroker while also engaging in stock market investment. Motilal Oswal Finance Service Ltd. (MOFSL), a brokerage company, was established in 1987 by Motilal Oswal and Raamdeo Agrawal. The company began operating in investment banking in 2005. It introduced a private equity fund in 2006. In January 2010, MOFSL founded the Motilal Oswal Asset Management Company (MOAMC), a mutual fund company. Thus, MOFSL began its journey as a brokerage firm to its

diversification into a number of financial service sectors, including private equity, investment banking, mutual funds, and housing finance. This expansion provides its clients with a wide range of financial services. His dedication and determination to make money and achieve financial independence, even with limited resources, were the driving forces that pushed him to become an entrepreneur.

5. Radhika Gupta, MD and CEO of Edelweiss Mutual Fund - At the age of 25, she returned to India and founded Forefront Capital, one of the nation's first AIFs (Alternative Investment Fund). Her efforts to launch Forefront Capital in India serve as a testament to the difficulties and educational opportunities that come with becoming an entrepreneur, especially in a diverse and complex market like India.

6. Sachin Bansal, Co-founder of NAVI mutual fund, is regarded as the leader of India's startup ecosystem, which took shape after Flipkart's success. He is one of India's most well-known startup entrepreneurs, who founded NAVI Technologies just 6 months after his exit from Flipkart. He acquired Essel Mutual Fund from Subhash Chandra-owned Essel Group and renamed it to NAVI Mutual Fund. NAVI MF has launched the cheapest fund with the lowest Total Expense Ratio. Some of the funds like the Nifty Midcap 150 Index Fund, and the Nifty Bank Index Fund.

7. Sandeep Tandon, Founder and CEO of Quant Group- has over 27 years of extensive experience in the capital markets. He began his career in the field of money management as a trainee with GIC mutual fund in FY 1992-1993. Later he joined IDBI Asset Management.

8. Vivek Reddy, promoter of India's first private sector mutual fund, served as the CEO of the Kothari Pioneer Mutual fund, India's first private sector mutual fund. In July 1993, Kothari Pioneer Mutual Fund, a joint venture between the Kothari Group of Chennai and Pioneer Mutual Fund of the US, received a license to conduct business in India. At that time, Vivek Reddy was the founder and CEO of Kothari Pioneer. Reddy desired to do things differently. Previously fund houses disclosed net assets value (NAV) each month. But at that time Kothari Pioneer was the only fund which disclosed the NAV daily.

8. Roadblocks for India's entrepreneurs to set up their own mutual fund company

Lack of Capital

One of the major roadblocks faced by Indian entrepreneurs is a lack of capital. Entrepreneurs may face significant challenges due to a lack of finance, which can have a significant impact on the beginning, performance, and growth of a business. Entrepreneurs may be accessible to numerous sources of funding, including family members, friends, loans, grants, venture capitalists, angel investors, crowdfunding, etc.

According to the "National Institute for Applied Economic Research", India's middle class, which comprises around 78 million people, only makes INR 250000 annually (India's Missing Middle Class, 2018). In a survey conducted on Venture Capitalist, 65% of the Venture Capitalist claim that entrepreneurs in India struggle to secure the requisite capital. In fact, 97% of the 997 Indian firms that had failed in 2014 and 2015 were reportedly unable to secure any external funding (Marshal et al., 2016).

Higher Education

In order to promote the development of a vibrant and sustainable startup community, educational institutions are playing an important role. Sinha (2018) stated that academic courses like MBA and other certification programs provided by B-Schools increase entrepreneurship success rates by 18% and 84% of the MBA graduate entrepreneurs can survive only three years into the startup operations. David *et al.*, 2020 stated that over 70% of India's engineering graduates are categorized as "unemployable", due to the lack of a qualified workforce, inadequate institutional mentoring, and lack of business ethics. The absence of specialized talent hinders the development the startups like deep-science startups and technology-driven startups.

Lack of Innovation

According to one study by "IBM Institute for Business Value and Oxford Economics" in 2016, most of the Indian Startups failed at a higher rate due to the lack of pioneering innovation (Marshal et al., 2016). In terms of global patents, India is behind Japan, the PRC, and the Republic of Korea. This indicates that the country similarly struggles with a lack of innovation.

Lack of Sufficient Skilled Workforces

The Indian entrepreneurs are struggling to find appropriate and skilled workforces. According to a study in 2016 by the IBM Institute for Business Value India Business Survey, 70% of venture capitalists

considered that Indian startups have difficulties acquiring talented workforces and the scarcity of the requisite skills hinders the development of the startups (Marshal et al., 2016).

According to Aspiring Minds National Employability Reports, over 150000 engineering students from over 650 universities graduated in 2015, which found that 80% of them remain unemployed and 48% of the employers in India face difficulty in filling vacancies (IBM, 2017).

Other challenges include a lack of experienced leadership, poor business ethics, lack of proper guidance and mentoring, and unfavourable regulatory barriers such as rigorous criteria to enter and challenges and complicated procedures for registering property and acquiring or extending licenses or permits (Kritikos, 2014).

9. Conclusion and Recommendation

The Indian entrepreneurial ecosystem highlights the vibrancy and potential of entrepreneurs. The capacity of Indian entrepreneurs to use cutting-edge technologies to provide creative solutions across numerous industries. This demonstrates the Indian's entrepreneurial spirit and their eagerness to experiment with cutting-edge concepts and technologies. Thus, it helps to generate employment opportunities and indirectly leads to the growth of the economy.

Despite the progress achieved by India so far, India entrepreneurs still face significant challenges, including the difficult market and economic environment; lack of clarity in government policy and initiatives, as well as lack of infrastructure are the difficulties for entrepreneurs in conducting startups (David et al., 2020). There are several fundamental causes of startup failure in developing nations but a lack of capital appears to be a common one. In the emerging economy, startups being a new concept for the developing economy and a lack of capitalist culture in the society are the causes behind India and other emerging countries' startups' difficulties in obtaining financing beyond the bootstrapping stage (Goswami et al., 2023).

Despite these difficulties, it's crucial to recognize that India has given birth to some of the successful unicorns in various industries. Educational Institutions must maintain their education standard to create a talent pool of highly skilled individuals and encourage entrepreneurship. Thus, it is to be needed that Universities in India should aggressively develop more employable, commercial skills among their students. For instance, The Indian Institute of Technology Delhi (IIT-Delhi), a prestigious institute of higher education in India launched the Technology Business Incubator program to aid entrepreneurs in the development of new technology-enabled ideas. The Indian government has also launched various programs to encourage entrepreneurs and ease the regulations for startups, which may eventually lead to a greater number of Indian startups reaching unicorn status in the future like Startup India Initiatives. The Indian entrepreneurial ecosystem is still developing, therefore it's feasible that as the ecosystem grows and deals with some of these issues, the proportion of globally renowned unicorns from India will rise over time.

Consequently, India has a sizable market and robust startup culture, but in comparison to some other nations, the proportion of Indian startups that have reached unicorn status is relatively low, which had a valuation of $1 billion or more. Currently, there are no mutual funds in India that invest only in startups. However, some time back, SEBI came out with guidelines for listing Startups on the Institutional Trading Platform (ITP). On this platform, only institutional investors will be able to participate, retail investors will not be able to invest directly in it. Thus, it is likely that some AMCs will come out with schemes investing in startups once the ITP starts functioning.

***Research Scholar**
Department of Commerce
University of Delhi, Delhi- 110007
Email: *priyarani7399@gmail.com*
ORCID Id- 0009-0008-7292-0697

****Reena Kumari**
Research Scholar
Department of Commerce and Financial Studies,
Central University of Jharkhand,
Jharkhand- 835222
Email: reenaraj2548@gmail.com
ORCID Id- 0009-0000-9985-4513

References

1. Registered companies database. Ministry of Corporate Affairs. Government of India. http://www.mca.gov.in/ MinistryV2/ indianandforeigncompaniesllps.html

Research Paper

Priya Rani

Determinants of Green Product Adoption in India: An Integrated Framework of Policy, Accessibility, and Consumer Behaviour

Abstract

This study explores the key factors driving green product adoption in India by integrating consumer behavior, market reach, and the influence of national green finance policies into a unified analytical framework. As environmental concerns grow, understanding what drives consumers to choose eco-friendly products is crucial. The study explores whether positive consumer attitudes towards sustainability, easy availability of green products and supportive government green policies (such as subsidies, tax benefits and green banking initiatives) encourage green purchases.

Using a mix of surveys and policy analysis, the research finds that while many Indian consumers are willing to buy green products, high costs and limited availability remain key barriers. India' s green finance policies, such as priority lending for renewable energy and incentives for sustainable businesses, help but need better implementation. The paper suggests that improving affordability, expanding distribution networks and increasing awareness can boost green product demand.

The findings are useful for policymakers, businesses and marketers aiming to promote sustainability in India's growing economy. By aligning consumer behavior, market strategies and financial policies, India can accelerate its transition towards a greener future.

Keywords: Green Finance, Consumer Behavior, Sustainable Products, Market Accessibility, India's Green Policies.

1. Introduction

The growing concern about climate change, pollution, and resource depletion has brought sustainability to the forefront of global discussions. Across the world, people are becoming more conscious of the environment and are actively seeking ways to reduce their ecological impact. One significant way individuals contribute to sustainability is by choosing green products—goods that are designed, produced, and used in ways that reduce harm to the environment.

Green products are typically energy-efficient, recyclable, biodegradable, and made from renewable or non-toxic materials. They help conserve natural resources, reduce pollution, and support a cleaner, healthier planet. Such products are found in many sectors, including food, clothing, electronics, and household items. However, not all products that claim to be "green" truly meet environmental standards. Marketing labels like "eco-friendly" or "natural" can be misleading if they are not backed by certifications or proper standards (Ottman, 2011). This creates confusion for consumers and makes it harder for them to make genuinely sustainable choices.

Understanding how consumers feel about green products is important because their attitudes can directly affect purchasing behavior. Some consumers are motivated by environmental values and are willing to pay more for green alternatives. Others may be interested but are discouraged by higher prices, lack of availability, or distrust of green claims. Additionally, market accessibility plays a crucial role. If green

products are not easily available in local markets, or if consumers are unaware of where to find them, adoption will remain limited, even among those who are environmentally conscious.

At the same time, governments and policy-makers play an important part in shaping a green economy. In India, several national initiatives and regulations have been introduced to support green growth. Programs like the National Action Plan on Climate Change, the National Electric Mobility Mission, and the Plastic Waste Management Rules encourage industries and consumers to shift toward more sustainable practices (MoEFCC, 2019). Green finance—an emerging area in India's financial policy—focuses on funding projects that help protect the environment. Green bonds, sustainable investment funds, and government-backed incentives are examples of financial tools used to promote renewable energy, waste management, and pollution control (Guillaume Jean Jour, 2024).

India's ambition to promote green products reflects its commitment to balancing environmental protection with economic growth. As India's middle class grows and environmental awareness increases, the market for green products is expected to expand significantly (Gupta et al., 2021). However, for this transformation to occur, there must be a deeper understanding of the factors that drive or hinder green product adoption.

This study aims to explore three major areas influencing green product adoption in India: consumer perceptions, market reach, and the green finance policy framework. It seeks to understand how individual beliefs, market conditions, and government efforts work together to shape consumer decisions. By examining these areas, the research hopes to identify what motivates or discourages people from choosing green products, and what changes are needed to increase adoption across different parts of the country.

In doing so, the study addresses critical gaps in existing literature. While many previous studies have examined consumer behavior or government policies in isolation, there is limited research that integrates all three elements—attitude, access, and policy—into a single framework. This research is timely and relevant, especially as India moves toward achieving its Sustainable Development Goals (SDGs) and commits to low-carbon growth strategies under international agreements like the Paris Accord.

Through a combination of literature review, data analysis, and field insights, this research aims to contribute meaningful findings that can help policy-makers, businesses, and consumers make better decisions toward building a greener and more sustainable India.

2. Literature Review

Theme	Author(s) & Year	Key Findings	Definition / Concept
Consumer Attitude towards Green Products	Peattie (2001)	Consumers are more likely to buy green products if they align with their values and beliefs.	Attitude refers to a consumer's positive or negative feelings toward green products.
	Jain & Kaur (2004)	Environmental awareness and values influence green buying behavior.	
	Joshi & Rahman (2015)	Trust in product claims and environmental knowledge impact purchase intent.	
	Chan (2001)	Environmental concern and perceived product effectiveness improve attitude.	
	Vermeir & Verbeke (2006)	Attitude alone doesn't ensure purchase—motivation and enabling conditions are also needed.	

Market Accessibility	Ottman et al. (2006)	Green products must be easy to find, priced competitively, and clearly labeled.	Market accessibility means how easily a consumer can access green products in terms of availability, affordability, and awareness.
	Gupta & Ogden (2009)	Limited access and higher costs act as barriers to adoption.	
	Suki (2016)	Accessibility builds consumer confidence and encourages green behavior.	
	Mishra et al. (2018)	Distribution and awareness are especially important in semi-urban and rural India.	

India's rapid economic growth has intensified environmental pressures, igniting policy discourse and market transformation toward sustainability. Central to this shift is the rise of green products—those manufactured, used, and disposed of with minimal environmental impact. Their adoption hinges on a complex interplay of consumer attitudes, market accessibility, and the green finance ecosystem.

Consumer attitude forms the bedrock of adoption. Guided by Fishbein and Ajzen's planned behavior theory, attitude reflects consumers' evaluations shaped by environmental awareness, perceived product quality, and personal norms. Research consistently shows that heightened environmental concern and perceived consumer efficacy drive favorable attitudes toward green products (Kumar & Ghodeswar, 2015; Roberts, 1996). However, Gupta & Abbas (2013) and Thakkar (2022) found that in India, education and income level significantly modulate these attitudes, suggesting that demographic factors refine the general pattern of pro-environmental predispositions. Trust also emerges as a critical variable, as consumers are wary of greenwashing (Delmas & Burbano, 2011), and reliable eco-labels are essential to reinforcing product credibility.

While attitude initiates intention, market accessibility determines behavior. Studies indicate that green products in India often have limited distribution in smaller cities and rural areas (Richa, 2018), and they come with a premium cost that deters price-sensitive consumers (D'Souza et al., 2007). Gupta & Singh's (2017) empirical survey from North India further revealed that despite positive quality perceptions, high cost and limited availability remained decisive bottlenecks. Even though e-commerce has increased reach, Bhattacharyya & Rahman (2020) warn that digital platforms may introduce concerns regarding authenticity, echoing issues of trust already noted in other contexts.

Bridging intentions and behavior is the green finance policy framework. India's journey began with the National Action Plan on Climate Change, moving through its INDC commitments and culminating in a Sustainable Finance Roadmap by SEBI in 2023. Empirical studies like Sharma & Bhatnagar (2021) praise the emerging green bond market but highlight challenges such as suboptimal credit ratings and limited institutional innovation in the financial system. Gupta & Chaddha (2023) underscore the capital shortfall—an estimated ₹3.5/ trillion gap to reach net-zero aspirations—and emphasize the importance of policy instruments and regulatory clarity . The 2023 sovereign green bonds marked a policy milestone, channeling public investment into renewable energy, sustainable agriculture, and green buildings. Meanwhile, the Reserve Bank's expansion of priority-sector green lending—including off-grid solar and biomass—signals institutional prioritization of climate-aligned financial flows .

Recent literature increasingly adopts a synthesized perspective. Sahu & Khatri (2024) and Bhatnagar et al. (2025) map out how attitude, access, and finance coalesce to enable adoption. They note that without

financial instruments and infrastructure, consumer intent stalls at the intent stage. Conversely, financial and policy support without real consumer demand or accessible products results in underutilized capacity. Innovation-focused reviews (e.g., thematic reviews in global contexts and startup financing in India, such as Bhatia & Sharma, 2024) highlight how green finance can stimulate product development and market entry—though warnings of potential greenwashing remain (e.g., International Sustainability journals) .

Despite progress, gaps persist. There are few longitudinal analyses to track shifts in attitudes in response to policies. Rural and tier-2/3 market penetration remain understudied. Likewise, sector-level insights—e.g., in electronics, textiles, or agriculture—are sparse, leaving nuanced adoption dynamics unexplored. Finally, the feedback loop between green finance instruments at the macro level and consumer behavior at the micro level has not been empirically validated in India's context.

3. Research Methodology

This study adopts a quantitative research design to examine the role of consumers' attitude, market accessibility, and India's green finance policy framework as key drivers influencing green product adoption. A cross-sectional survey-based approach was used to collect primary data from respondents across urban and semi-urban regions in India. The study employed Structural Equation Modeling (SEM) using SmartPLS 4.0 to validate the conceptual framework and test the hypothesized relationships between constructs.

3.1. Research Design and Approach

The research follows a positivist epistemological stance by seeking objective measurement of relationships between variables. A descriptive-causal design was employed to identify both patterns of consumer behavior and causality between independent variables (consumer attitude, market accessibility, policy framework) and the dependent variable (green product adoption).

3.2. Population and Sampling

The target population consisted of Indian consumers who are aware of or have access to green products, especially in major metropolitan and tier-2 cities. A non-probability purposive sampling technique was adopted, as the study required responses from participants who were environmentally conscious or had prior knowledge of sustainable products.

A total of 500 questionnaires were distributed through online platforms and in-person interviews. After data screening and cleaning for completeness and reliability, 417 valid responses were used for analysis. The sample size exceeded the minimum threshold required for SEM as per Hair et al. (2019), ensuring statistical power and model fit.

3.3. Instrument Design and Measurement Scales

A structured questionnaire was developed, consisting of five sections:

1. Demographics: Gender, age, income, education, and region.
2. Consumers' Attitude (CA): Measured using a 5-point Likert scale adapted from Ajzen's Theory of Planned Behavior (1991).
3. Market Accessibility (MA): Items adapted from existing literature (e.g., availability, affordability, visibility of green products).
4. Green Finance Policy Framework (GFPF): Measured through indicators reflecting consumer awareness of government incentives, subsidies, policy communication, and financing schemes.
5. Green Product Adoption (GPA): Measured using adoption intention and actual usage behaviors.

Each construct was measured using multi-item reflective scales, validated from past studies and adapted to the Indian context.

3.4. Data Collection

Primary data were collected over a period of two months (April–May 2025). A mix of Google Forms, WhatsApp distribution, and offline forms at eco-friendly retail outlets and farmer's markets ensured diversity in responses. Ethical approval was obtained, and respondents were assured of data confidentiality.

4. Data Analysis and Interpretation

Data analysis was carried out in SmartPLS 4.0, following a two-stage approach involving:

1. Measurement Model Assessment (Reliability and Validity)
2. Structural Model Assessment (Path Analysis and Hypothesis Testing)

4.1. Descriptive Statistics

Of the 417 respondents, 53% were female and 47% male. Age distribution revealed that 42% were between 25–35 years, followed by 28% aged 36–45. Educational background was predominantly postgraduate (58%), and 66% of respondents earned more than 5 lakh per annum, indicating environmentally aware middle-class consumers.

4.2. Measurement Model Evaluation

To ensure internal consistency and construct validity, Cronbach's alpha, composite reliability (CR), average variance extracted (AVE), and factor loadings were examined.

Construct	Cronbach's Alpha	CR	AVE
Consumers' Attitude	0.87	0.91	0.68
Market Accessibility	0.82	0.88	0.61
Green Finance Framework	0.85	0.89	0.65
Green Product Adoption	0.9	0.93	0.71

All factor loadings were above the threshold of 0.6, and the AVE values confirmed convergent validity. Discriminant validity was verified using the Fornell-Larcker criterion and HTMT ratio, all values being within acceptable ranges.

4.3. Structural Model Results

The structural model showed robust fit with an SRMR of 0.058 and R^2 of 0.69 for green product adoption, indicating that 69% of the variance was explained by the three predictors.

Path	β (Path Coefficient)	t-value	p-value	Hypothesis
Consumers' Attitude → GPA	0.42	8.91	0	Supported
Market Accessibility → GPA	0.31	6.74	0	Supported
Green Finance Policy Framework → GPA	0.28	5.96	0	Supported

All hypotheses were statistically significant at $p < 0.001$. Consumers' attitude had the strongest influence on green product adoption, followed by market accessibility and awareness of green finance policies.

4.4. Mediation and Moderation Analysis

A post hoc mediation analysis revealed that market accessibility partially mediates the relationship between policy awareness and product adoption. The moderating role of income was tested but not found significant.

5. Discussion and Implications

The findings of this study provide critical insights into the factors that significantly influence green product adoption in the Indian context. The results reveal that consumers' attitudes play the most dominant role in shaping adoption behavior, followed by market accessibility and awareness of the green finance policy framework. These relationships confirm the robustness of the proposed model and are consistent with the Theory of Planned Behavior (Ajzen, 1991), where behavioral intention is strongly shaped by attitude and perceived behavioral control.

Consumers' attitude ($\beta = 0.42$) emerged as the strongest predictor of green product adoption. This indicates that Indian consumers who possess a positive environmental mindset and a strong sense of ecological responsibility are more inclined to purchase green products. These attitudes are influenced by growing awareness of environmental degradation, climate change, and the health impacts of conventional consumer goods. The result implies that green consumption is not only driven by product attributes but also by internalized values

and beliefs about sustainability. Importantly, this underscores the potential of green branding and eco-labeling strategies in reinforcing consumer attitudes through education and awareness campaigns.

Market accessibility ($^2 = 0.31$) also exhibited a significant impact on green product adoption. This demonstrates that despite growing awareness, the actual availability, affordability, and convenience of green products act as critical enablers or barriers to adoption. In many semi-urban and rural areas, green alternatives remain inaccessible or are perceived as luxury items due to limited distribution channels and higher prices. The significance of this variable suggests that businesses and retailers need to focus on developing inclusive, cost-effective, and widely distributed green product lines to reach mainstream consumers.

Although the green finance policy framework ($\beta = 0.28$) had a somewhat lower impact than consumer attitude and accessibility, its significance is noteworthy. It indicates that governmental policies, subsidies, incentives, and institutional support for sustainable consumption do affect individual-level decisions. However, the relatively weaker path coefficient, when compared to attitude, suggests a disconnect between policy creation and policy communication. Many consumers remain unaware of financial mechanisms such as tax rebates, interest subventions on green home loans, or subsidies for sustainable household products. Therefore, the effectiveness of policy instruments is contingent upon how well they are communicated and implemented at the grassroots level.

A notable contribution of this study is the mediation effect of market accessibility in the relationship between policy framework and product adoption. This finding highlights that the influence of policy is often indirect—acting through improved infrastructure, financial channels, and local retail ecosystems. In simpler terms, unless green policies translate into more accessible products and services, their impact on consumer behavior remains limited. This underscores the need for integrated policy-business partnerships aimed at translating national policy into tangible market outcomes.

Furthermore, a post hoc moderation analysis revealed that consumer income did not significantly moderate the relationship between the predictors and green product adoption. This indicates that, while affordability matters, environmental concern and perceived value are not strictly limited to higher-income groups. Even among middle-income consumers, there is a willingness to switch to sustainable alternatives, provided the products are available, reliable, and well-communicated. This finding disrupts the often-held assumption that green products are only for the elite and points towards the emergence of a more democratized eco-conscious market in India.

From a policy perspective, the findings emphasize the importance of making green finance policies more visible, accessible, and tailored to individual consumers. Awareness campaigns, perhaps through public-private partnerships or digital media, should focus on demystifying these policies. Institutions such as the Reserve Bank of India and the Ministry of Environment could work with banks, fintech startups, and local governments to disseminate information on green credit schemes and promote consumer-level incentives.

For marketers and businesses, the implications are equally profound. Campaigns must go beyond promoting eco-friendliness as a generic value. Instead, they must link green consumption to health, cost savings, social prestige, and long-term benefits. Additionally, addressing distribution gaps and price barriers will be crucial. Investment in supply chain efficiency and smart pricing strategies can make green products more accessible to price-sensitive segments without compromising sustainability goals.

From a theoretical standpoint, the study reinforces the multidimensional nature of green product adoption. It validates the extended Theory of Planned Behavior by integrating macro-level drivers like policy framework into a predominantly micro-level behavioral model. This integration provides a more holistic understanding of the complex socio-economic, psychological, and structural factors influencing green consumerism in emerging economies like India.

6. Limitations and Future Research Directions

While this study offers valuable insights into the drivers of green product adoption in the Indian

context, it is not without limitations. First, the research employed a non-probability purposive sampling technique, which, although suitable for targeting environmentally conscious consumers, may limit the generalizability of the findings to the broader Indian population. The results primarily reflect the views of educated, urban, and middle-to-high-income individuals, potentially overlooking the perspectives of rural or economically weaker sections who may face different barriers to green consumption.

Second, the study relied on cross-sectional data, which captures consumer attitudes and behaviors at a single point in time. As green product awareness and government policy frameworks are dynamic and evolving, longitudinal data could offer deeper insights into how these relationships develop over time. For instance, consumer attitudes and policy impact may intensify as awareness campaigns mature or new green financing mechanisms are introduced.

Third, the use of self-reported measures through a structured questionnaire may have introduced social desirability bias, where respondents tend to overstate pro-environmental behaviors. Although efforts were made to ensure anonymity and reduce response bias, future studies could integrate behavioral tracking or point-of-sale data to validate self-reported adoption.

Fourth, although the study incorporated mediation and moderation analysis, the model did not explore all possible influencing variables. Constructs such as environmental awareness, social norms, green product quality perception, greenwashing skepticism, and digital literacy were not included in this model but could significantly affect green product adoption, especially in digitally connected but sustainability-challenged economies.

Fifth, while the policy framework was modeled as a single construct, it encompasses a range of elements, from subsidies and regulations to institutional communication and public infrastructure. Future research could disaggregate the policy framework into subdimensions to identify which aspects—such as tax benefits, product labeling standards, or consumer finance—have the most significant influence.

Moreover, the study found that income did not significantly moderate green product adoption, suggesting that environmental concern transcends income categories to some extent. However, future research could further investigate intersectional factors such as education level, gender, regional disparity, and digital inclusion to offer a more nuanced understanding of green consumer behavior in India.

Lastly, as the study focused on India as a developing economy, comparative studies across countries with similar socio-economic characteristics— such as Brazil, Indonesia, or South Africa—could offer rich cross-cultural insights and identify common policy patterns or barriers in promoting sustainable consumption.

In light of these limitations, future research should consider mixed-methods designs, longitudinal analysis, and broader, nationally representative samples. Incorporating qualitative methods such as focus groups or interviews could also help uncover deeper motivations, cultural perceptions, and contextual influences that are difficult to capture through structured surveys alone.

7. Conclusion

This study sought to explore the key drivers influencing the adoption of green products in India, focusing on three primary dimensions: consumers' attitude, market accessibility, and the green finance policy framework. Using Structural Equation Modeling (SEM) based on data collected from 417 respondents, the findings reveal that consumers' attitude exerts the strongest influence on green product adoption, underscoring the critical role of environmental consciousness and personal responsibility in shaping sustainable consumer behavior.

Market accessibility also emerged as a significant determinant, suggesting that even when consumers possess pro-environmental attitudes, the actual availability, affordability, and convenience of green products are essential for translating intentions into action. Meanwhile, the green finance policy framework, though less impactful compared to attitude and accessibility, still plays a meaningful role, especially when it effectively facilitates access to eco-friendly options through subsidies, incentives, and regulatory support.

Importantly, the study also confirmed the mediating role of market accessibility between policy

frameworks and adoption behavior, indicating that the impact of governmental policies is most effective when they are implemented in ways that tangibly improve consumer access to green products. The lack of a significant moderating effect of income suggests a growing democratization of green consciousness, where environmental concerns are shared across income groups, further highlighting the universal appeal and urgency of sustainable consumption.

In sum, this research contributes to the growing body of literature on sustainable consumer behavior in emerging economies. It reinforces the need for integrated approaches that combine personal motivation, market readiness, and policy intervention. For India to scale up its green transition, strategies must not only raise environmental awareness but also make green choices practically feasible and financially attractive. The study serves as a foundation for future empirical work and provides actionable insights for policymakers, marketers, and sustainability advocates striving to foster a greener economy.

Research Scholar
Department of Commerce
University of Delhi, Delhi- 110007
Email: *priyarani7399@gmail.com*
ORCID Id- 0009-0008-7292-0697

References:

- Ajzen, I. (1991). The theory of planned behavior. *Organizational Behavior and Human Decision Processes, 50*(2), 179–211. https://doi.org/10.1016/0749-5978(91)90020-T
- Chaudhary, R., & Bisai, S. (2018). Factors influencing green purchase behavior of millennials in India. *Management of Environmental Quality: An International Journal, 29*(5), 798–812. https://doi.org/10.1108/MEQ-02-2018-0023
- Dangelico, R. M., & Vocalelli, D. (2017). "Green Marketing": An analysis of definitions, dimensions, and relationships with stakeholders. *Business Strategy and the Environment, 26*(4), 457–475. https://doi.org/10.1002/bse.1939
- Gupta, V., & Chaddha, S. (2023). Fostering green finance towards sustainable development practices in India. *Journal of Public Affairs, 23*(4), e2914. https://doi.org/10.1002/pa.2914
- Hair, J. F., Hult, G. T. M., Ringle, C. M., & Sarstedt, M. (2019). *A primer on partial least squares structural equation modeling (PLS-SEM)* (2nd ed.). Sage Publications.
- Kautish, P., Paul, J., & Sharma, R. (2021). The moderating influence of environmental consciousness and recycling intentions on green purchase behavior. *Journal of Cleaner Production, 281*, 125280. https://doi.org/10.1016/j.jclepro.2020.125280
- Ministry of Finance, Government of India. (2023). *India's Green Finance Policy Framework 2023*. Retrieved from https://dea.gov.in/sites/default/files/Green-Finance-Framework-India.pdf
- Ministry of Environment, Forest and Climate Change (MoEFCC). (2022). *India's Long-Term Low Emission Development Strategy*. Retrieved from https://moef.gov.in
- Ottman, J. A. (2011). *The new rules of green marketing: Strategies, tools, and inspiration for sustainable branding*. Berrett-Koehler Publishers.
- Prakash, G., Singh, P. K., & Yadav, R. (2019). Application of consumer style inventory (CSI) to predict green buying intentions. *Journal of Cleaner Production, 228*, 94–104. https://doi.org/10.1016/j.jclepro.2019.04.171
- Ringle, C. M., Wende, S., & Becker, J.-M. (2022). *SmartPLS 4 User Manual*. SmartPLS GmbH. Retrieved from https://www.smartpls.com/documentation
- Singh, A., & Verma, P. (2017). Factors influencing Indian consumers' actual buying behaviour towards organic food products. *Journal of Cleaner Production, 167*, 473–483. https://doi.org/10.1016/j.jclepro.2017.08.106
- Yadav, R., & Pathak, G. S. (2016). Young consumers' intention towards buying green products in a developing nation: Extending the theory of planned behavior. Journal of Cleaner Production, 135, 732–739. https://doi.org/

10.1016/j.jclepro.2016.06.120
- Climate Policy Initiative. (2021). *Landscape of Green Finance in India*. Retrieved from https://www.climatepolicyinitiative.org/publication/landscape-of-green-finance-in-india-2021/
- Indian Brand Equity Foundation (IBEF). (2023). *Indian Consumer Market – An Overview*. Retrieved from https://www.ibef.org/industry/retail-india.aspx
- International Finance Corporation (IFC). (2022). *Green Finance in India: Progress and Opportunities*. Retrieved from https://www.ifc.org
- NITI Aayog. (2021). *Sustainable Development Goals: National Indicator Framework Progress Report 2021*. Retrieved from https://niti.gov.in
- Reserve Bank of India (RBI). (2023). *RBI Report on Climate Risk and Sustainable Finance*. Retrieved from https://rbi.org.in/Scripts/BS_PressReleaseDisplay.aspx?prid=54321
- United Nations Development Programme (UNDP). (2022). India's Journey Towards a Green Economy. Retrieved from https://www.in.undp.org
- Gupta, V., Chatterjee, B., & Das, R. (2021). *Consumer preferences and eco-friendly products: A study from Indian markets*. *Journal of Sustainable Business and Development*, 9(3), 45–60.
- Ministry of Environment, Forest and Climate Change. (2019). *India state of environment report*. Government of India. https://moef.gov.in/
- Ottman, J. A. (2011). *The new rules of green marketing: Strategies, tools, and inspiration for sustainable branding*. Berrett-Koehler Publishers.
- Jour, G. J. (2024). *Green finance and sustainable development in emerging economies* (OECD Working Paper). Organisation for Economic Co-operation and Development. https://www.oecd.org/

मीनाक्षी शर्मा*

प्रो. रीना जैन**

अनुभवात्मक अधिगम नवाचार आधारित अधिगम

सारांश

अनुभवात्मक अधिगम एक नवाचार आधारित अधिगम विधि हैं जिसके माध्यम से शिक्षार्थियों को नवीन व अर्थपूर्ण शिक्षा प्राप्त करने के लिए ज्ञान की खोज करने और अपने स्वयं के अनुभवों का निर्माण करने में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। अनुभवात्मक शिक्षा एक शैक्षिक दर्शन है जो अनुभवात्मक अधिगम की शैक्षिक प्रक्रिया का वर्णन करती हैं जिसमें शिक्षकों, शिक्षार्थियों और वातावरण के लिए प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान किया जाता है। इस शोध पत्र द्वारा अनुभवात्मक अधिगम का परिचय देने और उस पर चर्चा करने का प्रयास किया गया है। किसी भी व्यक्ति द्वारा स्वयं करके सीखना ही अनुभवात्मक अधिगम होता है जिसमें व्यक्ति सक्रिय रूप से शामिल होता है।

मुख्य शब्दावली

अनुभवात्मक अधिगम, अनुभवात्मक शिक्षा, नवाचार

परिचय

शिक्षा मूलत: एक ऐसी प्रक्रिया है जो विद्यार्थियों को उनके संज्ञानात्मक, भावनात्मक, आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक जीवन कौशल के विकास के लिए प्रेरित करती है। शिक्षा जीवन का वह भाग है जिसे पूर्ण करके जीवन की वास्तविक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। जब विद्यार्थी स्वयं करके सीखते हैं तब अपने जीवन की वास्तविक परिस्थितियों को समझकर मुश्किलों का सामना करने में सक्षम होते हैं, इसलिए शिक्षण संस्थाओं में अनुभवात्मक अधिगम अर्थात् अनुभव और गतिविधि-आधारित अधिगम द्वारा शिक्षण कार्य किया जाना चाहिए। अधिगम व गतिविधि के विश्लेषण और चिंतन के माध्यम से व्यक्तिगत समझ, ज्ञान, कौशल और दृष्टिकोण विकसित किया जा सकता है।

कोल्ब (2015) के अनुसार, अनुभवात्मक अधिगम का सिद्धांत सीखने की प्रक्रिया को एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है जिसमें अनुभव, धारणा, संज्ञान और व्यवहार जैसे तत्वों को समाहित किया जाता है। अनुभवात्मक अधिगम पद्धति द्वारा शिक्षण कार्य को सुगम, सरल व स्थायी बनाया जा सकता है। यह शिक्षार्थियों को संदर्भित व प्रायोगिक ज्ञान प्राप्त करने और व्यवहारिक कौशल विकसित करने में सक्षम बनाती हैं। विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाने और उन्हें आधुनिक दुनिया के लिए आवश्यक कौशल प्रदान करने के लिए शिक्षा को नवीन, संवादात्मक व अभिनव शिक्षण पद्धतियों के माध्यम से अपनाया जाना चाहिए। यही कारण है कि पारंपरिक रटने वाली शिक्षण विधियों को अनुभव आधारित और खोज आधारित दृष्टिकोणों द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए जिससे विश्लेषणात्मक सोच, रचनात्मकता और समस्याओं का हल करने की क्षमता का विकास किया जा सकता है। यह एक प्रकार का शैक्षिक नवाचार है जो शिक्षण और अधिगम के दृष्टिकोण को पूर्ण रूप से बदल सकता है। अनुभवात्मक अधिगम द्वारा शिक्षण को अधिक प्रभावी व रोचक बनाकर प्रत्येक शिक्षार्थी में बौद्धिक , तार्किक, चिंतन कौशल व शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक दृष्टिकोण का विकास किया जा सकता है।

केरल्यूइक व अन्य (2013) के अनुसार, 21वीं सदी में प्रत्येक शिक्षार्थी को निम्न दक्षताओं में निपुण होना चाहिए-

* मूलभूत ज्ञान (जानने के लिए)

⋆ मेटा ज्ञान (कार्रवाई करने के लिए)

⋆ मानवीय ज्ञान (मूल्य देने के लिए)

हम हम यह स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि किसी भी शिक्षार्थी को केवल संज्ञानात्मक पक्ष, मूलभूत ज्ञान का ही स्वामी और विकासकर्ता नहीं होना चाहिए, बल्कि उससे कहीं अधिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। शिक्षार्थियों को मेटा ज्ञान (मूलभूत ज्ञान के साथ काम करने की प्रक्रिया का ज्ञान) और मानवीय ज्ञान (ऐसा ज्ञान जो व्यापक सामाजिक और वैश्विक संदर्भ में आत्मदृष्टि प्रदान करता है) भी अर्जित करना चाहिए।

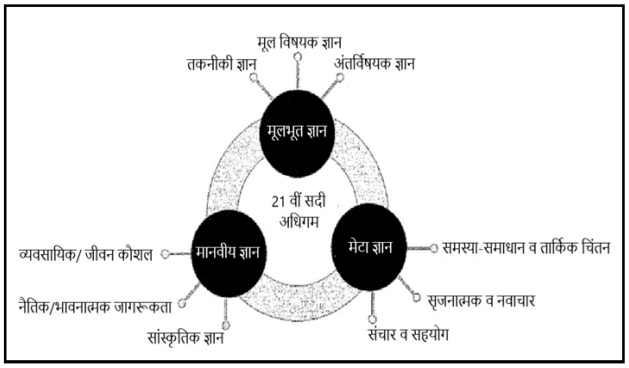

मूल रूप से, अधिगम गतिविधि एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें शिक्षार्थियों का पर्यावरण के साथ अंत:क्रिया होती है, जो उनके व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन लाती है। अधिगम पर्यावरण, अधिगम प्रक्रिया के कार्यान्वयन में एक सहायक कारक बन जाता है। बर्च जी.एफ. और बर्च जे. (2019) द्वारा अनुभवात्मक शिक्षा और सीखने के परिणामों के बीच संबन्ध का मेटा विश्लेषण किया गया, तथा इस शोधकार्य से यह इस स्पष्ट हुआ कि अनुभवात्मक अधिगम विधियों के माध्यम से सीखने के परिणाम पारंपरिक शिक्षण वातावरण की तुलना में अधिक बेहतर और प्रभावी होते हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षकों की उपस्थिति को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है, क्योंकि उनका एक महत्वपूर्ण कार्य होता है अधिगम वातावरण को ऐसी स्थिति में लाना, जो शिक्षार्थियों के लिए अर्थपूर्ण अधिगम क्रियाओं को समर्थन दे सके। इस प्रकार, शिक्षा की प्रक्रिया, जिसका उद्देश्य देश की अगली पीढ़ी को उच्च ज्ञान और कौशल से संपन्न बनाना, समाज में जीवन जीने योग्य बनाना, और वैश्विक चुनौतियों का सामना करने में सक्षम बनाना है, वह अच्छी तरह से संपन्न हो सकती है।

क्रीमर और एंटोनिउ (2008) के अनुसार वे शिक्षक जो अधिगम व्यवहार के उन्नत रूपों को अपनाते हैं, उनके छात्र बेहतर अधिगम परिणाम प्राप्त करते हैं। हालांकि, वास्तविक विद्यालय स्थितियों में, शिक्षक अक्सर छात्रों की परस्पर क्रिया और अधिगम वातावरण की महत्ता को नजरअंदाज कर देते हैं, जो अर्थपूर्ण व स्थायी अधिगम के लिए अत्यंत आवश्यक है। अर्थपूर्ण व स्थायी अधिगम प्राप्त करने के लिए, छात्रों को ज्ञान की खोज में सक्रिय भूमिका निभाने और अपने स्वयं के अनुभवों पर आधारित ज्ञान निर्माण के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। शिक्षार्थियों को अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय रूप से शामिल करना, शिक्षकों द्वारा किया जा सकने वाला एक प्रभावी उपाय है। अनुभवात्मक शिक्षा की अवधारणा पारंपरिक शिक्षा की एक सुधारात्मक व नवीन प्रतिक्रिया के रूप में विकसित प्रक्रिया है।

अनुभवात्मक शिक्षा की ज्ञान मीमांसात्मक नींव को जॉन डीवी (1859-1952) द्वारा लोकप्रिय बनाया गया था। डीवी का अनुभवात्मक अधिगम सिद्धांत में योगदान डोनाल्ड कोल्ब (1984) द्वारा उनकी पुस्तक "Experiential Learning: Experience as the Source of Learning and Development" में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

संक्षेप में, यह अध्ययन शिक्षकों को इस बात के प्रति सचेत करता है कि वे एक ऐसे अधिगम मॉडल को अपनाने पर विचार करें जो भविष्य में शिक्षार्थियों की सभी क्षमताओं का विकास कर सके तथा स्वयं अनुभव द्वारा सीखकर अर्जित ज्ञान को अधिक व्यावहारिक, प्रभावी व स्थायी बना सकें।

परिणाम और चर्चा

अनुभवात्मक शिक्षा - अनुभवात्मक शिक्षा एक शैक्षिक दर्शन है, जो ऐसी शैक्षिक प्रक्रिया का वर्णन करता है जिसमें शिक्षकों, शिक्षार्थियों और वातावरण के लिए प्रत्यक्ष अनुभव सम्मिलित होता है। हालाँकि 'अनुभवात्मक शिक्षा' और 'अनुभवात्मक अधिगम' एक जैसे प्रतीत होते हैं, फिर भी दोनों को एक-दूसरे के स्थान पर प्रयोग नहीं किया जा सकता। अनुभवात्मक अधिगम, अनुभवात्मक शिक्षा की विधियों पर आधारित होता है।

कार्वर (1997) के अनुसार, अनुभवात्मक शिक्षा के वैचारिक ढांचे में छात्रों का अनुभव एक प्रक्रिया और परिणाम दोनों के रूप में देखा जाता है, जो अधिगम वातावरण का केंद्र होता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि शिक्षा कार्यक्रम की विशेषताएँ क्या हैं और वातावरण कैसा है?

ग्रोस और रटलैंड (2017) के अनुसार, Association

for Experiential Education (AEE) अनुभवात्मक शिक्षा को एक ऐसा दर्शन मानता है जिसमें शिक्षक और छात्र दोनों शामिल होते हैं, और जिसमें शिक्षक जानबूझकर छात्रों को प्रत्यक्ष अनुभव और चिंतन में शामिल करते हैं। इसका उद्देश्य है

⋆ ज्ञान को बढ़ाना

⋆ कौशल का विकास करना

⋆ मूल्यों को स्पष्ट करना

⋆ समुदायों को उनकी सामाजिक भागीदारी के लिए सक्षम बनाना।

अनुभवात्मक शिक्षा को विभिन्न रूपों में लागू किया जा सकता है जैसे कक्षा की गतिविधियाँ, शिविर कार्यक्रम, आत्म-विकास कार्यक्रम, साहसिक कार्य कार्यक्रम आदि। इसका मुख्य उद्देश्य सक्रिय और भागीदारी पूर्ण अनुभवों को आत्म-चिंतन से जोड़ना होता है ताकि छात्र गहराई से सीख सकें और नए कौशल व ज्ञान अर्जित कर सकें।

शेलमैन (2014) का कहना है कि अनुभवात्मक शिक्षा कार्यक्रम छात्रों को कई अवसर प्रदान करते हैं, जैसे—

⋆ लक्ष्य निर्धारित करना और उन्हें प्राप्त करने के लिए कार्य करना

⋆ संसाधनों की पहचान करना और उनका उपयोग करना

⋆ नेतृत्व करना

⋆ निर्णय लेना

⋆ चुनौतियों का सामना करना

⋆ समस्याओं को हल करना

⋆ अपनी सीमाओं से आगे बढ़ना, आदि।

अनुभवात्मक अधिगम - अनुभवात्मक अधिगम उस अधिगम प्रक्रिया को परिभाषित करता है जिसमें ज्ञान का निर्माण अनुभव के रूप में हुए परिवर्तन के माध्यम से होता है, और यह प्रक्रिया समझ और अनुभव के रूपांतरण के संयोजन से उत्पन्न होती है। अनुभवात्मक अधिगम, करके सीखने की प्रक्रिया है। छात्रों को व्यावहारिक अनुभवों और चिंतन में शामिल करके, वे कक्षा में सीखे गए सिद्धांतों और ज्ञान को वास्तविक दुनिया की स्थितियों से बेहतर ढंग से जोड़ने में सक्षम होते हैं। डेविड ए. कोल्ब द्वारा विकसित अनुभवात्मक अधिगम सिद्धांत, व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त और प्रभावशाली ढांचा है जो बताता है कि लोग अनुभव के माध्यम से कैसे सीखते हैं।

कोल्ब के अनुभवात्मक अधिगम सिद्धांत के प्रस्ताव इस प्रकार हैं :

1. अधिगम को एक प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए, न कि केवल परिणामों के रूप में।

2. हर अधिगम, पुन:-अधिगम होता है।

3. अधिगम में ऐसे द्वंद्वात्मक रूपों के बीच संघर्ष का समाधान करना आवश्यक है, जो दुनिया के अनुकूलन की भिन्न विधियाँ हैं।

4. अधिगम एक समग्र प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अपने अनुभवों के अनुसार ढलता है।

5. अधिगम व्यक्ति और पर्यावरण के बीच की सहक्रियात्मक लेन-देन से उत्पन्न होता है।

6. अधिगम ज्ञान सृजन की प्रक्रिया है।

डेविड कोल्ब का अधिगम मॉडल अनुभवात्मक अधिगम सिद्धांत पर आधारित है, जो अनुभवों को समझने की निम्नलिखित प्रवृत्तियों पर जोर देता है :

⋆ ठोस अनुभव
(Concrete Experiences)

⋆ निराकार संकल्पनाएँ
(Abstract Conceptualizations)

⋆ चिंतनशील निरीक्षण
(Reflective Observation)

⋆ सक्रिय प्रयोग
(Active Experimentation)

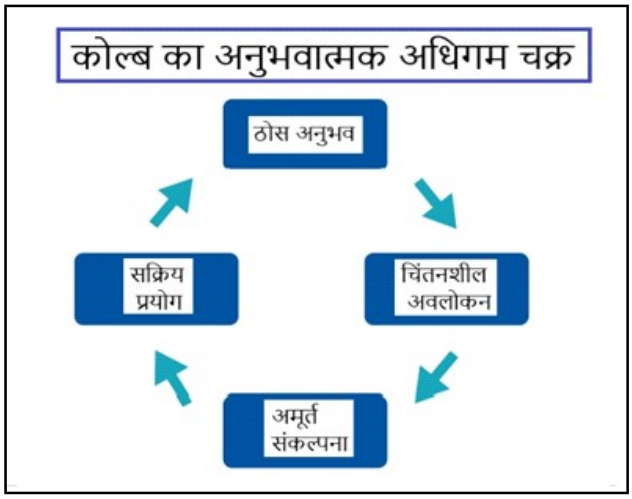

अनुभवात्मक अधिगम मॉडल ऐसा अधिगम मॉडल है जो विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष अनुभव के माध्यम से ज्ञान और कौशल का निर्माण करने में सक्षम बनाता है। पर्यावरण के साथ सहभागिता में अनुभव, छात्रों की क्षमता और योग्यता के विकास में प्रेरक

शक्ति बनता है।

डेविड कोलब द्वारा विकसित अनुभवात्मक अधिगम मॉडल में पाँच चरण होते हैं जो इस प्रकार हैं :

1. अनुभव करना (Experience) – किसी कार्य या गतिविधि का प्रत्यक्ष अनुभव करना।

2. साझा करना (Sharing) – अनुभव को समूह में साझा करना और विचारों का आदान-प्रदान।

3. प्रक्रिया करना (Process) – अनुभव का विश्लेषण करना और उस पर विचार करना।

4. सामान्यीकरण (Generalization) – उस अनुभव से कोई निष्कर्ष या सीख निकालना।

5. अनुप्रयोग करना (Application) – उस सीख को जीवन या भविष्य की स्थिति में लागू करना।

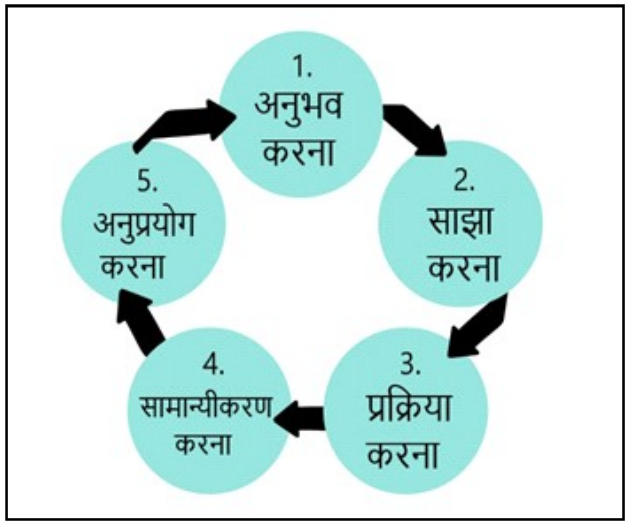

डेविड कोल्ब के अनुभवात्मक अधिगम मॉडल में चार प्रकार की अधिगम शैलियाँ व विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

1. विस्तार करना (Divergence) – ठोस अनुभव, अवलोकन और कल्पना के माध्यम से अधिगम गतिविधियों का विस्तारपूर्वक अर्थ प्राप्त करना। यह अधिगम शैली ठोस अनुभव और चिंतनशील अवलोकन को प्राथमिकता देती है। इस शैली वाले व्यक्ति कल्पनाशील होते हैं, नए विचार उत्पन्न करने में कुशल होते हैं और विभिन्न दृष्टिकोणों से चीजों को देखने में सक्षम होते हैं।

2. आत्मसात करना (Assimilation) – संकल्पना, चिंतन और अवलोकन के द्वारा विभिन्न गतिविधियों को एक इकाई के रूप में एकीकृत कर आत्मसात करना। यह शैली अमूर्त संकल्पना और चिंतनशील अवलोकन को प्राथमिकता देती है। इस शैली वाले व्यक्ति विश्लेषणात्मक होते हैं और सैद्धांतिक मश्वडल को आगमनात्मक रूप में विकसित करने में सक्षम होते हैं।

3. संयोजन करना (Convergence) – अमूर्त संकल्पना और ज्ञान के विश्लेषण के माध्यम से समस्याओं के समाधान खोजने की प्रक्रिया। यह शैली अमूर्त संकल्पना और सक्रिय प्रयोग के संयोजन पर आधारित होती है। इस शैली वाले व्यक्ति व्यावहारिक रूप से विचारों को लागू करने और समस्याओं को हल करने के लिए निगमनात्मक तर्क का प्रयोग करते हैं।

4. अनुकूलन करना (Accommodation) – अनुभव और प्रयोग के माध्यम से योजना बनाना, अवसर खोजना, अधिगम गतिविधियों में भाग लेना और कार्यान्वयन करना। यह अधिगम शैली ठोस अनुभव और सक्रिय प्रयोग को प्राथमिकता देती है। इस शैली वाले व्यक्ति वास्तविक जीवन में संलग्न होने में कुशल होते हैं और पढ़ने या समीक्षा करने की अपेक्षा करके सीखने को प्राथमिकता देते हैं।

कोल्ब के मॉडल का महत्व :

सक्रिय भागीदारी :

यह मॉडल शिक्षार्थियों को सक्रिय रूप से सीखने की प्रक्रिया में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित करता है, जिससे वे सामग्री के साथ अधिक जुड़ाव महसूस करते हैं।

विभिन्न शिक्षण शैलियों को समायोजित करना :

यह मॉडल विभिन्न प्रकार के शिक्षार्थियों की जरूरतों को पूरा करता है, क्योंकि यह विभिन्न प्रकार के अनुभवों और प्रतिबिंबों को शामिल करता है।

ज्ञान का स्थायी प्रतिधारण :

कोल्ब का मॉडल, अनुभवों के माध्यम से सीखने पर जोर देता है, जो ज्ञान को अधिक स्थायी रूप से बनाए रखने में मदद करता है।

वास्तविक दुनिया में प्रासंगिकता :

यह मॉडल, शिक्षार्थियों को वास्तविक दुनिया की स्थितियों में सीखने को लागू करने के लिए प्रोत्साहित करता है, जिससे सीखने की प्रासंगिकता बढ़ जाती है।

शिक्षण और प्रशिक्षण में उपयोग :

कोल्ब के मॉडल का उपयोग शैक्षिक संस्थानों, कार्यस्थलों और अन्य सेटिंग्स में सीखने और विकास को बढ़ावा देने के लिए किया जा सकता है।

निष्कर्ष

अधिगम की अर्थपूर्णता को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षार्थी केवल निष्क्रिय श्रोता न बनें, बल्कि उन्हें ज्ञान की खोज और अनुभव के माध्यम से सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनाया जाए। यही अनुभवात्मक शिक्षा का मूल दर्शन है। अनुभवात्मक शिक्षा एक ऐसा दृष्टिकोण है जो शिक्षार्थियों को उनके सीखने के अनुभवों से जोड़ता है, जिससे वे न केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं, बल्कि उसमें गहराई से भाग लेते हैं, चिंतन करते हैं, और उसे व्यावहारिक जीवन में लागू करते हैं। डेविड कोलब का अनुभवात्मक अधिगम मॉडल यह दिखाता है कि सीधा अनुभव, चिंतनशील अवलोकन, अमूर्त संकल्पना, और सक्रिय प्रयोग के माध्यम से अधिगम का एक समग्र चक्र पूरा होता है, जो छात्रों को संपूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम बनाता है। इस प्रकार, इस मॉडल को शिक्षा प्रणाली में अपनाकर हम छात्रों को एक ऐसी सीख प्रदान कर सकते हैं जो न केवल ज्ञानवर्धक, बल्कि व्यवहारिक, सामाजिक और भावनात्मक रूप से भी सशक्त हो। अर्थपूर्ण व स्थायी अधिगम की प्राप्ति तभी संभव है जब शिक्षा केवल पाठ्यपुस्तकों तक सीमित न रहकर अनुभव और सेवा पर आधारित हो।

★शोधार्थी

★★शोध निर्देशिका
स्कूल ऑफ एजुकेशन
जयपुर नेशनल यूनिवर्सिटी, जयपुर (राजस्थान)

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Burch, G. F., Giambatista, R. C., Batchelor, J. H., Burch, J. J., Hoover, J. D., & Heller, N. A. (2019). A meta-analysis of the relationship between experiential learning and learning outcomes. Decision Sciences Journal of Innovative Education, 17(3), 239–273. https://doi.org/10.1111/dsji.12188
2. Carver, R. L. (1997). Theoretical underpinnings of service learning. Theory Into Practice, 36(3), 143–149. https://doi.org/10.1080/00405849709543762
3. Cherry, K. (2025, February 18). The experiential learning theory of David Kolb: Understanding the four stages of learning. Verywell Mind. https://www.verywellmind.com/experiential-learning-2795154
4. Dewey, J. (1938). *Experience and education*. Free Press.
5. Gross, M., & Rutland, M. (2017). *Experiential education in the classroom: Creating learning communities*. Association for Experiential Education.
6. Kereluik, K., Mishra, P., Fahnoe, C., & Terry, L. (2013). What knowledge is of most worth: Teacher knowledge for 21st century learning. Journal of Digital Learning in Teacher Education, 29(4), 127–140. https://doi.org/10.1080/21532974.2013.10784716
7. Kolb, D. A. (1984). *Experiential learning: Experience as the source of learning and development*. Prentice-Hall.
8. Kolb, D. A. (2015). *Experiential learning: Experience as the source of learning and development* (2nd ed.). Pearson Education.
9. Kyriakides, L., Creemers, B. P. M., & Antoniou, P. (2008). Teacher behavior and student outcomes: Suggestions for research on teacher training and professional development. Teaching and Teacher Education, 25(1), 12–23. https://doi.org/10.1016/j.tate.2008.06.001
10. Shellman, A. (2014). Empowering students through experiential education: Exploring student autonomy in adventure education. Journal of Experiential Education, 37(1), 18–30. https://doi.org/10.1177/1053825913518897

Research Paper

Toyaz Kumar Singh

The Evolving Role of Mass Media in Shaping Legal Awareness among Undergraduate Students

With legal literacy playing a crucial role in ensuring that individuals understand their rights and responsibilities, the research seeks to explore students' perceptions of their legal awareness, the sources from which they obtain legal information, and the effectiveness of mass media in disseminating legal knowledge. The study on role of mass media in raising legal awarness among the students of Delhi University delves into various dimensions, including students' self-assessed awareness of legal rights, the frequency and nature of their media consumption, and their participation in legal workshops or seminars. The findings reveal that 55% of students rate their legal awareness as "Moderate," indicating that while they have some knowledge of legal matters, there is significant scope for improvement. A substantial number of students rely on mass media as their primary source of legal information, with social media emerging as the most influential platform. Digital platforms such as Instagram, YouTube, and Twitter have outpaced traditional sources like newspapers, television, and radio in terms of reach and engagement. This shift highlights the evolving nature of information consumption among students, where quick, accessible, and visually engaging content is preferred over lengthy legal articles or complex legal jargon presented in traditional media. However, despite acknowledging the role of mass media in shaping their legal knowledge, many students struggle to recall specific legal news or incidents that significantly impacted their understanding. They report encountering legal content frequently, but only a few actively retain or apply the knowledge gained. This suggests that while media coverage of legal issues is widespread, its ability to create lasting awareness or encourage proactive legal education remains limited. Furthermore, the study highlights a critical gap in the trustworthiness of legal information, with many students preferring to rely on their peers for legal advice rather than mass media or official legal sources. Another significant finding is the widespread demand for structured legal education initiatives. More than 94% of students express a desire for government-organized legal awareness camps within colleges, signaling a strong interest in formal legal education. Many students believe that interactive workshops, guest lectures by legal professionals, and institutional efforts to integrate legal education into academic curricula could bridge the existing knowledge gap. They argue that while mass media plays a crucial role in raising awareness, it should be supplemented with structured, expert-driven legal education programs to ensure a deeper and more practical understanding of the law. In conclusion, this study underscores the potential of mass media as an effective tool for spreading legal awareness, particularly through digital platforms, while also highlighting its limitations in ensuring deep, long-term legal understanding. The findings call for a more integrated approach, where mass media efforts are complemented by institutionalized legal literacy programs. By leveraging both media-driven awareness campaigns and

structured educational initiatives, stakeholders—including universities, legal institutions, and government bodies—can work together to enhance students' legal knowledge and empower them to navigate legal challenges more effectively.

Legal literacy is a fundamental pillar of an engaged and responsible citizenry in any democratic framework. It empowers individuals with the knowledge of their rights, responsibilities, and the functional aspects of the legal system, thereby fostering active civic participation and safeguarding against various forms of exploitation. In a nation as diverse and populous as India, the effective dissemination of legal knowledge to its vast populace, particularly the burgeoning youth demographic, assumes paramount importance. Undergraduate students, poised to become future leaders and significant contributors to society, represent a critical segment whose legal awareness profoundly influences their civic engagement. This study undertakes an exploration of the dynamic landscape of legal awareness among undergraduate students enrolled in Delhi University (DU), with a specific focus on elucidating the integral role played by mass media. The pervasive influence of digital technologies has dramatically reshaped information consumption patterns, making it crucial to comprehend how these shifts impact the acquisition, comprehension, and retention of legal knowledge. This research aims to provide comprehensive insights into students' self-perceived levels of legal awareness, their preferred channels for obtaining legal information, and the overall efficacy of mass media in cultivating a deeper and more practical understanding of legal matters.

Legal Awareness Levels and Engagement with Formal Education

The research indicates that the majority of Delhi University students possess a moderate level of self-perceived legal awareness. Specifically, 55% of respondents categorized their understanding of legal rights and responsibilities as “Moderate,” suggesting that while they have some knowledge, there remains significant room for improvement in achieving comprehensive legal literacy. While a minority expressed "High" (29.4%) or "Very High" (7.3%) awareness, a concerning 8.3% admitted to a “Low” level of understanding, highlighting a potential gap in foundational legal literacy across a segment of the student population. Further evidence of this limited engagement with in-depth legal knowledge is underscored by students' difficulty in recalling specific news pieces that significantly enhanced their legal understanding. Although high-profile events like the Nirbhaya case or new legal provisions were occasionally cited, these mentions often lacked deep engagement with specific legal details, indicating a passive rather than active processing and retention of legal information. Moreover, direct engagement with formal legal education outside of regular coursework appears limited, as a substantial 71.6% of respondents reported never having attended a legal awareness workshop or seminar. Only 28.4% had participated in such initiatives, further emphasizing a potential deficit in proactive and structured legal learning among students, which could hinder their ability to navigate legal systems effectively and participate fully in civic life.

Mass Media's Perceived Effectiveness and Coverage of Legal Issues

Students generally acknowledge mass media's potential to contribute to legal literacy, yet the data suggests this potential is not consistently translated into deeper understanding. A plurality of 43.1% of respondents found mass media "Effective" in providing legal information, with an additional 17.4% considering it "Very Effective." This indicates a general recognition of mass media's capacity to convey legal information. However, a significant 31.2% remained "Neutral," and 8.3% even labeled it "Ineffective," highlighting a degree of uncertainty or dissatisfaction with its current impact. Notably, no respondents found it "Very Ineffective." Regarding the frequency of relevant legal coverage, 49.5% of students believe mass media "Often" covers legal issues pertinent to them, and 20.6% perceive this coverage as "Always." While this indicates that a majority of students are exposed to some legal information through mass media, a considerable 28% indicated that relevant legal issues are covered "Rarely," and a small fraction reported "Never." This suggests a perceived gap or inconsistency in the

media's attention to student-specific legal matters. These findings imply that while mass media is recognized for its ability to convey some legal information, its current delivery or focus may not be sufficient to foster a comprehensive and practical understanding of legal principles and rights among students, leading to an underutilized potential.

Dominance of Social and Digital Media as Primary Legal Information Sources

The study reveals a significant shift in students' information consumption patterns, with digital and social media platforms emerging as primary sources of legal information, potentially overshadowing traditional media outlets. When asked about the most effective media for creating legal awareness, a clear majority (56.0%) identified social media as their top choice, highlighting a strong preference for interactive digital platforms. This preference is further supported by data on where students actively obtain information about their legal rights. While newspapers were considered the second most effective medium for legal awareness (25.3%), their actual role as a primary source of information about legal rights and other law-related knowledge (16%) significantly lags behind social and digital media. Traditional electronic media, encompassing television and radio, collectively accounted for 9.3% in terms of perceived effectiveness and 46.0% in terms of being a primary sourcing channel. Interestingly, friends and family were cited as a primary source by 45% of respondents. This data unequivocally indicates a strong shift away from traditional mainstream media towards digital and social platforms for accessing legal information. While these informal channels offer convenience and immediacy, concerns regarding the accuracy, depth, and contextual understanding of legal information obtained through such sources remain highly pertinent. The overwhelming preference for social and digital media, coupled with lower reliance on established journalistic outlets, underscores a critical challenge in ensuring students receive credible and comprehensive legal education through their most frequently used information channels.

The Trust-Engagement Paradox with Newspapers and the Dominance of Social Media for News

The study highlights a significant paradox in students' media consumption habits regarding legal information. A substantial 78% of the 850 surveyed Delhi University students expressed greater trust in newspapers over social media for legal information, yet a considerable 60% reported not reading newspapers regularly. This clear disconnect between perceived trustworthiness and actual engagement is particularly evident among students under 21 years old, indicating a distinct generational shift where traditional media, despite its reputation for reliability, struggles to capture the consistent attention of younger demographics. Conversely, digital platforms, especially social media, overwhelmingly dominate students' news consumption habits. Survey results show that YouTube (66.1%) is the most popular platform for news, followed by Instagram (58.7%) and WhatsApp (48.6%). Twitter (21.1%), Facebook and LinkedIn (total 22%), and "Others" (11%) also play roles, albeit to a lesser extent. This stark contrast between high trust in newspapers and low readership, combined with widespread social media use for news, underscores a critical challenge for effective legal information dissemination. To effectively reach and inform students, traditional media outlets must adapt their strategies by integrating engaging and accessible legal content into the digital spaces where students are already actively consuming information.

Age and Academic Progression Correlate with General Legal Awareness, but Cyber Awareness is Notable Among Younger Students

The research findings indicate a positive correlation between age and general legal awareness among Delhi University students. Data suggests that students aged 26 and above generally demonstrated a better grasp of legal matters, including knowledge of their rights and awareness of recent changes in Indian law. Conversely, younger students, particularly those between 18 and 21 years old (comprising 64.2% of the sample), exhibited notably lower levels of general legal knowledge. For instance, only 20% of this age group could name fundamental rights guaranteed by the Constitution, with the exception being those preparing for government exams. This

contrasts sharply with approximately 70% of students older than 26 who showed a reasonable understanding of their fundamental rights. However, an interesting nuance emerged in the area of cyber laws. Contrary to their lower general legal awareness, younger students (under 18 and those aged 18-21) displayed significant awareness of rules and laws related to cyber safety and online behavior. A substantial 72% of those under 18 and 80% of the 18-21 age group reported awareness of cyberbullying, cyberstalking, and trolling, along with knowledge of how to address and report such issues. This awareness remained high across older age groups as well, with 82% of 22-25 year olds and most students older than 26 also demonstrating knowledge of cyber laws. These findings suggest that while general legal awareness appears to improve with age and likely academic progression, targeted awareness, particularly concerning issues directly relevant to younger demographics like cyber safety, can be effectively fostered even at earlier stages of their academic journey. This highlights the potential for tailored legal education initiatives that address both foundational legal principles and specific areas of contemporary relevance for different age groups.

Overwhelming Student Demand for Government-Led Legal Awareness Initiatives

The study reveals a significant and almost unanimous demand among students for government-led legal awareness initiatives. More than 94 % of respondents expressed the belief that the government should organize legal awareness camps in colleges. This resounding endorsement underscores a strong perceived need for structured and credible legal education resources that extend beyond the often fragmented and potentially unreliable information encountered through mass media channels. This clear preference for government-led camps suggests that students recognize a gap in their current legal knowledge and see value in direct engagement with legal experts, opportunities for asking questions, and participation in discussions about real-world legal issues. The near-universal support for such initiatives highlights a perceived need for more formal and trustworthy avenues for acquiring legal literacy, which students believe could empower them to better understand and protect their rights and participate more actively in civic life.

The findings of this study collectively illuminate a complex yet critical landscape concerning legal awareness among Delhi University undergraduate students. The moderate self-perceived legal awareness, coupled with limited recall of specific legal incidents despite frequent media exposure, suggests that current mass media engagement primarily fosters a superficial level of awareness rather than deep, actionable legal literacy. This "awareness-action gap" is a significant concern, as it implies that students, despite encountering legal information, may not be equipped to critically evaluate, retain, or apply this knowledge in real-world scenarios. The pronounced shift towards digital and social media as primary sources of legal information presents both an opportunity and a challenge. While these platforms offer unprecedented reach and accessibility, the study's findings regarding the trustworthiness gap are crucial. Students' preference for peer advice over mass media or official sources, even when acknowledging the latter's potential, indicates a pervasive credibility issue. This could stem from the informal nature of social media content, the absence of expert verification, or the perception of commercial bias in mainstream media. Consequently, relying solely on these informal channels may inadvertently perpetuate misinformation or a fragmented understanding of legal complexities. The strong inverse relationship between high trust in newspapers and low regular readership highlights a significant paradox in information consumption. Traditional media, despite its recognized credibility, is struggling to capture the consistent engagement of younger demographics who are immersed in digital ecosystems. This necessitates a fundamental re-evaluation of content delivery strategies to ensure that authoritative legal information reaches students in formats and on platforms they actively use. Conversely, the notable awareness of cyber laws among younger students, despite their overall lower general legal knowledge, offers a compelling insight. It suggests that when legal issues are immediately relevant to their daily lives and are

presented in accessible, engaging ways (as is often the case with online safety campaigns), knowledge acquisition and retention are significantly higher. This particular finding provides a roadmap for designing targeted legal education initiatives that resonate with students' contemporary experiences. The overwhelming demand for government-led legal awareness camps within colleges is perhaps the most significant call to action from this study. It reflects a collective recognition among students of their own knowledge gaps and a clear desire for structured, reliable, and expert-driven legal education. This demand transcends the passive consumption of media and points towards a yearning for direct engagement, clarification, and practical application of legal principles. This strong student voice provides a clear mandate for universities and government bodies to invest in and implement formal legal literacy programs.

The insights derived from this study carry profound implications for various stakeholders committed to fostering legal literacy. The study underscores the critical role mass media plays in shaping young adults' understanding of law; with information readily available across diverse platforms such as newspapers, television, social media, and online platforms, mass media's potential as a vehicle for legal knowledge dissemination is clear, especially in a context like India where general legal understanding is often low. This makes mass media a vital link between the legal system and the public, empowering students to make informed choices and participate more actively in society, thereby contributing to the democratization of legal knowledge essential for a healthy democracy.

The research highlights the necessity for tailored legal education programs that acknowledge diverse student demographics. Variations in legal awareness based on age, gender, field of study, and media consumption patterns suggest that a one-size-fits-all approach is ineffective. Customizing programs to address the specific needs of different groups is crucial for consistent and comprehensive legal understanding. This is further supported by the overwhelming demand for government-led legal awareness programs, which underscores a significant gap in current formal legal education and reflects students' trust in credible, structured legal education delivered by experts. This implies a clear mandate for policymakers to implement nationwide or regional campaigns in colleges, offering direct exposure to legal professionals.

The study also highlights the significant potential for collaboration among universities, media organizations, and legal experts. Educational institutions could partner with media outlets to create engaging and accurate legal content, ensuring students have access to reliable information. Joint initiatives like media-literacy campaigns or legal journalism projects could also help students critically evaluate the legal information they consume. To address identified gaps, targeted policy reforms and educational interventions are essential, with policymakers considering mandating legal education in school and college curricula for early exposure to legal concepts, and media regulators incentivizing high-quality legal content production. Ultimately, the study underscores the importance of empowering students to become informed and responsible citizens. By prioritizing legal literacy and encouraging active engagement with reliable sources, stakeholders can equip students to navigate modern legal complexities, contributing to a stronger, more equitable society where individuals effectively exercise their legal rights.

Furthermore, the finding that general legal awareness improves with age while younger students exhibit higher cyber law awareness points to the need for age-specific programs. For younger students, workshops on cyber safety and online rights could be highly impactful, while older students could benefit from deeper legal literacy programs covering constitutional rights, consumer protection, and civic responsibilities. The dominance of social media for information consumption also presents a powerful opportunity. Governments and content creators should collaborate to design engaging and informative legal literacy programs for digital platforms, utilizing short-form videos, interactive reels, and infographics, potentially partnering with influencers to disseminate credible legal content, thus significantly enhancing students' legal awareness by leveraging the platforms they engage with daily.

This exploratory study clearly delineates the dual nature of mass media's influence on legal awareness among Delhi University undergraduates. While it unequivocally demonstrates the immense potential of mass media, especially digital platforms, as an effective tool for initiating awareness, it concurrently exposes significant limitations in fostering deep, enduring legal understanding and motivating proactive engagement. The findings consistently advocate for a robust, integrated approach wherein widespread media awareness campaigns are strategically complemented by institutionalized, expert-driven legal literacy programs within the academic framework. By synergistically leveraging the broad reach of media-driven awareness initiatives with the structured learning environment of educational programs, key stakeholders—including universities, legal institutions, and governmental bodies—can collectively work towards substantially enhancing students' legal knowledge, bolstering their confidence in legal matters, and ultimately empowering them to navigate complex legal challenges more effectively throughout their lives.

Based on the findings and implications of this study, the following recommendations are proposed to enhance legal awareness among undergraduate students:

Introduce Legal Literacy in Curriculum: Universities should actively consider integrating practical legal literacy modules into general education curricula or offer them as elective courses, ensuring foundational legal knowledge from an early stage of academic life.

Organize Government-Led Awareness Camps: Government bodies, in close collaboration with colleges, should regularly organize interactive legal awareness camps and workshops. These initiatives should be specifically designed to engage student audiences, address their concerns, and provide opportunities for direct interaction with legal experts.

Create Student-Friendly Legal Content: Content developers and media houses need to innovate in creating legal information that is concise, visually engaging, and easily digestible, particularly for digital platforms. This includes simplifying complex legal jargon without compromising accuracy.

Utilize Digital Platforms Strategically: Given the dominance of social and digital media, stakeholders should leverage these platforms strategically. This involves developing targeted campaigns, interactive quizzes, short educational videos, and infographics that simplify legal concepts and promote engagement.

Partner with Legal Experts: Encourage robust collaborations between legal professionals, legal aid clinics, and media outlets to ensure the accuracy, authority, and trustworthiness of legal information disseminated through all channels.

Tackle Legal Misinformation: Implement proactive strategies to identify and counter legal misinformation prevalent on digital platforms. This could involve fact-checking initiatives, public awareness campaigns about credible sources, and collaborations with social media companies.

Encourage Peer-Led Dialogues: Foster environments within colleges where students can discuss legal issues, potentially guided by faculty or legal experts. This can build trust and facilitate shared understanding, acknowledging students' current reliance on peer advice.

Evaluate Program Effectiveness: Conduct regular and rigorous assessments of all legal awareness programs and media campaigns to gauge their actual impact on student understanding and behavior. These evaluations should inform continuous refinement and improvement of strategies.

Research Scholar
Delhi University

References:

- Sharma, Archana. (2022). Role of print media in educating the mass people on child rights a case study of kamrup metropolitan district
- Badri, Narain. (2021). A Study on the Role of Media in spreading Awareness about the Uses of Contraceptives among Women of Eastern Uttar Pradesh
- Divyshikha. (2023). The Role of Social Media in Creating Political Awareness Among The Delhi

Women
- Guleria, Nancy.(2010). Print media and women empowerment
- Sri, Jothi P. (2014), Role of media in science and technology communication for the development of rural women
- 6. Khyrun, Nisa.(2017). Impact of Social Media on Self Esteem Adjustment Social Awareness and Academic Achievement of Higher Secondary School Students
- Khanna, Neetu. (2021). Need and awareness of legal protection to girl child in India an analytical study
- Barupal, Udai Chand.(2023). An Analytical Study Of Legal Literacy And Lack Of Legal Awareness In Tribal Community Of India With Special Reference To Tribals In State Of Rajasthan
- Sohal, Puneet.(2021). A Study Of Legal Awareness Among The Adolescents Of Government And Private Schools Of NCR About The Rights Of Women In The Indian Constitution
- Deswal, Vageshwari.(2006). Legal protection to working Women in India Problems and issues
- Agarwal, Rupali.(2017). A critical study of social economic and legal justice of women in India
- Parvathy, Neethu.(2021). Contemporary Vignettes of Tribal Life A Study on Gender Roles in Correlation with Interaction Rituals and Media Interactions
- Sumithramma.(2021). Effect of environmental education package on environmental awareness environmental ethics and environmental behaviour among secondary school students
- Balachandran, Sumathi,(2013), A study of environmental awareness and environmental ethics among the secondary and higher secondary school students of greater Mumbai
- Harish, V.(2020). A study on awareness acceptance and adoption of e books among anagement students and faculty
- Chakraborty, Nayna.(2013). Right to education of minorities in India - A socio legal study
- Nazarudeen E. (2018). a study on the impacts of legal awareness to the teenage students to develop a culture of peace in the prevention of crimes
- Bhojwani ,Shriya.(2024). Media ownership and democracy exploring the legal and ethical regulatory framework for media
- Kalaimani.D.(2022). A Study to assess The Effectiveness of Propaedeutic Module on Knowledge Attitude and Self Protection Practices towards Sexual Abuse among Adolescent Girls at Selected Government Middle Schools in Chengalpattu District
- Gurva, Ramesh Ladharambhai.(2017). Role of Mass Media and Its impact on Political Awareness in Gujarat
- Kadambari, Nayer.(2011). ROLE OF MEDIA IN CREATING HEALTH AWARENESS
- Mathur, Chandrakanta K. (2014). Mass media and democracy in india: a political study of their relationship in post emergency period
- Giri, Dhanashree.(2019). Analysing the Role of Mass Media in Disaster Management in India
- Nair, Smita Sreedhar.(2019). A Study of Impact of Mass Media on Socialization of Teenagers A Social Work Intervention With Special Reference To Nanded City
- Agarwal, P. (2016). Women Human Rights in Nation
- Ahmed, Waseem, & Jameel, Anas. (2018). Constitutional Rights, various laws and schemes for women empowerment in India. International Journal of Society and Humanities (Vol. 12, pp. 178–184).
- Alias Musthafa, D. M. (2013). HOW TEACHERS CAN RECOGNIZE AND DEAL WITH BEHAVIORAL PROBLEMS OF ADOLESCENTS IN THE CLASSROOM? Conflux Journal of Education ISSN, 1(2), 2320–9305.
- Anwer, M. Tarique (2017) ?Development of Female Education in India? Third Concept English Monthly, Vol 31, No. 362, April 2017, pp 25-30, ISSN 0970-7247
- Ashraf, Md. M., Hoque, Md. R., & Malik, B. T. (2014). Creating Legal Awarenessthrough Information Communication Technology for Development (ICT4D) Project in Bangladesh: A

Case Study. The International Technology Management Review, 4(2), 97.
- Assifi, A. R., Berger, B., Tunçalp, Ö., Khosla, R., & Ganatra, B. (2016). Women's awareness and knowledge of abortion laws: A systematic review. PLoS ONE, 11(3).
- Bassi, Tripti (2003) ?Gender in School – Obserations from an exploratory Study?Journal of Indian Education, Vol. XXIX, No.3, Nov 2003 pp 135-146, NCERT Batool, S. S., & Batool, S. A. (2018). Levels of Education, Age, Legal Awareness and Women ' s Empowerment. Journal of Research and Reflections in Education, 12(2),1–19.
- Bidhuri. (2016), EFFICACY OF LEGAL MECHANISM IN FIGHTING CRIME AGAINST WOMEN IN INDIA?: An analytical study * 7(8), 277–285.
- Alam A. (2000), "Human Rights in India : Issues and challenges", Raj publications,Delhi.
- Alka Bhalt (1983), "Potential analytic reagents for pollutants of air and perception regarding environmental education among pre-service and in service secondary school teachers" Ph. D Thesis. The Maharaja Sayajrao university of Baroda.
- Allender Jerorme S. (2001), "Teacher Self: The Practice of Humanistic Education".ERIC #: ED459179.
- Ambedkar B.R. (1962), "The untouchables: who were they and why they become untouchables". Arya Books Limited, New Delhi.
- Andal S. and Lilly Epsy Bai (2007), "Awareness of Tsunami in coastal area studentsin relation to anxiety". Research and Reflections on Education. Palayankottai. P. 11-13.
- Annamalai A.R. (2000), "Attitude of Teacher towards Teaching", Experiments in education council of Educational Research, Chennai. Vol.28 No: 4, pp. 69-70.
- Anu G.S. and Celine Pereira (2007), "A Comparative Analysis of the dimensions of Emotional Intelligence; Emotional Competence, Emotional Sensitivity and Emotional Maturity in primary and secondary school Teachers" proceedings International Conference on Educational Research Learning beyond cognition. V.C.C. College of Education. Tuticorin P. 30.
- Apte J.S. (1960), 'Talwada Ashram School – An Experimental in Tribal Education'. Vanayati Publication,s Vol. VIII, No. 3, New Delhi, P. 81-82.
- Asliddin Rustamov, (2007), "Uxbek presidential hopeful says legal awareness to improve social aid – Zibb.com", http://www.zib.com/article/2325747/Uzbek+presidential+hopeful+says+legal+awarene.
- Best J.W. (1977), "Research in Education", Prentice Hall of India, New Delhi: Printice of India.
- Bharadwaj H.R. (2005), "Quality Legal Education". Association of IndianUniversity New Delhi, University News. P. 23-25.
- Bhaskara Rao D. (1996), "Global Perceptions On Peace Education". Vol. III, Discovery Publications, New Delhi.
- Bhatia P.R. (1987), "Psychology of Teaching – Learning Process". Anmol Publications Pvt LTd New Delhi pp. 255-317.
- Bhawna Misra, (2004), "Curriculum Reform and Educational Development" Mohit Publications, New Delhi, 2004, pp. 1-24.
- Bindhu T.S. and Vijayalakshmi N.S. (2007), "Emotional Intelligence among prospective Teachers", proceeding of International Conference on Educational Research at learning beyond cognition. P. 28.
- Bipin T. Savalia (2007), "A Comparative Study of Emotional Quotients of the Higher Secondary Students", proceeding of International Conference on Educational Research at learning beyond cognition. P. 26.
- Boardman Eunice (1992). "New Environment for Teacher Education." Journal of Music Educators. Vol. 791, no: 2, pp. 41-43.
- Borg W.R. and Gall M.D. (1974), "Educational Research". New Delhi: Mac Millian Company.
- Buch, M.B (2000) "Fifth Survey of Educational Research", Vol. II, NCERT, New Delhi..
- Burch. M.B. (2007), – "Sixth Survey of Educational Research", Vol-I, New Delhi.

Research Paper

Vivek Singh

The Dark Side of Globalization: The Rise and Spread of Terrorism

Abstract

Globalization, often celebrated for fostering economic growth, technological advancement, and cultural exchange, has also inadvertently contributed to the evolution and expansion of modern terrorism. This chapter explores how the very mechanisms that support global integration—such as open borders, digital communication, financial networks, and international trade—have been misused by terrorist groups to operate across national boundaries with increased efficiency and reach. Through case studies like the 9/11 attacks in the U.S., the Pulwama and Uri incidents in India, and lone-wolf attacks in Europe, the chapter illustrates the shift from localized, ideologically confined terrorism to decentralized, globally networked extremism. The discussion highlights how terrorist organizations exploit supply chains, social media, and funding mechanisms while governments struggle to counter these threats without infringing on civil liberties. Ethical concerns such as mass surveillance, racial profiling, and the scapegoating of refugees are critically examined. The chapter concludes by emphasizing the urgent need for balanced global policies that promote security without compromising the fundamental principles of justice and human rights. Responsible globalization, guided by international cooperation and inclusive governance, is presented as the key to mitigating terrorism while preserving the interconnected nature of the modern world.

Keywords: Globalization, Terrorism, Radicalization, Cross-Border Threats, Human Rights

Introduction

Globalization: Once celebrated as a saviour of the economy, as a mechanism for the development of cultures, and as a tool for propelling technology to new heights, has quite clearly remolded the modern world. It connects nations, free flows of information, capital, goods and people, and promotes global cooperation on many fronts. While interconnectedness has contributed to this, it has also unintentionally led to a diverse range of problems, among which one of the most problematic is terrorism. Although globalization has been closely tied to prosperity and progress, it has also delivered its dark side, allowing terrorist networks to grow in size and ultimately gain access to modern tools and exploit vulnerabilities in existing global systems. Extremist groups have hijacked the very instruments of openness and connectivity, such as digital communication platforms, global banking channels, and liberalized border policies, to facilitate recruitment, fund-raising, cross-border transport and borderless assaults with increased anonymity and ease.

The troubling paradox of the rise and spread of terrorism in the age of globalization is that: We leverage the same mechanisms supposed to unite humanity to harm it. Today, terrorist groups can operate in a borderless world where, across the world's Internet, virally, ideologies can spread, through the world's markets, money can be routed, and, across continents, plans made. Terrorist attacks from the coordinated

9/11 attacks in the US to decentralised lone wolves inspired through social media have been a product in essence of the inevitable evolution—and globalization. Whereas state boundaries grow porous and the world becomes ever more interdependent, the emerging threats to security more readily elude the confines of conventional security frameworks. We will attempt to analyze how the unintentional contribution of globalization has contributed to the development of terrorism, to look into the historical background, identifying factors that fuel terrorism, case studies from around the world and the international response to this complex evolving phenomenon. It attempts to shed light on the urgent necessity of nuanced global strategies balancing the principles of openness and security, of freedom and responsibility.

Definition of Globalization

Globalization is the process of increasing integration of the world, between borders for the exchange of goods, services, information, technology, people, and culture. The driving push is advances in communication technology, transport, international trade policies and multinational corporations. Essentially, it tears down the normal barriers between countries such that the exchange of ideas, resources, and human capital is freer and faster. Economically, this integration of markets allows countries to access new types of products, to invest in existing foreign enterprises and to choose to outsource labor. It engenders cross cultural exchange, global awareness and fusion of traditions and lifestyles, socially and culturally. Globalization has promoted international cooperation on a political level, but has posed problems to national sovereignty and policy independence. It has ushered in the rise of global networks and institutions like the World Trade Organization (WTO), International Monetary Fund (IMF) and multinational business that promote relationships on a global scale. Globalization is usually seen as a positive move that is associated with growth, modernization and innovation, but at the same time, it has its own criticisms such as deepening economic inequalities, cultural homogenization, labor abuses and environmental pollution. However, the networks of positive global exchange can be used by non-state actors, such as terrorists, traffickers and cybercriminals. Therefore, globalization is neither a wholly positive nor a wholly negative force. Yet it is a dynamic and complex phenomenon that both empowers societies and destabilizes them, depending on how it is managed and by whom the levers of its control rest.

Overview of Terrorism

Terrorism is the deliberate use of violence or intimidation (or the threat of violence or intimidation) against civilians or noncombatants for political, religious, or ideological purposes. Since it knows no boundedness and has crossed the national boundaries, it has become a global threat, irrespective of the geography, culture or economic status of the society. However, modern terrorism is characterized by asymmetrical warfare, as small groups employ low cost with high impact techniques in order to sow fear and disrupt social order. The Global Terrorism Index (GTI) 2024 says more than 8,000 terrorist incidents were recorded last year globally, with more than 20,000 deaths, the most affected countries being Afghanistan, Iraq, Nigeria, Syria, and Pakistan. Terrorism, however, is no longer limited to 'traditional' conflict zones; Lone wolf attacks and ideologically motivated violence have also increased sharply in developed nations, fueled by online radicalization. Terrorism also has an equally disheartening economic impact, as the GTI estimates a global economic cost of over $100 billion annually in direct damages, security spending, and economic disruption. Terrorism today takes various forms: The final topics include religious extremism, separatist movements, left-wing and right-wing radicalism and even state sponsored terrorism. Modern tools—social media, encrypted messaging, and international funding networks—have been abused by groups like ISIS, Al-Qaeda, Boko Haram, and a host of local outfits to eclipse their reach. Military responses and counterterrorism laws have improved global coordination in fighting terrorism, but the root causes — such as poverty, political exclusion, identity crises and globalization's dislocations — continue to give rise to terrorism. Both the evolving tactics of this complex phenomenon and its deep roots in socio-political triggers should be

observed through a multi-dimensional lens in order to understand.

Purpose and Scope of the Paper

This paper aims to offer a critical examination of the complex, if often ignored, nature of the relationship between globalization and the growth of, and the spread of, terrorism. However, even though globalization generally engenders positive feelings as it also brings about economic development, cultural exchange, and technological progress, it has inadvertently facilitated terrorist organizations in widening their scope of operations, financing, recruitment, and spreading propaganda. In this chapter, I will focus on how the same mechanisms that make the global system so interconnected—the Internet, global trade and finance networks, open borders, and liberal financial systems—can be exploited by non-state violent actors to plan, execute, and fund acts of terrorism across borders. This chapter offers an in-depth analysis of how the creation of terrorism as a global phenomenon has changed its nature, forcing it to operate more decentralized, with more diverse ideological and even more technologically sophisticated methods. The paper will also look into historical context, structural enablers, operational case studies from both developing countries and developed countries, and the strategic use of global platforms by terrorist groups. The chapter also examines the effects of global terrorism on national security, civil liberties, and international diplomacy. It will also assess the present global counter terrorism procedures and the ethical issues attached to them. This chapter seeks to offer a unified view on why terrorism is changing in the era of globalization, and it does so through a multidisciplinary approach, combining political science and international relations theories, technology, and sociology. In conclusion, it attempts to provide the necessary understanding that would allow for balanced, globally coordinated policies which can preserve the benefits of globalization and limit its associated security risks in a more interdependent world.

Historical Context

Before the reign of the globalization as the predominant modern global force, the terrorism had been constrained and local form without wide social consequences and geographically limited character. Before the onset of globalization, and particularly in the first half of the twentieth century, terrorism was mostly domestic or regional—animated by anti-colonial struggle, ethnic nationalism or ideological strife between communism and capitalism. Targeted attacks within their particular geopolitical context were conducted by groups such as the Irish Republican Army (IRA), the Red Brigades in Italy, or the Palestine Liberation Organization (PLO). Their scale and reach were limited, their operations dependent upon local support, and often bound to territorial claims or regime change. Due to technological limitations as well as national barriers, communication, recruitment, and funding were relatively slow and restricted. Notably, during the Cold War period, states were using terrorism as a proxy, usually at the regional level and international cooperation in the fight of terrorism was at a minimal to be fragmented.

In the post 1990s, after the collapse of the Soviet Union and the rise of neoliberal globalization, the scenario changed dramatically. The boom of globalization brought rapid technological progress, liberal markets, and unreached global connectivity. It changed the character, size, and methods of terrorism. The Internet, satellite communications and global finance system made available for terrorist networks to be more decentralized and transnational. A shift in usage of the internet for promoting ideology, recruiting people from across the globe, raising funds through cryptocurrencies and hawala networks, and coordination of attacks across continents was epitomised by groups such as Al-Qaeda and later ISIS. The 9/11 attacks were a turning point in using globalized tools and weaponizing them towards catastrophic impact. Unlike earlier terrorist groups, post-globalization terrorists are more ideological movements and less localized factions, providing them with an extra layer of cover to evade detection and dismantling. Consequently, the post-1990s period has been marked by a transition from state supported or nationalist terrorism to that of a fluid, digital-era extremism started from the very same global unifying and development platforms. It is therefore noteworthy

that this evolution is a reflection of the importance of adapting counter terrorism strategies to the new realities of the world as a result of globalization.

Globalization as a Catalyst

Today, globalization has emerged as a powerful enabler of terrorism capabilities and range, breaking down traditional barriers and facilitating revolutionary mobility and connectivity across the globe. Expansion of frontiers and the relative ease of intercontinental travel that was supposed to foster tourism, trade and cultural exchange have inadvertently facilitated free movement for terrorists whose paths could not be traced. In conflict prone regions, open visa regimes, weak border controls and refugee flows have has often been exploited by the smugglers to smuggle arms, transport operatives and plan cross border attacks. At the same time, technology, particularly the internet, encrypted communication apps, and social media platforms, has been moving rapidly and has afforded terrorist organizations the ability to bypass geographical restraints and expand access to their recruitment, propaganda, and training globally. Extremist ideologies can now spread in seconds to a vulnerable population to radicalize a person without even physical contact. In addition, the global financial system has presented terror financing with new avenues through which funds can be arranged. Terrorist outfits have made raising and transferring funds across continents discreetly easier through informal banking systems, misuse of charitable fronts, trade based money laundering, and most recently in cryptocurrencies. The globalization of financial markets, which has spurred greater international merchandise transactions, has also created difficulties in tracking and deterring illicit financial flows. The combination of all of these factors highlights how globalization brought economic growth and global cooperation, but in the process, has also unwittingly provided terrorist groups access to tools, platforms and networks which, until now, were impossible to have and what modern terrorism has become, so much more agile, decentralized and transnational.

Terrorism and the Global Supply Chain

In the age of globalization, the same global supply chains that facilitate legitimate trade and commerce have also been exploited by terrorist organizations to sustain and expand their operations. One of the most critical areas of concern is the illegal arms trade, where terrorist groups gain access to weapons through porous borders, corrupt intermediaries, and black-market dealers. With arms often moving through the same trade routes used for legitimate cargo, tracking and intercepting such shipments becomes increasingly difficult. Additionally, human trafficking and smuggling routes have become integral to terrorist financing and logistics. Terrorist groups often engage in human smuggling to fund their operations, coerce fighters, or destabilize regions by exploiting refugee flows and weak governance. Illicit networks in these countries follow international migration routes and exploit lax state control in transitional states. In addition, terrorists have been able to move resources, personnel, and information across continents using multinational logistics and transportation channels. Weapons, explosives and operatives are even hidden within legal trade and misused on shipping containers, freight trucks or even commercial flights. Global logistics networks are complex and by their nature are so large that authorities can struggle to detect and isolate suspicious activities without also disrupting legitimate commerce. As a result, despite the importance of globalizing intertwined supply infrastructure for the modern economy, it is also an unseen scaffolding for terrorism, allowing for covert resource flow. It requires more international cooperation, quicker sharing of intelligence in real time, and tighter regulation of trade and transit between regions.

Case Studies

In 2001, the 9/11 terrorist attacks on the United States were a game changer for global security, and revealed that modern terrorism is transnational. International flight systems, training in a number of countries and financial and communication systems spanning borders were used by al-Qaeda operatives to plan and carry out attacks that killed nearly 3,000 people. In communicating with one another, collecting donations through an international banking network and moving within other nations around the world, globalization itself was weaponized for the perpetration of one of the deadliest terror attacks in recent history.

It showed how infrastructure that was built to progress, could be wielded.

Cross border terrorism aided with globalization can be taken as an example in the Indian context and we have grim example of the same – Pulwama attack (2019) and Uri attack (2016). A suicide bomber linked with Pakistan-based terror group Jaish-e-Mohammed rammed a vehicle carrying explosives into a CRPF convoy in Pulwama in Jammu and Kashmir, killing 40 personnel. Social media, encrypted messaging apps, and cross border logistical networks played a deep role in the planning, radicalization and propaganda leading to the attack. Likewise, the Uri attack saw heavily armed militants breach from across the Line of Control and raid an Indian Army base, killing 19 soldiers. In each context, porous borders, global communication platforms for coordination, and the radical ideological support that is spread through international online communities were exploited.

Ethical and Human Rights Concerns

As global terrorism is on the rise, governments around the world have come under increased pressure to increase surveillance to protect against terrorist attacks. But this has given rise to serious concerns over individual privacy and civil liberty. However, privacy advocates and human rights organizations have raised alarms over mass data collection, monitoring of personal communications, facial recognition and invasive digital tracking. Anti-terror laws have, in many cases, provided sweeping power to state agencies that are not properly accountable and subject to abuse and overreach. Undoubtedly, surveillance is important for protecting against threats in the digital age, but when trying to strike a balance between national security and the right to privacy, it becomes an argument. In democratic societies, people are often caught in a dilemma of safety traded for basic freedoms. The ethical issue, then, is how to make sure counter-terrorism measures do not strip away civil liberties, which terrorism itself seeks to diminish.

Racial and religious profiling is another critical issue that has become more virulent in many countries in the wake of terror incidents. There is unwarranted scrutiny, discrimination, and stereotyping of individuals from specific ethnic or religious background, particularly Muslims, on the basis of their identity. These practices themselves violate basic human rights and foster alienation, resentment, and in some cases, further radicalization. Another form of discrimination is blaming refugees and migrants, particularly from conflict zones, for terrorism, though refugees themselves are simply fleeing violence. Xenophobia, a passionate exclusion of strangers or foreigners, strict immigration policies, denial of humanitarian support are the results of this misplaced blame. Despite the unifying effect of globalization, identity based tensions have increased, and the response to terrorism frequently adds fuel to these fires. Those policies must be inclusive and distinguish between violent actors and vulnerable populations, and the struggle against terrorists must not become a struggle against a community or against human dignity itself.

Conclusion

As demonstrated in studies throughout this chapter, although globalization has enabled tremendous gains in economic growth, innovation, and cultural exchange, it has generated new vulnerabilities that terrorist groups have now learned to use for their purposes. With a large number of networked, decentralized, and transnational terrorists across the world, terrorism today is much more networked, decentralized and transnational than before, from the ease of cross frontier movement and access to sophisticated technologies to that of misusing global financial systems and the supply chains. As symbols go, 9/11, terror in India (e.g. Pulwama, Uri) and lone wolf attacks in Europe are just the cases in point, as terrorist activities are not only becoming global, they are not occurring in geography and ideologically defined spaces, but being driven by the very forces that deliver global integration. The ethical implications of counter-terrorism efforts are also considered, including mass surveillance and racial profiling, as well as the need to pursue national and international security within a balanced and rights-based approach.

Therefore, the future of combating terrorism in a globalized world would be the responsible globalization which, while ensuring the global cooperation, would not lead to deprivation of

individual freedoms. In order for countries, international organizations, and tech platforms and civil society to build mechanisms that detect and disrupt terrorism in a manner that does not compromise democratic values, we have to work together. To deal with the root causes of extremism, policies must focus on equitable development, deradicalization, inclusive education and digital literacy. Furthermore, tactics of global institutions must become more adaptive, real time, and take into consideration the fluid and changing context of terrorism in digital age. The essential challenge is to sustain such an open and interconnected world, retaining the benefits of globalization, yet with it not being a force for destruction. It's not a solution to retreat from globalization, it's a solution to remake globalization with security, accountability and justice at its centre.

Sir GN Jha Hostel
University of Allahabad,
U.P. -211002

References

1. Khan, A., & Ruiz Estrada, M. A. (2017). Globalization and terrorism: an overview. *Quality & Quantity*, *51*, 1811-1819.
2. Demir, S., & Varl1k, A. B. (2015). Globalization, terrorism and the state. *Alternatives: Turkish Journal of International Relations*, *14*(3), 36-53.
3. Lim, L. (2002). Terrorism and globalization: an international perspective. Vand. J. Transnat'l L., 35, 703.
4. Kellner, D. (2015). Globalization, Terrorism, and Democracy: 9/11 and Its Aftermath 1. In *Contesting Empire, Globalizing Dissent* (pp. 53-77). Routledge.
5. Abadie, A., & Gardeazabal, J. (2019). Terrorism and the world economy. In *Transnational Terrorism* (pp. 283-310). Routledge.
6. Paul, T. V. (2019). When balance of power meets globalization: China, India and the small states of South Asia. *Politics*, *39*(1), 50-63.
7. Jalata, A. (2017). The Oromo movement: The effects of state terrorism and globalization in Oromia and Ethiopia. *Social Justice*, *44*(4 (150), 83-106.
8. Galtung, J., & Ikeda, D. (2020). Pax Pacifica: terrorism, the Pacific hemisphere, globalization and peace studies. Routledge.
9. Li, Q., & Schaub, D. (2019). Economic globalization and transnational terrorism: a pooled time-series analysis. In *Transnational Terrorism* (pp. 209-238). Routledge.
10. Khan, H. A., & Khan, H. A. (2018). Governance, public administration, and the challenges of globalization. *Globalization and the Challenges of Public Administration: Governance, Human Resources Management, Leadership, Ethics, E-Governance and Sustainability in the 21st Century*, 5-31.
11. Kellner, D., & Kellner, D. (2021). Globalization, technopolitics and revolution. *Technology and democracy: toward a critical theory of digital technologies, technopolitics, and technocapitalism*, 153-177.

Research Paper

Sarita Bhoi

Ambedkar's Vision, Intersectionality, and Inclusive Employment: A Framework for Empowering Disabled Women in India

Abstract:

With the aim of benefiting women with disabilities in India, in this study, the sustained vision of Dr. B. R. Ambedkar, in the context of social justice and economic equality, will be critically analyzed with the help of the intersectional perspective. The destruction of India and establishment of economic independence of lower strata people with a view of destroying the caste-based discrimination and the destruction of India through destruction is a well-constructed idea-system. Even though there has been an amazing trend towards the empowerment of women with disabilities in India, the multiple discrimination, representation in the labor force, inaccessible infrastructure to all, and stigmatized society represent a real challenge for women with disabilities in India. In our argument, we state that it is not only exclusion that is a tremendous social injustice, but it is also a sign of an enormous cost to country development. In accordance with the ideas of Ambedkar, this study suggests additional prospects of the ways in which a more comprehensive approach can be enforced regarding the proactive promotion of an inclusive workforce. Other important interventions, which have not been exhaustively mentioned, are the enhancement of available education and training of skills, application of assistive technologies, applicable awareness and sensitization measures, and effective public-private partnership. it is clear that, whatever Ambedkar's vision is, he must have aimed diligently to ensure that there was a removal of those systematic barriers through which the woman with a disability did not have the right to participate and enjoy the growth of India to a greater extent because of which he was able to create a completely equal and prosperous country.

Keywords : B.R. Ambedkar, Intersectionality, Disabled Women, Inclusive Employment, Social Justice, Economic Empowerment, Disability Rights, India, Participation in the workforce, implementation of policies

Introduction:

Dr. B.R. Ambedkar, one of the greatest protagonists of the social reform movement and leading draftsmen in India, spent his life promoting social justice, equality, and the overall empowerment of deprived people.His profound intellectual contributions extend beyond theoretical discourse, encompassing practical frameworks for societal transformation. At the center of the philosophy of Ambedkar was his adherence to the idea of economic justice, where he advocated the changes and modes necessary to provide equal rights to access resources, especially to Dalits, women, and other disadvantaged groups that had been historically oppressed (Sunil Kumar2019).

Ambedkar had a carefully designed vision to change the economic scenario of society and provide labor welfare so that it helps in building an inclusive and equal society. This ideological framework

continues to have great resonance in modern debates that revolve around the multifaceted issues of minority groups, and disabled women in particular. The fact that gender, disability, and socio-economic status are intersecting makes it an insurmountable, multiple-faceted obstacle to disabled women and renders them widely and deeply marginalized and ineffective in any real access to the formal economy. It is based on the philosophy developed by Ambedkar, who critically assesses how his lifelong emphasis on closed principles of inclusion, equality, and justice can be utilized and used to cement government policies that will assist disabled women in India and to automatically make them economically empowered (Singh 2017).

Ambedkar's Philosophy and its Ever-Present Relevance

Dr. Ambedkar's work was also an extreme and caustic examination of the deep-rooted caste systems of India and its consequent socioeconomic stratifications. He categorically stated that both democracy and freedom cannot be achieved without the essential eradication of social and economic inequalities. To Ambedkar, the caste system was the worst and most invasive vein of inequality, with strict hierarchical lines and a discriminatory system that was based on mere birth. He keenly realized that legalized freedoms and political rights, as important as they were, were only important as long as they were not supplemented with substantive economic rights and equality. This was true because his endless attempts to eliminate caste-based discrimination, provide education to all, and support the socio-economic rights of the marginalized population became a strong basis for new inclusive policies in India (The Father of Modern India 2024).

Economic justice, as advocated by Ambedkar, was strongly anchored to the need to eliminate the basic inequalities fueled by discrimination in line with the castes. His thinking supported structural changes such as land redistribution, state-owned major industries, and a progressive taxation system that was actually aimed at redistributing wealth more evenly. He dreamed of an economic system in which the advantages of industrialization would not be concentrated in the upper classes, but would actually empower the most vulnerable groups within the population, such as Dalits and women (Zagha 2013). This progressive economic ideology provides an important analytical tool to provide insights into the existing and more significant issue of contemporary economics of marginalization, and it can also be applied to the contemporary marginalization of disabled women.

The Case of Ambedkar and His Discussion of the Marginalized Groups: Applying His Beliefs to Women and the Disabled

Although Dr. Ambedkar did not draw a more explicit structure of disability rights as it is presently being treated by the disability rights movements, the broad and consistent approach regarding social justice simply overlaps with the issue of the rights of disabled people. The first efforts of the Dalit and women's upliftment by Ambedkar inevitably contributed to the formation of the foundation in a new, more inclusive society in which none of the groups could live without an aspiration to equality, dignity, and active contribution. His relentless tendency to break down hierarchical systems, tackle deeply ingrained discrimination, and advocate human dignity can be applied in direct ways and is deeply applicable to the disability inclusion context.

The feminist habits of Ambedkar were radical during his period. He was a firm supporter of women's rights whereby he led law changes that would give women equal rights in marriage, investment, and inheritance. His dream of women's liberation was closely related to the freedom of women economically, as well as the ability to work actively and freely. This strong model of gender equality can be easily replicated in disabled women, who often face combined discrimination based on gender and disability (Dutt 2016) As much as the efforts tirelessly spearheaded by Ambedkar in abolishing the caste system aimed at eradicating the nagging stumbling block to equality by Dalits, his ideals also offer a powerful intellectual and moral force to promote policies that eradicate the various and overlapping strata of discrimination against disabled women.

The combination between gender and disability

sets up enhanced employment obstructions. Women living with disabilities face serious constraints owing to their inability to access infrastructure facilities, societal stigma, and limited opportunities to receive education and training in skills. All these systemic barriers and the absence of employer willingness to make reasonable accommodations culminate in the consequent and extensive exclusion of employees joining the formal workforce. Dr. The principles of inclusivity and equality postulated by Ambedkar provide valuable insights into the possibility of effectively solving these complicated problems. His single-minded quest at social justice provides cogent and practical guidelines by understanding and addressing the various challenges women with disabilities encounter in gaining and maintaining access to equal job opportunities (Howard, 2005).

Contemporary Impediments Faced by Indian-Disabled Women: A Multi-Dimensional View

Disability is something that women face in India in varied forms, and in a magnitude of challenges or obstacles that are too large to count. The cause of such issues is a compound of gender, disability, and socio-economic dimensions that create a drastic scenario in which disabled females in general tend to remain unrecognizable in policy development and economic processes (Nadeau 2024).

The various levels of discrimination (Intersectionality in Action): Women with disabilities in India suffer a deep level of intersectional discrimination, that is, they not only suffer the disadvantages of the disabled, but also because of their gender, and, frequently, their caste or class. This has the effect of adding up social exclusion, a major step towards denying them access to education, medical services, and labor opportunities (Harris 1997). Cultural and societal ingrained attitudes often undermine the role of disabled women and, in many cases, perceive them as sources of burden, but not active participatory members of society. This type of entrenched discrimination leaves them on the social fringe in the family as well as in society in general, which restricts their agency to a considerable degree.

Appalling a Low Participation Rate in the Workforce: Though India has a progressive legal system that upholds the rights of disabled people, the rate of participation in the workforce is low among disabled women bodies. In part, this can be explained by the absence of convenient educational opportunities, as they often lack the means to obtain skills that can be used to obtain gainful employment (Naz 2020). In cases where women with disabilities are in a position to receive education, they are often subjected to blatant discrimination during work appointments. Employer and employee relations can go through a vicious cycle that results in disabled women being economically dependent on stereotypical perceptions and reluctance to make necessary accommodations by the employer.

Sheer Unavailability of Accessible Infrastructure: One of the most serious and physical obstacles to inclusive employment for disabled women is the unavailability of accessible infrastructure. Accessibility of public transportation, buildings, and workplaces is often not addressed to meet the needs of the diverse nature of disabled people. Most workplaces fail to provide the simplest but necessary accommodations in the form of ramps, accessible bathrooms, or necessary assistive technologies (Roy, 2020). This systematic marginalization of the informal labor market forces a large number of disabled women to expose themselves to the precarious informal labor market, where they are usually underpaid, lack work security, and have little legal protection.

Entrenched Societal Stigma and Stereotypes: The problem of societal stigma and negative stereotypes that are deeply rooted in disability is unfortunately true in Indian culture. In particular, disabled women are commonly seen as weak creatures who cannot live without the support of others or necessarily accomplish a decent job (International Journal of Applied Research, 2016). Stigma has a serious effect on their lives and self-esteem, especially in their hopes; in most cases, they are not willing to seek work readily. These negative perceptions not only hinder their access to employment, but also their well-being, mental health, and social integration options are majorly impacted.

Legal Framework and Policies for Disability

Rights in India: A Shortage and Possibility

In terms of the legislative response to protecting the rights of persons with disabilities, India has recorded impressive strides by passing laws in that regard, led by the Rights of Persons with Disabilities Act of 2016 (RPwD Act). The aim of this milestone act is to ensure that individuals with disabilities are given the same chances of obtaining education, securing jobs, and participating in society. The RPwD Act gives the government a mandate to reserve a particular percentage of job opportunities in the institutions of the public sector for an individual affected by disability and also stipulates the availability of public infrastructure (The Rights of Persons with Disabilities Act 2016).

However, there has been slowness and unevenness in implementing these vital laws. Owing to the absence of information on the provisions of the RPwD Act, little is known about the general public and even stakeholders who are expected to play crucial roles, such as employers, educational institutions, and even government officials who play a role in its implementation (Drishti IAS 2025). Moreover, infrastructure necessary to enable access to the environment is extremely lacking. There is a significant gap between legislation and implementation when it comes to disability rights law; that comes in the form of bureaucratic red tape, a dearth of resources, and the absence of political will to see through the measures and provisions (ORF Online 2024). This shows that there should be better checks and balances, monitoring, and quick aums disbursements so that the provisions of the Act can be converted into reality.

Economic Consequences of Inclusive Work for disabled Women

The employment of formerly disabled women should not be viewed as simply socially fair; it brings about substantial and real economic value. The inclusion of disabled women in the labor market has the potential to affect the impact of splashing on the lives and livelihoods of individuals and national economies.

The growth of GDP and the economy: Disabled women have enormous yet untapped potential and can contribute significantly to the GDP, and the economy provides equal employment opportunities. Their higher levels of activity in the labor market can directly contribute to the increase in the Gross Domestic Product (GDP), the growth and stimulation of demand, as well as the overall economic development and prosperity of the nation (Robo Bionics 2025). Global experience shows that inclusive economies bear robust, resilient, and sustained growth patterns (Organization of the Royal Founded, cited in ORF Online 2024).

Reduced Welfare Dependency and Increased Tax Revenue: Employment offers disabled women an inestimable resource of financial independence, thus lessening their exposure to social welfare assistance and state subvention. When people join and participate in the labor market, they enter the tax base and benefit from the national income, which can be judiciously invested in important necessities of society, constructed infrastructure, and other extracurricular social schemes, forming a fruitful circle of economic engagement and a well-manipulated run of economic growth (Ditkowsky 2023).

Waste of Human Potential: Exclusion as a Major Economic Cost: The exclusion of disabled women in the labor force is a massive waste of productive capacity and a huge loss of human potential. Such systematic waste of potential not only hurts the overall economy but also contributes to social inequality because it helps to reinforce and enhance it. With the economic strength of the in-marginalized groups, according to Ambedkar's vision, there can be more economic privileges for the whole of society and general developments. The ongoing limited participation of disabled women, on the other hand, leads to significant economic wastage and missed opportunities for innovation and expansion (Robo Bionics 2025).

Comprehensive Approach to Strategies for Achieving Inclusive Employment

Successful achievement of genuinely inclusive employment of the disabled with particular reference to women requires a multi-pronged, coordinated, and sustained process directly combating the intertwining and interlocking obstacles they experience.

Universal and high-quality education that targets all disabled women, coupled with related vocational training, is an indispensable key in the process of making disabled women more employable. Specific education programs, provided by means of all-inclusive teaching strategies and assisted by the application of assistive technologies, can provide them with the range of skills they need to join the workforce and succeed in different industries. These provide support for inclusive curricula at the early childhood education level and training programs that respond to market needs (Michael Page, 2024).

Technology has become increasingly important in helping disabled women accomplish j tasks safely and independently. Enhanced accessibility and a combination of assistive technologies (ATs), such as screen readers, voice-to-text applications, adaptive input devices, and accessible communication channels, can contribute significantly to leveling the playing field and establishing truly accessible work environments (Robo Bionics 2024). Policies should facilitate affordability, accessibility, and personalization of ATs because various disabilities cannot be treated in the same way using the same solution.

Effective Awareness Campaigns and Sensitization Programs: It important to carry out extensive public awareness to combat stereotypes and actively change the societal perception of disabled women. Through a careful process of enlightening employers, colleagues, and citizens at large of the various capabilities, talents, and potential of people with disabilities, a more inclusive, enlightened, and accepting workforce becomes possible. This involves the enhancement of good images of disabled women in the media and in society and ensuring that disability sensitivity training is conducted in school and in the job market (Michael Page 2024).

Promoting Public-Private Partnerships: The joint attempt and strategic union of the private and government sectors should be promoted. Such partnerships can support specific employment programmes, offer professional training opportunities, ensure that working environments are designed and modified to be completely accessible to women with disabilities, and encourage inclusive hiring procedures (Economic Times 2025). Public-private partnerships may also be vital in offering the required accommodations, assistive devices, and further support in the workplace. Moreover, the opportunity to enable disabled women to work through tax exemptions or subsidies to private businesses, and an index to monitor disability employment can be investigated (Drishti IAS 2025).

Improving Legal Enforcement and Redress of Grievances: The RPwD Act is a powerful legal tool, but its implementation is key to it. This necessitates the consolidation of enforcement systems, the entrenchment of readily available grievance redressal systems where there is any discrimination, and the beefing of government organizations to ensure that whatever is done in that direction is observed. Frequent checks of accessibility and inclusive hiring processes in workplaces and the availability of organizations belonging to the public and private sectors are important. It is also important to simplify procedures, such as the receipt of a Unique Disability ID (UDID) (Drishti IAS 2025).

Encouraging Self-Employment and Entrepreneurship: With understanding that wage employment may not suit every disabled woman and/ or cannot always be available to her, the support of entrepreneurship and self-employment should also be encouraged by government promotions. This involves giving them access to microfinance, business development training, mentorship schemes, and opening the door to markets so that they may become economic actors in their own right.

Conclusion:

The vision of a fair and equal society was put forward by Dr. B. R. Ambedkar, where every person, regardless of caste, gender, or physical well-being, could live with dignity and make valuable contributions to this society, is extremely essential and crucial in India. The disability inclusion of women in the workplace is not only an issue of social justice at its most fundamental level, but it is also an unquestionable economic need of a country on the path to sustainable and inclusive development. India can make a great deal of progress towards achieving the inclusive and holistic economic growth that Ambedkar earnestly aspired to when the systemic obstacles laid in the path

of Indians themselves are inaugurated and investments within reachable education and vocational training, development of legal enforcement, and building a more genial policy and societal mentality are made. This is a potent combination of the Ambedkarian ideology of egalitarianism with disability rights–a constructive approach that could be utilized to create a fully inclusive society, in which every member is able to equally share and contribute to the development and national well-being and prosperity as a whole.

Assistant Professor
Department of Political Science
Motilal Nehru College (Evening College)
University of Delhi

References:

- Sunil Kumar(2019)Ambedkar's Economic Ideas &Contributions.IOSR Journal of Humanities and Social Science (IOSR-JHSS) Volume 24, Issue 3, Ser. 1 (March. 2019) 50-54
- B Eswaraiah,2025, A Study on Ambedkar Thoughts and Perspectives of Economic Development: Relevance of Modern India, Indian Scientific Journal of Research in Engineering and Management, Indospace Publications, - Vol. 09,
- Ditkowsky, D. (2023). The Economic Benefits of Employing People with Disabilities. Forbes.
- Drishti IAS. (2025). Implementation Challenges of the RPWD Act, 2016.
- Dutt, A. (2016). Ambedkar's Vision of Women's Emancipation and Empowerment. Economic & Political Weekly, 51(30), 64-70.
- Howard, A. (2005). Intersectionality and Disability: An Exploration. Disability & Society, 20(6), 655-667.
- IJEKS. (2024). Challenges of Disabled Women in the Workplace: A Comparative Analysis of Public and Private Spaces in India.
- International Journal of Applied Research. (2016). Social status of women with disability.
- Jackie Shaw,MaryWickenden,Stephen C. Thompson,Philip Mader, 2022vAchieving disability inclusive employment – Are the current approaches deep enough? - Journal of International Development - Vol. 34, Iss: 5, pp 942-963
- Michael Page. (2024). A guide to inclusive hiring for People with Disabilities.
- Naz, N. (2020). Challenges Faced by Women with Disabilities in India: A Sociological Perspective. International Journal of Research in Social Sciences, 10(1), 123-130.
- ORF Online. (2024). Leaving No One Behind: Strategies for Disability Inclusion in India.
- Roy, S. (2020). Accessibility for Persons with Disabilities in India: Gaps in Policy and Implementation. Journal of Disability Studies, 4(2), 55-68.
- Singh, P. (2017). Ambedkar's Vision of Social Justice and Empowerment. International Journal of Social Sciences and Humanity Studies, 9(1), 1-10.
- The News Minute. (2025). Gender in social justice: Remembering Ambedkar's contributions to Dalit feminism.
- The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016. The Gazette of India, Ministry of Law and Justice, December 28, 2016.
- Traustadóttir, R., & Harris, K. A. (1997). Women, Disability and Identity. Thousand Oaks, CA: Sage Publications.
- Zagha, R. (2013). Ambedkar's Economic Philosophy and Its Relevance Today. Economic & Political Weekly, 48(42), 45-52.